UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186447

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 553.0954 D 81 Bh Accession No. H 3453

Author दुबे, विद्यासागर

Title भारत का आर्थिक भूगर्भशास्त्र 1961.

This book should be returned on or before the date last marked below.

भारत का आर्थिक भूगर्भशास्त्र

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—५२

भारत का आर्थिक भूगर्भशास्त्र

(ECONOMIC GEOLOGY OF INDIA)

लेखक

डा० विद्यासागर दुबे

एम० एस-सी०, पी-एच० डी० (लन्दन), डी० आई० सी०, भूतपूर्व प्राध्यापक आर्थिक भूविज्ञान (ऑनरेरी), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण, १९६१

मूल्य
दस रुपये

Checked 1969

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

यद्यपि भारत एक महान् देश है, फिर भी आजके युगमें केवल आबादी या क्षेत्रफल की दृष्टि से बड़ा होना वास्तविक महानता का द्योतक नहीं। इसके लिए उसे आर्थिक एवं औद्योगिक दृष्टि से भी समुन्नत होना चाहिए। साथ ही उसमें आत्मरक्षा कर सकने की भी भरपूर शक्ति होनी चाहिए। ये तीनों क्षमताएँ प्राप्त करने के लिए हमें कृषिकी और गृहशिल्पों की उन्नति के साथ-साथ बड़े-बड़े कारखाने स्थापित कर अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की वस्तुएँ तैयार करनेका प्रयत्न करना चाहिए। इसके सिवा लोहा, तेल, यूरेनियम, कोयला आदि खनिज द्रव्योंके उत्पादन की ओर भी यथेष्ट ध्यान देना आवश्यक है। इसीसे द्वितीय तथा तृतीय योजनाओं में इस दिशामें विशेष प्रयास किया जा रहा है। इस पुस्तकमें इसी दृष्टिसे भारतमें उपलब्ध होने या हो सकनेवाले खनिज द्रव्यों की चर्चा की गयी है और यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि किस-किस राज्यमें कौन-कौनसे खनिज प्राप्य हैं, किन-किन कार्योंके लिए उनका उपयोग होता है या हो सकता है और उनका उत्पादन बढ़ानेसे हम किस सीमा तक अपनी आवश्यकता की पूर्ति तथा विदेशी मुद्राकी बचत कर सकते हैं अथवा उन्हें बाहर भेजकर देश की आर्थिक समृद्धि बढ़ाने में समर्थ हो सकते हैं।

इसके लेखक डा० विद्यासागर दुबे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से आर्थिक भूगर्भ विज्ञान के अवैतनिक प्राध्यापक के रूपमें सम्बद्ध रहे हैं। आप कई बार यूरोप की यात्रा कर चुके हैं और लन्दन, वियेना, बरलिन आदि में रहकर आपने विभिन्न विद्वानों के सहयोग से भूगर्भ विज्ञान और खनिज द्रव्यों की अच्छी जानकारी प्राप्त की है। आपने कई खनिजोंका पता लगाया है और स्वयं एक सिलिमनाइट

की खानके स्वत्वाधिकारी हैं। आशा है, आपकी लिखी यह पुस्तक हिन्दीमें भारतकी खनिज सम्पत्ति सम्बन्धी साहित्यके अभावकी पूर्तिमें यथेष्ट योगदान करने में समर्थ हो सकेगी।

लीलाधर शर्मा, पर्वतीय

सचिव, हिन्दी समिति

प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी में अनेकों आर्थिक खनिजों ने राष्ट्रीय जीवन में महत्त्वपूर्ण योग देना प्रारम्भ कर दिया है। ये खनिज अनेक उद्योगों, और यातायात, यहाँ तक कि कृषि में भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इन दिनों हम रासायनिक खादों के बिना अधिक अन्न नहीं उपजा सकते तथा इन खादों की समस्या पूर्ण रूप से खनिजों ने सुलझा दी है। इस प्रकार राष्ट्र का विकास खनिज-उद्योग तथा उसके विकास के बिना असम्भव है। इन खनिजों का महत्त्व इतना अधिक है कि राजनीतिज्ञों, अर्थशास्त्रियों तथा योजना-विशेषज्ञों को राष्ट्र की खनिज-सम्पत्ति का ज्ञान होना आवश्यक है।

इसमें सन्देह नहीं कि खनिज-सम्पत्ति से सम्बन्धित साहित्य तथा आँकड़े भारत में भू-तात्त्विक समीक्षा और भारतीय खनि-विभाग तथा अन्य सरकारी प्रकाशनों में विद्यमान हैं तथापि ये सरलता से जनता को उपलब्ध नहीं हो पाते। ये आँकड़े सैकड़ों संस्मरणों तथा सर्वेक्षण-प्रतिवेदनों में बिखरे पड़े हैं, किन्तु एक साधारण व्यक्ति उनसे कोई लाभ नही उठा सकता। भारत की खनिज-सम्पत्ति पर एकमात्र पुस्तक 'इण्डियाज मिनरल वैल्थ' है जिसको श्री कॉगिन ब्राउन तथा ए० के० डे ने लिखा है। यह मूल्यवान् पुस्तक भी आजकल उपलब्ध नहीं है। यह तो रहा भारतीय खनिज-सम्पत्ति के अंग्रेज़ी साहित्य के सम्बन्ध में। जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है किसी प्रकार का कोई साहित्य खनिज सम्पत्ति के विषय में उपलब्ध नहीं है। मैं उत्तर प्रदेश सरकार का बड़ा आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस महत्त्वपूर्ण विषय पर हिन्दी में यह पुस्तक लिखने का सुअवसर प्रदान किया।

इस सम्बन्ध में किसी को संशय नहीं होना चाहिए कि हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विषयों, नाटक, कविता तथा अन्य शाखाओं में अपूर्व उन्नति हुई है, किन्तु भू-विज्ञान जैसे उपयोगी वैज्ञानिक विषयों पर बहुत थोड़ा लिखा गया है। इस पुस्तक की सामग्री का अधिकांश भाग भारतीय भूतात्त्विक समीक्षा के संस्मरणों तथा अन्य प्रकाशनों, भारतीय खनि-विभाग, तेल व प्राकृतिक वाति आयोग तथा अणु-शक्ति आयोग के प्रकाशनों पर आधारित है। जिन पुस्तकों की सहायता ली

गयी है उन सबके सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् लिखना बड़ा कठिन है। अतः लेखक इन सभी सरकारी संस्थाओं तथा अन्य विद्वत्-संस्थाओं जैसे 'जिओलोजीकल माइनिंग एण्ड मेटलर्जीकल इंस्टीट्यूट आफ इण्डिया', 'दि जिओलाजीकल, माइनिंग एण्ड मेटलर्जीकल सोसाइटी आफ इण्डिया', तथा भारतीय विज्ञान कांग्रेस आदि का आभारी है।

स्थान के अभाव के कारण विभिन्न विषयों पर विस्तृत रूप से नहीं लिखा जा सका है, किन्तु सभी महत्त्वपूर्ण तथ्यों का सूक्ष्म विवरण विवेचनात्मक रूप से देने का प्रयत्न किया गया है। आशा की जाती है कि इस पुस्तक से जहाँ साधारण जनता की आवश्यकतापूर्ति होगी वहाँ यह पुस्तक भारतीय विश्वविद्यालयों की उच्च-कक्षाओं तक के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी।

लेखक श्री प्रकाशचन्द्र दीक्षित, एम० एस-सी० का आभारी है जिन्होंने इस पुस्तक के लिखने में विशेष रूप से सहयोग दिया। उनके सहयोग के बिना इसका प्रकाशन शायद सम्भव न हो पाता। इस पुस्तक में जो शब्दावली प्रयुक्त की गयी है वह भारत सरकार द्वारा स्वीकृत की हुई है। किन्तु आर्थिक भू-विज्ञान के सहस्रों शब्दों का अभी तक हिन्दी में अनुवाद नहीं हो पाया है, अतः लेखक ने या तो प्रो० डा० रघुवीर आंग्ल भारतीय महाकोश से शब्दों का चयन किया है या उन्हें स्वयं ही गढ़ा है, किन्तु इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया गया है कि भाषा सरल हो तथा किये गये प्रयुक्त शब्द अधिक जटिल न हों।

—विद्यासागर दुबे

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
परिच्छेद १	
कुछ प्रारंभिक बातें	१
परिच्छेद २	
खनिजों की उत्पत्ति खनिज-निर्माण की रीतियाँ, खनिज-निक्षेप-निर्माण की प्रणालियाँ	७
परिच्छेद ३	
लोहा तथा सम्बन्धित धातुएँ लोहा व इस्पात, मैंगनीज़, निकल कोबाल्ट, क्रोमियम, टायटेनियम, टंगस्टन, वेनेडियम, मोलिब्डिनम	३५
परिच्छेद ४	
सामान्य धातुएँ सीसा, जस्ता, ताँबा, टिन	९४
परिच्छेद ५	
बहुमूल्य धातुएँ सोना, चाँदी	१०६
परिच्छेद ६	
हलकी धातुएँ एल्यूमीनियम, मैग्नीशियम, वेरीलियम	११५
परिच्छेद ७	
रेडियो-सक्रिय खनिज यूरेनियम, थोरियम	१४१

परिच्छेद ८

विरल धातुएँ १५१

एण्टीमनी, आर्सेनिक, बिसमथ, कैडमियम, पारा

परिच्छेद ९

खनिज-ईंधन १५९

पत्थर कोयला, लिगनाइट, पीट

परिच्छेद १०

द्रव-ईंधन १९३

प्राकृतिक तैल व वाति

परिच्छेद ११

बहुमूल्य-खनिज २१४

हीरा, पन्ना, नीलम, लाल, पुखराज, टूरमेलीन, ज़िरकन, बेरील, क्रायसोबेरील, गारनेट, इयोलाइट

परिच्छेद १२

खाद्य-खनिज २२२

नमक

परिच्छेद १३

विभिन्न उद्योगों में प्रयुक्त खनिज २२९

अभ्रक, गन्धक, ऐस्बस्टस, सेलखड़ी, स्टीटाइट, तथा पायरोफिलाइट, काँच-बालू, बैराइट, रंगीन मिट्टियाँ, वर्मीक्युलाइट, संकोचक मिट्टी, कोरण्डम

परिच्छेद १४

तापरोधी-खनिज २५७

अग्नि-मृत्तिकाएँ, डोलोमाइट, मैग्नेसाइट, कायनाइट, सिलीमिनाइट, ग्रेफाइट, सिलिका, ज़िरकोनियम

परिच्छेद १५

मृच्छिल्प उद्योग में प्रयुक्त खनिज २७६

चीनी मिट्टी, बाल-मृत्तिका, फेल्सपार स्फटिक तथा सिलिका

परिच्छेद १६

भवन-निर्माण के पत्थर — २८३

बालू-पत्थर, लैटराइट, स्लेट, बैसाल्ट, चूना पत्थर तथा सीमेण्ट, संगमरमर

परिच्छेद १७

खाद-उद्योग में प्रयुक्त खनिज — २९४

जिप्सम, शोरा, फास्फेट, एपेटाइट

परिच्छेद १८

तलस्थ-जल — ३०२

परिच्छेद १९

मिट्टियाँ — ३०८

परिशिष्ट

खनिज सम्बन्धी आँकड़े — ३१५

प्राविधिक शब्दों की सूचियाँ — ३३३

चित्र-सूची

१. लौह अयस्क—उत्पादन व लक्ष्य — ६४

२. मैंगनीज़ अयस्क—उत्पादन व लक्ष्य — ७५

३. बाक्साइट—उत्पादन व लक्ष्य — १३२

४. कोयला—उत्पादन व लक्ष्य — १७६

५. चूना पत्थर—उत्पादन व लक्ष्य — २९०

६. जिप्सम—उत्पादन व लक्ष्य — २९७

परिच्छेद १

कुछ प्रारंभिक बातें

आर्थिक-भूविज्ञान को संक्षेप में भूविज्ञान की वह शाखा कहा जा सकता है जो पृथ्वी की खनिज सम्पत्ति के विषय में बृहत् ज्ञान कराती है। पृथ्वी से उत्पन्न समस्त धातुओं, पत्थर कोयला, प्राकृतिक तैल तथा अन्य अधातु खनिजों का अध्ययन और उनका आर्थिक विवेचन आर्थिक भूविज्ञान के द्वारा ही होता है। एक आर्थिक भू-वैज्ञानिक को केवल अपने देश या संसार की खनिज सम्पत्ति का ही ज्ञान नहीं रहता, अपितु वह यह भी बता सकता है कि अमुक खनिजों का निर्माण प्रकृति ने कैसे किया। इस प्रकार भूविज्ञान के इस अंग के अन्तर्गत सभी आर्थिक खनिजों तथा अयस्कों का अध्ययन उस अवस्था से प्रारंभ होता है जब ये महत्त्वपूर्ण खनिज निर्मित भी नहीं हुए थे तथा उस स्थिति तक पहुँचता है जहाँ उनकी सहायता से मानव जाति के लिए परम उपयोगी समापित वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। प्रत्येक देश की समृद्धि वहाँ की खनिज सम्पत्ति पर बहुत कुछ निर्भर करती है और इस दृष्टि से आर्थिक-भूविज्ञान का अध्ययन और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

यद्यपि भारतवर्ष प्राचीन समय से ही अपनी खनिज सम्पत्ति के लिए प्रसिद्ध रहा है तथापि कुछ कारणों से यह देश आज भी अत्यन्त समृद्ध नहीं कहा जा सकता है। भारत में आर्थिक महत्त्व के लगभग ५५ खनिज पाये जाते हैं जिनमें से लगभग १६ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इनमें भी प्रमुख रूप से लौह अयस्क, मैंगनीज, अभ्रक, वॉक्साइट, इल्मेनाइट, पत्थर कोयला, जिप्सम, चूनापत्थर, सिलीमेनाइट, कायनाइट, कोरण्डम, सेलखड़ी, मैग्नेसाइट तथा मृत्तिकाओं के तो विपुल भण्डार देश में विद्यमान हैं। किन्तु साथ ही सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण खनिजों में से कुछ तो इतनी अल्प-मात्रा में भारत में मिलते हैं कि उनका अभाव देश के लिए चिन्ता का विषय बन सकता है और यहाँ तक कि शांति-कालीन स्थिति में भी उनके अभाव से हमारी अर्थ-व्यवस्था पर आघात पहुँचता है। हमारे देश की नव-विकसित अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक है कि हमारे विनिमय-मुद्रा के कोष से

केवल उन संयन्त्रों आदि के लिए ही धन निकाला जाय जिनकी सहायता से हम अपने देश के निवासियों के जीवन-स्तर को उठा सकें तथा धीरे-धीरे देश के आन्तरिक संसाधनों को पूर्ण रूप से विकसित कर सकें, किन्तु आज परिस्थिति यह है कि हमें अपनी अमूल्य विदेशी-विनिमय मुद्रा का एक बड़ा भाग अनेकों खनिजों के आयात पर व्यय कर देना पड़ता है। कुछ ऐसे खनिज भी हैं जो यद्यपि देश में उत्पन्न होते हैं तो भी या तो आवश्यकता के अनुसार उत्पादन न होने अथवा आवश्यकीय पदार्थों के अधोवर्ती होने के कारण उनका भी आयात करना पड़ता है। भारत का सीसा, जस्ता, राँगा, गंधक तथा तैल आदि का उत्पादन अत्यन्त न्यून है। प्राकृतिक तैल का उत्पादन भी इतना अल्प है कि देश की आन्तरिक खपत का केवल सात प्रतिशत ही उससे पूरा होता है। इस प्रकार केवल तैल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही देश को करोड़ों रुपये की विनिमय-मुद्रा प्रतिवर्ष व्यय कर देनी पड़ती है। जहाँ तक इस्पात-उत्पादन के लिए सारे आवश्यक खनिज पदार्थों का सम्बन्ध है वे पर्याप्त मात्रा में देश में विद्यमान हैं। सीसा, जस्ता तथा राँगा जिन उद्योगों में प्रयोग किये जाते हैं उनमें इन धातुओं के अभाव के कारण कुछ हल्की धातुएँ, जैसे एल्यूमीनियम इत्यादि तथा उनकी मिश्र धातुएँ भी उपयोग में लायी जा सकती हैं।

प्राचीन भारत में खनिजों का विकास

हम कह चुके हैं कि भारत सहस्रों वर्ष पूर्व भी अपनी खनिज-सम्पत्ति के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ के राजवंशों, राजप्रासादों, और मन्दिरों के वैभव, रत्नों से सुशोभित राजसिंहासनों तथा विपुल धनराशि की ख्याति विदेशों में फैली हुई थी और भारत की यही समृद्धि बीते हुए वर्षों में उसके दुर्भाग्य में परिणत हो गयी। गत एक हजार वर्षों में भारत की उस सम्पत्ति को लूटने तथा उसके वैभव को नष्ट करने का प्रलोभन अनेकानेक विदेशी संवरण न कर सके और उन्होंने देश पर बार-बार आक्रमण किये।

खनिज पदार्थों की खोज, उनके खनन तथा धातु-शोधन कार्यों में भारतीयों ने अति प्राचीन युग में ही दक्षता प्राप्त कर ली थी। आधुनिक यन्त्रों के आविष्कार से सैकड़ों वर्ष पूर्व ही भारतीय खनक भूगर्भ में पर्याप्त गहराई तक पैठ कर खनिजों की प्राप्ति किया करते थे। इस प्रकार की कुछ खानें तो ५०० फुट तक गहरी देखी गयी हैं। भारत के सभी प्राचीनतम ग्रन्थों में सोने तथा चाँदी आदि के सम्बन्ध में

संदर्भ मिलते हैं। इन धातुओं का आभूषणों के रूप में प्रचलन अत्यन्त प्राचीन है। यह सोचकर कि किस प्रकार इन भारतीयों ने उन अंधकारपूर्ण दिनों में, जब कि सभी ओर से उनके संसाधन सीमित थे, सोने जैसी मूल्यवान् तथा अपेक्षाकृत विरल धातु की प्राप्ति पृथ्वी के गर्भ से की, आज भी आश्चर्य होने लगता है।

धातु-शोधन की कला में भी भारत के शिल्पी बहुत निपुण थे। सिकन्दर ने जब ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व भारत पर आक्रमण किया तब तक उत्तरी भारत के सभी राज्यों में लोहे तथा इस्पात की वस्तुओं का निर्माण होने लगा था। दिल्ली में कुतुबमीनार के समीप ही 'लोहे का स्तंभ' अति उच्च कोटि के इस्पात-उत्पादन की क्षमता का एक ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह स्तंभ २३ फुट ८ इंच लम्बा तथा इसका नीचे (आधार) का तथा ऊपर (चोटी) का व्यास क्रमशः १६½ इंच तथा १२ इंच है। आज के धातु-विशेषज्ञ यह कल्पना करते हुए आश्चर्य-चकित रह जाते हैं कि मोर्चा न लगने वाला इतना उत्तम इस्पात कैसी भट्टियों में शोधा गया होगा तथा फिर किस प्रकार उसको ढालकर इतने बड़े स्तंभ का रूप दिया गया होगा। मद्रास राज्य में शोधित शस्त्र-निर्माण योग्य इस्पात मध्यकालीन युग में यूरोप के विभिन्न देशों को निर्यात किया जाता था तथा दमिश्क में सुप्रसिद्ध तलवारें इसी इस्पात से निर्मित की जाती थीं।

भारत में उत्पन्न हीरे विश्व भर में प्रसिद्ध रहे हैं। प्रसिद्ध ऐतिहासिक हीरों में से अधिकांश भारतीय उत्पत्ति के ही हैं, उदाहरणार्थ कोहेनूर। ब्राजील तथा दक्षिणी अफ्रीका में हीरे मिलने से पूर्व वे केवल भारत में ही उत्पन्न होते थे तथा आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व ही इनका निर्यात विदेशों को होने लगा था। इसी प्रकार भारतीय पन्नों के सम्बन्ध में कुछ संदर्भ 'महाभारत' में मिलते हैं। आज से एक हजार वर्ष पूर्व की पुस्तकों में ही पन्नों के ८० से अधिक वर्गों (classes) के सम्बन्ध में पर्याप्त लिखा जा चुका है।

जहाँ तक औषधि-विज्ञान में खनिजों के उपयोग का प्रश्न है, उस दिशा में भी भारत प्राचीन समय से ही आगे रहा है। सोना, पारा, लोहा इत्यादि धातुओं की भस्म का औषधि रूप में आविष्कार इस देश में उस प्राचीन समय में ही हो गया था जब कि पाश्चात्य-विधि के चिकित्सा-विज्ञान की आधार-शिला भी नहीं रखी गयी थी। इनमें से आज भी अनेकों अपने ढंग की अनुपम औषधियाँ हैं। आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों में पारे, अभ्रक तथा गंधक आदि तत्त्वों व उनके खनिजों के लक्षणों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

भारत में खनन-उद्योग का विकास

यह सत्य है कि प्राचीन समय से ही भारत में अनेक खनिजों तथा अयस्कों का खनन, धातुओं का शोधन, बहुमूल्य पत्थरों की प्राप्ति तथा विभिन्न खनिजों का अनेक उपयोगी कार्यों में प्रयोग होता रहा है तथापि १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक इन खनिजों की प्राप्ति का कोई नियमित आधार नहीं था। सन् १८९० के पश्चात् कई स्थानों में नियमित ढंग से खनन प्रारंभ हुआ। १६ वर्ष के पश्चात् सन् १९०६ में भारत के सम्पूर्ण खनिज उत्पादन का मूल्य केवल १० करोड़ रुपया था। उस समय पाकिस्तान तथा बर्मा भी भारतीय साम्राज्य के ही भाग थे। इसके पश्चात् खनन-उद्योग निरन्तर वृद्धि पर रहा तथा इसकी गति स्वतन्त्रता के उपरान्त तो और भी अधिक हो गयी। यहाँ इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि २०वीं शताब्दी के प्रारंभ से इसके मध्यकाल तक खनिज के मूल्यों में भी कई गुनी वृद्धि हुई है। सन् १९४८ में उत्पादित खनिजों का मूल्य ६४ करोड़ रुपये तक पहुँचा। वास्तव में भारत के खनिज संसाधनों का व्यवस्थित योजनाओं द्वारा विकास राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के साथ ही हुआ और जैसे-जैसे समय बीतता गया, इस दिशा में महान् प्रगति के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे; यहाँ तक कि सन् १९५३ में ११२.७८ करोड़ रु० मूल्य के खनिज का उत्पादन हुआ। सन् १९५५ के पश्चात् खनिज उत्पादन में लगातार वृद्धि हो रही है। सन् १९५८ में सम्पूर्ण भारतीय खनिजों के कुल उत्पादन का मूल्य १३७.३ करोड़ रु० हुआ। इस प्रकार इस वर्ष सन् १९५७ के उत्पादन की अपेक्षा ८ करोड़ रु० अथवा लगभग ६ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस मूल्य में प्राकृतिक तैल तथा अणुशक्ति खनिजों के उत्पादन का मूल्य सम्मिलित नहीं है।

किसी भी देश के संसाधनों का उचित और पूर्ण उपयोग करने के लिए गवेषण कार्य अत्यन्त आवश्यक है। लगभग ११० वर्ष पूर्व भारतीय भूतात्विक समीक्षा (Geological Survey of India) की स्थापना की गयी थी। इसका मुख्य कार्य देश के खनिज पदार्थों का अन्वेषण तथा अनुसन्धान एवम् भूतात्विक दृष्टि से देश की समीक्षा करना था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् खनिज उद्योग के विकास के लिए, भारत सरकार की जागरूक नीति के परिणामस्वरूप सन् १९४८ में 'भारतीय खनि विभाग' (Indian Bureau of Mines) की स्थापना हुई। इसका प्रधान कार्यालय पहले दिल्ली में तथा बाद को स्थानान्तरित कर नागपुर भेज दिया गया। इस संस्था का कार्य एक सुनिश्चित योजना के अन्तर्गत विभिन्न खनिजों के भंडारों की खोज एवम् निर्धारण, खनन पद्धतियों में सुधार,

अधिक ठोस आधार पर आँकड़ों का संग्रह करना तथा खनिजों के समुचित उपयोग के लिए गवेषणा की व्यवस्था है। यह संस्था देश में खनन-उद्योग की समस्याओं का निराकरण तथा नवीन उपयोगी सुझाव देकर उद्योग की वृद्धि करने में भी सहायक सिद्ध हुई है। इस संस्था में कई प्रभाग हैं जो विभिन्न कार्यों को व्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए बनाये गये हैं। परमाणु शक्ति आयोग के अन्तर्गत भी एक 'परमाणु-शक्ति-खनिज-प्रभाग' स्थापित किया गया है। इसका मुख्य कार्यालय दिल्ली में है। यह प्रभाग देश के उन सारे निक्षेपों का विस्तृत अध्ययन करेगा जिनमें रेडियो-सक्रिय खनिज मिलते हैं अथवा उनके मिलने की संभावना है।

भारत में तैल का अत्यन्त अभाव है। अतः भारत सरकार ने इस ओर विशेष रुचि दिखायी है। यद्यपि देश को स्वयम् पर निर्भर होने में समय लग सकता है और यह भी संभव है कि शायद वह कभी भी पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर न बन सके तथापि तैल के कुछ अन्य भण्डारों के प्राप्त होने की संभावना को निर्मूल नहीं समझा जा सकता। इस कार्य को विशाल स्तर पर संचालित करने, देश में संभावित स्थानों पर समान्वेषण करने तथा उसके सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए भारत सरकार के 'प्राकृतिक साधन और वैज्ञानिक अनुसन्धान' मंत्रालय (Ministry of Natural Resources & Scientific Research) ने तैल एवम् प्राकृतिक गैस आयोग (Oil & Natural Gas Commission) नामक संस्था को जन्म दिया है। पत्थर कोयले से भी वाणिज्य स्तर पर संश्लेषित तैल (Synthetic Petroleum) निर्माण करने की योजनाओं पर विचार चल रहा है। हाल में ही खंबात (गुजरात) में प्राकृतिक तैल का एक नवीन क्षेत्र मिला है।

भारत सरकार ने सरकारी पूंजी पर आधारित खनिज व्यापार को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए राष्ट्रीय खनिज विकास निगम (National Mineral Development Corporation) तथा राष्ट्रीय कोयला विकास निगम नामक स्वायत्त संस्थाओं की भी स्थापना की है। भारतीय कोयले के भण्डारों के वर्गीकरण तथा उनके संरक्षण के लिए 'कोल बोर्ड ऑव इण्डिया' गत कई वर्षों से काम कर रहा है।

खनिजों का आयात एवम् निर्यात

देश को अलौह धातुओं, गंधक, पोटाश, ग्रैफाइट तथा कई अन्य खनिजों की

आवश्यकता-पूर्ति के लिए आयात पर निर्भर रहना पड़ता है। सन् १९५७ में १,९११,००९,००० रु० खनिजों के आयात में व्यय हुए। यदि इसमें खनिज तथा ईंधन तैल आदि के आयात का भी मूल्य सम्मिलित किया जाय तो यह संख्या तीन अरब साढ़े सात करोड़ रुपये से भी अधिक हो जायगी, जो सम्पूर्ण आयात का ३० प्रतिशत है। सन् १९५८ में खनिजों के आयात में पर्याप्त कटौती की गयी तथा इस वर्ष १,३२८,३२४,००० रु० के मूल्य के ही खनिज देश ने आयात किये। कुछ महत्त्वपूर्ण खनिज तथा अयस्क, उदाहरणार्थ मैंगनीज़-अयस्क, लौह-अयस्क, पत्थर का कोयला, अभ्रक, इल्मेनाइट, कायनाइट, सिलीमेनाइट तथा नमक आदि विदेशों को निर्यात किये जाते हैं। खनिजों के निर्यात द्वारा सन् १९५७ में ६४ करोड़ १० लाख रुपये प्राप्त हुए थे। सन् १९५८ में निर्यात किये जाने वाले खनिजों की मात्रा कम हो गयी तथा इस वर्ष केवल ४६०,१२९,००० रु० ही विनिमय-मुद्रा के रूप में अर्जित किये जा सके।

परिच्छेद २

खनिजों की उत्पत्ति

खनिज-निर्माण की रीतियाँ[1]

खनिजों के निर्माण की अनेकों रीतियाँ हैं जिनमें तापक्रम, दबाव और जल मुख्य रूप से भाग लेते हैं। इनमे से प्रमुख रीतियों के सम्बन्ध में नीचे लिखा जा रहा है—

(१) द्रुतपुंज से मणिभीकरण (Crystallisation from Magma)

पृथ्वी के अभ्यन्तर (Interior) में द्रुतपुंज (Magma) में अनेक तत्त्व आक्साइड एवम् सिलीकेट (Silicates) के रूप में होते हैं। जब यह मैग्मा ठण्डा होता है तो अनेकों यौगिक खनिजों के रूप में मणिभित हो जाते हैं और इस प्रकार खनिज निक्षेपों को जन्म देते है। इस प्रकार उत्पन्न मुख्य खनिजों के उदाहरण क्रोमाइट, मेग्नेटाइट तथा हीरा हैं।

(२) ऊर्ध्वपातन (Sublimation)

पृथ्वी के ताप के कारण अनेकों यौगिक जो कि उत्पत (Volatile) हैं वाति (Gas) में परिवर्तित हो जाते हैं। जब यह वाति या गैस धरातल के शीतल भागों में पहुँचती है तो द्रव-अवस्था (Liquid State) में गये बिना ही ठोस बन जाती है। इस प्रकार के खनिज ज्वालामुखी द्वारों के समीप अथवा धरातल के समीप आग्नेय पुंजों (Igneous Masses)में प्राप्त होते हैं। ऊर्ध्व पातन (Sublimation) क्रिया द्वारा ही गंधक का निर्माण होता है।

(३) आसवन (Distillation)

ऐसा समझा जाता है कि समुद्र में अवसादों में खचित (Embedded)

1. Modes of Mineral Formation

लघु-जीवों के काय (bodies) विघटन (decomposition) के पश्चात् एक प्रकार का तेल देते हैं जो कि आसवित होता है और इस प्रकार आसवन द्वारा निर्मित वाष्प प्राकृतिक तेल (Petroleum) में परिवर्तित हो जाती है अथवा कभी-कभी प्राकृतिक वातियों को जन्म देती है।

(४) वाष्पीकरण एवम् अधि-संतृप्तीकरण (Vapourisation & Super Saturation)

अनेकों लवण पानी में घुलने की क्षमता रखते हैं और इस प्रकार लवणीय पानी के निर्झर अथवा झीलें अस्तित्व में आती हैं। इस लवणीय पानी के वाष्पीकरण के कारण लवण निस्सादित (Precipitate) हो जाते हैं और इस प्रकार लवण अवसाद उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त जब वाष्पीकरण द्वारा अधि-संतृप्तीकरण अवस्था आ जाती है तब घुले हुए पदार्थों के मणिभ पृथक् होने लगते हैं।

(५) वातियों, द्रवों एवम् ठोस पदार्थों की पारस्परिक प्रतिक्रियाएँ (Mutual Reactions of Gases, Liquids and Solids)

जब दो विभिन्न वातियाँ पृथ्वी के अभ्यन्तर से निकल कर धरातल पर पहुँचती हैं और प्रतिक्रिया करती हैं तो अनेकों यौगिक उत्पन्न होते हैं। उदाहराणार्थ—

$$2H_2S + SO_2 = 3S + 2H_2O$$

(हाइड्रोजन सल्फाइड + सल्फर डाई आक्साइड = गंधक + पानी)

इसी प्रकार कभी-कभी वातियाँ कुछ विलयनों (Solutions) से प्रतिक्रिया करती हैं, फलस्वरूप कुछ खनिज निस्सादित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए जब हाइड्रोजन सल्फाइड वाति नीले थोथे (Copper Sulphate) के विलयन से पारित होती है तो ताम्रसल्फाइड (Copper Sulphide) निस्सादित हो जाता है। कभी-कभी ये वातियाँ ठोस पदार्थों के साथ प्रतिक्रिया करके खनिजों को उत्पन्न करती हैं। यह क्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि अनेक प्रकार के सिलीकेट, आक्साइड तथा सल्फाइड खनिज इस प्रकार उत्पन्न होते हैं। किसी समय ऐसा होता है कि पृथ्वी के अभ्यन्तर का उष्ण जल आग्नेय शिलाओं (Igneous Rocks) से पारित होता है तो विशाल संख्या में अयस्क काय (Ore bodies) अपने में प्रविलीन (Dissolved) कर लेता है। इसी प्रकार के विलयन पृथ्वी तल के समीप पहुँचकर अनेक धातुओं को निस्सादित कर देते हैं। सोने के अनेक निक्षेप इसी तरह उत्पन्न हुए हैं।

किन्हीं अवस्थाओं में ये विलयन पृथ्वी तल के समीप अनेक प्रकार की शिलाओं के संपर्क में आते हैं तब एक कण का दूसरे कण द्वारा प्रतिस्थापन होता है अर्थात् जब शिला के एक कण का निष्कासन होता है तो उस निष्कासित कण के स्थान पर धातविक विलयन (Metallic Solution) का एक कण अवसादित हो जाता है और इस प्रकार प्राचीन शिलाओं के स्थान पर नितान्त नव-निर्मित धातुएँ मिलती हैं जिनका आकार और परिमाण प्राचीन प्रतिस्थापित शिलाओं का ही होता है।

अनेक दशाओं में यदि शिलाओं में कुछ दरारें (Cracks) या शून्य स्थान (Void Spaces) हैं तो अतिच्यवित विलयन (Percolating Solutions) उन शून्य स्थानों में कुछ खनिज निक्षेपों को जन्म देते है। यह क्रिया अत्यन्त सामान्य है जिसने अनेक धातविक निक्षेपों को उत्पन्न किया है।

(६) शाकाणुओं द्वारा निस्सादन (Precipitation by Bacteria)

यह भली प्रकार से ज्ञात है कि कुछ विशेष प्रकार के शाकाणुओं में विलयनों से खनिज निस्सादित करने की क्षमता होती है। कुछ शाकाणुओं ने लौह-निक्षेपों को भी उत्पन्न किया है। ये शाकाणु विभिन्न प्रकार के होते हैं और विभिन्न प्रकार के खनिज निक्षेपों को जन्म देते है।

(७) श्लेषाभीय निक्षेपण (Colloidal Deposition)

विशाल संख्या में खनिज, जो जल में अविलेय हैं, श्लेषाभीय विलयनों (Colloidal Solutions) में परिवर्तित हो जाते हैं और ये विलयन जम जाते हैं*। जब कोई विद्युदंश (Electrolyte) उनसे मिलता है, इस प्रकार कोई भी धातु निस्सादित हो सकती है। कभी-कभी निस्सादन होने के पश्चात् निस्सादित खनिज मणिभित हो जाते हैं जब कि दूसरी दशाओं में वे अमणिभित ही रहते हैं।

(८) ऋतुक्षरण क्रिया (Weathering Process)

ऋतुक्षरण क्रिया शिलाओं के अपक्षय के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इस प्रकार जो विलयन बनते है उनमें लोहे, मैंगनीज तथा दूसरी धातुओं के यौगिक हो सकते हैं। ये यौगिक विलयनों द्वारा समुद्र में ले जाये जाते हैं और वहाँ वे अवसादित

* **जम जाना** Coagulation

हो जाते हैं। अनेकों लोहे और मैंगनीज के निक्षेप इस प्रकार उत्पन्न हुए हैं। ऋतु-क्षरण या तो पूर्ववर्ती (Preexisting) शिलाओं से अथवा पूर्ववर्ती खनिज निक्षेपों से हो सकता है। कभी कभी किसी शिला में कुछ अधोवर्गीय **विप्रथित** खनिज होते हैं। तलीय जल (Surface Water) शिलाओं के साधारण अवयवों को प्रविलीन (Dissolve) कर लेता है और अवशिष्ट भाग (Residual part) को मौलिक रूप से विप्रथित खनिजों सहित समृद्ध करता है। कई अयस्कों के निक्षेप अवशिष्ट सृष्ट (Product) के रूप में प्राप्य हैं, जैसे बॉक्साइट। कुछ शिलाएँ, जैसे कणाश्म (Granite) वियोजन (Disintegration) के पश्चात् कायनाइट (Kyanite) जैसे खनिजों को उत्पन्न करती हैं।

(९) **कायान्तरण** (Metamorphism)

कुछ निक्षेप पूर्ववर्ती अवसादों की परिवर्तन-क्रिया (Metamorphism) द्वारा रचे जाते हैं। उदाहरण के लिए चूना पत्थर संगमरमर को तथा कुछ मृत्तिकाएँ (Clays) और सिलिका (Silica) सिलीमिनाइट (Sillimanite) को उत्पन्न करती हैं।

खनिज-निक्षेप निर्माण की प्रणालियाँ[1]

खनिज-निक्षेपों के निर्माण का अध्ययन एक गूढ़ तथा जटिल विषय है। इसमें अनेकों प्रणालियों का अध्ययन विस्तृत रूप से अनिवार्य है। रूप, रंग, आकार तथा खनिज-संरचना में दो निक्षेप समान नहीं हो सकते। इसका कारण यह है कि इन निक्षेपों का निर्माण विभिन्न समय एवम् प्रणाली के अनुसार भिन्न-भिन्न वातावरण में हुआ है।

इस परिच्छेद के प्रथम भाग में हम ने लिखा था कि खनिज निक्षेपों के निर्माण में प्रबल योग पानी, तापक्रम तथा दबाव का होता है। यहाँ हम इनके अतिरिक्त अन्य पहलुओं, जैसे द्रुत पुंज (Magma), वातियों (Gases), वाष्प (Vapour), कुछ विशेष दशाओं में ठोस व द्रव, वातावरण, शाकाणुओं (Bacteria) तथा अन्य तथ्यों का अध्ययन विस्तृत रूप से करेंगे। इसके साथ ही हम उन विभिन्न दशाओं तथा पूर्ववर्ती तथ्यों पर भी विचार करेंगे जिन्होंने विभिन्न प्रकार के खनिज निक्षेपों को निर्मित करने में सक्रिय सहयोग दिया।

1. Processes of Formation of Mineral Deposits

खनिज-निक्षेपों के निर्माण में कई प्रणालियों का योग रहता है तथा इन्हीं के आधार पर निक्षेपों का वर्गीकरण निर्भर करता है। दो अथवा दो से अधिक प्रणालियाँ खनिज निक्षेपों के निर्माण में एक ही समय अथवा समयान्तर लेकर अपना प्रभाव डालती हैं। प्रतिस्थापन (Replacement) तथा गुहा-पूरण (Cavity filling) की क्रियाशीलता प्रायः साथ-साथ ही चलती है। कोई भी विदर (Fissure) पहले भरता है और फिर उसका प्रतिस्थापन होता है। इन तमाम प्रणालियों को दृष्टिगत रखते हुए खनिज-निक्षेपों को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया गया है।—प्रथम तो समकालीन (Syngenetic) निक्षेप हैं तथा दूसरे उत्तर-कालीन (Epigenetic) निक्षेप। प्रथम वे निक्षेप हैं जिनका निर्माण देशीय शिलाओं (Country socks) के साथ साथ ही होता है तथा दूसरे वे निक्षेप जिनका निर्माण इन शिलाओं के उद्भव के पश्चात् हुआ है। वे विभिन्न प्रणालियाँ, जिनसे खनिज निक्षेपों की उत्पत्ति हुई है, निम्न प्रकार हैं—

(१) द्रुतपुंजीय संकेन्द्रण (Magmatic Concentration)
(२) उष्णजलीय प्रणालियाँ (Hydrothermal Processes)
  (अ) गुहा-पूरण (Cavity filling)
  (ब) प्रतिस्थापन (Replacement)
(३) संपर्क-रूपान्तरण (Contact Metasomatism)
(४) अवसादन (Sedimentation)
(५) वाष्पन (Evaporation)
(६) ऊर्ध्वपातन (Sublimation)
(७) अवशिष्ट एवम् भौतिक संकेन्द्रण (Residual & Mechanical Concentration)
(८) आक्सीकरण व अन्य संवर्द्धन क्रियाएँ (Oxidation & Enrichment Processes)
(९) कायान्तरित क्रियाएँ (Metamorphic Processes)

१. द्रुतपुंजीय संकेन्द्रण (Magmatic Concentration)

इस प्रणाली से उत्पन्न निक्षेप विशाल संख्या तथा व्यापक विस्तार में होते हुए भी अन्य प्रणालियों के निक्षेपों की अपेक्षा कम ही हैं। द्रुतपुंजीय अयस्क निक्षेपों की विशेषता उनका माध्यमिक (Intermediate) तथा गहराई पर स्थित अन्तर्भेदी

(Intrusive) आग्नेय शिलाओं से सम्बन्ध है। कुछ द्रुतपुंजों के गौण (Accessory) अथवा असाधारण (Uncommon) अवयव जो इस प्रकार संकेन्द्रित हो जाते हैं तथा इस प्रकार मूल्यवान् खनिज निक्षेपों को निर्मित करते हैं। इस प्रकार के निक्षेप साधारण मणिभीकरण अथवा अन्तर्भेदी आग्नेय पुंजों (Igneous Masses) के विकलन (Differentiation) द्वारा उत्पन्न होते हैं। अध्ययन द्वारा पता चला है कि ये द्रुतपुंजीय निक्षेप कई रीतियों से निर्मित हो सकते हैं तथा किन्हीं स्थितियों में अयस्क खनिज शिला-खनिजों से पूर्व, किन्हीं में उनके पश्चात् मणिभित होते हैं एवम् अन्य दशाओं में पोषिता-शिला (Host rock) के मणिभीकरण के पश्चात् तक अमिश्रित द्रव के रूप में रहते हैं।

द्रुतपुंजीय निक्षेपों को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रथम तो प्रारम्भिक द्रुतपुजीय निक्षेप (Early Magmatic Deposits) तथा दूसरे उत्तर-द्रुतपुंजीय निक्षेप (Late Magmatic Deposits) कहलाते हैं। इन दोनों प्रकार के निक्षेपों में वास्तव में बहुत कम अन्तर मिलता है। यही कारण है कि अनेक वैज्ञानिक इस वर्गीकरण को स्वीकार नहीं करते। कुछ लोगों का मत है कि द्रुतपुंजीय पृथक्करण (Magmatic segregation) द्वारा निर्मित निक्षेप ही वास्तव में द्रुतपुंजीय निक्षेप कहलाने योग्य हैं और इसलिए इस वर्ग के वैज्ञानिक उन सभी निक्षेपों को, जो द्रुतपुंजीय पृथक्करण की प्रक्रिया से नहीं बने हैं, द्रुतपुंजीय निक्षेप नहीं मानते चाहे वे अन्य दृष्टियों से सीधे ही द्रुतपुंजीय क्रियाओं के फल रहे हों। प्रोफेसर बेटमेन (Prof. Bateman) ने उपर्युक्त वर्गीकरण को ही स्वीकार किया है जिसमें इन निक्षेपों को प्रारम्भिक तथा उत्तर (Late) द्रुतपुंजीय निक्षेपों की संज्ञा दी गयी है।

प्रारंभिक द्रुतपुंजीय निक्षेप (Early Magmatic Deposits)

इन निक्षेपों का निर्माण सीधे ही द्रुतपुंजीय प्रक्रियाओं (Magmatic Processes) के द्वारा होता है। वे विधियाँ जिनसे ये निक्षेप निर्मित होते हैं मुख्य रूप से केवल तीन हैं। प्रथम तो साधारण मणिभीकरण है जिसके साथ संकेन्द्रण नहीं होता। इसको विस्तरण (Dissemination) भी कहते हैं। दूसरी पृथक्करण (Segregation) की विधि है जिसमें पूर्व-निर्मित मणिभ पृथक् हो जाते हैं तथा तीसरी विधि प्रवेशीकरण (Injcetion) की है जिसके अन्तर्गत द्रुतपुंजीय पदार्थ किसी अन्य स्थान पर विकलन (Differentiation) द्वारा खनिज निक्षेपों को जन्म देते हैं।

द्रुतपुंज के साधारण मणिभीकरण द्वारा कणमय (Granular) आग्नेय शिलाएँ निर्मित होती हैं जिनमें सर्वत्र पूर्व-निर्मित मणिभ व्याप्त रहते हैं। इस प्रकार के मणिभ यदि पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हों तथा वे पर्याप्त मूल्यवान् भी हों तो ये निक्षेप द्रुतपुंजीय खनिज निक्षेप कहलाते हैं। भारत में पन्ना (मध्य प्रदेश) के हीरा-निक्षेप तथा दक्षिणी अफ्रीका में किम्बरली प्रदेश के हीरा-निक्षेप इसी प्रकार उत्पन्न हुए हैं।

द्रुतपुंज (Magma) के महत्त्वपूर्ण अवयवों का घनीभूत अथवा संकेन्द्रित होना प्रारंभिक द्रुतपुंजीय पृथक्करण कहलाता है। यह क्रिया गुरुत्वाकर्षक-मणिभीकरण-विकलन (Gravitational Crystalisation Differentiation) के द्वारा सम्पन्न होती है। इसके उदाहरण क्रोमाइट के निक्षेप हैं। प्रारंभ में क्रोमाइट खनिज मणिभित हो जाता है तथा फिर विशालकाय निक्षेपों के रूप में उनका पृथक्करण हो जाता है। इस प्रकार समृद्ध एवम् विशाल निक्षेप अस्तित्व में आते हैं। पृथक्करण की यह क्रिया पूर्व-निर्मित मणिभों के द्रुतपुंज-कक्ष (Magma Chamber) के निचले भागों में भारी होने से डूबने के कारण नवीन निक्षेपों को जन्म देती है। इस प्रकार निर्मित निक्षेप अधिकांशतः वीक्ष-आकार[1] के होते हैं।

प्रवेशीकरण[2] प्रक्रिया में अयस्क-खनिजों का निर्माण अथवा संकेन्द्रण मुख्यरूप से मणिभीकरण-विकलन[3] से होता है। इस प्रकार के खनिज साथ के अन्य आग्नेय खनिजों से या तो पूर्व ही अथवा साथ साथ निर्मित होते हैं। इनके अध्ययन से यह स्पष्ट है कि संरचनात्मक-सम्बन्धों के अनुसार ये निक्षेप आसपास की शिलाओं में प्रारंभ में प्रवेश कर गये थे और प्रवेशीकरण के समय द्रव द्रुतपुंज में या तो कुछ मणिभ विद्यमान थे अथवा वह मणिभ-हीन था तथा तत्पश्चात् विकलन एवम् मणिभीकरण क्रियाओं द्वारा ये निक्षेप अस्तित्व में आये। मेग्नेटाइट (Magnetite) के कुछ निक्षेप, विशेषकर स्वीडन में किरूना (Kiruna) के मेग्नेटाइट-निक्षेप, इसके प्रमुख उदाहरण हैं। प्रायः मेग्नेटाइट तथा इल्मेनाइट (Ilmenite) का मणिभीकरण सिलीकेट खनिजों के मणिभीकरण के पूर्व होता है। मणिभीकरण के पश्चात् मणिभ ठोस रूप में द्रुतपुंज में एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार यह समझा जाता है कि निक्षेप का संकेन्द्रण कहीं होता है और प्रवेशीकरण कहीं

1. Lenticular. 2. Injection. 3. Crystallisation Differentiation.

और। किन्तु ठोस मणिभों का शिलाओं में प्रवेश नहीं हो सकता, अतः कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि इस प्रकार निर्मित मणिभ एक बार पुनः द्रवित होते हैं और तब आसपास की शिलाओं में प्रवेश करते हैं। इन सभी तथ्यों के होते हुए भी यह विषय विवाद-ग्रस्त बना हुआ है।

उत्तर-द्रुतपुंजीय निक्षेप[1]

कुछ निक्षेपों को, जिनका मणिभीकरण द्वारा प्रादुर्भाव द्रुतपुंजीय समय की अन्तिम दशाओं में होता है, उत्तर-द्रुतपुंजीय निक्षेप का नाम दिया गया है। प्रारंभ में कुछ सिलीकेट-शिलाओं का मणिभीकरण होता है और कुछ भाग इस मणिभीकरण के पश्चात् भी ठोस नहीं हो पाता तथा केवल बाद की कुछ विशेष परिस्थितियों में ही इसका ठोस-करण होता है और इस प्रकार निर्मित खनिज पूर्व निर्मित खनिजों से बिलकुल भिन्न होते हैं। इन निक्षेपों का आयोजन मुख्यतः क्षारीय-आग्नेय शिलाओं[2] से होता है तथा इनकी उत्पत्ति मणिभीकरण-विकलन की विभिन्नता,[3] भारी अवशिष्ट द्रवों के गुरुत्वाकर्षक संचयन से अथवा द्रव-अमिश्रता[4] या किसी अन्य रीति से होती है। निक्षेपों का यह समूह महत्त्वपूर्ण समूह है एवम् इसमें अनेक निक्षेप सम्मिलित हैं।

इस प्रकार के निक्षेपों के निर्माण में अवशिष्ट द्रव-पृथक्करण[5] की क्रिया मुख्य रूप से भाग लेती है। ऐसे द्रुतपुंज जिसमें विकलन[6] की क्रिया हो रही हो इस क्रिया के पश्चात् इसका अवशिष्ट भाग सिलिका (Silica), क्षारों तथा पानी से समृद्ध हो जाता है। कुछ द्रुतपुंजों के साथ ऐसा नहीं होता और वे लोहा तथा टायटेनियम आदि धातुओं में समृद्ध हो जाते हैं। एनॉर्थोसाइट (Anorthosite) की उत्पत्ति इसकी सत्यता का एक अच्छा प्रमाण है। यहाँ प्लेज़ियोक्लेज़ का मणिभीकरण पहले होता है तथा पायरोक्सीन (Pyroxene) एवम् लौह-ऑक्साइड आदि अन्त में मणिभीकृत होते हैं। इस प्रकार अवशिष्ट द्रव मणिभों के बीच के खाली स्थान से या तो पृथक् होकर अथवा बाहर निकलकर द्रुतपुंज कोष्ठ (Magma Chamber) में प्रवेश करता है और वहीं पर स्थिर रूप से आग्नेय खनिज के रूप में मणिभित

1. Late Magmatic Deposits. 2. Basic Igneous rocks. 3. Variation. 4. Liquid Immiscibility. 5. Residual liquid segregation. 6. Differentiation.

हो जाता है। निश्चल वातावरण में यह द्रव द्रुतपुंज कोष्ठ के मध्य अथवा तलीय भाग में उत्तर-द्रुतपुंजीय पृथक्करण द्वारा बहुमूल्य एवम् समृद्ध अयस्क निक्षेपों को जन्म देता है। दक्षिणी अफ्रीका में बुशवेल्ड-कॉम्प्लेक्स (Bushveld Complex) के टायटेनियममय मैग्नेटाइट निक्षेप इस क्रिया द्वारा निर्मित होने वाले निक्षेपों के अच्छे उदाहरण हैं।

अवशिष्ट द्रव प्रवेशीकरण (Residual Liquid Injection) विधि में लौह सम्पन्न अवशिष्ट द्रव पृथक्करण की विधि द्वारा संचित होता है, किन्तु कुछ विशेष स्थितियों के कारण यह द्रव या तो ऊपर स्थित मातृ-शिला (Mother rock) अथवा संलग्न अन्य शिलाओं के रिक्त स्थानों में प्रवेश कर जाता है क्योंकि इन स्थानों पर दबाव प्रायः कम ही रहता है। इस प्रकार यदि अवशिष्ट द्रव का संचयन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता तो द्रव छनकर बाहर निकलकर किसी अन्य स्थान पर उत्तर-द्रुतपुंजीय-प्रवेशीकरणों (Late magmatic injections) का निर्माण करता है। इस विधि द्वारा निर्मित-अयस्क-काय प्रायः अनियमित आकार के होते हैं। ये प्रतिक्रियाएँ मुख्य रूप से द्रुतपुंजीय ही हैं क्योंकि अन्तिम घनीकरण के साथ साथ ही वे समाप्त हो जाती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रवेशीकृत लौह-समृद्ध द्रव उत्पत (वोलैटाइल) पदार्थों में भी समृद्ध होते हैं और तब (Pneumatolytic) क्रिया भी हो सकती है। अवशिष्ट द्रव प्रवेशीकरण विधि से निर्मित होने वाले निक्षेपों में स्वीडन के किरूना क्षेत्र के विशाल मैग्नेटाइट निक्षेप महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

कुछ मूल्यवान् निक्षेपों के निर्माण में अमिश्रणीय द्रव पृथक्करण (Immiscible Liquid Segregation) का प्रमुख स्थान है। वॉग्ट (Vogt) के कथनानुसार लोहे, निकेल तथा ताँबें आदि के सल्फाइड (Sulphides), ६ से ७ प्रतिशत तक क्षारीय द्रुतपुंज में घुलनशील हैं। द्रुतपुंज के ठण्डे होने पर ये सल्फाइड आंशिक रूप से द्रुतपुंज कोष्ठ के तलीय भाग में संचित हो जाते हैं। पहले सिलीकेट द्रव मणिभित होता है, तत्पश्चात् उसके चारो ओर ये सल्फाइड द्रव मणिभित होते हैं। इस प्रकार निर्मित सल्फाइड खनिज अन्तिम आग्नेय खनिज होते हैं। इस विधि द्वारा प्लेटिनम, सोने, चाँदी तथा अन्य तत्त्वों के साथ ही पायरोटाइट (Pyrrhotite), चाल्को-पायराइट तथा अन्य ताम्रखनिजों एवम् निकेल आदि धातुओं के अयस्कों का जन्म होता है। इस सम्बन्ध में एक बात स्मरणीय है कि इस प्रकार उत्पन्न निक्षेप गैब्रो-परिवार (Gabbro-family) की क्षारीय-आग्नेय

शिलाओं तक ही सीमित रहते हैं। दक्षिणी अफ्रीका में बुशवेल्ड के निकेलमय-निक्षेप इस विधि द्वारा निर्मित निक्षेपों का एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

कभी-कभी इस प्रकार संचित सल्फाइड-सम्पन्न अंश का घनीकरण होने से पूर्व ही जब उसमें अशान्त वातावरण छा जाता है तब यह प्रायः कम दबाव वाले स्थानों की ओर जाने लगता है। इस प्रकार के रिक्त स्थान इस द्रव को समीप ही या तो मातृशिला में अथवा चतुर्दिक शिलाओं में मिल जाते हैं। इन स्थानों में ही यह द्रव अमिश्रणीय द्रव प्रवेशीकरणों (Immiscible liquid injections) को जन्म देते हैं। ये निक्षेप अवश्यमेव ही उत्तर द्रुतपुंजीय-काल (Late magmatic age) के प्रमाण हैं। इस प्रकार के अयस्क खनिज सिलीकेट खनिजों का भेदन तथा परिवर्तन ही नहीं करते अपितु कभी-कभी उनका प्रतिस्थापन (Replacement) भी कर देते हैं। जहाँ तक इनके रूप का प्रश्न है वे या तो डाइकों जैसे होते हैं अथवा अनियमित आकार के होते हैं। इस विधि में उस समय और भी कई जटिलताएँ आ जाती हैं जब अवशिष्ट अंश में उत्पत पदार्थों की मात्रा पर्याप्त होती है। दक्षिण अफ्रीका में ब्लैकफोन्टाइन (Vlackfontein) खान के निक्षेप इसी विधि के परिणाम हैं।

२. उष्णजलीय विधियाँ (Hydrothermal Processes)

इस विधि से उन सभी धातविक-खनिज निक्षेपों का निर्माण होता है जो हमारे लिए परम उपयोगी हैं। सोना, चाँदी, सीसा, जस्ता, ताँबा, एण्टीमनी, मोलिब्डिनम तथा अन्य अनेक धातुओं तथा बहुत-से अधातविक खनिजों की प्राप्ति उष्णजलीय विधि द्वारा निर्मित निक्षेपों से ही होती है। इस प्रकार इस विधि से उत्पन्न निक्षेप शायद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रो० ऐलन एम० बेटमेन (Prof. Alan M. Bateman) ने उष्णजलीय निक्षेपों के निर्माण के लिए इन पाँच तथ्यों को प्रमुख स्थान दिया है—(१) खनिज पदार्थों के घोलने और उन्हें ले जाने की शक्ति रखने वाले खनिजीकारक विलयनों (Mineralising Solutions) की उपस्थिति, (२) शिलाओं में रिक्त स्थान अथवा छिद्र हों जिनसे द्रव का प्रवाह हो सके, (३) खनिज अंशों के लिए निक्षेपण के लिए उचित स्थान का होना, (४) रासायनिक क्रियाएँ जो खनिज निक्षेपण में सहायक हों, (५) अवसादित खनिज पदार्थ का पर्याप्त संकेन्द्रण होना जिससे उपयोगी निक्षेपों का निर्माण संभव हो।

जहाँ तक उष्णजलीय विलयनों का सम्बन्ध है इनकी तुलना उष्ण झरनों अथवा उष्ण जल से की जा सकती है। इनका तापक्रम सामान्यतः ५०° सें० (c.) से ५००° सें० तक हो सकता है। कुछ अन्य विलयन, जिनका तापक्रम अधिक होता है, अधिक दबाव के भी अन्तर्गत होते हैं। इन विलयनों की क्रिया को केवल खनिज निक्षेप अथवा भित्ति-शिला (Wall rock) के रूप में ही देखा जा सकता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य, जिस पर उष्णजलीय निक्षेपों का निक्षेपण निर्भर रहता है, शिला में रिक्त स्थानों अथवा कुछ छिद्रों का होना है जो खनिजीकृत विलयनों को प्रवाह के लिए मार्ग प्रदान कर सकें। इन छिद्रों को परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित भी होना चाहिए। यह तो मानी हुई बात है कि जब तक शिलाओं में कुछ गुहाएँ (cavities) आदि नहीं होंगी तब तक गुहा-पूरण संभव भी कैसे हो सकता है। यही दशा प्रतिस्थापन-क्रिया की भी है। कोई भी शिलाएँ प्रतिस्थापित कैसे हो सकती हैं जब तक उनमें ये विलयन प्रवेश न करें। इस प्रकार किसी प्रकार के भी आर्द्र-तापीय निक्षेपों के निर्माण के लिए आवश्यक है कि शिलाओं में इस प्रकार के छिद्र-मार्ग अस्तित्व में हों जिनसे उष्णजलीय विलयन एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच सकें।

इस प्रकार के छिद्रमार्ग विभिन्न दशाओं में विभिन्न तरह के होते हैं। उनसे पारित होनेवाले विलयनों के स्थानान्तरण की रीति में भी कभी-कभी थोड़ा अन्तर हो सकता है। शिलाओं में अनेक प्रकार के रन्ध्र हो सकते हैं। ये रन्ध्र (Pores) खनिजीकारक विलयनों को मार्ग प्रदान करते हैं। कभी-कभी मणिभ के परमाणुओं के मध्य छूटे स्थान से होकर विसरण (Diffusion) संभव हो सकता है। इस विसरण से मणिभ का प्रतिस्थापन संभव है। संस्तरण तल (Bedding planes) भी उष्णजलीय विलयनों को संलग्न भित्तियों में प्रवेश करने का अवसर देते हैं। विशेष कर अनेक बैसाल्टिक लावा प्रवाहों (Flows) में वाष्पों के प्रसार (Expansion) से कुछ रिक्त स्थान बन जाते हैं। ये आकार में प्रायः गोल होते हैं। जब ये भर जाते हैं तो शिला को एमिग्डलॉइड (Amygdaloid) कहते हैं। ज्वालामुखीय प्रवाह के पश्चात् जब लावा ठोस हो जाता है तब ज्वालामुखीय द्वार एक पाइप अथवा सुरंग-जैसा बन जाता है जिससे भी उष्णजलीय विलयन अनेक प्रकार की क्रियाओं द्वारा कुछ खनिज निक्षेपों को जन्म दे सकते हैं। आग्नेय शिलाओं के ठण्डे होने के समय पर उनके सिकुड़ने के कारण उनमें दरारें पड़ जाती हैं जो उपयुक्त

मार्गों का काम दे सकती हैं। सामान्यतः शिलाओं में अनेक विदर (Fissures) होते हैं जिनकी लम्बाई और गहराई पर्याप्त होती है। ये विदर लम्बी-लम्बी सुरंगों अथवा खुले मार्गों का काम देते हैं जिनसे होकर सहज ही विलयन एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच सकते हैं। ये विदर ही जब धातुओं अथवा खनिजों से पूर्ण हो जाते हैं तो विदर-पट्टिकाओं (Fissure-Veins) को जन्म देते हैं।

उष्णजलीय निक्षेपों को निर्मित करने का श्रेय विकृन्तन कटिबन्ध गुहाओं (Shear Zone cavities) को भी है। ये कटिबन्ध स्वयम् में इतने अधिक टूटे फूटे तथा अनियमित होते हैं कि इनमें उत्तम प्रकार के जलमार्ग (Channel ways) विकसित हो जाते हैं। ये जलमार्ग अनेकों प्रकार के धातविक तथा खनिजीकारक विलयनों को पारित कर महत्त्वपूर्ण निक्षेपों के निर्माण में अपूर्व सहयोग प्रदान करते हैं। बिहार के मोसाबानी (सिंहभूमि) क्षेत्र में इस प्रकार के कुछ निक्षेप विद्यमान हैं। जो शिलाएँ विलयनों के द्वारा परिवर्तित हो जाती हैं वे अधिकांशतः अधिक रन्ध्रयुक्त भी हो जाती हैं तथा नवीन खनिजीकरण के विकास के लिए सहायक हो सकती हैं। कभी-कभी अवसादीय शिलाओं के वलित (Folded) होने के कारण कुछ नवीन मार्ग अस्तित्व में आ जाते हैं। इसी प्रकार कुछ नवीन दरारें भी शिलाओं में पड़ सकती हैं। अन्य दशाओं में कुछ शिलाएँ, जिनमें विदर पहले से ही उपस्थित थे, उष्णजलीय विलयनों में घुलनशील सिद्ध होती हैं। फल यह होता है कि ये विदर और बड़े तथा लम्बे जलमार्गों में परिवर्तित हो जाते हैं और खनिजित विलयनों का पारित होना और भी सुगम हो जाता है।

खनिजीकारक विलयनों को अनेक जलमार्गों अथवा रिक्त स्थानों से पारित होने के साथ ही अनेक परिवर्तनों का सामना करना अनिवार्य होता है। इनमें रासायनिक परिवर्तन पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। जब ये विलयन किसी शिला से होकर पारित होते हैं तो यह आवश्यक है कि विलयन और ठोस शिला के बीच कोई रासायनिक प्रतिक्रिया हो। यह तथ्य उस समय और भी प्रभावशाली हो जाता है जब सम्बन्धित भित्तिशिला अधिक क्रियाशील (Reactive) हो। प्रतिस्थापन द्वारा नवीन निक्षेपों के निर्माण में तो यह परमावश्यक है। इन प्रतिक्रियाओं द्वारा ही सिलीकेट शिलाएँ क्षारीय अथवा अधिक-क्षारीय शिलाओं में परिवर्तित हो जाती हैं।

तापक्रम तथा दबाव ऐसे तथ्य हैं जो पर्याप्त अंशों तक उष्णजलीय निक्षेपण में सहायक होते हैं। इनके परिवर्तन का प्रभाव निक्षेपण क्रिया पर बहुत अंशों तक

हो सकता है। उष्णजलीय विलयनों को ऊष्मा मुख्यतः द्रुतपुंज से प्राप्त होती है। ये उष्ण विलयन रिक्त स्थानों से होते हुए जैसे-जैसे भित्ति-शिला के सम्पर्क में रहकर आगे बढ़ते हैं उनका तापक्रम कम होता चला जाता है। तापक्रम के कम होने की दर भित्ति-शिला की ऊष्मा लेने की शक्ति पर निर्भर करती है। जब भित्ति-शिला का तापीय विसरण अधिक होता है तो ये विलयन शीघ्र ही अपनी ऊष्मा खो देते हैं। इसी प्रकार इनके उद्भव के स्थान पर दबाव बहुत अधिक होता है और जैसे-जैसे ये ऊपर की ओर कम दबाव के स्थानों पर पहुँचते हैं दबाव की प्रारंभिक दशा समाप्त हो जाती है। इसके साथ ही इनका अवक्षेपण (Precipitation) प्रारंभ हो जाता है। सामान्य दशा में ऐसा सदैव होता है, किन्तु कभी-कभी कुछ असामान्य स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिए कभी-कभी जलमार्ग अवरुद्ध होने लगते हैं अथवा कुछ खनिज पहले से ही निक्षेपित होने लगते हैं और तब दबाव में कमी उस अंश तक नहीं आ पाती और अवसादन की क्रिया रुकने लगती है। निक्षेपण का पूर्ण विकास खुले स्थानों में अर्थात् कम दबाव वाले स्थानों में भली प्रकार होता है। इन विलयनों में जब उत्पत पदार्थों. (Volatiles) की मात्रा अधिक होती है तो खनिज निर्माण की क्रियाएँ भी जटिल हो जाती हैं और तब उनका रूप भी बहुत अंशों तक बदल जाता है। तापक्रम और दबाव के आकस्मिक परिवर्तनों का भी निक्षेपण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी कुछ कारणों से विलयनों पर दबाव एकदम कम हो जाता है। उस स्थिति में उस स्थान पर विशाल मात्रा में खनिजों के निक्षेपण होने की पूर्ण संभावनाएँ रहती हैं।

खनिजीकारक विलयनों द्वारा उष्णजलीय निक्षेपों के निर्माण के साथ-साथ भित्ति-शिला में भी परिवर्तन आ जाता है। ये शिलाएँ (भित्ति-शिलाएँ) किस अंश तक परिवर्तित हुई हैं अथवा इस परिवर्तन की प्रकृति क्या है यह भित्ति-शिला के प्रकार तथा खनिजीकारक विलयनों की रासायनिक क्रियाशीलता तथा दबाव एवम् तापक्रम पर निर्भर करता है। उच्च-तापीय (Hypothermal) दशाओं में टूरमेलीन, टोपाज़, पायरोक्सीन तथा एम्फीबोल खनिज भित्ति-शिला में विकसित हो सकते हैं।

गुहा-पूरण द्वारा खनिज निक्षेपों का निर्माण पर्याप्त विशाल स्तर पर होता है तथा यह विधि खनिज-निर्माण-विधियों में शायद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधि है। अधिकांश खनिज-निक्षेपों का निर्माण इसी विधि से हुआ है। विदर-पट्टिका

(Fissure Vein) निक्षेप तो और भी अधिक महत्त्व के हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि विदर-पूरण और प्रतिस्थापन (Replacement) दोनों ही साथ साथ आयोजित रहते हैं।

गुहा-पूरण की विधि शिलाओं की गुहाओं अथवा रिक्त स्थानों में विलयनों के भरने से प्रारंभ होती है। ये विलयन प्रायः उष्ण, तनु (Dilute), तथा द्रुत-पुंजीय होते हैं। यह कोई कठोर नियम नहीं है। विलयन शीतल, सान्द्र तथा अवपृष्ठ (Meteoric) भी हो सकते हैं। खनिजों का अवक्षेपण खनिजीकारक विलयनों के साथ रासायनिक गुणों तथा उनके परिवर्तनों, तापक्रम तथा दबाव पर निर्भर करता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि इन रिक्त स्थानों में भित्ति-शिला के समीप सबसे पहले कोई एक खनिज निक्षेपित होना प्रारंभ होता है तथा उसके ऊपर अन्य-अन्य खनिजों की परतें निक्षेपित होती जाती हैं। कभी-कभी एक ही खनिज तब तक निक्षेपित होता रहता है जब तक कि गुहा अथवा रिक्त स्थान पूर्ण-रूप से अथवा लगभग भर नहीं जाता। उस स्थिति में समरूप (Homogeneous) तथा स्थूल (Massive) निक्षेपों का निर्माण होता है।

गुहा-पूरण विधि द्वारा अनेक प्रकार के निक्षेप अस्तित्व में आते हैं। खनिजीकारक विलयनों को जो गतिशील हैं जहाँ भी कोई रिक्त स्थान अथवा गुहा मिलती है वे उसमें निक्षेपित होना प्रारंभ कर देते हैं। इस प्रकार निर्मित निक्षेपों का नामकरण मुख्यतः रिक्त स्थान के नाम के अनुसार ही किया जाता है, उदाहरणार्थ रन्ध्र-स्थान-पूरण निक्षेप (Pore-Space Filling Deposits) आदि। इस विधि से उत्पन्न निक्षेपों में विदर-पट्टिकाएँ, विकृन्तन कटिबन्ध निक्षेप (Shear Zone deposits), पल्याण-शैलभित्तियाँ (Saddle Reefs), सीढ़ी-पट्टिकाएँ (Ladder Veins), गुहाओं तथा जलद्वारों आदि का पूरण, रन्ध्र-स्थान-पूरण (Pore-space fillings) तथा कोशावान्-पूरण (Vesicular Fillings) आदि प्रमुख हैं।

रूपान्तरित प्रतिस्थापन (Metasomatic Replacement)

भूतलीय (Epigenetic) खनिज निक्षेपों के निर्माण में रूपान्तरित-प्रतिस्थापन की विधि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योग देती है। संपर्क-रूपान्तरित निक्षेपों (Contact metasomatic deposits) के अयस्क खनिजों का जन्म इसी विधि से हुआ है। इनके अतिरिक्त खनिज तथा धातु-निर्माण की प्रणालियों में सहयोगी विधि के रूप में यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। पूर्ववर्ती खनिजों के स्थान पर

नितान्त नवीन खनिजों का निर्माण होना ही रूपान्तरिक प्रतिस्थापन है। इसमें दोनों ही क्रियाएँ अर्थात् विलयन का निर्माण तथा खनिजों का निक्षेपण साथ ही साथ चलते हैं।

प्रायः इस क्रिया में ऐसा होता है कि अस्थिर (Unstable) खनिजों को खनिजीकारक विलयन अपने में विलीन कर लेते हैं एवम् साथ ही कुछ अन्य खनिज पृथक् होकर अवसादित होने लगते हैं। वास्तव में यह "एक आयतन द्वारा दूसरे आयतन का प्रतिस्थापन" है तथा पूर्ववर्ती एवम् आदान-प्रदान के पश्चात् निर्मित काय (Body) का आयतन एवम् आकार लगभग एक ही रहता है।

रूपान्तरित प्रतिस्थापन-क्रिया का महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि पूर्ववर्ती पदार्थ और नवनिर्मित पदार्थ क्रिया के समय एक दूसरे के संस्पर्श में होते हैं तथा इन दोनों के बीच में विलयन की एक पतली-सी झिल्ली होती है जो विसरण द्वारा प्रतिस्थापक पदार्थ का वितरण करती है और प्रतिस्थापित पदार्थ को हटाती है। इस आदान-प्रदान में भाग लेने वाले कणों को अणु अथवा परमाणु के आकार का होना चाहिए। प्रतिस्थापन में यद्यपि विसरण (Diffusion) का कार्य महत्त्वपूर्ण है तथापि इसकी सहायता से केवल सीमित क्षेत्र में ही नवीन निक्षेपों का निर्माण हो सकता है। यह निश्चित है कि विशालकाय निक्षेपों के निर्माण में यह सहायक नहीं हो सकता। इस प्रकार के विशाल निक्षेप भी प्रतिस्थापन द्वारा निर्मित होते हैं। ऐसा होने के लिए सबसे पहले मुख्य जलमार्गों (Channel ways) से प्रतिस्थापन प्रारंभ होता है। इसके पश्चात् इनके सम्पर्क में सूक्ष्म आकार की नलियों, रिक्त स्थानों आदि के द्वारा यह क्रिया पर्याप्त दूरी तक प्रतिस्थापन करती है और धीरे-धीरे विशालकाय प्रतिस्थापित होकर नवीन खनिजों के प्रचुर भण्डारों के रूप में अस्तित्व में आ जाते हैं।

प्रतिस्थापन की क्रिया लगभग सभी तापक्रमों तथा दबावों के अन्तर्गत कार्य कर सकती हैं, किन्तु तापक्रम के बढ़ने से इस क्रिया के लिए उपयुक्त अवस्थाएँ उत्पन्न हो जाती है क्योंकि उस स्थिति में विलयनों की रासायनिक क्रियाशीलता भी बढ़ जाती है। प्रतिस्थापन द्वारा जहाँ तक असमरूप (Non-homogeneous) शिलाओं में परिवर्तन का सम्बन्ध है वह उपयुक्त संस्तरों, संरचनात्मक विशेषताओं तथा पूर्ववर्ती शिला के रासायनिक व भौतिक गुणों पर निर्भर करता है।

रूपान्तरित प्रतिस्थापन द्वारा निर्मित खनिज निक्षेपों को अनेक वर्गों में विभाजित किया गया है तथा इनमें स्थूल (Massive), प्रतिस्थापन-पट्टिका

(Replacement lode) एवम् विप्रथित (Disseminated) निक्षेप प्रमुख हैं। लौह-अयस्क निक्षेपों को छोड़कर शेष सभी महत्त्वपूर्ण तथा विशालकाय धातविक खनिज निक्षेपों का निर्माण इस विधि द्वारा ही सम्पन्न हुआ है।

३. संपर्क रूपान्तरण (Contact Metasomatism)

द्रुतपुंजीय विधियों में अन्तर्भेदीय द्रुतपुंज (Intrusive Magma) के घनीकरण के समय अथवा उसके ठीक पश्चात् द्रुतपुंज से निकलने वाली वातीय निस्सृतियों (Gaseous Emanations) का संपर्क-प्रभाव क्रियारत हो जाता है। इन निस्सृतियों का तापक्रम बहुत ऊँचा होता है। ये निस्सृतियाँ द्रुतपुंज-कोष्ठ से निकलकर ऊष्मा के आयोजन में सम्पर्क रूपान्तरण को जन्म देती हैं। जब ये निस्सृतियाँ किसी विशेष खनिज अथवा अनेक खनिजों से पूर्ण रहती हैं तो उपयुक्त स्थितियों में मूल्यवान् खनिज निक्षेपों का निर्माण कर सकती हैं।

अन्तर्भेदित शिलाओं पर बहुत गहराई पर द्रुतपुंज अन्तर्भेदन का उच्च-तापक्रम प्रभावों का जन्म द्रुतपुंजीय निस्सृतियों द्वारा दी गयी ऊष्मा से होता है। इस विधि में विशाल स्तर पर पदार्थों का आदान-प्रदान हो सकता है। एक तथ्य यहाँ पर विचार योग्य है कि सभी द्रुतपुंजीय अन्तर्भेदन इस प्रकार खनिज निक्षेपों को नहीं निर्मित कर सकते। यह उसी स्थिति में होता है जब निस्सृतियों में खनिजों के अवयव पर्याप्त मात्रा में रहते हैं और ये निस्सृतियाँ अन्तर्भेदित शिला को प्रतिस्थापित कर धातविक अथवा अधातविक निक्षेपों को जन्म देती हैं।

इस क्रिया के समय तापक्रम की अवस्थाएँ क्या होती हैं, इस बात पर सभी वैज्ञानिक एकमत नहीं हैं। लिण्डग्रेन (Lindgren) तथा ह्वाइटहेड (Whitehead) के अनुसार इस विधि द्वारा निक्षेपों का निर्माण ४००° सें० तथा ५००° सें० के अन्तर्गत होता है और इसके लिए उन्होंने मैक्सिकों के ज़िमापान निक्षेपों (Zimapan Deposits) का उदाहरण प्रस्तुत किया है। प्रो० बेटमैन (Prof. Bateman) के अनुसार ये क्रियाएँ ४००° से ८००° सें० अथवा और भी अधिक तापक्रम पर होती हैं।

प्रो० एन० एल० बॉविन (Prof. N. L. Bowen) ने यह प्रदर्शित किया है कि यदि डोलोमाइट तथा स्फटिक को गरम किया जाय तो पहले तो ट्रिमोलाइट बनेगा और जैसे जैसे तापक्रम बढ़ता जायगा वैसे-वैसे ही एक विशेष क्रम में फोर्स्टेराइट, डायोप्साइड, पेरीक्लेज़, वॉलेस्टोनाइट, मोन्टीसेलाइट (Monticellite)

तथा ओकेमिनाइट (Okemanite) आदि निर्मित होते हैं। इस प्रकार अनेक जटिल चूर्णीय-सिलीकेटों (Calceo-Silicates) का जन्म होता है। यह सब तो ऊष्मा के प्रभावों के सम्बन्ध में रहा। अब जहाँ तक अयस्क निक्षेपों का सम्बन्ध है, उनके लिए खनिज अवयवों की प्राप्ति द्रुतपुंज से ही होती है। इस विधि में प्रारंभ में सिलीकेटों के साथ-साथ मैग्नेटाइट अथवा हेमेटाइट निर्मित होता है। इसके पश्चात् कुछ सल्फाइड खनिज आते हैं। इनमें सबसे पहले पायराइट, फिर आर्सेनोपायराइट (Arsenopyrite) और उसके पश्चात् क्रम से पायरोटाइट (Pyrrhotite), मोलिब्डिनाइट, स्फेलेराइट, चाल्कोपायराइट, गैलेना तथा अन्त में गन्धकीय-लवण आते हैं।

जहाँ तक संपर्क-रूपान्तरण द्वारा नवीन निक्षेपों के निर्माण होने की गहराई का सम्बन्ध है, यह देखा गया है कि आपेक्षिक रूप से इनका निर्माण धीरे-धीरे ठण्डा होने के साथ-साथ हुआ है अर्थात् पर्याप्त गहराई पर हुआ है। अब कितनी गहराई पर हुआ है इसके सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं, किन्तु अनुमानतः इनमें से अधिकांश निक्षेपों का निर्माण ५००० फुट से भी अधिक गहराई पर हुआ है।

अन्तर्भेदित शिलाओं में किन अंशों तक परिवर्तन होगा तथा वह परिवर्तन किस प्रकार का होगा, यह उन शिलाओं की रासायनिक रचना तथा संरचनात्मक विशेषताओं पर निर्भर करता है। ऐसा देखा गया है कि संपर्क-रूपान्तरण क्रिया से कुछ शिलाएँ तो बहुत अधिक प्रभावित हो जाती हैं और वे इसके पूर्ण प्रभावों को प्रदर्शित करती हैं, उदाहरणार्थ कार्बोनेट शिलाएँ इसी वर्ग की हैं तथा कुछ अन्य अंशतः ही परिवर्तित होती हैं।

वास्तव में संपर्क रूपान्तरण विधि से निर्मित निक्षेप बहुत ही सीमित क्षेत्र में होते है। वे अधिकांशतः अनियमित आकार के होते हैं। आर्थिक दृष्टि से ये निक्षेप, कुछ विशेष स्थितियों को छोड़कर, महत्त्वपूर्ण नहीं कहे जा सकते। इसका कारण यह है कि उनमें खनिजों की मात्रा बहुत कम होती है तथा इसके अतिरिक्त खनन परिस्थितियाँ भी अनुकूल नहीं होतीं। कभी-कभी तो ये निक्षेप सहसा समाप्त हो जाते हैं।

४. अवसादन (Sedimentation)

अवसादन-विधि द्वारा केवल अवसादीय शिलाओं का ही जन्म नहीं हुआ है अपितु अनेकों समृद्ध तथा मूल्यवान् निक्षेपों का निर्माण भी हुआ है। इस क्रिया में

कुछ विशेष परिवर्तनों द्वारा तथा विशेष परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के निक्षेप निर्मित हो सकते हैं। ये नव-निर्मित निक्षेप या तो अकार्बनिक पदार्थों (Inorganic Substances) अथवा कार्बनिक पदार्थों के बने होते हैं तथा इनका स्रोत पूर्ववर्ती शिलाएँ हैं जो विच्छेदित होकर इनका निर्माण करती हैं। विभिन्न प्रकार के जो निक्षेप इस विधि द्वारा अस्तित्व में आये हैं उनमें लोहा, मैंगनीज, ताँबा, फॉस्फेट, कोयला, तैल-शेल (Oilshale), कार्बोनेट, मृत्तिका (Clay), डायाटोमी मृत्तिका (Diato-maceous Earth), बैन्टोनाइट (Bentonite) संकोचक-मृत्तिका (Fuller's Earth), मैग्नेसाइट, गंधक तथा कुछ यूरेनियम और वेनेडियम के निक्षेप प्रमुख हैं।

अवसादीय निक्षेपों के निर्माण के लिए निम्नलिखित अवस्थाओं का पूरा होना अनिवार्य है—

(१) पदार्थों के विपुल भण्डार,
(२) विलयनों अथवा अन्य विधियों द्वारा इन पदार्थों का एकत्रित होना,
(३) संचयन (Accumulation) के स्थान तक पदार्थों का परिवहन, तथा
(४) अवसादीय बेसिन में इन पदार्थों का निक्षेपण हो जाना।

इस प्रकार इन चार अवस्थाओं में यह क्रिया पूर्ण हो जाती है तथा इसके पश्चात् इन निक्षेपों में रासायनिक अथवा अन्य परिवर्तन हो सकते हैं अथवा वे सुसंहत (Compact) हो सकती हैं। इन चारों अवस्थाओं को हम एक-एक करके नीचे कुछ विस्तार में लिख रहे हैं—

पदार्थों के स्रोत

जो पदार्थ अवसादीय खनिज निक्षेपों का निर्माण करते हैं वे प्रायः पूर्ववर्ती शिलाओं के ऋतुक्षरण (Weathering) से प्राप्त होते हैं। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि ये पदार्थ पूर्ववर्ती खनिज निक्षेपों के ऑक्सीकरण अथवा ऋतुक्षरण से भी उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले निक्षेपों में लोहा, मैंगनीज तथा ताँबे के निक्षेप प्रमुख हैं। इसी प्रकार कुछ फॉसफेट निक्षेप के लिए जो अवसादन द्वारा निर्मित हुए हैं, फॉस्फोरस का अंश कुछ फॉस्फोरस मय खनिजों, मुख्यतः एपेटाइट, से प्राप्त हुआ है। जहाँ तक चूना-पत्थर, डोलोमाइट तथा मैग्नेसाइट जैसे कार्बोनेट निक्षेपों का प्रश्न है, इनके अवयव मुख्यतः समुद्री अथवा लवणीय

जल से प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार ऋतुक्षरण द्वारा ही अनेकों औद्योगिक पदार्थों के निक्षेपों के लिए अवयव-पदार्थ मिलते हैं।

विलयनों की महत्ता

जैसा कि उपर्युक्त वाक्यों में कहा गया है, प्रायः सभी अवसादीय शिलाओं के लिए पदार्थों की प्राप्ति पूर्ववर्ती शिलाओं या निक्षेपों के ऋतुक्षरण से होती है, इस ऋतुक्षरण की क्रिया के साथ ही ये पदार्थ विलायकों द्वारा विलीन कर लिये जाते हैं तथा कालान्तर में इन्हीं विलयनों से आर्थिक उपयोग की अवसादीय शिलाएँ अस्तित्व में आती हैं। विलयनों का कार्य मृत्तिकाओं के निर्माण को छोड़कर शेष सभी अवसादीय निक्षेपों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण सहयोग देता है। महत्त्वपूर्ण निक्षेप जिनको ये विलयन निर्मित करते हैं, लोहे, मैंगनीज, ताँबा तथा अन्य धातुओं के एवम् फॉस्फेट तथा कार्बोनेट के हैं। मुख्य विलायकों (Solvents) में कार्बोनेटीय जल (Carbonated Water), ह्यूमिक (Humic) तथा अन्य अम्ल तथा कुछ सल्फेट विलयन उल्लेखनीय है।

परिवहन (Transportation)

कोयले को छोड़कर शेष सभी अवसादीय खनिज निक्षेपों का निर्माण करने वाले पदार्थों का परिवहन नदियों तथा स्थल-मण्डल जल (Subsurface Water) द्वारा संचालित होता है। इन साधनों द्वारा ये पदार्थ प्रायः समुद्र तक पहुँच जाते हैं किन्तु कभी-कभी बीच में ही किसी उपयुक्त स्थान पर अथवा जल के किसी अन्तर्देशीय कामों में या आन्तरिक-स्थल बेसिनों में ही निक्षेपित हो जाते हैं। ये पदार्थ तभी तक विलयन अवस्था में ठहरते हैं जब तक कि उनमें कोई भौतिक अथवा रासायनिक परिवर्तन नहीं आते। कुछ विशेष परिस्थितियों में इन विलयनों में खनिज पदार्थों के अवयव समुद्र तक न पहुँच कर मार्ग में ही खो जाते हैं। उदाहरणार्थ कुछ लोहे तथा मैंगनीजयम विलयन यदि चूना-पत्थर शिलाओं से होकर पारित होंगे तो सम्पूर्ण लोहा अथवा मैंगनीज इन शिलाओं में ही खो जायगा।

निक्षेपण (Deposition)

भौतिक, रासायनिक अथवा जीव-रासायनिक क्रियाओं द्वारा वे सारे के सारे पदार्थ निक्षेपित हो जाते हैं जो आर्थिक अवसादीय निक्षेपों का निर्माण करते हैं।

इनका निक्षेपण किस प्रकार होगा, यह अनेक तथ्यों पर निर्भर करता है, जैसे विलायक की प्रकृति, निक्षेपण के लिए स्थान, वातावरण (Environment) आदि आदि। इनके अतिरिक्त कुछ विशेष परिस्थितियों में कुछ विशिष्ट निक्षेप अस्तित्व में आते हैं। उदाहरण के लिए बाइकार्बोनेट विलयनों से लोहे तथा मैंगनीज का निक्षेपण अनेक रीतियों से हो सकता है, जैसे कार्बनडाइ आक्साइड के विलीन होने से, आक्सीकरण अथवा जल-विश्लेषण (Hydrolysis) द्वारा, पौधों अथवा शाकाणुओं से, अथवा समुद्र के तल में होने वाली कुछ क्रियाओं से, आदि आदि। इसी प्रकार इन धातुओं का निक्षेपण सल्फेट विलयनों की कैल्शियम कार्बोनेट के साथ प्रक्रिया अथवा उनके आक्सीकरण या जल-विश्लेषण या किसी अन्य उपयुक्त प्रक्रिया द्वारा हो सकता है। जहाँ तक कार्बनिक विलयनों का सम्बन्ध है, इन धातुओं का अवक्षेपण इन क्रियाओं से हो सकता है—

(१) फेरस तथा मैंगेनस कार्बोनेट का आक्सीकरण द्वारा फैरिक या मैंगनिक आक्साइडों में परिवर्तन।

(२) शाकाणुओं द्वारा।

(३) पौधों की क्रियाओं द्वारा।

(४) जल-विश्लेषण द्वारा।

(५) क्षारों द्वारा प्रतिक्रिया।

(६) समुद्र की तली में कुछ जटिल क्रियाओं का होना।

कुछ अवसादीय निक्षेपों (विशेषकर लोहे) के निर्माण में शाकाणु महत्त्वपूर्ण योग देते हैं। इनकी महत्ता बहुत पहले ही हेरार (Harrar) ने स्वीकार की थी। उसने इन शाकाणुओं को तीन वर्गों में विभाजित किया था; प्रथम तो वे शाकाणु जो फेरस बाइकार्बोनेट विलयनों से फेरिक हाइड्रॉक्साइड अवक्षिप्त करते हैं; दूसरे वे जो कार्बनिक अथवा अकार्बनिक लौह विलयनों से फेरिक हाइड्राक्साइड निक्षेपित करते हैं तथा तीसरे प्रकार के शाकाणु वे हैं जो कार्बनिक लौह-लवणों पर प्रतिक्रिया कर फेरिक हाइड्रॉक्साइड का निर्माण करते हैं। मूर तथा मेनार्ड (Maynard) नामक वैज्ञानिकों ने भी यह सिद्ध किया है कि फेरिक हाइड्रॉक्साइड का अवक्षेपण प्राकृतिक जलों (Natural Water) के मृत्तिका शाकाणुओं (Soil Bacteria) द्वारा हो सकता है। इसी प्रकार मैंगनीज तथा फॉस्फोरस के कुछ निक्षेप शाकाणुओं की कुछ क्रियाओं द्वारा निर्मित होते हैं।

जहाँ तक लोहे, मैंगनीज तथा फॉस्फेटीय निक्षेपों की खनिज-संरचना, उनके

आकार, उनकी विशुद्धता तथा उनके वितरण का संबंध है, ये सभी तथ्य मुख्यतः निक्षेपण की अवस्थाओं पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए अवसादीय लौह तथा मैंगनीज निक्षेप शुद्ध जलीय स्थिति में भी निक्षेपित हो सकते हैं अथवा लवणीय जल में भी उनका निर्माण हो सकता है। इसी प्रकार वे निक्षेप महासागरों में, झीलों, अन्तर्देशीय बेसिनों, दलदलों अथवा अन्य उपयुक्त स्थानों में निर्मित हो सकते हैं, किन्तु वातावरण तथा निर्माण की रीतियों (Modes) और अवस्थाओं में अन्तर होने के कारण विभिन्न निक्षेप भिन्न-भिन्न गुणों को प्रदर्शित करेंगे।

५. वाष्पन (Evaporation)

वाष्पन की क्रिया कुछ अधातविक खनिजों के निर्माण में अपूर्व रूप से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। कुछ झीलें गर्मी के दिनों में सूख जाती हैं और इस प्रकार उपयोगी पदार्थों की परतें निर्मित हो जाती हैं। रूक्ष क्षेत्रों (Arid Regions) की इन झीलों से अनेक प्रकार के उपयोगी लवण प्राप्त होते हैं।

वाष्पन की यह क्रिया अधिकांशतः उष्ण तथा रूक्ष (शुष्क) जलवायु के प्रदेशों में ही देखी जाती है। वाष्पन द्वारा लवणीय जल के कायों में विलीन पदार्थों का संकेन्द्रण हो जाता है और जब यह संकेन्द्रण चरम-संतृप्ति (Super-saturation) अवस्था में पहुँच जाता है तो विलीन पदार्थ अवक्षेपित होना प्रारंभ कर देते हैं। सबसे कम घुलनशील पदार्थ सबसे पहले अवक्षिप्त होते हैं। इस क्रिया में किसी लवण के निक्षेपित होने के लिए कुछ उपयुक्त अवस्थाओं का होना आवश्यक है। इस प्रकार के निक्षेपण पर तापक्रम के अतिरिक्त, विलयन में अन्य लवणों की घुलनशीलता की मात्रा आदि का भी बड़ा प्रभाव रहता है। समय का तथ्य भी एक प्रभावशाली तथ्य है। वाष्पन द्वारा विभिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न विशेषता लिये हुए निक्षेप निर्मित होते हैं। इन विभिन्न निक्षेपों का सूक्ष्म विवरण निम्न प्रकार है—

सागरीय जल के निक्षेप

अनेक नदियाँ पहाड़ों, पठारों तथा मैदानों से होती हुई तथा अपने में विविध लवणों को घोले हुए सागर में पहुँचती हैं। धीरे-धीरे सागर की लवणता (Salinity) भी बढ़ती जाती है। सागर की तली के कुछ लवण तथा कुछ समुद्री ज्वालामुखी भी सागर की लवणता को कुछ अंशों तक बढ़ा देते हैं। बादल बनते हैं, वर्षा होती है और प्रतिवर्ष वर्षा के साथ अनेकों लवण घुलकर नदियों द्वारा समुद्र तक पहुँचते

रहते हैं तथा इस प्रकार लवणों का संचयन बढ़ता जाता है। यह चक्र सदैव चला करता है। समुद्र में निक्षेपित होनेवाले इन निक्षेपों में एनहाइड्राइट, जिप्सम तथा अलाबास्टर (अन्य प्रकार का जिप्सम), साधारण नमक, पोटाश लवण तथा सुहागा (Borax) आदि के निक्षेप प्रमुख हैं।

झील के निक्षेप

सागर की अपेक्षा झील में बननेवाले लवण अधिक विभिन्नता लिये हुए होते हैं। झील एक ऐसी जगह है जहाँ से पानी के बाहर जाने के लिए तो कोई मार्ग होता नहीं, केवल इससे सम्बन्धित छोटी नदियाँ अथवा नाले या नालियाँ ही इसमें पानी एकत्रित करती हैं और पानी के साथ विपुल मात्रा में अनेक प्रकार के लवण भी आकर संचित हो जाते हैं। इस प्रकार की लवणयुक्त झीलें प्रायः रूक्ष प्रदेशों में ही स्थित हैं। इन प्रदेशों में वाष्पन की गति तेज होने के कारण झीलें समुद्र की अपेक्षा कई गुनी लवणमय हो जाती हैं। किसी झील में किस प्रकार के लवण के निक्षेप होंगे; यह बहुत अंशों तक इस तथ्य पर आधारित है कि झील की स्थिति क्या है, किन स्थितियों में निक्षेपण हो रहा है तथा उसमें एकत्रित होनेवाला जल किन किन स्रोतों से तथा कहाँ-कहाँ से होकर आता है।

लवणमय झीलों के वाष्पन से लगभग वैसे ही निक्षेप प्राप्त होते हैं जैसे कि समुद्र में निक्षेपित होते हैं। किन्तु झीलों का विस्तार बहुत सीमित होता है अतः जलवायु आदि के साधारण परिवर्तनों का प्रभाव भी उनमें निर्मित होनेवाले निक्षेपों पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष झील में भी नवीन जल, लवण तथा अवसादों को लेकर आता है और इस प्रकार ये निक्षेप अधिकांशतः पतले तथा मिश्रित होते हैं। अधिक सूखे तथा रूक्ष क्षेत्रों में तो लवण आदि के साथ बालू की पतली-पतली परतें भी झील में अवसादित हो जाती हैं। इस प्रकार निर्मित निक्षेपों में क्षार, साधारण नमक, पोटाश लवण, सुहागा तथा अनेक प्रकार के नाइट्रेट (Nitrates) के निक्षेप उल्लेखनीय हैं।

तलस्थ-जलीय निक्षेपण (Deposition from Ground Water)

तलस्थ जल का वाष्पन एक साधारण क्रिया है जो हर जगह देखी जा सकती है। किन्तु आर्द्र कटिबन्धों (Humid Zones) में घुलनशील पदार्थ पुनः घुलकर वर्षा के जल द्वारा पुनः अन्य-अन्य स्थानों तक पहुँचा दिये जाते हैं। जहाँ तक रूक्ष क्षेत्रों

का सम्बन्ध है, वे पदार्थ तब तक संचित होते रहते हैं जब तक कि जलवायु भी रूक्ष बना रहता है। तलस्थ जल में भी लवण उसी प्रकार उपस्थित रहते हैं जिस प्रकार सागर तथा झील में, किन्तु लवणों का संकेन्द्रण अपेक्षाकृत कम होता है। लवणों का यह संकेन्द्रण मिट्टी के गुणों, जलवायु, संस्तर-शिला (Bed rock) तथा स्थलाकृति (Topography) आदि पर निर्भर रहता है। जो अनेक पदार्थ इन जलों में उपस्थित रहते हैं, उनमें कैलसियम कार्बोनेट, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटेशियम, लोहे तथा मैंगनीज के यौगिक तो उल्लेखनीय हैं, किन्तु कभी-कभी फॉस्फोरस, आयोडीन, बोरोन आदि तत्त्व भी मिल सकते हैं। वास्तव में निक्षेपण उस समय होता है जब तल के समीप वाष्पन क्रिया प्रारंभ होती है। जब और अधिक खनिजमय जल का वितरण इन स्थानों में बढ़ जाता है तो विस्तृत निक्षेप अस्तित्व में आते हैं।

आर्थिक स्तर के उन निक्षेपों में जो वाष्पन द्वारा निर्मित होते हैं, आयोडीन के नाइट्रेट-लवण, कुछ बोरोन लवण, कैलसियम सल्फेट तथा सोडियम सल्फेट व सोडियम कार्बोनेट निक्षेप प्रमुख हैं।

उष्ण स्रोतों द्वारा निक्षेप (Deposition from Hot Springs)

उष्ण स्रोतों के जलों में कुछ पदार्थ घुले रहते हैं और अंशतः वाष्पन के द्वारा ये पदार्थ स्रोतों के मुख (Orifice) के समीप निक्षेपित हो जाते हैं। इस प्रकार निर्मित निक्षेपों में कुछ ही आर्थिक महत्त्व के होते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण निक्षेपों में जो इस प्रकार बनते हैं, टूफा (Tuffa) अथवा चूर्णीय साद (Calcareous Sinter) के रूप में कैलसियम कार्बोनेट, सिलिकामय साद के रूप में सिलिका, ओकर (Ochre) के रूप में लौह ऑक्साइड तथा वाड (Wad) के रूप में मैंगनीज ऑक्साइड के निक्षेप मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त अनेक धातविक तथा अधातविक खनिज इस विधि द्वारा निक्षेपित हो सकते हैं, किन्तु इस प्रकार निर्मित निक्षेपों का अपना कोई आर्थिक महत्त्व नहीं है।

६. ऊर्ध्वपातन (Sublimation)

जैसा कि पहले भी एक बार कहा जा चुका है, ऊर्ध्वपातन वह विधि है जिसमें पदार्थ ठोस अवस्था से सीधे ही, बिना द्रव में परिवर्तित हुए, वातीय रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार उत्पन्न वाति भी द्रव अवस्था में गये बिना ही ठोस बन सकती है। वास्तव में यह एक साधारण क्रिया है जिससे अधिक महत्त्व के निक्षेप

नहीं निर्मित होते। यह क्रिया केवल उन्हीं पदार्थों पर लागू होती है जो उत्पतीय (Volatilized) प्रकार के हैं तथा कालान्तर में कम तापक्रम व दबाव की दशाओं में सीधे वाष्पीय अवस्था से निक्षेपित हो जाते हैं। ज्वालामुखी पर्वतों के द्वारों के समीप तथा आसपास इस प्रकार के निक्षेप मिल सकते हैं किन्तु सामान्यतः वे आर्थिक महत्त्व के नहीं होते। केवल गंधक के कुछ निक्षेप, जो संभवतः इसी विधि से निर्मित हुए हैं, कुछ महत्त्वपूर्ण समझे जा सकते हैं तथा कुछ देशों में इनका खनन भी किया गया है।

७. अवशिष्ट एवं भौतिक संकेन्द्रण (Residual And Mechanical Concentration)

ऋतुक्षरण की अनवरत क्रियाओं के फलस्वरूप अनेक शिलाओं तथा उनसे आयोजित निक्षेपों का भौतिक वियोजन (Mechanical Disintegration) तथा रासायनिक विच्छेदन हो जाता है। जो खनिज अस्थायी होते हैं, प्रायः उन पर रासायनिक क्रियाओं का सबसे अधिक प्रभाव होता है। इन अनेकों क्रियाओं के पश्चात् शिलाओं के वे अवयव तो, जो घुलनशील थे, विलयनों के साथ बह जाते हैं और अवशिष्ट पदार्थ संचित हो जाते हैं तथा इस प्रकार कुछ अवशिष्ट निक्षेपों का जन्म हो सकता है। इसी प्रकार स्थायी खनिज रासायनिक क्रियाओं में तो प्रायः भाग लेते नहीं हैं, केवल भौतिक रूप से उनका वियोजन हो सकता है। खनिजों के ये विखण्डित अवयव या तो कुछ अवशिष्ट निक्षेपों को समृद्ध करते हैं अथवा भौतिक दृष्टि से धाव-निक्षेपों में संकेन्द्रित हो जाते हैं। ऋतुक्षरण द्वारा रासायनिक विच्छेदन तथा भौतिक वियोजन; दोनों ही क्रियाएँ प्रायः साथ-साथ ही संचालित होती हैं। वैसे पृथक् पृथक् क्रियाओं की रीतियों के अध्ययन से ऐसा ज्ञात हुआ है कि भौतिक वियोजन की क्रिया अधिकांशतः उन्हीं क्षेत्रों में सीमित रहती है जो या तो रूक्ष (Arid) जलवायु के हों तो तापक्रम में चढ़ाव-उतार पर्याप्त अंशों तक होता हो, अथवा ठण्डे प्रदेश हों जहाँ चरम सीमा की तुषार-क्रिया (Frost Action) संभव हो। इसी प्रकार रासायनिक ऋतुक्षरण उन क्षेत्रों में अधिक प्रभावशाली होता है जहाँ का जलवायु उष्ण तथा आर्द्र हो तथा वर्षा भी पर्याप्त अंशों में होती हो, ताकि पौधों आदि के उगने में सरलता हो और इनसे प्राप्त ह्यूमिक तथा अन्य कार्बनिक अम्लों की सहायता से रासायनिक क्रियाशीलता और भी बढ़े।

जल, आक्सीजन, कार्बनडाई ऑक्साइड, ऊष्मा, अम्ल, क्षार. वानस्पतिक तथा जीव प्राणी विश्लेषण की क्रिया में उल्लेखनीय सहायक हैं। ऊष्मा से तो अनेक प्रतिक्रियाएँ बड़ी शीघ्र ही होने लगती हैं।

जब ऋतुक्षरण द्वारा शिलाओं के अवांछनीय अवयव स्थानान्तरित कर दिये जाते हैं तब मूल्यवान् अथवा उपयोगी खनिजों के संचयन से अवशिष्ट-संकेन्द्रण का जन्म होता है। यह क्रिया एक लम्बे समय तक चलती रह सकती है तथा इस प्रकार व्यापारिक महत्व के निक्षेपों को निर्मित कर सकती है। इस क्रिया में जलवायु का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। लोहे, मैंगनीज, बॉक्साइट, मृत्तिका, निकेल, कायनाइट (Kyanite), बेराइट, फॉस्फेट, ओकरों, सोना, टिन तथा अन्य पदार्थों के निक्षेप अवशिष्ट संकेन्द्रण द्वारा ही निर्मित हुए हैं। भारत के प्रमुख लौह, मैंगनीज तथा बॉक्साइट के अनेकों विशाल निक्षेपों का निर्माण इसी क्रिया द्वारा हुआ है।

भौतिक संकेन्द्रण (Mechanical Concentration) द्वारा धाव-निक्षेपों (Placer Deposits) आदि के निर्माण की प्राकृतिक विधि बड़ी रोचक है। इस क्रिया द्वारा भारी तथा हलकी धातुओं का प्राकृतिक पृथक्करण ठीक उसी प्रकार होता है जैसे आजकल के कुछ विशाल संयंत्रों में होता है। इस क्रिया में पहले तो स्थायी खनिजों का शेष शिला से पृथक्करण होता है तथा उसके पश्चात् इन खनिज-अवयवों का संकेन्द्रण होता है। संकेन्द्रण होने के लिए आवश्यक है कि खनिजों का आपेक्षिक घनत्व अधिक हो, ऋतुक्षरण के लिए उनका रासायनिक अवरोध अधिक हो तथा वे स्थायी व कठोर हों। अनेक खनिजों में इस प्रकार के गुण होते हैं, जैसे—मैग्नेटाइट, क्रोमाइट, इल्मेनाइट, सोना, प्लेटिनम, प्राकृतिक ताँबा, बहु-मूल्य पत्थर, ज़िरकन तथा मोनाजाइट, आदि आदि।

जहाँ तक इन खनिजों का प्रश्न है, जो धाव-निक्षेपों का निर्माण करते हैं, वे या तो साधारण अथवा उत्तम पट्टिका-निक्षेपों (Lode-deposits) से या बिखरे हुए अयस्क खनिजों के रूप में प्राप्त हो सकते हैं। शिला-निर्माणी खनिजों के रूप में अथवा पूर्ववर्ती धाव-निक्षेपों से भी ये व्युत्पन्न हो सकते हैं।

धाव-निक्षेपों की निर्माण-विधि बड़ी मनोरंजक किन्तु महत्त्वपूर्ण है। ऋतु-क्षरण से वे खनिज पहले स्वतन्त्र हो जाते हैं जो इन निक्षेपों को निर्मित करते हैं। जल अथवा किसी अन्य साधन के द्वारा ये खनिज नीचे स्थित क्षेत्रों में पहुँचते है जहाँ से वे या तो नदी या फिर सागर के किनारे तक पहुँच जाते हैं। तरंगें (Waves) अथवा जल-धाराएँ (Currents) भारी तथा हलके खनिजों का पृथक्करण

करती हैं। साथ ही आकार के अनुसार भी सभी खनिज पृथक् हो जाते हैं। धीरे-धीरे इन्हीं तरंगों आदि के द्वारा सागर के किनारे अथवा बालुतट-रेत में भारी तथा महत्त्वपूर्ण खनिजों का संकेन्द्रण और संचयन होता रहता है और इस प्रकार आर्थिक महत्त्व के धाव-निक्षेप अस्तित्व में आते हैं। केरल के तटीय प्रदेशों में इल्मेनाइट तथा मोनाजाइट के उत्तम निक्षेप इसी प्रकार निर्मित हुए हैं। जल इस क्रिया में बहुत ही महत्त्वपूर्ण योग देता है यह तो स्वयम् सिद्ध है, किन्तु एक अत्यन्त महत्त्व का तथ्य तो जल का वेग है जो सारी क्रिया के काल में अवस्था तथा वातावरण के अनुसार उपयुक्त ही रहना चाहिए। संकेन्द्रण के लिए आवश्यक है कि धाव-खनिजों की सम्प्राप्ति बराबर जारी रहे तथा साथ ही उपयुक्त परिस्थितियाँ भी बनी रहें।

भौतिक संकेन्द्रण की क्रिया द्वारा भारत तथा अनेक देशों में बहुत से मूल्यवान् निक्षेपों का निर्माण हुआ है। मोनाज़ाइट, इल्मेनाइट, क्रोमाइट, कुछ रेडियो-सक्रिय खनिज, हीरा तथा अन्य बहुमूल्य पत्थर, मैग्नेटाइट, स्फटिकीय बालुएँ (Quartz-Sands), रुटाइल (Rutile), कुछ परिस्थितियों में सोना, ज़िरकन, गारनेट, फास्फेट शिलाएँ तथा कुछ अन्य धाव-खनिजों की प्राप्ति भौतिक संकेन्द्रण द्वारा निर्मित निक्षेपों के द्वारा ही हुई है।

८. आक्सीकरण व अन्य संवर्धन क्रियाएँ (Oxidation & Enrichment Processes)

जैसे ही अयस्क-निक्षेप अपावृत होते हैं उन पर ऋतुक्षरण की क्रियाएँ काम करने लगती हैं। तलीय जल अधिकांश धातविक खनिजों तथा अयस्कों को आक्सी-कृत कर देते हैं तथा साथ ही ऐसे विलायक (Solvents) उत्पन्न कर देते हैं जो अन्य खनिजों को भी अपने में विलीन कर लेते हैं। इस प्रकार उत्पन्न विलयन जिनमें अनेकों मूल्यवान् खनिज भी सम्मिलित रहते हैं, जल-पटल (Water table) की ओर अथवा अन्य नीचे स्थानों में पहुँच जाते हैं जहाँ आक्सीकरण संभव नहीं होता। कभी-कभी नीचे की ओर जाते समय ये विलयन अंशतः अथवा पूर्णरूप से धातविक खनिजों को मार्ग में ही छोड़ देते हैं तथा इस प्रकार आक्सीकृत अयस्क-निक्षेपों का जन्म होता है। विशेष परिस्थितियों में ये विलयन जल-पटल का भी भेदन कर देते हैं, तब धातविक निक्षेप द्वितीयक सल्फाइड संवर्द्धन के रूप में अवक्षिप्त हो जाते हैं।

वास्तव में ये दोनों क्रियाएँ तीन विभिन्न अवस्थाओं में पूर्ण होती हैं। प्रथम तो आक्सीकरण कटिबन्ध में आक्सीकरण होता है एवम् विलयन निर्मित होते हैं। इसके पश्चात् आक्सीकरण कटिबन्ध में निक्षेपण होता है और अन्त में द्वितीयक सल्फाइड निक्षेप अस्तित्व में आते हैं। स्पष्ट है कि आक्सीकरण तथा संवर्द्धन क्रियाएँ दोनों ही साथ-साथ चलती हैं।

आक्सीकरण (Oxidation)

आक्सीकरण क्रिया खनिज निक्षेपों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। इससे अनेकों खनिज परिवर्तित हो जाते हैं। अनेकों धातविक खनिज धातुओं के अन्य यौगिकों में परिवर्तित होकर बह जाते हैं। इस क्रिया को प्रभावशाली बनाने में जल का सबसे बड़ा योग है। वैसे कार्बन डाई आक्साइड भी महत्त्वपूर्ण आक्सीकारक है। आक्सीकारकों का सबसे प्रमुख काम यह है कि वे कुछ विशेष खनिजों से प्रतिक्रिया कर शक्तिशाली विलायकों को निर्मित करते हैं। इन विलायकों में गंधकाम्ल (Sulphuric Acid) तथा फेरिक क्लोराइड प्रमुख हैं।

आक्सीकरण कटिबन्ध में मुख्यतः दो रासायनिक परिवर्तन हैं। प्रथम परिवर्तन में तो आक्सीकरण, विलयनों का निर्माण तथा मूल्यवान् खनिजों का विलयनों के साथ बह जाना सम्मिलित है। यहाँ एक तथ्य विचारणीय है कि कुछ अवयव, जैसे सोना अथवा लोहे के आक्साइड प्रायः घुलते ही नहीं, जब कि गैलेना जैसे खनिज अंशतः घुलनशील होते हैं और कुछ तो बड़ी सरलता से ही विलयनों में घुलकर बह जाते हैं; इनमें ताँबा, जस्ता तथा चाँदी प्रमुख हैं। दूसरी क्रिया धातविक खनिजों का आक्सीकृत यौगिकों में स्वस्थाने (Insitu) परिवर्तन (Transformation) की है। इन क्रियाओं के पश्चात् धातुओं के अवक्षेपण का प्रश्न आता है। यह अवक्षेपण अनेक विधियों से हो सकता है। प्रमुख विधियाँ इस प्रकार हैं—

(१) वाष्पन व संतृप्ति—लोहा, ताँबा, मैंगनीशियम, सोडियम, पोटेशियम तथा अन्य कुछ धातुओं के निक्षेप उदाहरण हैं।

(२) आक्सीकरण व जलीयकरण (Hydration)—उदाहरणार्थ गोथाइट (Goethite)।

(३) विलयनों में परस्पर प्रतिक्रियाएँ—इनसे चाँदी, ताँबा, सीसा तथा अन्य धातुओं के क्लोराइड व कार्बोनेट निर्मित होते हैं।

(४) भित्ति-शिलाओं के साथ प्रतिक्रियाएँ—ताँबा तथा जस्ता आदि के कार्बोनेट तथा सिलीकेट खनिज इनके उदाहरण हैं।

इस प्रकार आक्सीकरण विधि द्वारा अनेक प्रमुख धातुओं के सल्फ़ेट, क्लोराइड, कार्बोनेट, सिलीकेट आदि निर्मित होते हैं। कभी-कभी कुछ धातुओं के प्राकृतिक अयस्कों (Native Ores) के निक्षेपों का निर्माण भी आक्सीकरण द्वारा होता है।

द्वितीयक सल्फाइड संवर्द्धन (Secondary, or Supergene Sulphide Enrichment)

अनेक वैज्ञानिकों ने इस महत्त्वपूर्ण विधि का बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही गहन अध्ययन किया था। इनमें एस० एफ० एमन्स (S. F. Emmons), फ़ान हाइस (Van Hise) तथा वीड (Weed) का नाम उल्लेखनीय है। इनके पश्चात् एल० सी० ग्रेटन (L. C. Graton) तथा डब्ल्यू० एच० एमन्स (W. H. Emmons) ने इसी विषय पर कार्य किया।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, जब कुछ विशेष धातुएँ, जो विलयनों में घुलनशील हैं तथा विलयनों के साथ घुलकर आक्सीकृत कटिबन्ध को पार करके ऐसे स्थानों में पहुँच जाती हैं जहाँ आक्सीजन का पूर्ण अभाव है, अधिकांशतः जलपटल के नीचे, तो वे द्वितीयक सल्फाइड निक्षेपों के रूप में संचित हो जाती हैं। नीचे के इन स्थानों में ये धातुएँ कुछ अंशों में पहले से ही उपस्थित रहती हैं और जब इनमें अतिरिक्त धातुएँ सम्मिलित हो जाती हैं तो ये धातुएँ संवर्धित होकर उत्तम प्रकार के धातु-निक्षेपों को जन्म देती हैं। ताँबा तथा चाँदी के अनेकों महत्वपूर्ण निक्षेपों का निर्माण इसी विधि से हुआ है।

वास्तव में सल्फाइड संवर्धन के लिए प्रथम चरण में ही आक्सीकरण क्रिया का सहयोग आवश्यक है। बिना आक्सीकरण के संवर्धन असंभव है। जिस अयस्क निक्षेप से गौण खनिजों की प्राप्ति हो सकती है उनमें प्राथमिक खनिज ऐसे होने चाहिए जो आक्सीकरण की क्रिया के उपरान्त आवश्यक विलायकों को जन्म दे सकें। इसी प्रकार पूर्ववर्ती शिला को पारगम्य (Permeable) होना चाहिए ताकि विलयन उनमें से होकर आक्सीकृत कटिबन्ध को पार कर सके। इनके अतिरिक्त एक तथ्य और है जिसका विशेष महत्त्व है और वह यह है कि द्वितीयक सल्फाइड निक्षेपों के निर्माण के लिए एक ऐसे कटिबन्ध का होना परमावश्यक है

जिसको आक्सीजन की प्राप्ति बिलकुल न हो तथा ऐसा कटिबन्ध प्रायः जल-पटल के नीचे ही होता है।

श्युरमान (Schürmann) ने यह सिद्ध किया है कि धातविक विलयनों से कुछ धातुएँ सल्फाइडों के रूप में कुछ अन्य सल्फाइडों की उपस्थिति में सरलता से निक्षेपित हो जाती हैं। इस प्रकार निर्मित होनेवाली धातुओं का क्रम उसने इस प्रकार दिया है—पारा, चाँदी, ताँबा, बिस्मथ, सीसा, जस्ता, निकेल, कोबाल्ट, लोहा तथा मैंगनीज आदि। उसके अनुसार इनमें से कोई भी धातु अपनी बाद-वाली धातु की उपस्थिति में सल्फाइड के रूप में निक्षेपित हो जायगी।

द्वितीयक सल्फाइड प्रतिस्थापन की क्रिया निश्चित रूप से एक आयतन के उसी आयतन द्वारा प्रतिस्थापन की क्रिया है तथा इस प्रकार इसमें एक अणु का दूसरे अणु द्वारा प्रतिस्थापन सम्मिलित नहीं है। किन अंशों तक संवर्धन किसी विशेष निक्षेप में हो सकता है, यह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि कहाँ तक प्रारंभिक खनिजों का प्रतिस्थापन द्वितीयक सल्फाइडों द्वारा हुआ है।

९. कायान्तरित क्रियाएँ (Metamorphic Processes)

कभी-कभी कायान्तरण की क्रियाएँ भी कुछ विशेष खनिजों के निर्माण में अपूर्व सहयोग देती हैं। इन क्रियाओं से पूर्ववर्ती खनिजों का नवीन खनिजों में निरूपण हो जाता है। इस प्रकार निर्मित खनिजों को प्रायः कायान्तरित खनिज (Metamorphic Minerals) की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण के लिए ऐसबस्टस (Asbestos), टाल्क, ग्रेफाइट तथा सिलीमिनाइट वर्ग के खनिजों का उल्लेख किया जा सकता है।

कायान्तरण क्रियाओं के संचालन में ऊष्मा, दबाव तथा जल का प्रमुख स्थान है। इन तीनों की क्रियाएँ पूर्ववर्ती शिलाओं अथवा निक्षेपों पर होती हैं तथा आर्थिक महत्त्व के अधातविक खनिजों का इस प्रकार जन्म होता है। इस प्रकार के निक्षेपों के निर्माण में प्रादेशिक कायान्तरण (Regional Metamorphism) का सक्रिय सहयोग होता है। पूर्ववर्ती शिलाएँ पुनर्मणिभित (Recrystallised) तथा पुनर्योजित (Recombined) होकर इन निक्षेपों को उत्पन्न करती हैं। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन क्रियाओं में न तो कोई तत्त्व बाहर से आकर संयोजित होते हैं, जैसा कि संपर्क-रूपान्तरण निक्षेपों के निर्माण में होता है, और न कोई अवयव इनमें से बाहर निकल ही जाता है, केवल शिलाएँ स्वयं में ही कायान्तरित

हो जाती हैं। शिलाओं के इसी कायान्तरण के द्वारा अनेक निक्षेप अस्तित्व में आये हैं। इस प्रकार निर्मित प्रमुख निक्षेपों में ऐस्बस्टस, ग्रेफाइट, टाल्क, सोपस्टोन, एण्डालूसाइट-सिलीमिनाइट-कायनाइट, ड्यूमोर्टिराइट (Dumortierite), गार-नेट तथा कुछ अन्य निक्षेप आते हैं।

परिच्छेद ३

लोहा तथा सम्बन्धित धातुएं

लोहा व इस्पात

भारत विश्व के उन कुछ-एक देशों में है जहाँ विपुल मात्रा में लौह-अयस्क देश के अनेक भागों में प्राप्त होता है। इन स्रोतों में से कुछ ऐसे भी हैं जो वर्तमान समय में आर्थिक कठिनाइयों, यातायात की असुविधा अथवा किसी अन्य कारणवश अधिक महत्त्व के नहीं हैं। एक शताब्दी से पूर्व ही भारत के इन विशाल स्रोतों के संबंध में सर्वेक्षण-कार्य प्रारम्भ हो गया था और लगभग अर्द्ध-शताब्दी से लौह तथा इस्पात के उत्पादन पर कुछ विशेष बल दिया गया है।

लौह-उत्पादन का इतिहास इस देश के लिए १९वीं शताब्दी में प्रारम्भ होता है। भारत में प्रथम बार लौह-उत्पादन का श्रीगणेश श्री जे० एम० हीथ द्वारा स्थापित 'इण्डियन स्टील, आयरन एण्ड क्रोम कं०' द्वारा मद्रास राज्य के दक्षिण आरकट जिले में हुआ। इसके पश्चात् विभिन्न प्रान्तों में लौह-उत्पादन का प्रयास किया गया किन्तु असफलता ही हाथ लगी। सन् १८७५ में भारतीय कोयले द्वारा निर्मित 'कोक' (Coke) का उपयोग लौह व इस्पात उद्योगों में प्रथम बार किया गया। इसके पूर्व लकड़ी का कोयला (Charcoal) ही इन उद्योगों का एकमात्र ईंधन था। इसी वर्ष अपिधम-लौह (Pig Iron) उत्पादन में एक वैयक्तिक कम्पनी (Private Co.) ने आंशिक सफलता प्राप्त की। इस कम्पनी ने ईंधन कोयले की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए कुल्टी (बराकर के समीप) रानीगंज कोयला क्षेत्र में स्थित लौह-उत्पादन के लिए एक संयंत्र (Plant) स्थापित किया जिसमें ४० टन अपिधम लौह (कच्चा लोहा) प्रतिदिन उत्पन्न किया जाता था। सन् १९१९ में इस कारखाने को बंगाल आयरन कं० लि० (Bengal Iron Co. Ltd.) ने एक नवीन ही रूप दिया तथा इस प्रकार लौह-उद्योग ने भारत में धीरे-धीरे पनपना प्रारंभ किया। सन् १९११ तथा १९१२ में क्रमशः टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि० (Tata Iron & Steel Co. Ltd.) ने दो धमन भट्टियाँ (Blast Furnaces) जमशेदपुर

में संस्थापित कीं। साथ ही लौह उत्पादन का विकास रुका नहीं और आसनसोल के निकट इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० लि० (Indian Iron & Steel Co. Ltd.) ने बर्नपुर में अपनी धमन भट्टियाँ (Blast Furnaces) स्थापित कीं तथा सन् १९३३ में मैसूर राज्य में शिमोगा के निकट भद्रावती में एक अन्य कारखाने का भी श्रीगणेश हुआ। इसके पश्चात् ही कुल्टी तथा हीरापुर में लौह-उत्पादन का क्रमिक-विकास भी प्रारंभ हुआ।

भारतीय लौह-अयस्कों के प्रकार (Types of Indian Iron Ores)—

भारत में प्राप्त लौह-अयस्कों को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) हेमेटाइट अयस्क—सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हेमेटाइट अयस्क है जो विहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश के निक्षेपों में विद्यमान है। अल्प महत्त्व के कुछ निक्षेप मैसूर तथा महाराष्ट्र प्रदेश में भी स्थित हैं।

(२) स्फटिक मैग्नेटाइट शिलाएँ (Quartz Magnetite Rocks)—मुख्य रूप से ये शिलाएँ मद्रास राज्य के त्रिचनापल्ली तथा सेलम जिलों में और मैसूर के कुछ भागों में पायी जाती हैं।

(३) सिडेराइटिक तथा लिमोनाइटिक अयस्क (Sideritic and Limonitic Ores)—बंगाल के रानीगंज कोयला क्षेत्र में विकसित अधो-गोडवाना क्रम (Lower Gondwana System) में ये अयस्क लौह-प्रस्तर शेल (Iron Stone Shale) के अवयव के रूप में पाये जाते हैं।

(४) लेटराइटिक अयस्क (Lateritic Ores)—इनका उद्भव विभिन्न प्रकार की शिलाओं से हो सकता है जिनमें लोहे का कुछ अंश रहता हो। इस प्रकार की शिलाओं में ऋतुक्षरण (Weathering) द्वारा सिलिका (Silica), क्षारों एवम् क्षारीय मिट्टियों का लोप हो जाता है तथा लोहे और एल्यूमिनियम (Aluminium) का संकेन्द्रण हो जाता है तथा इस प्रकार प्रसिद्ध लेटराइट (Laterite) अस्तित्व में आता है।

लोहे का भूतात्विक वितरण (Geological Distribution of Iron)—

सर्वाधिक महत्वपूर्ण अयस्क हेमेटाइट (Hematite) निक्षेप हैं जो पूर्व-कैम्ब्रियन (Pre-Cambrian) युग के पट्टीवाले हेमेटाइट जैस्पर (Banded Hematite Jasper) अवसादों (Sediments) के साहचर्य में प्राप्त होते

हैं। कुछ मेग्नेटाइट निक्षेप इन अवसादों के रूपान्तरण द्वारा ही व्युत्पन्न हुए हैं।

कुछ निक्षेप नवीन शिलाओं उदाहरणार्थ कुडप्पा, विन्ध्य, गोंडवाना, मेसोज़ोइक (Mesozoic) तथा तृतीयक (Tertiary) आदि युगों में भी मिलते हैं किन्तु इनकी विशेष आर्थिक महत्ता नहीं है। महत्वपूर्ण निक्षेप भूतात्विक विभाजन के अनुसार निम्न प्रकार हैं—

पूर्व कैम्ब्रियन युग की लौह अयस्क श्रेणियाँ तथा धारवाड़	सिंहभूम (विहार); बोनाइ, क्योंझर तथा मयूरभंज (उड़ीसा); चान्दा, दुर्ग, बस्तर तथा जबलपुर (मध्य प्रदेश); रत्नगिरि, गोवा (बम्बई); सेलम,
पट्टी वाले लौह-अवसाद	त्रिचनापल्ली (मद्रास), मैसूर व सान्दूर (मैसूर); हैदराबाद (आन्ध्र)
कणाश्म (Granite)	
मेग्नेटाइट तथा विघटित कणाश्म	जैयन्तिया पर्वत (आसाम)
कुडप्पा क्रम	कुर्नूल (मद्रास)
बिजावर श्रेणी	रीवां (म० प्र०)
गोंडवाना क्रम	
बराकर तथा महादेवा श्रेणियाँ	वीरभूम (बंगाल)
लौह-प्रस्तर-जम्ब-शिलाएँ (Iron Stone Shales)	रानीगंज कोयला क्षेत्र (बंगाल)
ट्रायसिक (Triassic)	काश्मीर
जूरेसिक (Jurassic)	काठियावाड़
राजमहल पाड़ा (Trap)	वीरभूम (बंगाल)
उत्तर तृतीयक (Upper Tertiary)	
टीपम समूह (Group)	उत्तर आसाम (Upper Assam)
इष्टकिज (तृतीयक अथवा पश्चात्)	बंगाल, हैदराबाद, मद्रास

लौह-अयस्क निक्षेपों का विवरण (Description of Iron-ore Deposits)

बिहार और उड़ीसा के लौह-निक्षेप

हेमेटाइट निक्षेप (Hematite Deposits)—बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत का औसतन लौह उत्पादन ६५००० टन था जो १९३९ के पश्चात् ३०,००,००० टन तक पहुँचा। १९५० तक भारत में खनित कुल लोहे की मात्रा ७,०६,५८,४०० टन थी जिसका लगभग ९६ % भाग केवल बिहार और उड़ीसा क्षेत्र की खानों से प्राप्त हुआ था। गत कुछ वर्षों में तो यह अनुपात बढ़कर ९८ % तक पहुँच गया है। बिहार के सिंहभूम तथा इससे संलग्न उड़ीसा के क्योंझर तथा बोनाइ जिलों में लौह-अयस्क पर्याप्त विस्तार में वितरित है। सिंहभूम से, जहाँ खनन कार्य १९०४ में प्रारंभ हुआ, कुल लौह-अयस्क उत्पादन का ४७% भाग, मयूरभंज (उड़ीसा) से ४२% तथा अन्तिम और नवीनतम उत्पादन क्योंझर (उड़ीसा) से, जहाँ १९२७ में उत्पादन प्रारंभ हुआ, लगभग ११% प्राप्त हुआ। सिंहभूम, क्योंझर, बोनाइ तथा मयूरभंज क्षेत्रों में अत्यन्त समृद्ध लौह अयस्क विपुल मात्रा में वितरित है तथा मात्रा और समृद्धि की दृष्टि से ये क्षेत्र विश्व के विशालतम निक्षेपों में से हैं। हेमेटाइट अयस्क अधिकांशतः पर्वत श्रेणियों के शृंगों पर उनके समीपीय भागों में प्राप्त होता है। बोनाई में रोंथाके समीप उ० उ० पू० दिशा में धरातलीय क्षेत्र से १५०० फुट की ऊँचाई की एक पर्वत श्रेणी लगभग ३० मील तक फैली हुई है। इसमें कुछ को छोड़ कर शेष सभी स्थानों पर समृद्ध हेमेटाइट अयस्क मिलता है। बिहार और उड़ीसा के संभावित भण्डारों की मात्रा भारतीय भूतात्विक समीक्षा (Geological Survey of India) द्वारा ८,००,००,००,००० टन आँकी गयी है जिसमें से अधिकांश को खुली हुई खानों के रूप में खनित किया जा सकता है। इस क्षेत्र में पायी जाने वाली संरचनाओं में अपरिवर्तित (Unmetamorphosed) पूर्व-कैम्ब्रियन अवसादीय शिलाएँ जिन्हें लौह-अयस्क श्रेणी (Iron Ore Series) भी कहते हैं, कुछ प्राचीन नाइसिक (Gneissic) तथा शिष्टीय (Schistose) शिलाएँ एवम् कणाश्म (Granite) सम्मिलित है।

दक्षिण सिंहभूम तथा संलग्न जिलों में लौह-अयस्क श्रेणी की शिलाओं की सामान्य अभिलम्बा (General Strike) उ० उ० पू०—द० द० प० से उ० पू०—द० प० है। पट्टी वाली लौहस (अयस्य Ferruginous) शिलाएँ भंजित (Folded)

हैं जिन्होंने एक कूट (Ridge) शृंखला को जन्म दिया है जिनके शृंग उत्तम प्रकार के हेमेटाइट लौह अयस्क से आच्छादित हैं। इन अवसादों को उपयुक्त रूप से पट्टी वाले हेमेटाइट जैस्पर (Banded Hematite Jasper) के नाम से ही पुकारा जा सकता है। इनमें हेमेटाइट तथा जैस्पर की पट्टियाँ एक के बाद एक क्रम में पायी जाती हैं। संरचनाओं की अधिकतम मोटाई बोनाई जिले में लगभग ३००० फुट तथा सिंहभूम और क्योंझर में कुछ कम है किन्तु इस क्षेत्र की संरचना जटिल होने के कारण मं टाई का ठीक अनुमान लगाना कठिन है।

हेमेटाइट अयस्क अपने विभिन्न तथा विशेष भौतिक गुणों के अनुसार अनेकों स्थानों पर विभिन्न रूपों में प्राप्त होता है। इनमें औसतन लोहे का अंश ६४% के लगभग तथा फास्फोरस और गंधक क्रमशः ०.०३–०.०८% तथा ०.०३% तक हो सकते हैं। मुख्य प्रकारों का विशेष विवरण निम्नांकित है—

(१) स्थूल अयस्क—मुख्य एवम् सामान्य प्रकार का हेमेटाइट अयस्क स्थूल होता है। यह गहरे कत्थई से इस्पात वर्ण का सघन अयस्क होता है जो सामान्यतः अयस्क कूटों के शृंगों को निर्मित करता है।

(२) दलमय अयस्क (Laminated Ore)—इस प्रकार के अयस्क में 'दल' (Laminations) पूर्ण रूप से विकसित होते हैं तथा दलों के मध्य में खुले हुए स्थान भी रहते हैं। खाली स्थानों में लोहे का चूर्ण अयस्क (Powdery Ore) अथवा कोई अन्य जम्बशिलामय (Shaly) पदार्थ स्थान ग्रहण कर लेता है। अवश्य ही यह अयस्क, स्थूल अयस्क से कम सघन होता है और इसमें लोहे का अनुपात ५५% से ६०% तक हो सकता है।

(३) शेल-मय अयस्क (Shaly Ore)—इस प्रकार का अयस्क कुछ गहराई पर मिलता है। इनका वयन (Texture) शेलमय (Shaly) तथा द्युति (Lustre) कौशेय होती है। कुछ अयस्क पर्याप्त, यानी सघन अयस्क के समान, समृद्ध होते हैं और कुछ में लोहे का अनुपात ५०% अथवा उससे भी कम होता है।

(४) चूर्ण अयस्क (Powdery Ore)—यह अधिकांशतः नील-श्याम (Blue black) वर्ण के होते हैं और स्पर्श करने पर चूर्ण की भाँति गिरते हैं। इस चूर्ण अयस्क के भूखण्ड (Patches) नोआमण्डी, गुआ, मनोहरपुर तथा अन्य क्षेत्रों में मिलते हैं जहाँ खनन खुले क्षेत्र में होता है।

उड़ीसा के कोरापुट जिले के उमर कोट से ५-६ मील पश्चिम में स्थित हीरापुर पहाड़ियों में हेमेटाइट अयस्क प्राप्त हुआ है जिसके भण्डारों का अनुमान १ करोड़

टन के लगभग लगाया गया है। इस अयस्क में ६०-६२·७% तक लोहे की मात्रा है। सम्बलपुर जिले में भी अनेक लेटराइटिक (Lateritic) निक्षेप विस्तार में फैले हुए हैं तथा इनमें ५ करोड़ टन के लगभग हेमेटाइट अयस्क आँका गया है। इस अयस्क में ५५-६०% लोहा तथा .०३% फास्फोरस (Phosphorous) है। सम्बलपुर में विशालतम निक्षेप नासीवासा पहाड़ी पर प्राप्त हुए हैं जिनमें १.५ करोड़ टन अयस्क मिलने का अनुमान है। गत कुछ वर्ष पूर्व ही कटक जिले के सुकिन्दा क्षेत्र में हेमेटाइट अयस्क का एक विशाल तथा समृद्ध निक्षेप प्राप्त हुआ है जिसमें लोहे की मात्रा ६८.७% के लगभग है। कुल भण्डार २.७ करोड़ टन के लगभग होने की सूचना मिली है।

पालामऊ जिले के मेग्नेटाइट निक्षेप

पालामऊ जिले में डालटनगंज के समीप लादी उपराज्य में मेग्नेटाइट अयस्क दो समूहों में पाये जाते हैं। प्रथम समूह गोरे ग्राम के तथा दूसरा बिवाबाथन (Biwabathan) ग्राम के समीप स्थित है।

गोरे ग्राम के समीप पाँच पहाड़ियों (Hillocks) का एक समूह है जो उ० उ० प०–द० द० पू० दिशा में १००० गज तक फैला हुआ है। पहाड़ियों की चौड़ाई ३५० गज है।

अयस्क मुख्यतः मेग्नेटाइट है जो अंशतः चल मात्रा में (Varying extent) हेमेटाइट द्वारा स्थानांतरित कर दिया गया है। समृद्ध अयस्क के तलागत (Outcrop) की लम्बाई लगभग २००० फुट तथा चौड़ाई लगभग ९० फुट होगी। इस अयस्क में जिसका आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity) ४·३ से ४·६३ तक हो सकता है, उत्तम वर्ग के मेग्नेटाइट की मात्रा का अनुमान ४००,००० टन किया गया है। कुछ इस मात्रा को ६,००,००० टन तक बताते हैं।

बिवाबाथन––यह प्राप्तिस्थान बिवाबाथन ग्राम के दक्षिण-पूर्व में लगभग १ २ मील पर स्थित है जहाँ मेग्नेटाइट शिष्ट (Magnetite Schist) का एक लघु तलागत (Outcrop) देखा गया है। इस तलागत के आसपास लौह अयस्क के अनेकों ढेर वृहत् मात्रा में इधर उधर फैले हुए हैं। इस स्थान पर मेग्नेटाइट अयस्क के भण्डारों का अनुमान १००००० टन के लगभग किया गया है।

सिंहभूम के मेग्नेटाइट निक्षेप

दक्षिण-पूर्व सिंहभूम तथा मयूरभंज से संलग्न भागों में कुछ टिटेनियम-मय

(Titaniferous) मेग्नेटाइट के निक्षेप जिनमें वेनेडियम (Vanadium) का भी कुछ अवयव सम्मिलित है, प्राप्त होते हैं। डुब्लाबेरा, लांगों, कुदरसाही (सिंदोरपुर के दक्षिण में) तथा बेतझरन के समीप अयस्क के प्राप्ति-स्थान हैं। ये सभी निक्षेप छोटे हैं। सर्वाधिक विशाल निक्षेप मयूरभंज के कुमारडूबी में प्राप्त हुए हैं। आसपास के ३/४ मील लम्बे तथा ३/८ मील चौड़े क्षेत्र में प्लावित अयस्क (Floating Ore) अथवा मेग्नेटाइट संखण्ड (Debris) से आच्छादित हैं। प्लावित अयस्क के अनुमानित भण्डार १० लाख टन के लगभग हैं।

सिंहभूम और क्योंझर जिलों में लौह-खनन

सिंहभूम जिले में मनहरपुर रेलवे स्टेशन से द० पू० दिशा में १२ मील दूरी पर स्थित पंसिराबुरु तथा ८ मील पर स्थित बुदाबुरु में लौह-खनन इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० लि० द्वारा किया जाता है। मूलरूप से पंसिराबुरु तथा बुदाबुरु में क्रमशः १ करोड़ टन तथा १५ करोड़ टन लौह अयस्क होने का अनुमान किया गया है। यह अयस्क उत्तम प्रकार का हेमेटाइट अयस्क है।

क्योंझर जिले में बगियाबुरु श्रेणी के अयस्क का खनन युनाइटेड स्टील कॉर्पोरेशन ऑफ एशिया लि० द्वारा होता है। इस हेमेटाइट अयस्क में ५८–६०% तक लोहा रहता है।

टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि० की नोआमण्डी खान भी सिंहभूम में ही स्थित है। नोआमण्डी के अयस्क पिण्ड (Ore bodies) वास्तव में क्योंझर जिले तक फैले हुए हैं। यहाँ पर मुख्य रूप से दो समानान्तर कूट हैं जिनमें प्रत्येक की लम्बाई २½ मील तथा चौड़ाई ½ मील उत्तर की ओर है जो दक्षिण की ओर पर्याप्त चौड़ी हो गयी है। यहाँ का अयस्क दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) स्थूल एवम् दलमय हेमेटाइट (Massive and Laminated Hematite) जिसमें लेटराइटिक अयस्क भी सम्मिलित है तथा (ख) चूर्ण अयस्क एवम् कोमल जम्बशिलामय अयस्क। इनके भण्डार क्रमशः १४ करोड़ तथा ८·८ करोड़ टन आँके गये हैं। कोमल तथा चूर्ण अयस्क में यद्यपि लोहे की मात्रा पर्याप्त है और आर्थिक स्तर पर संपुंजित (Sinter) की जा सकती हैं तथापि कठोर हेमेटाइट अयस्क विपुल मात्रा में प्राप्त होने के कारण इनका महत्त्व कुछ अधिक नहीं है।

मयूरभंज जिले में लौह-खनन

मयूरभंज क्षेत्र में १२ से अधिक उत्तम प्रकार के हेमेटाइट अयस्क के निक्षेप विद्यमान हैं जिनमें से तीन मुख्य निक्षेपों पर खनन-कार्य टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि० द्वारा संचालित होता है। ये तीन खानें गोरुमहिसानी, सुलाइपात (ओकमपाद) तथा बादाम पहाड़ में स्थित हैं। हेमेटाइट अयस्क, हेमेटाइट स्फटिकाश्म (Hematite Quartzite) तथा शेल (Shale) के साथ खचित (Interbedded) हैं। गोरुमहिसानी में जो एक शैल-काय (Hill-mass) है, तीन विभिन्न शृंग हैं। इनमें सर्वोच्च शृंग की ऊँचाई धरातल से लगभग ३००० फुट से भी अधिक है। इस खान से १·३ करोड़ टन अयस्क प्राप्त किया जा चुका है तथापि सन् १९४६ के पश्चात् भी इसमें १.९ करोड़ टन अयस्क संचित था। इस अयस्क में लोहे का अनुपात ६१·४६% है।

ओकमपाद और सुलाइपात दोनों ही प्रमुख शृंग हैं जो एक-दूसरे से लगभग १ मील की दूरी पर स्थित हैं। गोरुमहिसानी से इनकी दूरी द० द० प० दिशा में लगभग १२ मील है। मुख्य अयस्क राशियाँ यहाँ भी पट्टी वाले हेमेटाइट स्फटिकाश्म (B.H.Q.) के साहचर्य में पायी जाती हैं। सन् १९४६ के अन्त में इस क्षेत्र में अयस्क की अनुमानित मात्रा लगभग ८५ लाख टन थी। सुलाइपात का अयस्क देश के सर्वोत्कृष्ट अयस्कों में से है। इसमें फास्फोरस का अनुपात अत्यन्त अल्प है।

बादाम पहाड़ के निक्षेप पहाड़ के २७०६ फुट ऊँचे शृंग पर विद्यमान हैं। सुलाइपात खान से इनकी दूरी द० प० दिशा में ८½ मील है। सन् १९४४ में अयस्क भण्डारों की अनुमानित मात्रा ४·४ करोड़ टन के लगभग आँकी गयी थी। यद्यपि इस खान में मेग्नेटाइट भी मिलता है तथापि प्रमुख अयस्क हेमेटाइट ही है। अन्य स्थानों की अपेक्षा ये हेमेटाइट अयस्क लौह-अनुपात में उतने समृद्ध नहीं हैं तथा इनमें ५७·६% लोहा रहता है। एक पीले वर्ण का अयस्क भी जो पहिले उपयुक्त नहीं समझा जाता था, आजकल खान से निकाला जाने लगा है। इसमें लोहे की मात्रा का अनुपात लगभग ६६.६% रहता है।

मध्य प्रदेश के लौह-निक्षेप

विशाल और महत्त्वपूर्ण निक्षेप बस्तर, चाँदा, दुर्ग तथा जबलपुर जिलों में स्थित हैं।

बस्तर जिले के निक्षेप

बैलाडिला—लौह अयस्क पूर्व कैम्ब्रियन की अवसादीय लौह संरचनाओं में, जिन्हें बैलाडिला लौह अयस्क श्रेणी (Iron-Ore Series) कहते हैं, पाये जाते हैं। उद्‌भिद् शिलाएँ पट्टी वाले हेमेटाइट जैस्पर हैं जो हेमेटाइट द्वारा प्रतिस्थापित (Replaced) कर दी गयी हैं। कुछ छोटे मोटे मेग्नेटाइट के निक्षेप भी मिलते हैं किन्तु उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। बैलाडिला श्रृंखला (Range) में दो समानान्तर कूट हैं जो उत्तर दक्षिण में फैले हुए हैं। इनकी संरचना के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। लगभग १४ निक्षेपों की स्थिति ज्ञात की जा चुकी है जिनमें ५ इस श्रेणी के पश्चिम में तथा ९ पूर्व में स्थित हैं। तलीय अवलोकन (Surface observations) द्वारा निक्षेपों का अनुमान ६१ करोड़ टन, २०० फुट तक की गहराई के लिए, किया गया है। इसमें प्लावित-अयस्क भी सम्मिलित है। इस अनुमान के विषय में कुछ भू-शास्त्रियों के विचार संदेहात्मक हैं।

राउघाट (Rawghat)—बस्तर जिले की नारायनदास तहसील में स्थित राउघाट नामक स्थान पर हेमेटाइट के कुछ महत्त्वपूर्ण निक्षेप मिले हैं। इस क्षेत्र में लगभग ६ निक्षेपों का रेखांकन हो चुका है और १५० फुट तक की गहराई में ७५ करोड़ टन अयस्क होने का अनुमान है। कारके ग्राम के पश्चिम में राउघाट के दक्षिण-पश्चिमी कूट में विशालतम निक्षेप स्थित हैं।

दुर्ग जिले के निक्षेप

इस जिले के पश्चिमी भाग में घल्ली तथा रझारा पर्वत-श्रेणियों में, जो लगभग २० मील तक वक्र किन्तु संतत (Continuous) पंक्ति में फैली हुई हैं, समीपीय क्षेत्र से ४०० फुट की ऊँचाई पर लौह निक्षेप मिलते हैं। अयस्क पट्टीवाले हेमेटाइट जैस्पर से व्युत्पन्न हुए हैं। यह उच्च वर्ग का हेमेटाइट अयस्क है किन्तु कहीं-कहीं पर मेग्नेटाइट की कुछ मात्रा भी इसमें रहती है। कुछ स्थानों पर आर्द्र आक्साइड तथा लेटराइट भी प्राप्त होता है। मुख्य अयस्क-भण्डार रझारा-पर्वत, रझारा के पश्चिम में तथा झारण्डली के दक्षिण में कोण्डेकासा तथा कोण्डेकासा के दक्षिण पश्चिम के कूट (Ridge) पर प्राप्त होते हैं। १५० फुट की गहराई तक अयस्क की अनुमानित मात्रा १२ करोड़ टन के लगभग आँकी गयी है।

चाँदा जिलेके लौह निक्षेप

लौह-अयस्क के प्राप्ति-स्थान मुख्य रूप से चाँदा जिले के उत्तरी भाग में ही

सीमित हैं जहाँ वे वीक्षों (Lenses) की एक श्रेणी में पट्टीवाले हेमेटाइट जैस्पर के साहचर्य में प्राप्त होते हैं जो धारवाड़ युग के हैं। इस जिले में दस से भी अधिक पृथक् पृथक् निक्षेप हैं जिनमें उत्तम प्रकार का तथा पूर्ण विकसित हेमेटाइट अयस्क प्राप्त होता है। यदाकदा मेग्नेटाइट भी अल्पमात्रा में रहता है। मुख्य प्राप्ति-स्थान लोहारा, पिपलगाँव, असोला तथा दिवलगाँव हैं। लोहारा निक्षेप की चौड़ाई अपेक्षाकृत कम है किन्तु फिर भी केवल १० फुट की चौड़ाई को ध्यान में रखते हुए यहाँ २·१ करोड़ टन अयस्क मिलने की आशा है। पिपलगाँव, असोला तथा दिवल-गाँव के निक्षेप स्वयम् में छोटे हैं तथा कुल अयस्क की अनुमानित मात्रा १० लाख टन के लगभग होगी।

जबलपुर जिले के निक्षेप—लौह-अयस्क उत्तर पूर्वी भाग की शिलाओं में, जो पहिले बिजावर श्रेणी में समझी जाती थी और अब धारवाड़ वर्ग में सम्मिलित की जाती हैं, पाया जाता है। मुख्य लौह-धारक शिलाएँ अभ्रकमय (Micaceous) तथा सिलिकामय (Siliceous) हैं।

अगरिया पहाड़ी में, जो सिहोरा रेलवे स्टेशन से द० द० पू० में १० मील की दूरी पर स्थित है, लेटराइटिक (Lateritic) अयस्क विद्यमान है। यह पहाड़ी $\frac{1}{2}$ मील लम्बी तथा $\frac{1}{4}$ मील चौड़ी एवम् १३० फुट ऊँची है। यहाँ के समृद्ध इष्टकिज अयस्क में ४५-६०% तक लोहा रहता है। इस प्रकार के अयस्क की मात्रा लगभग ७५०,००० टन होगी।

इस पहाड़ी के उत्तर में थोड़ी दूरी पर एक दूसरा कूट है जो अगरिया ग्राम के पश्चिम की ओर लगभग $\frac{1}{2}$ मील तक फैला हुआ है। इस अयस्क में लगभग ५०% लोहा है।

जौली—इसका क्षेत्रफल ३०००×९०० वर्ग फुट है किन्तु अयस्क केवल १५० फुट चौड़ी संरचना में ही सीमित है।

सिलोंदी—सिहोरा के समीप रेलवे लाइन के पश्चिम में स्थित है। यहाँ अयस्क की दो पट्टियाँ (Bands) मिली हैं। अयस्क पर्याप्त कठोर किन्तु गुण में घटिया है तथा इसमें लोहे का अनुपात ४५-५०% तक ही है।

गोसलपुर के समीप प्राप्त हुए अयस्क में मेंगनीज की मात्रा लोहे की अपेक्षा अधिक है।

घोंगरा—यहाँ अयस्क मेंगनीज-मय सिलिकामय हेमेडाइट (Mangani-

ferous Siliceous Hematite) है जिसमें लोहे की आनुपातिक मात्रा ४५% तथा मैंगनीज़ की १२% है।

कन्हवाड़ा पहाँड़ियाँ—लगभग २½ मील के क्षेत्र में लेटराइटिक (lateritic) लौह अयस्क प्राप्त होता है। भण्डारों का अनुमान ४.९ करोड़ टन के लगभग है। सरोली की दो छोटी पहाड़ियों में भी लौह अयस्क मिलता है जिसकी मात्रा ३५ लाख टन के लगभग आँकी गयी है।

ग्वालियर श्रेणी—ग्वालियर जिले की इस श्रेणी के ऊपरी भाग की लौह-प्रस्तर-शेलों (Iron Stone Shales) में एक के बाद एक क्रम में लौह-अयस्क तथा जम्बशिला की पतली पट्टियाँ पायी जाती हैं। लौह-अयस्क सघन कठोर हेमेटाइट से लेकर कोमल पदार्थ तक के रूप में प्राप्त होता है। इस अयस्क में कभी कभी तो ७०% तक लोहे की मात्रा रहती है।

बिजावर श्रेणी—नर्मदा नदी के अनुप्रस्थ इन्दौर, धार तथा झबुआ जिलों में लौह अयस्क अनियमित रूप से वितरित पाया जाता है।

विन्ध्य क्रम—मंदसौर जिले के रतनगढ़ तथा जट के समीप रीवा बालू-पत्थर (Rewa Sand Stone) लौह अयस्क का दो फुट चौड़ा एक स्तर मिला है।

इष्टकिज (Laterite)—गुना, शिवपुरी, विदिशा, शाजापुर, उज्जैन तथा मन्दसौर जिलों में लौह की समृद्ध वृहत् इष्टकिज-टोपिकाएँ प्राप्त हुई हैं।

मैसूर राज्य के लौह निक्षेप

मैसूर में लौह-अयस्क पर्याप्त विस्तार में वितरित है किन्तु ऐसे निक्षेप जिन पर खनन होता है चिकमगालूर जिले की बाबाबुदान पहाड़ियों तथा सान्दूर, होसपेट एवम् रामागिरि आदि स्थानों में ही निहित हैं। मैसूर राज्य के लौह-निक्षेपों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) अवसादीय (Sedimentary), (२) कायान्तरित (Metamorphic), (३) द्रुतपुंजीय (Magmatic)।

हेमेटाइट अयस्क—इन अयस्कों ने कैम्ब्रियन पूर्व धारवाड़ क्रम के भागों को निर्मित किया है। ये बिहार और उड़ीसा के पट्टीवाले हेमेटाइट जैस्पर के सर्वथा समान हैं। अयस्क खनिज मुख्य रूप से हेमेटाइट ही है जिसके साहचर्य में थोड़ा मैग्नेटाइट भी प्राप्त होता है।

मेग्नेटाइट अयस्क—स्फटिक मेग्नेटाइट (Quartz Magnetite) पृथक् पृथक् (Disconnected) तथा वीक्ष (Lens) रूप में माड्डूर, हुलोगुर सारगुर के समीप एक श्रेणी के अन्तर्गत मिलता है।

टिटेनियम-मय मेग्नेटाइट (Titaniferous Magnetite)—ये अधोवर्ती (Inferior) अयस्क निक्षेप विरल पट्टिकाओं तथा वीक्षों में मैसूर के दक्षिणी भाग में प्राप्त होते हैं।

बाबाबुदान पहाड़ियाँ पूर्ण रूप से स्फटिक-लौह अयस्क शिलाओं द्वारा निर्मित हैं। केम्मनगण्डी (Kemmangandi) के क्षेत्र के दुपदगिरि कूट में दो करोड़ टन के लगभग अयस्क आँका गया है जिसमें लोहे का औसत अनुपात ५४% है। कालहत्तीगिरि का अयस्क केम्मनगण्डी के अयस्क की अपेक्षा घटिया है तथा इसकी कुल मात्रा एक करोड़ टन के लगभग बतायी जाती है। पहिले इन क्षेत्रों से भद्रावती स्थित मैसूर आयरन वर्क्स को केवल वही अयस्क भेजा जाता था जिसमें लोहा लगभग ६०% हो किन्तु अब ५५-६०% तक का अयस्क उपयोग में लाया जाता है।

सान्दूर में मेंगनीज अयस्क के साहचर्य में हेमेटाइट अयस्क टोपिकाओं (Cappings) के रूप में प्राप्त होता है। यह हेमेटाइट क्वार्ट्जाइट द्वारा व्युत्पन्न हुआ है तथा इसकी मोटाई १०० से २०० फुट तक है। श्री एम० एस० वेंकटरमन द्वारा इन अयस्कों के भण्डारों का अनुमान ५० से ८० फुट तक की गहराई के लिए १३ करोड़ टन किया गया है। इसी श्रेणी के विस्तार में होसपेट ताल्लुक में ६० लाख टन हेमेटाइट अयस्क है जिसमें लोहे का भाग ६०-६५% तक है। बेलारी के दक्षिण-पश्चिम में स्थित ताम्र-पहाड़ी (Copper Mountain) में इसी प्रकार का २० लाख टन अयस्क विद्यमान है। इसके अतिरिक्त बंगलौर जिले के द० प० भाग से लेकर टुमकुर होते हुए चितालद्रुग जिले तक फैला हुआ अयस्क जो लोहमय स्फटिकाश्मों (Ferruginous Quartzites) तथा मेग्नेटाइट-स्फटिक (Magnetite Quartz) शिलाओं की अनियमित पट्टियों में प्राप्त होता है, पर्याप्त महत्त्व का है। मण्डया के मड्डूर-मालावली क्षेत्र से प्राप्त अयस्क का संकेन्द्रण कर के ६०-७०% तक लोहा प्राप्त किया जा सकता है। श्री बी० पी० राधाकृष्ण द्वारा इन क्षेत्रों में लगभग ४-१५ करोड़ अयस्क प्राप्त होने का अनुमान किया गया है जिसमें ४०-५०% तक लोहे का अंश है। सारगुर क्षेत्र में भी इसी प्रकार के अयस्क के भण्डारों की मात्रा लगभग १.३ करोड़ टन आंकी गयी है। टुमकुर के कुनीगल क्षेत्र

में घटिया वर्ग का ३·२ करोड़ टन अयस्क और अधिक प्राप्त होने का अनुमान है। चितालद्रुग जिले के हीरीपुर क्षेत्र में ५·५ करोड़ टन अयस्क राशि आँकी गयी है जो कत्थई वर्ण का हेमेटाइट है तथा जिसमें लौहिक आक्साइड (Ferric Oxide) की मात्रा ८०% है। यद्यपि शिमोगा जिले में भी मेंगनीज अयस्क के साहचर्य में लिमोनाइटिक (Limonitic) अयस्क प्राप्त हुए हैं जिनमें लोहे का अंश ६०% तक है तथापि इन अयस्कों में फास्फोरस की मात्रा अधिक होने से इनका उपयोग वर्तमान परिस्थितियों के लिए उपयुक्त नहीं है।

भण्डारों की सामान्य समीक्षा

चिकमगालूर, चितालद्रुग तथा टुमकुर जिलों में हेमेटाइट-अयस्क के विशालतम निक्षेप स्थित हैं। यहाँ थोड़ी ही गहराई तक लगभग १२ करोड़ टन अयस्क उपलब्ध है जिसका चौथाई भाग उच्च वर्ग का है जिसमें ६०% के लगभग लोहा है। अनेक स्थानों पर अयस्क १०० फुट से भी अधिक गहराई तक मिलता है। इस प्रकार इसको सामान्य गहराई मानकर कुल भण्डारों की अनुमानित मात्रा १०० करोड़ टन के लगभग होगी जिसमें सभी वर्गों का अयस्क सम्मिलित है। मैसूर राज्य के अन्य भागों में १० करोड़ टन से भी अधिक स्फटिक मेग्नेटाइट तथा ३ करोड़ टन के लगभग टिटेनियम-मय (Titaniferous) मेग्नेटाइट अयस्क विद्यमान है।

सान्दूर—लौह-अयस्क धारवाड़ (पूर्व कैम्ब्रियन) शिलाओं में मिलते हैं। उड़ीसा की भाँति यहाँ भी अयस्क-टोपिकाओं से आच्छादित कूटों की एक श्रृंखला है जो पट्टीवाली लौह संरचनाओं के समृद्ध संवर्धन (Enrichment) द्वारा उत्पन्न हुई हैं। डा० एम० एस० कृष्णन् के अनुसार विभिन्न निक्षेपों के भण्डार निम्न प्रकार हैं—

निक्षेप	भण्डार (करोड़ टन में)
१. दोनाइमलाई	२.५६
२. देवादरी श्रृंखला	१.५०
३. कुमारस्वामी काम्माधेरुवु श्रृंखला	२.५४
४. कानावेहाली श्रृंखला	.०५
५. रामनद्रुग श्रृंखला	३.०३
६. तिम्मापाना गुड़ी श्रृंखला	३.२८
	१२.९६ लगभग १३ करोड टन

मद्रास राज्य के लौह-निक्षेप

सेलम तथा त्रिचनापल्ली के निक्षेप—मद्रास राज्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण निक्षेप मेग्नेटाइट-स्फटिक (Magnetite Quartz) शिलाओं का एक वर्ग हैं जो त्रिचनापल्ली तथा सेलम जिलों में पू० उ० पू०-प० द० प० दिशा में फैला हुआ है। सेलम में तो लौह-अयस्क के विपुल भण्डार हैं। उनके सम्बन्ध में सर टॉमस हॉलैण्ड (Sir Thomas Holland) ने कहा है कि व्यावहारिक रूप से ये भण्डार असमाप्य हैं। डा० एम० एस० कृष्णन् के अनुसार इस क्षेत्र के निक्षेपों को सरलता के लिए नौ वर्गों में विभाजित किया गया है:—

(१) कंजमलाई, (२) गोदुमलाई, (३) पेरुमामलाई, (४) आत्तुर क्षेत्र, (५) चित्तेरी पहाड़ियाँ, (६) तीर्थमलाई, (७) नमक्कल तथा रासीपुर क्षेत्र, (८) कोल्लाइमलाई, (९) पचाइमलाई।

सर्वोत्तम निक्षेप कंजमलाई ही में स्थित हैं इसमें कोई संदेह नहीं। कंजमलाई एक विशाल पहाड़ी है जो सेलम नगर से प० द० प० दिशा में ५ मील की दूरी पर है। इसकी रूप-रेखा अण्डाकार है जिसकी लम्बाई (पूर्व-पश्चिम में) ४½ मील तथा चौड़ाई २½ मील के लगभग है।

भण्डारों की सामान्य समीक्षा—केवल उन्हीं अयस्कों को ध्यान में रखकर भण्डारों की गणना की गयी है जिनमें २५% से कम मेग्नेटाइट नहीं है तथा जहाँ वाणिज्य-स्तर पर खनन-कार्य किया जा सकता है। डा० एम० एस० कृष्णन् के अनुसार १०० फुट की गहराई तक भण्डारों की अनुमानित मात्रा निम्न प्रकार है—

निक्षेप	भण्डार (करोड़ टन में)
कंजमलाई	५.४६ करोड़ टन
गोदुमलाई	१.२५ ,, ,,
पेरुमामलाई	१.०४ ,, ,,
आत्तुर क्षेत्र	१.१७ ,, ,,
चित्तेरी पहाड़ी	५.५४ ,, ,,
तीर्थमलाई	४.७५ ,, ,,
नमक्कल व रासीपुर	३.३९ ,, ,,
कोल्लाइमलाई आदि	६.७४ ,, ,,
पचाइमलाई	१.११ ,, ,,
	३०.४५ करोड़ टन

आन्ध्र-प्रदेश के लौह-निक्षेप

कुडप्पा जिले के हेमेटाइट निक्षेप

चबाली निक्षेप, कुडप्पा क्रम के पुलीवेन्डला क्वार्ट्ज़ाइट के समृद्ध भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। लौह अयस्क स्फटिक (Quartz) के अनियमित भूखंडों (Irregular Patches) में प्राप्य हैं। प्राप्त अयस्क हेमेटाइट है जो पर्याप्त उत्तम प्रकार का है किन्तु इसका कुछ भाग ऋतुक्षारित हो गया है जो लेप (Paints) तथा पिगमैन्ट (Pigments) के निर्माण के लिए उपयुक्त है।

चबाली के समीप ही पगडालापाल्ले निक्षेप भी स्थित हैं। चबाली में कई सौ हजार टन अयस्क विद्यमान है किन्तु पगडालापाल्ले में बहुत ही कम है। अयस्क की मात्रा की गणना अभी तक नहीं की गयी है तथा आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

कुर्नूल जिले के निक्षेप

रामाल्लाकोटा तथा वेलदूर्ती के समीप हेमेटाइट निक्षेप मिले हैं। सामान्यत: अयस्क-राशियाँ (Ore bodies) नीची पहाड़ियाँ तथा कूट (Ridges) हैं। वेलदूर्ती, ब्रह्मभुण्डम तथा गानीघाट्टू पहाड़ियों में एक ही वर्ग के अन्तर्गत लगभग एक दर्जन से भी अधिक पृथक् पृथक् निक्षेप हैं। सौ फुट की गहराई तक के भण्डारों का अभी तक का अनुमान ३७ लाख टन है।

हैदराबाद राज्य में विभिन्न आकार के अनेकों निक्षेप प्राप्त हुए हैं। इनमें से सभी महत्त्वपूर्ण निक्षेप धारवाड़ क्रम में ही सीमित हैं। ये निक्षेप अधिकांशत: कूटों में स्थित हैं जिनकी लम्बाई २ फर्लांग से लेकर ३-४ मील तथा चौड़ाई ५०-१०० फुट तक हो सकती है। कुछ मुख्य प्राप्ति-स्थान निम्नलिखित हैं।

(१) चितयाला—आदिलाबाद जिले में इस स्थान के समीप पहाड़ी में लगभग ७० लाख टन अयस्क विद्यमान है जिसमें मेग्नेटाइट व हेमेटाइट दोनों ही सम्मिलित हैं।

(२) कालेरा-दस्तूराबाद—दो वर्गों के निक्षेपों में ५५ लाख टन अयस्क प्राप्त होने का अनुमान है।

(३) रेबनपल्ली—इन निक्षेपों में अयस्क-राशि लगभग ५० लाख टन होगी।

(४) चन्दोली (अम्बरपेट)—इस क्षेत्र में कई निक्षेप स्थित हैं तथा अयस्क के कुल भण्डारों का अनुमान १.४ करोड़ टन किया गया है।

(५) सिंगरेनी क्षेत्र—तलीय-स्तर (Ground level) के ऊपर लगभग ५५ लाख टन अयस्क प्राप्त होने का अनुमान है।

कुछ प्राप्ति-स्थान रायचूर जिले में तावर गिरा के समीप धारवाड़ शिलाओं में स्थित हैं। इन भण्डारों की गणना अभी तक नहीं की गयी।

अनन्तपुर जिले के रामाद्रुग तालुक में स्थित ताम्र पहाड़ी के निक्षेप भी थोड़ा महत्त्व रखते हैं। अयस्क हेमेटाइट है जिसमें ६०% से भी अधिक लोहे का भाग है। कुल भण्डार ५ लाख टन के लगभग होंगे।

कृष्णा जिले में जग्गैय्यापेटा के उत्तर में तथा हैदराबाद जिले के समीपवर्ती क्षेत्रों में धरातल (Surface) से ३ फुट की गहराई तक व्यपघर्षण (Detrital) अयस्क प्राप्त होता है जिसमें लोहे का अनुपात ६०% अथवा इससे भी अधिक होता है। भण्डारों की कुल मात्रा केवल १५ लाख टन ही है।

चित्तूर जिले में भी लौह-अयस्क की एक पट्टी (Band) प्राप्त हुई है जिसमें ४८% लोहा पाया गया है।

बम्बई राज्य के लौह-निक्षेप

लौह अयस्क निक्षेप धारवार क्रम में अपावरणों (Exposures) की शृंखला के रूप में कंकोली के समीप सड़क के अनुप्रस्थ वाग्दा के पूर्व तथा कस्साल के पू० उ० पू० में, कुण्डा के द० द० प० तथा कट्टा एवं रेडी के समीप पाये जाते हैं। कट्टा तथा रेडी के समीप के निक्षेप विशालतम हैं और बम्बई तथा पुर्तगाली गोआ की सीमा पर वेनगुरला के द० द० पू० में पश्चिमी तट पर स्थित हैं। ये निक्षेप समुद्र-तट के समीप एक मील लम्बे तथा ५०० गज या उससे भी अधिक चौड़े स्थान में फैले हुए हैं। गोआ की सीमा में बिचोलिम के समीप लोहे की खानें प्राप्त होने की सूचना मिली है। दो कूटों (Ridges) जिनकी पारस्परिक दूरी ४०० मीटर है, पर लौह-अयस्क की दो समानान्तर पट्टियाँ हैं। दक्षिणी पट्टी, जो अधिक महत्त्व की है, ७ किलोमीटर तक फैली हुई है और इसकी चौड़ाई १० से १०० मीटर तक घटती बढ़ती है। कुछ कठोर तथा रन्ध्री हेमेटाइट, मैग्नेटाइट के सूक्ष्म मणिभों के साथ, यहाँ के अयस्क में प्राप्त होता है।

बम्बई तथा गोआ के निक्षेपों में न्यूनतम ७० लाख टन उच्च प्रकार का अयस्क मिलने की आशा है। इतनी ही मात्रा में निम्नकोटि का तथा लेटराइटिक (Lateritic) अयस्क भी हो सकता है। उच्च-वर्ग के अयस्क में लगभग ६०%

लोहा रहता है। समुद्र-तट के समीप होने के कारण निक्षेपों का शोषण (विदोहन) मुख्यरूप से जापान को लौह-अयस्क निर्यात करने के लिए किया जाता है।

बंगाल के लौह-निक्षेप

वीरभूम—यहाँ पर अयस्क अनेक स्रोतों से व्युत्पन्न हुआ है। दामूदा तथा महादेवा श्रेणियों के बालू-पत्थर (Sand Stone) में हेमेटाइट की पट्टिकाएँ (Veins) प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त दूसरा स्रोत लेटराइट (Laterite) का है जो राजमहल ट्रैप (Trap) से सम्बन्धित है। तामरा देवचा, सी पहाड़ी, दूधिया, काण्डा तथा राजमहल पाश की दक्षिण सीमा के समीप खनन-कार्य किया गया है।

रानीगंज कोयला क्षेत्र (बर्दवान)—लौह अयस्क दामूदा श्रेणी के मध्यभाग में पाया जाता है जिसे लौह-प्रस्तर-शेल (Iron-Stone-Shale) के नाम से पुकारते हैं। लौह-प्रस्तर-शेल की अनुमानित मोटाई लगभग १४०० फुट तथा यह पूर्व-पश्चिम दिशा में कुल्टी से होकर लगभग ३३ मील की दूरी तक फैला हुआ है। श्री टी० डब्ल्यू० एच० ह्यूजिज (T. W. H. Hughes) के अनुसार इस क्षेत्र के प्रति वर्ग मील क्षेत्र में लगभग २० करोड़ टन लौह-प्रस्तर होना चाहिए।

पंजाब (पटियाला क्षेत्र)

अल्प महत्त्व के लौह निक्षेप धानोता में तथा छपरी के समीप मिले हैं। छपरी में एक अयस्क स्तर है जो लगभग २½ मील लम्बाई में फैला हुआ है। अयस्क में हेमेटाइट तथा मेग्नेटाइट विभिन्न अनुपात में हैं। लोहे का अनुपात ५७·४% है। पटियाला में नारनौल के समीप ये अयस्क पूर्व कैम्ब्रियन (Pre Cambrian) संग-मरमर तथा शिष्टों (Schists) के साहचर्य में प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार के अयस्क की सूचना सिरमूर क्षेत्र से भी मिली है।

हिमांचल प्रदेश

स्फटिक-मेग्नेटाइट (Quartz Magnetite) अयस्क मण्डी से मघवार तक फैला हुआ देखा गया है। इसी पट्टी का एक छोटा भाग और आगे द० पू० में सांगल-वारा के समीप देखा गया है जो लगभग दो मील लम्बा है और दोनों सिरों पर कणाश्म (Granite) द्वारा कटा हुआ है। इस अयस्क में लोहे का अंश ६३·९% है।

राजस्थान

मेग्नेटाइट तथा हेमेटाइट निक्षेप अलवर, बूँदी, जयपुर, जोधपुर तथा उदयपुर की पूर्व-कैम्ब्रियन मणिभित शिलाओं में वीक्षों (Lenses), पट्टिकाओं (Veins) तथा स्तरों (Beds) के रूप में प्राप्त होता है।

उत्तर प्रदेश

हेमेटाइट तथा मेग्नेटाइट की पट्टियाँ (Bands) नैनीताल तथा अल्मोड़ा जिलों में मिलती हैं।

जम्मू व कश्मीर

सर्वप्रथम लौह अयस्क का एक स्तर (Layer) संगरमर्ग में प्राप्त हुआ था। एक अन्य प्राप्ति-स्थान अशुद्ध चूर्णीय (Calcareous) लौह अयस्क है जो चूना पत्थर (Lime Stone) तथा जम्बशिलाओं के संपर्क में उत्तर-ट्रायसिक (Upper Triassic) युग की शिलाओं में सोफ ग्राम में पाया गया है। कुछ अन्य अशुद्ध लौह-निक्षेप जम्मू तथा ऊधमपुर जिलों में प्राप्त हुए हैं।

लोहा व इस्पात उद्योग

लोहा आधुनिक सभ्यता की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धातु है। इसके इतने अधिक उपयोग हैं और आज का मानव लोहे पर इतना आश्रित हो गया है कि इसके बिना जीवन असंभव हो गया है। जीवन के हर क्षेत्र में हम लोहे का किसी न किसी रूप में अवश्य ही उपयोग करते हैं। आधुनिक युग के ये बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे, नवीन संयंत्र, यातायात के साधन, विशालकाय भवनों, बाँधों एवम् पुलों का निर्माण तथा घरेलू-कार्यों, सभी में हम लोहे की महत्ता स्वीकार करते हैं।

संसार में लोहे के उत्पादन में अग्रगण्य देश संयुक्त राज्य अमेरिका है जो सम्पूर्ण संसार के लोहा-उत्पादन का आधा भाग उत्पन्न करता है। जहाँ तक लौह-भण्डारों (Reserves) का प्रश्न है, विश्व में भारत का दूसरा स्थान है। सम्पूर्ण देशों का कुछ उत्पादन प्रतिवर्ष १५–२४ करोड़ टन है। मुख्य उत्पादक देश तथा उनका उत्पादन निम्न प्रकार है—संयुक्त राज्य अमेरिका ५०%; फ्रान्स ११%; रूस १०%, स्वीडन ८%, इंग्लैण्ड ८%, जर्मनी ५%, लक्जेमबर्ग १.५%, भारत

१·५%, स्पेन १·५%, आस्ट्रेलिया १·३%, अल्जीरिया १·१%। इसी प्रकार जहाँ तक इस्पात का सम्बन्ध है संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्पादन उसमें भी सर्वोच्च है। मुख्य उत्पादक देश इस प्रकार हैं—संयुक्त राज्य अमेरिका ५८%, जर्मनी १२%, रूस १०%, इंगलैण्ड १०%, फ्रांस ३%, जापान ४%, अन्य देश ३%। उत्पादन के ये आँकड़े सम्पूर्ण संसार के कुल उत्पादन के अनुसार लगाये गये हैं।

भारतीय उद्योग—लोहा तथा इस्पात निर्माण का प्रारंभ भारत में १९वीं शताब्दी के अन्तिम तथा २०वीं शताब्दी के प्रथम चरण में होता है। सन् १९०० ई० के लगभग भारत में अपिधम-लौह (Pig Iron) का उत्पादन केवल ३५,००० टन था। इस समय केवल बंगाल आयरन एण्ड स्टील कं० लि० ही एकमात्र इस अपिधम लौह (Pig Iron) का उत्पादन-केन्द्र था। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् १९५० तक लोहे का औसत उत्पादन १५३,२००० टन के लगभग था। इसी प्रकार इस्पात का उत्पादन १९१२ में प्रारंभ हुआ और १९४१ में उत्पादन दस लाख टन से अधिक तक पहुँच गया। अभी तक के आँकड़ों से यह ज्ञात होता है कि लोहे तथा इस्पात उद्योग के प्रारभ से वर्तमान समय तक जितना भी लोहा निर्मित हुआ है उसका ६०% से भी अधिक टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि० तथा ३०% के लगभग इन्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० लि० द्वारा निर्मित किया गया है। इसी प्रकार इस्पात में टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि० तथा इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० लि० द्वारा क्रमशः ८५% तथा १०% से अधिक भाग उत्पादित किया गया।

देश के स्वतन्त्र होने के पूर्व यहाँ लोहे व इस्पात के केवल चार कारखाने थे जो जमशेदपुर (बिहार), कुल्टी तथा हीरापुर (प० बंगाल) और भद्रावती (मैसूर) में स्थित हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भारी उद्योगों को प्राथमिकता दी गयी और इन उद्योगों के लिए विपुल मात्रा में लोहे तथा इस्पात की आवश्यकता का अनुभव किया गया; अतः लगभग ३० लाख टन अतिरिक्त इस्पात उत्पन्न करने के लिए भारत सरकार द्वारा तीन नये कारखाने क्रमशः भिलाई (म० प्र०), राउरकेला (उड़ीसा) तथा दुर्गापुर (प० बंगाल) में स्थापित किये गये हैं। इन कारखानों के निर्माण में विदेशी सहायता के रूप में संयंत्र (Plants) प्राविधिक प्रशिक्षित (Technical Personnel) तथा अन्य सामग्री क्रमशः रूस, जर्मनी तथा इंगलैण्ड से प्राप्त हुई है। भारत के प्रमुख लोहा तथा इस्पात उत्पादन केन्द्रों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० लि०

इस कम्पनी की स्थापना सन् १९१८ ई० में हुई थी। सन् १९३६ ई० में बंगाल आयरन एण्ड स्टील कं० लि० का भी इसी कम्पनी में विलीनीकरण हो गया। इस कम्पनी की दो धमन भट्टियों से लोहे का उत्पादन बर्नपुर में सन् १९२२ में प्रारंभ हुआ। दोनों कम्पनियों के संयुक्त उत्पादन केन्द्र कुल्टी तथा हीरापुर में स्थित हैं। कुल्टी में दो यन्त्रीकृत (Mechanically charged) धमन भट्टियाँ हैं जिनसे २५०००० टन प्रतिवर्ष अपिधम लौह (Pig Iron) उत्पन्न होता है। यहीं पर कोयले का कार्बनीकरण १३२ उपसृष्ट कन्दुओं (By-product ovens) की चार समूहाओं (Batteries) द्वारा होता है। इस प्रकार कोक का उत्पादन २००,००० टन प्रतिवर्ष है। २,००० टन अमोनियम सल्फेट, ६५०० टन टार (Tar) तथा ३००,००० गैलन क्रूड बेन्जोल भी यहीं निर्मित किया जाता है।

हीरापुर कारखाने में ८००-८०० टन की दो आधुनिक धमन भट्टियाँ हैं। उपसृष्ट कोकिंग संयंत्र (By-product coking installation) में दो बैटरियाँ हैं जिनमें प्रत्येक साइमन-कार्व (Simon-Carve) प्रकार की है जिनसे प्रतिदिन १००० टन कोक उत्पन्न होता है। एक अन्य समूहा (Battery) अण्डर-जेट (Under-Jet) प्रकार की है जिससे ४५० टन कोक प्रतिदिन प्राप्त होता रहा है। इस समूहा में बाद को अनेकों और परिवर्तन किये गये जिससे १९४७ में कोक का उत्पादन ४४,००० टन प्रति मास हो गया। अमोनियम सल्फेट के उत्पादन के लिए अन्य उपजातों (By-products) के अतिरिक्त स्पर्श विधि से गंधकाम्ल के निर्माण हेतु एक संयंत्र और स्थापित किया गया है जो ७७% संकेन्द्रण (Concentration) का ६० टन अम्ल प्रतिदिन निर्मित करता है। इस कारखाने के लिए कोयले की प्राप्ति रानीगंज कोयला क्षेत्र राम-नगर कोयला खान तथा झरिया क्षेत्र की नूनीडीह, जीतपुर तथा चासनाला खानों से होती है।

सन् १९५२ में इस कम्पनी ने तथा स्टील-कार्पोरेशन ऑफ बंगाल लि० ने संयुक्त रूप से ८००००० टन व्यंगारित इस्पात (Ingot Steel) का उत्पादन किया। प्रथम पंच-वर्षीय योजना में इस तथ्य पर अधिक जोर दिया गया कि उस समय के मुख्य इस्पात उत्पादक कारखानों का विस्तार तथा आधुनिकीकरण किया जाय और इन आयोजनों की पूर्ति के लिए इन कारखानों को भारत सरकार,

विश्व बैंक (World Bank) तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) से सहायता तथा ऋण भी प्राप्त हुए। इस योजना के अन्तर्गत इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० लि० ने भी अपने कारखानों के विस्तार के लिए दो कार्यक्रम क्रमशः १९५३ तथा १९५५ के लिए योजना-बद्ध किये। ये योजनाएँ सन् १९५८ में पूर्ण हुईं। इन विस्तार-कार्यक्रमों के अन्तर्गत यह कम्पनी प्रतिवर्ष दस लाख टन व्यंगारित इस्पात (Ingot Steel) उत्पन्न करेगी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बर्नपुर के कारखानों में दो नवीन धमन भट्टियों का निर्माण किया गया है जो आधुनिक प्रकार की हैं तथा जिनमें प्रत्येक का समावेशन (Capacity) १२०० टन है। इन भट्टियों से १६ लाख टन अपिधम लौह (Pig Iron) प्रति वर्ष निर्मित हुआ करेगा। इसके अतिरिक्त दो कोक कन्दु समूहाओं का भी निर्माण किया गया है जिनसे आवश्यक अतिरिक्त कोक की पूर्ति हो सकेगी। इसी प्रकार विस्तार-कार्यक्रम में कुल्टी स्थित लोहा-संधानी (Foundry) को आधुनिक रूप सन् ५८ में दिया गया तथा नवीन पद्धतियों पर आधारित एक आधुनिकतम इस्पात संधानी ने भी इसी वर्ष के अन्त में कार्य आरंभ किया।

टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि०

सन् १९०७ ई० में बिहार के कालीमाटी नामक ग्राम के समीप श्री जमशेद जी नौसेरवान जी टाटा ने भारत में प्रथम लोहा व इस्पात कारखाने की आधार-शिला रखी। आज यह इस्पात नगर जमशेदपुर अथवा टाटानगर के नाम से विख्यात है। यह नगर दक्षिण पूर्वी रेलवे का एक प्रमुख स्टेशन है तथा कलकत्ता से पश्चिम में १५४ मील की दूरी पर स्थित है। इस औद्योगिक नगर का क्षेत्रफल २५ व० मी० से भी अधिक है। लौह-अयस्क की प्राप्ति मयूरभंज (उड़ीसा) तथा उत्तर-पूर्व सिंहभूम के निक्षेपों से होती है। इन स्थानों की दूरी टाटानगर से क्रमशः ४५ तथा ७० मील है। चूना पत्थर (Lime stone) तथा डोलोमाइट (Dolomite) की प्राप्ति ११७ तथा ११० मील दूर स्थित क्रमशः बीर मित्रपुर तथा पानपोश (गंगपुर) से होती है।

कारखाने के मूल संयंत्र में दो धमन भट्टियाँ २५० टन अपिधम लौह (Pig Iron) प्रतिदिन क्षमता की थीं जिनका श्रीगणेश क्रमशः नवम्बर १९११ तथा सितम्बर १९१२ में हुआ। आज पाँच धमन भट्टियाँ हैं जिनकी प्रतिदिन की क्षमता क्रमशः ५५०, ९००, ८००, ८०० तथा १००० टन की है। इन भट्टियों से

१,१००,००० टन अपिघम लौह तथा १५,००० टन फेरो-मैंगनीज की प्राप्ति प्रतिवर्ष होती है। प्रारंभ में कोकिंग संयंत्र (Coking Plant) में १८० इवान्स कोपी (Evance Coppee) प्रकार की कन्दुएँ (Ovens) थीं जिनको धीरे-धीरे कोपर्स (Koppers), विलपुट, तथा सायमन-कार्व (Simon-Carve) प्रकार की कन्दुओं में परिवर्तित कर दिया गया। आजकल सायमन-कार्व प्रकार की कन्दुओं की ३ समूहाएं (Batteries) हैं जो प्रतिदिन १३००-१४०० टन कोयले का कार्बनीकरण करती हैं। सन् १९४४-४६ तक कोक का उत्पादन ८४७,००० प्रतिवर्ष रहा; साथ ही ३७,००० टन टार (Tar) तथा १३,००० टन अमोनियम सल्फेट की भी प्राप्ति होती रही। स्पर्श-विधि द्वारा ९८% संकेन्द्रण का गंधकाम्ल उत्पन्न किया जाता है जिसकी मात्रा ५० टन प्रतिदिन है। बेन्जोल-टोल्यून संयंत्र से १२५०००० गैलन प्रतिवर्ष इन हाइड्रोकार्बन्स (Hydro carbons) की प्राप्ति होती है।

यह कम्पनी कई संयुक्त विधियों द्वारा इस्पात का निर्माण करती है। विभिन्न विभागों में विभिन्न प्रकार का इस्पात उत्पन्न होता है। सन् १९४३ से इस कम्पनी ने एक नवीन संयंत्र द्वारा मिश्रधातवीय-यंत्र (tool) तथा विशेष इस्पातों का निर्माण प्रारंभ किया। दो छोटी-छोटी विद्युत्-भट्टियाँ भी प्रयोगार्थ कम्पनी की प्रयोगशाला में स्थापित की गयी हैं। विशेष प्रकार के इस्पातों में दो प्रकार मुख्य हैं—टिस्क्रोम (Tischrome) तथा टिस्कोर (Tiscor) जिनमें अधो-मिश्र-धातवीय तथा शक्तिशाली पदार्थ रहते हैं एवं ये इस्पात संरचनात्मक कार्यों में प्रयुक्त होते हैं।

इस कम्पनी का अपना स्वयं का एक संयंत्र है जो मैग्नेशिया, क्रोम तथा अन्य तापरोधी पदार्थों का उत्पादन करता है। कम्पनी ने एक आधुनिक प्रयोगशाला का भी निर्माण कराया है जो न केवल दिन प्रतिदिन की कठिनाइयों आदि को सुलझाने तथा नवीन सुझाव देने का काम करती है, अपितु उन सभी समस्याओं का समाधान करती है जो उत्पादन तथा इस्पात में नवीन कार्यविधियों के संचालन में उठ खड़ी होती हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के पूर्व यह कम्पनी ७५०,००० टन उत्तम इस्पात उत्पन्न करती थी। योजना के अन्तर्गत एक नवीन विस्तार-कार्यक्रम कम्पनी ने तैयार किया जिसमें लगभग ३३ करोड़ रुपये की लागत का अनुमान था।

मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स

मैसूर सरकार द्वारा संस्थापित लोहे तथा इस्पात का यह कारखाना शिमोगा के पूर्व में भद्रावती नामक स्थान पर स्थित है। इस कारखाने का श्रीगणेश सन् १९५३ ई० में हुआ था। इस कारखाने में प्रारंभ में केवल एक ही धमन भट्ठी थी जो प्रतिदिन ६० टन अपिघम लौह (Pig Iron) उत्पन्न करती थी। इसी प्रकार एक काष्ठ-आसवन संयंत्र (Wood Distillation Plant) भी लगाया गया था जिसमें चारकोल को ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता था तथा उपसृष्ट (By-products) के रूप में काष्ठ-अल्कोहल, कैल्शियम एसिटेट तथा काष्ठ-टार (Wood tar) प्राप्त होता था।

इस कारखाने को लौह-अयस्क की प्राप्ति २६ मील दूर दक्षिण में स्थित बाबाबुदान नामक पहाड़ी के किम्मनगुण्डी निक्षेपों से होती है तथा चूना पत्थर (Lime Stone) एवम् लकड़ी की प्राप्ति क्रमशः १३½ मी० पूर्व में स्थित भाण्डी गुण्डा समीपस्थ जंगलों से होती है। एक साइमन्स मार्टिन ओपिन-हार्थ (Open-hearth) भट्ठीने जिसका समावेश २५ टन था, सन् १९३६ में उत्पादन प्रारंभ किया। इसी वर्ष एक रोलिंग मिल (Rolling Mill) भी स्थापित की गयी जो २०,००० टन प्रतिवर्ष समापित इस्पात (Fimished Steel) उत्पन्न करती है। एक अतिरिक्त संयंत्र सन् १९५० में स्थापित किया गया।

जोग झरने से प्राप्त विद्युत् द्वारा संचालित दो विद्युत्-भट्ठियाँ जिनमें से प्रत्येक १०० तथा ११० टन लोहा प्रतिदिन उत्पन्न करेंगी स्थापित की गयी हैं। इनके सम्बन्ध में विशेष जानकारी नार्वे के विशेषज्ञों से प्राप्त की गयी थी। इस नवीन विस्तार से उत्पादन १००,००० टन प्रतिवर्ष हो जायगा। अब ऐसा सुझाव रखा गया है कि भद्रावती में एक नवीन तथा विशाल संयंत्र इकाई (Unit) में फेरो सिलिकन (Ferro-Silicon) निर्मित किया जाय और मैसूर नगर-स्थित भट्ठियों का फेरो-क्रोम (Ferro-Chrome) तथा अन्य इसी प्रकार की मिश्र-धातुओं के निर्माण में उपयोग किया जाय।

भिलाई इस्पात संयंत्र (Bhilai Steel Plant)

इस इस्पात संयंत्र की प्रथम धमन भट्ठी (Blast Furnace) का विधिवत् उद्घाटन भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने ४ फरवरी १९५९ को किया।

यह संयंत्र भारतीय तथा रूसी इंजीनियरों, प्राविधिक विशेषज्ञों तथा उनके द्वारा प्रयोग की हुई विभिन्न आधुनिक विधियों का एक विशाल उद्योग-मन्दिर है जिसकी आधार-शिला भारत-सोवियत सहयोग के आधार पर रखी गयी है। अपिधम लौह (Pig Iron) के निर्माण के लिए यहाँ पर आधुनिकतम विधियाँ प्रयुक्त होती हैं।

यह संयंत्र रायपुर से १४ मील तथा नागपुर से १६७ मील की दूरी पर बम्बई कलकत्ता रेलमार्ग पर स्थित है। इस योजना में कुल मिलाकर १३१ करोड़ रुपया व्यय किया जायगा। योजना की पूर्ति तक इस संयंत्र से १० लाख टन इस्पात का उत्पादन हुआ करेगा, किन्तु इसका निर्माण इस प्रकार किया गया है कि विस्तार के पश्चात् इससे २५ लाख टन तक इस्पात की प्राप्ति हो सके।

इस संयंत्र के सम्बन्ध में कुछ आँकड़े नीचे दिये जा रहे हैं—

कोक भट्ठियाँ (Coke Ovens) — ३ समूहाएं (Batteries) हैं जिनमें से प्रत्येक ६५ कन्दुओं (Ovens) की है।

धमन भट्ठियाँ (Blast Furnaces) —१०३५ टन समावेशन की तीन धमन भट्ठियाँ हैं।

इस्पात द्रवणन (Steel Melting) —इसके लिए एक मिश्रक (Mixer) तथा ६ ओपन-हार्थ (Open-hearth) भट्ठियाँ हैं जिनमें से प्रत्येक का समावेशन २५० टन है।

रोलिंग मिल्स (Rolling Mills) —एक ब्लूमिंग मिल ४५.२", एक रेल तथा संरचनात्मक (Structural) मिल, एक मर्चेन्ट मिल।

शक्ति संयंत्र (Power Plant) —२४,००० किलोवाट (K. W.)

विशेषता (Special Feature) —एक संपुंजन (Sintering) संयंत्र।

भिलाई संयंत्र के उत्पादन

रेलें (Rails)		११०,००० टन
रेलमार्ग स्लीपर बार (Bars)		९०,००० टन
भारी संरचनात्मक इस्पात सेक्शन		२४०,००० टन
गोले (Rounds)	($\frac{७}{८}$"—३")	१२१,००० टन

सपाट (Flats)	(२''—८'')	१५,००० टन
पुनः रोलिंग के लिए विलेट्स		१५०,००० टन
अपिघम लौह (Pig Iron)		३००,००० टन

कच्चे पदार्थों के साधन

भिलाई संयंत्र को उत्तम प्रकार के लौह अयस्क की प्राप्ति धल्ली-रझारा से हुआ करेगी जो संयंत्र से केवल ५३ मील दूरी पर स्थित है। उच्चकोटि के इन भण्डारों में लोहे की अनुमानित मात्रा १२ करोड़ टन से भी कहीं अधिक होगी। एक रेल-मार्ग द्वारा इन खानों को भिलाई से जोड़ दिया गया है। अधोवर्ती मेंगनीज अयस्क के भण्डार बालाघाट जिले में विद्यमान हैं तथा इनकी संयंत्र से दूरी कुल १३० मील है। इस संयंत्र के लिए पानी टन्डूला जलाशय (Reservoir) तथा उससे संयुक्त गोंदली जलाशय से एक नहर द्वारा लाया जाता है। भिलाई से १८ मील दूर नन्दिनी में चूना-पत्थर के निक्षेप पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं तथा यहाँ पर इसका खनन भिलाई संयंत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए किया जाता है। इसी प्रकार बिलासपुर जिले के हर्दी क्षेत्र में उत्तम वर्ग के डोलोमाइट (Dolomite) के प्राप्त होने से इस समस्या का भी समाधान हो गया है। कोयले की पूर्ति कोरबा कोयला क्षेत्र (१५० मील दूर) द्वारा की जायगी तथा कोकिंग प्रकार का उत्तम कोयला झरिया क्षेत्र से प्राप्त होगा। कोरबा में संस्थापित तापीय विद्युत घर से ९०,००० किलोवाट विद्युत् शक्ति इस कारखाने को मिल सकेगी। भिलाई संयंत्र में निर्मित अपिघम लौह तथा इस्पात का मूल्य क्रमशः १२० रु० तथा २२० रु० होगा।

राउरकेला इस्पात संयंत्र

भिलाई संयंत्र का उद्घाटन होने से एक दिन पूर्व ही, ३ फरवरी १९५९ को भारतीय गणराज्य के माननीय राष्ट्रपतिजी ने राउरकेला इस्पात संयंत्र में एक धमन भट्ठी का उद्घाटन किया। जर्मन प्राविधिक विशेषज्ञों द्वारा दी हुई राय पर आधारित तथा भारतीय इंजीनियरों द्वारा संचालित इस संयंत्र का निर्माण-कार्य अपने नियत समय से पूर्व ही पूरा हो चुका है। इस कारखाने का निर्माण फरवरी १९५७ में प्रारंभ हुआ था तथा इसकी विशाल संरचना का काम जनवरी १९५९ में पूर्ण हो गया। इस योजना में कुल १७० करोड़ रु० व्यय किये गये।

राउरकेला दक्षिण-पूर्वी रेलमार्ग पर कलकत्ते से २५० मील की दूरी पर स्थित है। उड़ीसा में बहनेवाली दो नदियों, कोयल तथा संख पर, जो संयुक्त होकर ब्रह्माणी के नाम से पुकारी जाती हैं, यह नवीन इस्पातनगर खड़ा किया गया है। यह कुल मिलाकर १० लाख टन इस्पात उत्पन्न किया करेगा। विक्रय योग्य इस्पात ७·२ लाख टन होगा तथा इसमें प्लेटें $\frac{3}{16}$" तथा इससे ऊपर (२००,००० टन), शीटें एवम् पट्टियाँ (Hot rolled) (३००,००० टन), शीटें एवम् पट्टियाँ (Cold Rolled) (१७०,००० टन) एवम् टिन प्लेटें (५०,००० टन) सम्मिलित हैं। इस कारखाने के निम्नलिखित अवयव होंगे—

कोक भट्ठियाँ (Coke Ovens) —तीन समूहा (Batteres) जिनमें से प्रत्येक में ७० कन्दुएँ (Ovens) होंगी।

धमन भट्ठियाँ (Blast Furnaces)—तीन धमन भट्ठियाँ होंगी जिनमें से प्रत्येक का समावेशन १,००० टन होगा।

इस्पात द्रवणन (Steel Melting) —इसके लिए दो मिश्रक (Mixer), तीन एल० डी० परिवर्तक (L. D. Converters) जिनमें से प्रत्येक ४० टन का होगा; चार आधारित स्टेशनरी ओपन हार्थ भट्ठियाँ (Open-hearth Furnaces) होंगी जिनमें प्रत्येक ८० टन की होगी।

रोलिंग मिल (Rolling Mills) —एक ब्लूमिंग (Blooming) मिल तथा स्लैबिंग (Slabbing) मिल, एक हैवी प्लेट मिल, एक स्ट्रिप मिल (Continuous Strip mill) तथा एक कोल्ड रोलिंग मिल।

शक्ति संयंत्र (Power Plant) —७५,००० कि० वा० (K.W.)

विशेषता (Special Feature) —इस कारखाने से संलग्न आक्सीजन (Oxygen) संयंत्र से प्राप्त उपजात पदार्थ के रूप में जो नाइट्रोजन (Nitrogen) प्राप्त होगा उसका उपयोग खाद-निर्माण में किया जायगा।

कच्चे पदार्थों के साधन

लौह अयस्क इस कारखाने के लिए बरसू (५२ मील दूर) से प्राप्त होगा। इसका कुछ भाग नौआमंडी स्थित खानों से भी मिलेगा। कोयले की प्राप्ति बोकारो, करगाली तथा झरिया कोयला क्षेत्रों से होगी। कोयले को परिष्कृत करने के लिए यहाँ शीघ्र ही एक कोयला धोने का कारखाना खोला जायगा। चूना-पत्थर (Lime Stone) इस्पात संयंत्र से १५ मील दूर स्थित निक्षेपों से आता है। दो करोड़ रुपये की लागत से एक बाँध संख नदी के आरपार बनाया गया है जिससे इस संयंत्र तथा राउरकेला नगर की पानी की आवश्यकता पूरी की जायगी।

भविष्य—शीघ्र ही इस संयंत्र का विस्तार किया जायगा और तब इससे १३ लाख टन इस्पात उत्पन्न हो सकेगा। इस संयंत्र का आधार इस प्रकार निर्मित किया गया है ताकि विस्तार के पश्चात् इससे २० लाख टन तक इस्पात उत्पन्न किया जा सके।

दुर्गापुर इस्पात संयंत्र

भारत के औद्योगिक विकास के इतिहास में २५ फरवरी १९६० की तिथि स्मरणीय है, क्योंकि इस दिन दुर्गापुर इस्पात संयंत्र से प्रथम बार इस्पात उत्पन्न किया गया था। यह कारखाना कलकत्ते से ११० मील दूर ग्राण्ड ट्रंक रोड पर स्थित है। इस कारखाने का निर्माण भारतीय तथा ब्रिटिश इंजीनियरों के सहयोग से किया गया। इस संयंत्र के वर्तमान रूप तथा इसकी संरचना का श्रेय इंग्लैण्ड की एक फर्म 'वेलमेन स्मिथ ओवल इंजीनियरिंग कार्पोरेशन लि०, (Wellman Smith Owen Engineering Corporation Ltd.) को है, जो वहाँ की एक प्रमुख इस्पात निर्मात्री तथा इस्पात संयंत्र संस्था है। कारखाने का इस्पात बनाने वाला भाग २०० गज चौड़ा तथा आधा मील लम्बा है। इसके उत्तरी सिरे पर मिश्रक-भवन (Mixer building) तथा डि-सिल्कोनाइजिंग (Desilconizing) स्टेशन हैं।

इस संयंत्र में कुल मिलाकर ८ भट्ठियाँ हैं जिनमें से सात तो २०० टन समावेशन की तथा एक १०० टन समावेशन की है। छोटी भट्ठी में विशेष प्रकार के इस्पात का निर्माण किया जायगा जो भारतीय रेलों में उपयोग के लिए पहियों तथा धुरों के निर्माण के काम आयेंगा। इस कारखाने में प्रयुक्त विधि 'उष्ण धातु विधि' (Hot Metal Process) द्वारा इस्पात का निर्माण होगा।

उपजात तथा अन्य उत्पादन—अमोनियम सल्फेट तथा पिच क्रेसॉट (Pitch Cresote) उपजात (By-products) के रूप में मिलते हैं। एक गंधकाम्ल संयंत्र भी स्थापित किया गया है जिससे ६० टन प्रतिदिन गंधकाम्ल (Sulphuric acid) की प्राप्ति हो सकेगी। कोयला धोने के लिए एक कारखाने का निर्माण किया गया है जिसका समावेशन ३५० टन प्रति घण्टे है। यहाँ पर एक क्रूड बेन्जोल संयंत्र भी है जो ११,००० गैलन क्रूड बेन्जोल का प्रतिदिन साधन (treat) करेगा जिससे बैन्जीन जायलीन, (Xylen), मोटर स्प्रिट, नेप्था तथा अन्य रासायनिक एवम् अकार्बनिक पदार्थ उपलब्ध हो सकेंगे।

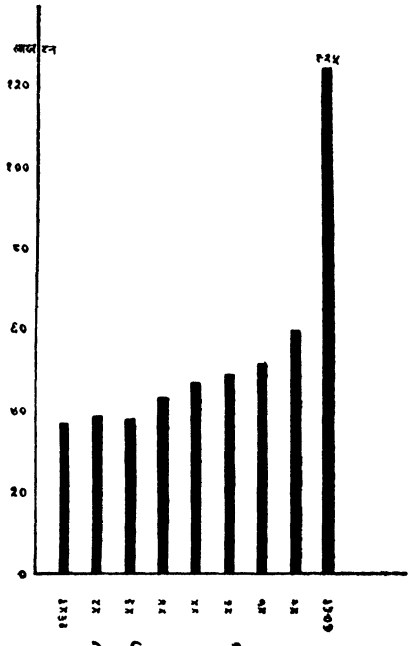

रेखाचित्र १—लौह-अयस्क उत्पादन व योजना-लक्ष्य

रोलिंग मिल संयंत्र प्रति वर्ष कम से कम ९४०,००० टन व्यंगारित (Ingor) इस्पात को विक्रय योग्य उत्पादनों में ढाल सकेगा। इस संयंत्र से १० लाख टन व्यंगारित इस्पात प्रति वर्ष निर्मित होगा तथा थोड़े से अतिरिक्त विस्तार द्वारा यह उत्पादन १५ लाख टन प्रति वर्ष तक पहुँच जायगा। इस कारखाने की आधारशिला इस प्रकार रखी गयी है ताकि पूर्ण विस्तार के पश्चात् २५ लाख टन इस्पात का उत्पादन किया जा सके। इस संयंत्र के निर्माण में १४० करोड़ रुपये तथा दुर्गापुर नगर बसाने में ३३ करोड़ रुपये व्यय किये गये हैं। इस कारखाने के कोक केन्द्र (Coke oven) संयंत्र द्वारा १५० लाख घनफुट गैस प्रति दिन उपजात के रूप में प्राप्त हो सकेगी, जिसका उपयोग प्रकाशीय कांच (Optical Glass), खनन-यन्त्रों तथा

तापरोधी उद्योगों में किया जायगा। यह कलकत्ता नगर को भी गैस का वितरण करेगा।

कच्चे पदार्थों के साधन

लौह अयस्क की प्राप्ति गुआ की खानों से की जायगी। झरिया से प्राप्त कोयले को धोने के बाद चुनकर एवं कोयले में मिलाकर प्रयोग किया जायगा। चूना-पत्थर भी समीपस्थ निक्षेपों में उपलब्ध है। दामोदर नदी, जो दुर्गापुर के दक्षिण से होकर बहती है, पानी का मुख्य साधन होगी। विद्युत की प्राप्ति दामोदर घाटी निगम (D. V. C.) के एक विद्युत-घर से, जो संयंत्र के समीप ही है, होगी।

इस्पात उद्योग के लिए अन्वेषणकार्य

देश में स्थित इस्पात संयंत्रों में स्थानीय प्रयोगशालाएँ हैं। इनके अतिरिक्त भारत सरकार ने राष्ट्रीय धातु प्रयोगशाला जमशेदपुर में स्थापित की है, जो लोहे तथा इस्पात के अनेक पहलुओं पर अन्वेषणकार्य सफलतापूर्वक कर रही है। ५ फरवरी, १९५९ को इसमें एक लो-शाफ्ट (Low Shaft) भट्ठी का प्रयोगात्मक संयंत्र स्थापित किया गया है, जो अपने प्रकार का संसार में सबसे बड़ा संयंत्र है। इसका समावेशन १५ टन प्रति दिन है तथा इसमें अ-कोकिंग (Non-Coking) कोयले की टिकियाँ (Briquettes) प्रयुक्त की जाती हैं। ऐसी आशा की जाती है कि भारतीय लौह अयस्क तथा कोकिंग कोयले की असंतुलित स्थितियों के कारण उत्पन्न कठिनाइयों का, जिनके कारण इस्पात उद्योग के विकास में एक बड़ी बाधा पड़ गयी है, समाधान भविष्य में सरलता से हो जायगा एवम् कम मूल्य पर ही लोहा तथा इस्पात का उत्पादन सम्भव हो सकेगा। यही नहीं, वरन् लोहे का उत्पादन उन स्थानों में भी किया जा सकेगा जहाँ इस कार्य के लिए कोई बड़ा संयंत्र नहीं लग सकता।

उत्पादन

सन् १९५७ तथा १९५८ में सम्पूर्ण देश का लौह अयस्क का उत्पादन इस प्रकार था—

राज्य	१९५७ मात्रा (मैट्रिक टन)	१९५७ मूल्य (रु०, ०००)	१९५८ मात्रा (मैट्रिक टन)	१९५८ मूल्य (रु०, ०००)
आन्ध्रप्रदेश	२७१,५९२	३,५९६	२०९,५०८	१,८९७
बिहार	१,९६५,७६३	१५,१९०	२,२६१,८५१	१७,८४१
बम्बई	१२३,५४०	१,६९०	१४६,२४८	२,०६५
मध्यप्रदेश	३१,३३४	२४२	२३३,९५९	१,९६१
मैसूर	५९०,९८९	२,२११	९७१,५६९	३,६७१
उड़ीसा	२,०८७,८९६	१९,५८२	२,१९७,२९७	१९,९४०
पंजाब	२१,८०१	२१५	१६,९०३	१६६
राजस्थान	७३,८६३	७४२	९२,३७१	९५०
योग	५,१६६,७७८	४३,४६८	६,१२९,७०६	४८,४९१

इन्हीं दो वर्षों में अपिधम लौह का उत्पादन क्रमशः १,९३२,००० तथा २,१०९,००० मैट्रिक टन था।

समापित इस्पात का उत्पादन

उत्पादक	१९५७ मात्रा (मैट्रिक टन)	१९५८ मात्रा (मैट्रिक टन)
टाटा आयरन एण्ड स्टील कं०	५३०,०००	४७७,०००
इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं०	३१५,०००	३०४,०००
मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स	३४,०००	३६,०००
गौण उत्पादक	२०९,०००	१९७,०००
रजिस्टर्ड उत्पादक	२१५,०००	२१८,०००
अनरजिस्टर्ड उत्पादक	६५,०००	८८,०००
योग	१,३६८,०००	१,३२०,०००

निर्यात—सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने क्रमशः २,२५१,२९१ तथा १,८९६,२०३ मैट्रिक टन अयस्क का निर्यात किया, जिसका मूल्य क्रमशः ११७,-

६०४,००० तथा ९९,९४१,००० रु० हुआ। आयात करनेवाले प्रमुख देश जापान, चैकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, इटली तथा पोलैण्ड हैं।

मेंगनीज (Manganese)

मेंगनीज वर्तमान युग की उन प्रमुख धातुओं में है जिन पर अनेक विशाल उद्योग आश्रित हैं। यह केवल इसलिए ही महत्त्व की धातु नहीं है क्योंकि इसको उच्च-मेंगनीज इस्पातों में प्रयोग किया जाता है, वरन् सभी प्रकार के कार्बन तथा अन्य इस्पातों में भी इसका स्थान अन्य धातुएँ नहीं ले सकतीं। अनुमान किया जाता है कि प्रति टन इस्पात-उत्पादन के लिए १३-१५ पौण्ड तक मेंगनीज की आवश्यकता होती है।

मेंगनीज प्रकृति में धातविक रूप में नहीं मिलता, अपितु आक्साइड कार्बोनेट तथा सिलीकेट के रूप में प्राप्त होता है। पृथ्वी के मुख्य अवयव तत्त्वों में इसका पन्द्रहवाँ स्थान है यद्यपि पृथ्वी की पर्पटी (Crust) की संरचना में इसका भाग ०·१०% से भी कुछ कम ही है।

मेंगनीज के उपयोग

मेंगनीज के प्रारंभिक आर्थिक उपयोगों में लौह अयस्क विद्रावण (Iron Ore Smelting) तथा काँच के कार्य मुख्य थे। गत शताब्दी के अन्तिम भाग में इस्पात उद्योग के विकास तथा उसमें नवीन कार्य-पद्धतियों के संचालन के कारण मेंगनीज अयस्क की माँग में पर्याप्त वृद्धि हुई है और इधर कुछ वर्षों से इसका उत्पादन ९० लाख टन से भी अधिक होने लगा है।

व्यावहारिक रूप से सभी इस्पातों में मेंगनीज रहता है तथा इसका अनुपात ·५% के इधर-उधर होता है। मेंगनीज का इस्पात उत्पादन में या तो प्रत्यक्ष मिश्रातु-निक्षेप (Direct charge) अथवा अयो-लौहक (Ferro-Manganese) के रूप में उपयोग किया जाता है। इसका कार्य या तो विजारण (Deoxidization) अथवा विशुल्वारीयण (Desulphurisation) की क्रियाएँ करना है। इसकी खपत कुल इस्पात उत्पादन का लगभग १·२५% होती है। उच्च-आतन्य संरचनात्मक इस्पातों (याने High Tensile Structural Steel) में मेंगनीज की मात्रा १·३–१.६% तथा रेल इस्पात में ०·९–१.२% तक होती है। मेंगनीज इस्पातों में १२–१३% धातु रहती है। अचुम्बकीय

(Non-Magnetic) होने के साथ ही मेंगनीज-इस्पात अत्यधिक कठोर तथा दृढ (Tough) होता है, जिससे इसका उपयोग अनेक प्रकार के खनन, पेषण, खुदाई के यन्त्रों, युद्ध-सामग्री तथा वायुयानों आदि में होता है। अनेकों मिश्र-धातवीय-इस्पातों (Alloy-Steels) में भी मेंगनीज का प्रयोग क्रोमियम, निकल तथा मोलिब्डिनम के साथ किया जाता है। ४-५% तक मेंगनीज धातु ताँबे से मिलकर उपयोगी मिश्र-धातुएँ निर्मित करती है, जिनके अनेकों उपयोग हैं। टर्बाइन ब्लेड्स (Turbine Blades) इसी के द्वारा बनाये जाते हैं। मेंगनीज-काँसा (Manganese Bronze) उत्तम प्रकार का पीतल है जो पर्याप्त कठोर तथा शक्तिशाली होने के साथ ही संक्षारण-प्रतिरोधी (Corrosion resistant) होता है तथा जलयानों (Ships) के प्रोपेलरों (Propellers) के निर्माण में इसका उपयोग किया जाता है। एल्यूमीनियम के साथ ८-१२% मेंगनीज धातु द्वारा निर्मित विद्युत-तारों का प्रतिरोधक के रूप में प्रयोग किया जाता है। एल्यूमीनियम तथा मेंगनीज की मिश्र-धातुओं के अन्य अनेकों उपयोग हैं जिनमें अनेक प्रकार के वायुयानों का निर्माण, मोटर गाड़ियों तथा रेल गाड़ियों के डब्बों एवं हवाई टैंकों (Aircraft Tanks) की संरचना आदि प्रमुख हैं। इस प्रकार अनेकों भारी उद्योगों में तथा विशेष मिश्र-धातुओं के उत्पादन में विशाल स्तर पर इसका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार मेंगनीज की कुल खपत का लगभग ९५% भाग केवल धातु-निर्माण (Metallurgical) कार्यों में प्रयुक्त होता है, जिसमें अधिकांश भाग इस्पात उद्योग में तथा केवल आंशिक भाग अन्य मिश्र-धातुओं के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है।

इसके अधातविक (Non-Metallurgical) उपयोग कुछ कम महत्त्व के हैं। यह मुख्य रूप से ड्राई बैटरी निर्माण, काँच बनाने, मृच्छिल्प (Ceramic) एवम् रासायनिक उद्योगों में प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त लेपों (Paints), पिग-मैन्टों (Pigments), रंगों (Dyes) तथा खाद-निर्माण (Fertilizers) में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

उत्पादन व वितरण

सम्पूर्ण संसार में मेंगनीज अयस्क का कुल वार्षिक उत्पादन ४०–५० लाख टन है जिसमें रूस लगभग आधा भाग उत्पन्न करता है तथा शेष भारत, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील, घना, क्यूबा, मोरक्को, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान से

आता है। अल्प मात्रा में मेंगनीज अयस्क आस्ट्रिया, चीन, चैकोस्लोवाकिया, नेदरलैण्ड इण्डीज, हंगरी, इटली, मलाया, फिलीपीन, रूमानिया, चिली, मैक्सिको, उत्तरी अफ्रीका तथा मिस्र से भी मिलता है।

विश्व की मेंगनीज-माँग में वृद्धि और भारतीय मेंगनीज उद्योग

कोयले के पश्चात् मेंगनीज अयस्क ही भारत का प्रमुख खनिज है। सारे देश में अभी तक केवल चुने हुए अयस्क का ही खनन होता था तथा विदेशों को हाथों से चुने हुए उच्च वर्ग के अयस्क का ही निर्यात किया जाता था यद्यपि आंशिक भाग का भारत में भी कुछ इस्पात-उत्पादक उपयोग करते थे। इस प्रवत्य-खनन (Selective Mining) के परिणामस्वरूप अधोवर्ग का अयस्क (Low-Grade Ore) विशाल राशि में पृथ्वी के गर्त में पड़ा हुआ है।

गत शताब्दी के अर्द्ध भाग तक सभी कार्यों के लिए मेंगनीज अयस्क की माँग अत्यन्त सीमित थी, किन्तु सन् १८५६ में बेसेम्बर (Bessember) इस्पात विधि के प्रथम बार प्रकाशित होने के पश्चात् विश्व-इस्पात-उत्पादन अनवरत वृद्धि पर है। यहाँ तक कि १९५३ का कुल उत्पादन २५ करोड़ टन से भी अधिक हो गया तथा उत्पादन की दर अर्द्धशताब्दी पूर्व की दर से ५० गुनी अधिक हो गयी।

इस्पात उद्योग में विशाल वृद्धि होने के साथ ही समान रूप से मेंगनीज उत्पादन में भी वृद्धि हुई जिससे कि मेंगनीज की बढ़ी हुई माँग की पूर्ति की जा सके। परिणामस्वरूप विश्व का मेंगनीज उत्पादन जो सन् १८९२ में केवल ४ लाख टन था एक करोड़ टन तक पहुँच गया और सन् १९५२ में इसमें ३०% और भी अधिक वृद्धि हुई।

भारत जो प्रथम विश्वयुद्ध तक रूस के अत्यन्त समीप ही दूसरा स्थान रखता था, रूस के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से पृथक् हो जाने के कारण मेंगनीज अयस्क उत्पादन में प्रथम हो गया है, फिर भी समय-समय पर पश्चिमी और दक्षिणी अफ्रीका से भारत को चुनौती मिलती रहती है।

भारत में आज से ६० वर्ष से भी अधिक पूर्व जब मेंगनीज अयस्क उद्योग प्रारंभ हुआ, मेंगनीज का उत्पादन और इस उद्योग का विकास मुख्य रूप से विश्व इस्पात उत्पादन पर प्रसीमित रहा। इसकी माँग में विविधता का एकमात्र कारण इस्पात उत्पादन में उच्चावचन (Fluctuation) ही रहा। सन् १९५० से ५३ तक मेंगनीज की माँग में विशाल स्तर पर वृद्धि हुई तथा ऊँचे मूल्य होने के कारण

मेंगनीज का उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहा। भारत में सन् १९५३ में मेंगनीज अयस्क का उत्पादन १९०२२३८ टन बताया जाता है।

भारत में मेंगनीज-खनन उद्योग का विकास

भारत में सन् १८९१-९२ में विजगापट्टम के समीप मेंगनीज का खनन प्रारंभ हुआ। सन् १९०५ में उत्पादन ६३००० टन था जो १९०६ में बढ़कर ११०,००० टन से भी अधिक हो गया।

सन् १८९९ में डब्ल्यू० एच० क्लार्क (W. H. Clark) तथा हार्वे डॉड (Harvey Dodd) के पूर्वेक्षण (Prospecting) ने मध्य प्रदेश के विश्व प्रसिद्ध निक्षेपों की ओर ध्यान आकृष्ट किया और इस नवीन क्षेत्र में उत्पादन द्रुत गति से बढ़ा। सन् १९०५ में इस क्षेत्र का उत्पादन १५१००० टन तथा १९०६ में बढ़कर ३५२००० टन हो गया।

सन् १९०६ तक खनन-कार्य सान्दूर, सिंहभूम पंचमहल तथा मैसूर में भी प्रगति पर था। इस प्रकार इस समय तक भारत के लगभग सभी मुख्य निक्षेपों से उत्पादन प्रारंभ होकर कुल उत्पादन ५७९००० टन तक पहुँचा जब कि विश्व का कुल उत्पादन १४४५००० टन था। १९०७ में ९०२२९१ टन अयस्क उत्पन्न कर भारत ने रूस का स्थान ले लिया और सन् १९१२ तक यह देश विश्व का सर्वप्रथम उत्पादक रहा।

सन् १९१९–२३ तक औसतन ६२४६३५ टन अयस्क निर्यात कर भारत ने पुनः प्रथम स्थान पा लिया। १९२७ में उत्पादन चोटी पर पहुँच गया और उस वर्ष ११२९३५३ टन अयस्क उत्पन्न किया गया।

सन् १९२९-३३ में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सामने आये। भारत का उत्पादन ४१·४% घट गया और रूस ने एक बार फिर से प्रथम स्थान हमसे छीन लिया। इस समय मेंगनीज के विश्व-व्यापार में दक्षिणी अफ्रीका ने भी भारत के प्रतियोगी के रूप में अपना कदम आगे बढ़ाया।

सन् १९३४-३८ के समय में इस उद्योग की दशा कुछ सुधरी तथा १९३७ में ११५१८३४ टन अयस्क का निर्यात किया गया जो भारत के लिए ही नहीं, अपितु विश्व के लिए भी एक रिकार्ड है। द्वितीय विश्वयुद्ध का इस उद्योग पर कोई प्रभाव सन् १९४३ तक नहीं हुआ, किन्तु १९४३-४६ के मध्य जहाजरानी (Shipping) के अभाव तथा देश में भी यातायात के साधनों में कमी के कारण इस उद्योग को

भारी क्षति पहुँची तथा मेंगनीज का औसत उत्पादन केवल २७८१६० टन ही रह गया।

सन् १९५०ँ में एक बार पुनः इस उद्योग को बल मिला तथा इस समय तक के उत्पादनों में एक नवीन रिकार्ड १२८३९२९ टन अयस्क उत्पन्न करके स्थापित किया गया। इसके पश्चात् सन् १९५३ में उत्पादन एक बार पुनः चोटी पर पहुँचा तथा १९५७ तक उत्पादन में न तो कोई विशेष वृद्धि हुई और न कोई कमी ही। केवल विश्व-माँग के अनुसार उच्चावचन (Fluctuation) अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

भारत में मेंगनीज अयस्क का वितरण

मेंगनीज के अयस्क का केवल दो दशाओं में ही वाणिज्य-स्तर पर उपयोग किया जा सकता है। प्रथम तो जिस खनिज से मेंगनीज की प्राप्ति करनी है उसमें मेंगनीज तत्त्व की मात्रा पर्याप्त हो तथा दूसरे ये खनिज भी स्वयं उन विशाल अयस्क राशियों में उपलब्ध हों जिन्हें कम व्यय पर खनित किया जा सके। इस प्रकार के मेंगनीज अयस्क सायलोमेलीन (Psilomelane), पायरोलूसाइट (Pyrolusite), ब्राऊनाइट (Braunite) वाड (Wad), हॉलेण्डाइट (Hollandite), सीतापराइट (Sitaparite), हाउसमेनाइट (Hausmainite) मेंगेनाइट (Manganite), रोडोक्रोसाइट (Rhodochrosite), रोडोनाइट (Rhodonite) तथा जेकोब्साइट (Jacobsite) आदि हैं। इन सभी खनिजों में रोडोक्रोसाइट तथा पायरोलूसाइट का बाहुल्य है। विशेषकर भारत का वाणिज्य-अयस्क ब्राऊनाइट तथा सायलोमेलीन का मिश्रण है। ब्राऊनाइट मेंगनीज का सिलीकेट है। सायलोमेलीन मेंगनीज का कलिलीय (Colloidal) रूप समझा जाता है जिसमें मेंगनीज ४५-६०% तक हो सकता है। इसमें प्रचूषित जल (Absorbed Water), सोडियम, पोटेशियम तथा बेरियम के आक्साइड भी आयोजित (Associated) रहते हैं। पायरोलूसाइट मेंगनीज का ऑक्साइड है।

सर लेविस फर्मर (Sir Lewis Fermor) ने भारतीय मेंगनीज-अयस्क-निक्षेपों का तीन भागों में वर्गीकरण किया है। प्रथम तो वे निक्षेप जो प्राचीन आर्कियन (Archaeon) शिलाओं के साथ अन्तरस्तरित (Interbedded) हैं तथा जिनमें गोन्डाइट (Gondites) भी सम्मिलित हैं। ये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा मुख्य रूप से बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, बम्बई तथा मैसूर आदि में प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त जो निक्षेप विशेष रूप से गोण्डाइट के साहचर्य

में प्राप्त होते हैं उनके प्राप्ति-स्थान बालाघाट, भण्डारा, छिन्दवाड़ा तथा झबुआ (म० प्र०); नागपुर पंचमहल व नारूकोट (बम्बई), तथा गगपुर (उड़ीसा) में ही सीमित हैं। दूसरे वे निक्षेप हैं जो कोड्यूराइट (Kodurite) शिलाओं के साहचर्य में मिलते हैं। ये निक्षेप आन्ध्रप्रदेश के श्रीकाकुलम् जिले में तथा उड़ीसा के गंजम तथा कोरापुट जिलों में विद्यमान हैं। इसी तरह तीसरे प्रकार के निक्षेप इष्टकिजित वर्ग (Laterite) के हैं तथा अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं जिनमें, बिहार में सिंहभूम, उड़ीसा में किओनझर, बोनाई तथा बोलगिर-पटना, बम्बई में उत्तरी कनारा तथा बेलगाँव जिले, मैसूर में सान्दूर (बेलारी), चितालद्रुग, चिकमगालुर, शिमोगा तथा टुमकुर जिले आदि मुख्य हैं।

नागपुर-बालाघाट क्षेत्र के अयस्क भंडार (Ore-bodies) वीक्ष-रूप (Lenticular) में क्वार्टजाइट, शिष्टों तथा नाइसों (Gneisses) के साथ प्राप्त होते हैं। कभी-कभी इनका आकार पर्याप्त विशाल हो जाता है। नागपुर जिले में ही ये भंडार १२ मील तक डुमरी कलाँ से खंडाला तक फैले हुए हैं। इस क्षेत्र में बेलडोंगरी, लोहडोंगरी, कछारवली तथा वारेगाँव नामक स्थानों में कई महत्त्वपूर्ण निक्षेप विद्यमान हैं। नागपुर जिले में ही एक अन्य महत्त्वपूर्ण निक्षेप मानेगाँव में है जो १½ मील लम्बा है। बालाघाट निक्षेप कोई १¾ मील लम्बा है तथा अन्य निक्षेपों की एक पट्टी (Band) जो जमरापानी, तिरोडी तथा पोनिया से होकर जाती है, लगातार लगभग ६ मील तक देखी गयी है। इनके अतिरिक्त चिक्कला (बन्धरा में), कान्डरी तथा मनसर (नागपुर) एवम् काछी धाना (छिन्दवाड़ा) के निक्षेप भी महत्त्वपूर्ण हैं।

दूसरे वर्ग के मेंगनीज अयस्क जो कोड्यूराइट के साहचर्य में प्राप्त होते हैं, ये मणिभित (Crystalline) आर्कियन के साथ आयोजित रहते हैं। इनकी अयस्क-राशियाँ प्रायः अनियमित आकार की होती हैं यद्यपि कभी-कभी नियमित राशियाँ भी देखी गयी हैं। कोड्यूर स्थित मेंगनीज निक्षेप, जो इसी वर्ग में सम्मिलित हैं, भारत में सर्वप्रथम खनित हुए थे। यहाँ पर प्राप्त अयस्क प्रायः साइलोमेलीन है यद्यपि कुछ अंशों में पायरोलूसाइट तथा ब्राउनाइट भी विद्यमान है।

इष्टकिजित निक्षेप मुख्य रूप से द्वितीयक तलीय-संवर्द्धन (Secondary surface enrichments) हैं जो प्रायः धारवार युग की शिलाओं पर प्राप्त होते हैं। इन अयस्कों में लोहे की प्रतिशत मात्रा प्रायः पर्याप्त अधिक होती है एवम् ये लौहमय-मेंगनीज अयस्क से मैग्नीजमय-लौह अयस्क में परिवर्तित होते

प्रतीत होते हैं। इन अयस्कों के मेंगनीज खनिज मुख्यतः पायरोलूसाइट, सायलोमेलीन तथा वाड (Wad) हैं। इनका खनन मुख्य रूप से मैसूर के बेलारी जिले में होता है।

प्रतिस्थापित निक्षेप (Replacement deposits) जो प्रायः इस प्रकार के अनियमित लेटराइटिक (Lateritic) निक्षेपों के नीचे मिलते हैं, किओनझर जिले के धुबना तथा जामपानी नामक स्थानों पर विद्यमान हैं। इसी प्रकार कालाहाँडी जिले के लिलीगुम्मा निक्षेप भी घटिया हैं तथा खोण्डालाइट (Khondalite) व हायपर्सथीन-मय (Hypirsthene bearing) शिलाओं के साथ आयोजित हैं। काशीपुर क्षेत्र का अयस्क अपेक्षाकृत अधिक उत्तम है। आन्ध्र प्रदेश के कुर्नूल जिले में जानापालाचेरुवु के समीप कुमबम जम्बशिलाओं (Cumbum Shales) में भी सायलोमेलीन पट्टिकाओं (Veins) तथा लघु तालों (Lenses) के रूप में प्राप्त होता है। इसी प्रकार गोआ में भी मेंगनीज के कुछ अयस्क मेंगनीज-मय तथा लोहस (Ferruginous) जम्बशिलाओं में मिलते हैं। लेटराइट-निर्माण (Laterization) के द्वारा ये अयस्क और भी समृद्ध हो गये है।

भारतीय मेंगनीज अयस्कों में से जिनमें मेंगनीज की मात्रा ४८ प्रतिशत से अधिक होती है वे प्रथम वर्ग में गिने जाते हैं। इसी प्रकार ४५ से ४८ प्रतिशत तक के अयस्कों को द्वितीय वर्ग (Second grade) में रखा जाता है तथा तृतीय वर्ग के अयस्क वे हैं जिनमें मेंगनीज की मात्रा ४५ प्रतिशत से भी कम होती है। बिहार में यह वर्गीकरण लागू नहीं होता तथा ४८ प्रतिशत मेंगनीज से कम मेंगनीज वाले अयस्क द्वितीय वर्ग में ही गिने तथा विक्रय किये जाते हैं।

मेंगनीज अयस्क का खनन (Mining)

भारत के सभी प्रमुख मेंगनीज उत्पादन केन्द्रों में अयस्क का खनन खुले हुए गड्ढों (Open Cut) के रूप में किया जाता है। भूमिगत (Underground) खनन-विधियाँ केवल बालाघाट की कुछ खानों में प्रयुक्त की गयी हैं क्योंकि उक्त विधियाँ वहाँ की खानों के लिए उपयोगी तथा व्यावहारिक नहीं है। खुली हुई खनियों (Quarries) से मेंगनीज अयस्क निकालने के पूर्व अयस्क निक्षेपों के ऊपर स्थित शिलाओं तथा मिट्टी आदि को हटाया जाता है और फिर नियमित रूप से अयस्क की खुदाई की जाती है। ये खनियाँ विभिन्न गहराइयों की होती हैं जिनमें से कुछ तो भूमि-तल अथवा पर्वत-शृंखला के ऊपरी भाग में ही

स्थिर हैं तथा कुछ पर्याप्त गहरी होती हैं। व्यावहारिक रूप से इन अयस्कों के निकालने में यांत्रिक विधियों का उपयोग प्रायः नहीं किया जाता है तथा अब भी केवल हाथ से ही अयस्क को चुनने की पुरानी विधियाँ लगभग सभी जगहों पर प्रचलित हैं। जब कभी आवश्यकता अनुभव की जाती है तो व्यधन (Drilling) क्रिया का भी अवश्य प्रयोग किया जाता है।

अयस्क-संकेन्द्रण एवम् संस्करण (Ore Concentration and Beneficiation)

खानों पर ही हाथ से चुनने तथा अयस्कों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का अयस्क-संकेन्द्रण अथवा संस्करण (Beneficiation) पिछले कुछ वर्षों तक प्रचलित नहीं था। सम्पूर्ण देश में मेंगनीज अयस्क केवल इसी आधार पर खनित किये जाते थे कि हाथों द्वारा चुने हुए उत्तम वर्ग के अयस्क का विदेशों को निर्यात किया जाय, यद्यपि इसका एक लघु अंश भारत के इस्पात-निर्माता भी प्रयोग करते थे। इसका फल यह हुआ कि विशाल मात्रा में (घटिया) अधोवर्ती अयस्क के ढेर के ढेर खानों के बाहर इक्ट्ठे हो गये। प्रथम तो ये ढेर स्वयं में ही इस उद्योग के लिए एक समस्या बन गये तथा दूसरे देश की आर्थिक स्थिति पर दृष्टि रखते हुए ओर देश के अन्तर्गत सभी उपलब्ध साधनों के पूर्ण उपयोग एवं मेंगनीज-जैसी महत्त्वपूर्ण धातुओं के अयस्कों के संरक्षण (Conservation) को ध्यान में रखते हुए यह अनुभव किया गया कि मेंगनीज के घटिया अयस्कों का उपयोग संकेन्द्रण (Concentration) तथा संस्करण (Beneficiation) के पश्चात् अवश्य ही किया जाना चाहिए। धीरे-धीरे इस ओर पर्याप्त प्रगति के लक्षण दृष्टिगोचर हुए और अब कई खानों में या तो संकेन्द्रण संयंत्र स्थापित हो चुके हैं अथवा हो रहे हैं।

मेंगनीज अयस्क के संकेन्द्रण के लिए प्रथम आधुनिक संयंत्र सन् १९५४ में सी० पी० मेंगनीज ओर कं० लि० ने अपनी डोंगरी बुजुर्ग की खान में स्थापित किया था। इस संयंत्र में स्थूल-माध्यम पृथक्करण (Heavy-Media Separation) द्वारा ७५ टन अयस्क प्रति घंटे साधित (Treat) किया जाता है जिसका आकार ५'' से $\frac{1}{2}$'' तक होता है। ऐसी सूचना मिली है कि यही कम्पनी किसी अन्य क्षेत्र में सैकजीय प्लावित अयस्क (Silicious Float Ore) को संकेन्द्रित करने के लिए एक संयंत्र शीघ्र ही स्थापित करने की योजना बना रही है। जमशेदपुर स्थित राष्ट्रीय धातु-विज्ञान प्रयोगशाला में भी मेंगनीज अयस्कों के विशुद्धीकरण, संकेन्द्रण

तथा संवर्द्धन पर पर्याप्त अन्वेषण-कार्य किया जा रहा है तथा अशुद्धियों (Impurities) के अनुपात के अनुसार अयस्कों को वर्गीकृत करके उनको संकेन्द्रित करने की विधियों पर अनेक सुझाव दिये गये हैं। बालाघाट के समीप एक संस्करण संयंत्र प्रतिष्ठापित करने की योजना शीघ्र ही क्रियान्वित की जायगी।

फेरो-मेंगनीज (Ferro-Manganese)

आज से अर्द्ध शताब्दी पूर्व श्री लेविस फरमर ने कहा था कि "भारत में फेरो-मेंगनीज-निर्माण पर्याप्त लाभदायक तथा आशान्वित प्रतीत होता है।" कुछ ही वर्ष

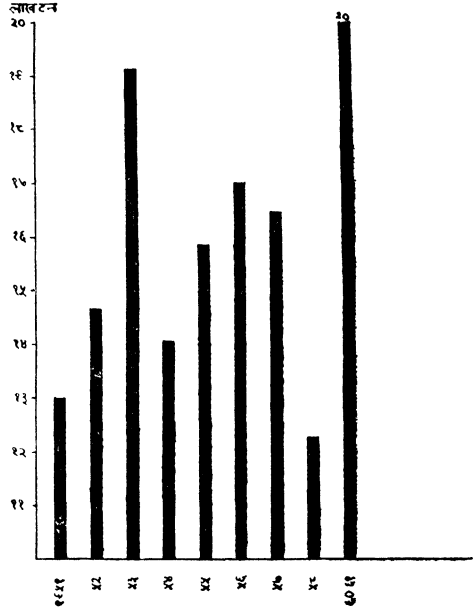

रेखाचित्र २—मेंगनीज-अयस्क उत्पादन व योजना-लक्ष्य

बाद कुछ इस्पात-उत्पादक कारखानों में इसका उत्पादन प्रारंभ हो गया, किन्तु लघु-स्तर पर। वैसे तो भारत में मेंगनीज लोहे तथा कोयले के भण्डार इतने प्रचुर हैं

कि सरलता से ही पर्याप्त लाभ उठाकर फेरो-मेंगनीज का निर्माण तथा व्यापार ऊँचे स्तर पर किया जा सकता है, फिर भी अभी तक इस दिशा में उन्नति संतोषजनक नहीं है। प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों हैं? अधिकांश में इसका एक ही उत्तर दिया जाता है कि भारतीय कोक (Coke) व मेंगनीज अयस्कों में फास्फोरस (Phosphorus) की मात्रा अधिक है। किन्तु यदि मध्यप्रदेश से मेंगनीज अयस्क तथा गिरीडीह कोयला क्षेत्र से कोयला लिया जाय तो फास्फोरस के आधिक्य की समस्या सरलता से सुलझ सकती है। इधर कुछ इस्पात-उत्पादन संयंत्रों से फेरो-मेंगनीज का अधिक मात्रा में निर्माण करने पर बल दिया गया है। फेरो-मेंगनीज के उत्पादन के लिए एक संयंत्र ११७ लाख रुपए की लागत से उड़ीसा के कियोनझर जिले में जोदा नामक स्थान पर स्थापित किया गया है जिसने २० अप्रैल, सन् १९५८ को कार्य करना प्रारंभ कर दिया है। इस संयंत्र का समावेशन ३६,००० टन प्रतिवर्ष है। सन् १९६०-६१ के अन्त तक द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत चार नये कारखाने स्थापित हो जायेंगे जो फेरो-मेंगनीज का उत्पादन करेंगे। भारत में निर्मित फेरो-मेंगनीज अब विदेशों को निर्यात किया जाने लगा है जिसमें अमेरिका प्रमुख देश है।

वर्तमान मेंगनीज-उद्योग तथा भविष्य

सन् १९५४ में रूस के विश्व-व्यापार (World Market) में पुनः प्रवेश होने से भारतीय मेंगनीज का उत्पादन कुछ कम हो गया था, किन्तु तब से धीरे-धीरे इस ओर फिर से प्रगति हो रही है। कुछ विशेष कारणों से सन् १९५८ में भी उत्पादन कम हो गया था। पिछले कुछ वर्षों का उत्पादन निम्न प्रकार है।

वर्ष	उत्पादन (टनों में)	मूल्य (रुपयों में)
१९५३	१,९०२,२३८	२९,४८,४६,८९०
१९५४	१,४१३,०६८	१९,५४,१७,०००
१९५५	१,५८३,५३८	१०,८१,५४,०००
१९५६	१,६८६,६०९	१२,९७,५७,०००
१९५७	१,६०२,०००	१४,०५,४९,०००
१९५८	१,२३०,०००	

इसी प्रकार गत कुछ वर्षों में मेंगनीज के निर्यात से जो विनिमय-मुद्रा प्राप्त हुई है वह इस प्रकार है—

वर्ष	रुपये (विनिमय मुद्रा)
१९५५-५६	१६·६८ करोड़
१९५६-५७	२५·८१ ,,
१९५७-५८	२८·६१ ,,
१९५८-५९ के पहले तीन महीने	३·४७ ,,

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक मेंगनीज अयस्क का उत्पादन लक्ष्य २० लाख टन है।

यह तो सर्वविदित है कि भारत में उत्पन्न मेंगनीज अयस्कों के एक बड़े भाग का निर्यात विदेशों को होता है तथा इस प्रकार इसका व्यापार विश्व-इस्पात तथा लौह उद्योग की आवश्यकताओं पर आश्रित है। विदेशी ग्राहकों की प्रथम श्रेणी के मेंगनीज अयस्क की माँग को देखते हुए अभी तक मेंगनीज के संरक्षण (Conservation) पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था, किन्तु गत कुछ वर्षों से भारत सरकार ने विभिन्न श्रेणी के मेंगनीज अयस्कों के निर्यात की मात्रा पर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये हैं। निश्चित है कि इसके प्रतिक्रियास्वरूप कच्चे मेंगनीज अयस्कों के उत्पादन में कमी अवश्य आयेगी, किन्तु देश में बढ़ते हुए इस्पात-उत्पादन तथा दुर्गापुर, भिलाई और राउरकेला के नवीन इस्पात-केन्द्रों के प्रारंभ होने तथा कई फेरो-मेंगनीज कारखाने स्थापित होने से गिरे हुए उत्पादन को उठाया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त घटिया मेंगनीज अयस्कों को, जिनके विपुल भण्डार प्राप्त हैं, उपयुक्त विधियों तथा साधनों द्वारा संकेन्द्रित कर उच्च श्रेणी के अयस्क के संरक्षण की ओर नवीन प्रगति करने का मार्ग खुल जायगा।

मेंगनीज के कुल भण्डार (Total Reserves)

विगत वर्षों में किये गये सर्वेक्षण के आधार पर अनुमान किया गया है कि भण्डारा और बालाघाट जिलों के निक्षेपों में प्रायः ८०० फुट की गहराई तक लगभग १० करोड़ टन मेंगनीज खनिज संचित है। इसमें से लगभग आधी खनिज-राशि ऐसे उत्तम वर्ग की है जिसमें मेंगनीज धातु का अंश ४५ प्रतिशत से भी अधिक होगा। देश के अन्य मेंगनीज उत्पादक क्षेत्रों के संचित भण्डारों की मात्रा अभी आँकी नहीं गयी है। मोटे तौर पर ऐसा अनुमान है कि उड़ीसा क्षेत्र में लगभग एक करोड़ टन तथा आन्ध्र प्रदेश और मैसूर में २५ लाख टन खनिज उपलब्ध होगा।

निकल (Nickel)

आज के युग में यन्त्रों के अधिकाधिक उपयोग के साथ ही साथ लोहे तथा अन्य धातुओं एवं अनेकानेक मिश्रधातुओं के प्रयोग में भी अपूर्व वृद्धि हुई है। यन्त्रों के निर्माण में लोहे तथा उसके मेल से बनी धातुओं का उपयोग सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण है। इन फेरो-मिश्रधातुओं (Ferro-alloys) के निर्माण में मेंगनीज के पश्चात् दूसरे स्थान पर निकल ही आता है। दुर्भाग्य की बात है कि भारत में जहाँ इस्पात उत्पादन के लिए सभी आवश्यक पदार्थ उपलब्ध हैं वहाँ निकल-जैसी महत्त्वपूर्ण धातुओं का पूर्ण अभाव है जिनसे विशेष प्रकार के इस्पातों को बनाया जा सके। इस महत्त्वपूर्ण धातु की प्राप्ति के लिए हमें प्रतिवर्ष लाखों रुपये विनिमय-मुद्रा-कोष से व्यय करने पड़ते हैं तथा देश में प्रयुक्त सारी धातु का आयात करना पड़ता है।

उपयोग

फेरो-मिश्रधातुओं के निर्माण में उपयोगी होने के साथ ही निकल के अन्य भी कई उपयोग हैं। मुख्यतः इसको निकल-इस्पात तथा निकल-कास्ट-लौह के निर्माण में व्यवहृत किया जाता है। इस प्रकार निर्मित इस्पात तथा लोहा दृढ़, शक्तिशाली और अपेक्षाकृत हलका रहता है। यह उनकी कठोरता भी पर्याप्त अंशों तक बढ़ा देता है। इसके अतिरिक्त निकल कुछ अन्य धातुओं, उदाहरणार्थ ताँबा, क्रोमियम, एल्यूमीनियम, सीसा, चाँदी, मेंगनीज तथा कोबाल्ट आदि के साथ मिलकर भी अनेक मिश्रधातुएँ बनाता है। इस प्रकार निर्मित मिश्रधातुओं के भी विविध उपयोग हैं। फेरो-निकल मिश्रधातुओं के गुण उनमें निकल की मात्रा के अनुसार ही बदलते रहते हैं। इस प्रकार इन मिश्रधातुओं के वैद्युतिक, चुम्बकीय तथा तापीय गुणों के कारण इनको अनेक यन्त्रों, टूल्स, शाफ़्ट्स-बोल्ट्स, धुरी, गियरों, मोटर गाड़ियों, वायु तथा जलयानों, रेलगाड़ियों, शक्ति-उत्पादन यन्त्रों, कृषि सम्बन्धी यन्त्रों, चूर्णन यन्त्रों, खनन, पेषण तथा दाबयन्त्रों आदि में प्रयोग करते हैं। भारत सहित अनेक देश विशाल स्तर पर सिक्कों के निर्माण में निकल का व्यवहार करते हैं। अनेक वस्तुओं पर निकल की परत चढ़ाने (Electroplating) के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। निकल के अनेक लवणों को रासायनिक उद्योगों तथा वानस्पतिक तेलों के निर्माण में भी प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार आधुनिक सभ्यता तथा उसके अति आधुनिक उद्योगों में प्रयुक्त निकल एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धातु है।

उत्पादन तथा वितरण

सम्पूर्ण संसार में निकल धातु का उत्पादन १००-१५० हजार टन तक होता है। कनाडा संसार का प्रमुख निकल-उत्पादक देश है तथा कुल उत्पादन का लगभग ८५ प्रतिशत भाग कनाडा से ही प्राप्त होता है। जिन अन्य प्रमुख देशों से निकल की सामान्य प्राप्ति होती है, उनमें न्यू-केलेडोनिया (New Caladonia), रूस, दक्षिण अफ्रीका, स्वीडन तथा नार्वे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। फिनलैण्ड में भी निकल-खनिजों के उत्तम निक्षेप प्राप्त हुए हैं, किन्तु वहाँ के उत्पादन के आँकड़े उपलब्ध नहीं हो सके हैं। जहाँ तक इस धातु की खपत का सम्बन्ध है, संयुक्त राज्य अमेरिका सबसे आगे है।

यद्यपि बर्मा के शान प्रान्तवर्ती बाउदविन में सीसा-जस्ता-चाँदी अयस्कों के साथ निकल भी अल्प मात्रा में रहता है, किन्तु जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है निकल के कोई भी निक्षेप ऐसे नहीं हैं जिनसे निकल की प्राप्ति की जा सके। बिहार के सिंहभूम जिले के ताम्र-निक्षेपों के अयस्कों के साथ किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर निकल की कुछ मात्रा भी देखी गयी है, किन्तु अभी तक उनसे इसकी प्राप्ति नहीं की जा सकी है। श्री जे० ए० डन के अनुसार इनमें पैण्टलैण्डाइट, वायोलेराइट तथा मिलेराइट आदि निकल अयस्क अत्यन्त अल्प मात्रा में देखे गये हैं। इसी प्रकार खेतड़ी (जयपुर, राजस्थान) के पायरोटाइट निक्षेपों के साथ भी निकल तथा कोबाल्ट धातुएँ आयोजित हुई देखी गयी हैं। कोलार (मैसूर) की स्वर्णमय पट्टिकाओं, तोवाला (त्रावनकोर) में सल्फाइड अयस्कों (पायरोटाइट, पायराइट तथा चाल्कोपायराइट) के साथ एवं कश्मीर के रामसू, बुनियार तथा खलेनी आदि स्थानों में भी निकल-मय खनिज मिले हैं। नुआसाही (कियोनझर, उड़ीसा) से जैराटाइट (Basic Nickel Carbonate) के प्राप्त होने की सूचना मिली है। इस क्रोमाइट में ०·३ प्रतिशत तक निकल धातु विद्यमान है। इसी प्रकार कश्मीर की रियासी तहसील के ताम्र अयस्क में १·६८ प्रतिशत तक निकल पाया गया है।

आयात

निकल की प्राप्ति के लिए हमें पूर्ण रूप से विदेशों से आयात की हुई धातु पर निर्भर रहना पड़ता है। भारतीय खनिविभाग के अनुसार सन् १९५६ तथा १९५७ में भारत ने क्रमशः ६,३२३ तथा १९,८५४ हंडरवेट धातु का आयात किया जिसका मूल्य क्रमशः २०,५६,००० तथा ७७,१७,००० रुपये हुआ।

कोबाल्ट (Cobalt)

निकल की भाँति कोबाल्ट भी एक महत्त्वपूर्ण धातु है, किन्तु सामान्यतः यह सरलता से उपलब्ध नहीं हो पाती, क्योंकि प्रकृति में इसका अभाव है। कोबाल्ट की महत्ता इसलिए और बढ़ जाती है कि यह अनेकों लौहस तथा लोहेतर पदार्थों की संरचना में सम्मिलित रहता है। इसका उपयोग विशेष प्रकार के इस्पातों, मुख्यतः चुम्बकीय इस्पातों में बहुत होता है। यह धातु टंग्स्टन तथा मोलिब्डिनम आदि धातुओं के साथ मिलकर उच्च-गति इस्पातों का निर्माण करती है। इस प्रकार के इस्पातों में, उच्च तापक्रम पर धातुओं के काटने (Metal Cutting) की कार्यकुशलता बहुत बढ़ जाती है। इन इस्पातों में कोबाल्ट की मात्रा ५ से १२ प्रतिशत तक हो सकती है। उत्तम प्रकार के चुम्बकीय इस्पातों में निकल, एल्यूमीनियम, ताँबा तथा टायटेनियम आदि के अतिरिक्त १२ से २४ प्रतिशत तक कोबाल्ट भी रहता है। इनके अतिरिक्त कोबाल्ट का उपयोग ताप-रोधी मिश्रधातुओं (Temperature resisting alloys), वॉल्व इस्पातों (Valve Steels), रंगों (Dyes), कार्बाइड प्रकार की मिश्रधातुओं, संक्षारण-रोधी इस्पातों में भी होता है। ऊँचे तापक्रमों पर मजबूती (Strength) को बनाये रखने की क्षमता होने के कारण इसका प्रयोग जेट वायुयानों के इंजनों में भी होता है। संभवतः यही एक ऐसी धातु है जिसका अधिकाधिक प्रयोग जेट इंजनों में निकल तथा क्रोमियम के साथ होता है। मिट्टी के बरतनों तथा मृच्छिल्प कार्यों के लिए कोबाल्ट ऑक्साइड का प्रयोग बहुत होता है। यह इन बरतनों तथा अन्य वस्तुओं को एक प्रकार की नीली चमक प्रदान करता है। कभी-कभी इसका प्रयोग रंग उड़ाने के लिए भी किया जाता है। मृच्छिल्प वस्तुओं में लोहे का यौगिक विद्यमान होने से कुछ पीलापन आ जाता है, किन्तु कोबाल्ट के कुछ लवण इस पीलेपन को समाप्त कर उन्हें पूर्ण श्वेत बना देते हैं। इसके अतिरिक्त कोबाल्ट के अनेक लवणों तथा यौगिकों को औषधियों, रसायन-कारकों, काँच उद्योगों, लेपों के निर्माण तथा अन्य औद्योगिक कार्यों में भी प्रयुक्त किया जाता है। कोबाल्ट का आधुनिक उपयोग इसके रेडियो संक्रिय संघानी कोबाल्ट ६० में निहित है, जो रेडियम के स्थान पर थेराप्युटिक्स (Therapeutics) तथा औद्योगिक रेडियोग्राफी, दोनों में ही प्रयुक्त किया जा सकता है।

उत्पादन तथा वितरण

सम्पूर्ण विश्व में लगभग १·२ करोड़ पौण्ड कोबाल्ट का उत्पादन प्रति वर्ष होता

है। कांगों (कटांगा प्रदेश) संसार का सबसे बड़ा कोबाल्ट-उत्पादक देश है। इसके अतिरिक्त उत्तरी रोडेसिया, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, मोरक्को तथा बर्मा से भी कोबाल्ट की प्राप्ति होती है। बर्मा में कोबाल्ट के खनिज शान राज्य के बाउदविन नामक स्थान के सीसा-जस्ता-सल्फाइड अयस्कों के आयोजन में प्राप्त होते हैं।

निकल की भाँति कोबाल्ट का भी भारत में अभाव है। अभी तक कोई ऐसे निक्षेप इस देश में प्राप्त नहीं हुए हैं जिनसे कोबाल्ट की थोड़ी सी भी मात्रा व्यापारिक स्तर पर उपलब्ध हो सके। राजस्थान में जयपुर के खेतड़ी क्षेत्र की बबाई नामक ताँबे की खान में ताँबे के अयस्क के साथ कोबाल्ट का एक विषमअयस्क प्राप्त हुआ है, जिसमें कोबाल्टाइट तथा डैनाइट आदि कोबाल्ट खनिज देखे गये हैं। उड़ीसा में कियोनझर जिले के नौसाही क्षेत्र से एक विशेष प्रकार का क्रोमाइट प्राप्त हुआ है, जिसमें ०·६ प्रतिशत तक कोबाल्ट की मात्रा विद्यमान है। इसी राज्य के कालाहाण्डी जिले में मदनपुर के समीप ओलातुरा में कुछ मेंगनीज अयस्कों में विशेषकर 'वाड' (wad) में, जिसके आयोजन में कुछ लौह अयस्क भी मिलते हैं, ०·८२ प्रतिशत तक कोबाल्ट-आक्साइड पाया जाता है। पश्चिमी नेपाल के अनेक स्थानों में भी कोबाल्टाइट के मिलने की सूचना मिली है।

भारत को कोबाल्ट की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेशों के आयात पर ही निर्भर रहना पड़ता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, संसार के दो सबसे बड़े कोबाल्ट-उत्पादक देश कांगों (कटांगा राज्य) तथा उत्तरी रोडेसिया हैं तथा उनके उत्पादन का तीन चौथाई से भी बड़ा भाग ताम्र-निक्षेपों से प्राप्त होता है। यदि भारत भी राजस्थान, सिक्किम तथा अन्य हिमालय-क्षेत्रों के ताम्र-अयस्क निक्षेपों को विकसित कर ले तो संभव है कि यहाँ भी कोबाल्ट का उत्पादन व्यापारिक स्तर पर संचालित हो सके।

क्रोमियम (Chromium)

क्रोमाइट, क्रोमियम धातु का मुख्य अयस्क है जिसमें ६८% क्रोमिक ऑक्साइड तथा ३२% लोहस ऑक्साइड (Ferrous Oxide) रहता है। किन्तु सामान्यतः क्रोमाइट का लोहा मैगनीशियम द्वारा तथा क्रोमियम अंशतः एल्यूमीनियम द्वारा स्थानान्तरित होने के कारण वाणिज्य स्तर के अयस्क में ५०% से अधिक क्रोमिक आक्साइड (Chromic Oxide) नहीं होता। इस धातु का मुख्य उपयोग

धातुशोधन उद्योगों में होता है। इसमें क्रोमियम के कुल उत्पादन का आधा भाग प्रयुक्त होता है। शेष का ३५% तापरोधी कार्यों तथा १५% रासायनिक उद्योग में प्रयोग किया जाता है। ये आँकड़े सम्पूर्ण संसार की खपत पर आधारित हैं। संसार के सभी क्रोमाइट उत्पादक देश कुल मिलाकर १०-२० लाख टन तक इस अयस्क का उत्पादन करते हैं। इन देशों में प्रमुख उत्पादक देश रूस, द० रोडेसिया, तुर्की, द० अफ्रीका, क्यूबा, फिलीपाइन, भारत, ग्रीक, जापान तथा न्यू-कॉलेडोनिया हैं। थोड़ा सा उत्पादन यूगोस्लाविया, ब्राजील, बल्गेरिया और कनाडा में भी होता है।

भारत में वितरण

क्रोमाइट के निक्षेप प्रायद्वीपीय तथा प्रायद्वीप बाह्य प्रदेश (extra-peninsula) दोनों ही भागों में प्राप्त हुए हैं। कुल भारतीय उत्पादन का ४०% भाग मैसूर राज्य के हसन तथा मैसूर जिलों के निक्षेप उत्पन्न करते हैं। वाणिज्य-स्तर के ये क्रोमाइट निक्षेप अधिकांशतः पट्टिकाओं (Veins), वीक्षों (Lenses) तथा पृथक्करणों (Segregations) के रूप में मिलते हैं। ये निक्षेप मैसूर नगर तथा नान्जानगूद के मध्य में स्थित हैं। इस क्षेत्र में कई स्थानों पर खनन-कार्य होता है। लघु प्रकार के निक्षेप तालुर, उरादाबूर तथा डोडकातुर में अधोवर्ग का अयस्क प्राप्त हुआ है, जिसमें क्रोमियम आक्साइड की मात्रा ४०-४०% तक है। और भी अधोवर्गीय निक्षेप (क्रोमियम आक्साइड ३०% से कम) चिकमगालुर, शिमोगा तथा चित्तलदुर्ग जिलों में मिले हैं। हसन जिले का अधोवर्ती अयस्क खनन के पश्चात् संकेन्द्रित किया जाता है तथा फिर सोडियम डाईक्रोमेट (Sodium dichromate) के निर्माण के लिए मैसूर, बम्बई तथा कानपुर भेजा जात. है। इस क्षेत्र में वीरापुर (Byrapur) के निक्षेप पर्याप्त समृद्ध हैं।

सिंहभूम के क्रोमाइट निक्षेप चायबासा के पश्चिम में जोजोहाटू के समीप विद्य-मान हैं। यद्यपि इस क्षेत्र में प्राप्त क्रोमाइट-पट्टिकाएँ (Veins) इतनी विस्तृत नहीं हैं, फिर भी कई वर्षों तक ५०%क्रोमियम आक्साइड का उत्तम अयस्क यहाँ से उपलब्ध होता रहेगा। सिंहभूम के समीप सरायकेला के निक्षेपों से भी क्रोमाइट की प्राप्ति की गयी है।

उड़ीसा के कियोंझर जिले में बाडला पहाड़ियों पर इस खनिज के समृद्ध निक्षेप स्थित हैं। इसमें क्रोमिक-आक्साइड की मात्रा ५२·४%तक होती है।

५० फुट की गहराई तक भण्डारों का अनुमान दो लाख टन किया गया है। क्रोमाइट के अन्य प्राप्तिस्थान कटक जिले में सुकिन्डा तथा नौसाही में स्थित हैं। ढेंकानल जिले में उत्तम प्रकार के क्रोमाइट के कुछ निक्षेप मिले हैं जिनसे कम से कम १२०,००० टन अयस्क अवश्य ही मिल सकेगा।

मद्रास प्रान्त के सलेम जिले में तिरुचेनगोदू से ११ मील दक्षिण में इस अयस्क के कुछ निक्षेप मिले हैं। ये समानान्तर पट्टियों (Bands) में अन्य खनिजों के साहचर्य में पाये जाते हैं तथा स्थानीय एनोर्थाइट नाइस (Anorthite Gneiss) में १२ मील तक देखे गये हैं। इनमें ४०% तक क्रोमिक आक्साइड होता है। इन निक्षेपों से प्राप्त क्रोमाइट का तापरोधी पदार्थों के निर्माण में उपयोग करना संभव है।

कृष्णा जिले (आन्ध्र प्रदेश) में कोन्डापाल्ले नामक स्थान पर क्रोमाइट के निक्षेप वीक्षों (Lenses) तथा गोहों (Pockets) के रूप में चार्नोकाइट के साथ खचित पायरोविज़नाइट शिलाओं में स्थित हैं। बम्बई में रत्नगिरि स्थित कंकानली तथा सावन्तवाड़ी के वागदा नामक स्थानों के समीप क्रोमाइट के अधोवर्गीय निक्षेप मिले हैं। इसी प्रकार जम्मू तथा कश्मीर के द्रास जिले में क्रोमाइट प्राप्त हुआ है। इनके अतिरिक्त अण्डमान द्वीप में भी क्रोमाइट के निक्षेप प्राप्त होने की सूचना मिली है। अभी तक देश में प्राप्त कुछ ही निक्षेपों के भण्डारों का अनुमान लगाया गया है। निक्षेपों की गणना के अनुसार कुल भण्डारों में १३·२ लाख टन क्रोमाइट की मात्रा होने की संभावना है।

इन प्राप्ति-स्थानों में से सभी में अभी खनन-कार्य नहीं होता तथा क्रोमाइट के वर्तमान उत्पादक क्षेत्र केवल प्रायद्वीपीय भारत में स्थित हैं।

खनन तथा अयस्क-शोधन

यद्यपि अधिकांशतः क्रोमाइट का खनन खुली हुई खनियों (Open Quarries) द्वारा ही होता है तथापि कुछ खानों में अब अन्तर्भूमिक (Underground) खनन भी प्रारभ हो चुका है।

सामरिक महत्त्व का खनिज होने के कारण प्राविधिक रूप से उन्नत राष्ट्रों ने घटिया क्रोमाइट अयस्क के समृद्धीकरण (Beneficiation) तथा वर्गों के अनुसार अमुक प्रकार के खनिज को उसके अनुरूप ही उपयुक्त उद्योगों में प्रयोग करने की ओर विशेष ध्यान दिया है। राष्ट्रीय धातु-शोधन प्रयोगशाला (National Metallurgical Laboratory) द्वारा किये हुए विस्तृत अनुसंधान-कार्य से ऐसा संकेत

मिलता है कि भारत में प्राप्त अधोवर्ग के क्रोमाइट अयस्क को, जिसमें २६ से ३६% तक क्रोमिक आक्साइड रहता है, उपयुक्त विधियों द्वारा ४७-४९% तक समृद्ध किया जा सकता है। भारत की कुछ खानों में पेषण यंत्रों (Rolling Mills), विघटकों (Disintegrators) तथा विलफ्ले मेजों (Wilfley Tables) द्वारा संकेन्द्रण (Concentration) की विधियाँ या तो काम में लायी जा रही हैं या उनका प्रारंभ किया जाने वाला है।

उपयोग—क्रोमियम धातु के अतिरिक्त क्रोमाइट का उपयोग भट्ठियों के आस्तरों (Furnace Linings) में प्रयुक्त तापरोधी ईंटों के निर्माण में किया जाता है। क्रोमियम तथा लोहे की एक मिश्रधातु को जंगरहित (Rustless) तथा अकलुष (Stainless) इस्पातों एवं शस्त्र-पट्टिकाओं (Armour plates) के निर्माण में प्रयोग करते हैं। क्रोमियम की मात्रा को घटा-बढ़ाकर तथा इसके साथ कई अन्य तत्त्वों, मुख्यतः निकल, टंगस्टन, मोलिब्डिनम, वेनीडियम एवं मेंगनीज के संयोग से तथा उपयुक्त ताप-साधनों (Heat treatments) द्वारा अनेकों प्रकार के उपयोगी इस्पातों का निर्माण होता है। रासायनिक, सूती कपड़ा तथा चमड़ा उद्योगों में भी क्रोमियम का विशाल मात्रा में व्यवहार किया जाता है।

उत्पादन—सन् १९५३-५७ के मध्य क्रोमाइट के उत्पादन में एक विशेष उच्चावचन (Fluctuation) दृष्टिगोचर होता है। इस उच्चावचन का कारण विदेशी माँग ही है। इन वर्षों का उत्पादन निम्न प्रकार रहा—

वर्ष	मात्रा (टनों में)	मूल्य (रुपयों में)
१९५३	६४,७७०	२५,२९,७८२
१९५४	४५,५०७	१३,६०,०००
१९५५	८९,३४९	२७,३१,०००
१९५६	५२,६८६	१७,५२,०००
१९५७	७८,५४२	२९,२७,०००

भविष्य—वर्तमान समय में भारत में क्रोमाइट की स्थानीय खपत लगभग १५,००० टन प्रति वर्ष है, जो मुख्यतः तापरोधी पदार्थों तथा बाइक्रोमेट उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। भारत में इस समय फैरोक्रोम (Ferro-Chrome) बनाने का कोई संयंत्र नहीं है और इस लिए स्थानीय माँग को पूरा करने के लिए विदेशों के आयात पर निर्भर रहना पड़ता है।

भारतीय इस्पात उद्योग के विस्तार के साथ ही निकट भविष्य में फैरोक्रोम की माँग में भी वृद्धि होगी, अतः फैरोक्रोम उद्योग का भविष्य भी अत्यन्त सुन्दर है।

टायटेनियम (Titanium)

अनेक उद्योगों में उपयोगी होने के कारण टायटेनियम की महत्ता दिन पर दिन बढ़ रही है। इल्मेनाइट प्राप्त करने के लिए, जो लोहे का टायटेनेट है, आज सभी बड़े राष्ट्र प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। वर्तमान समय में सम्पूर्ण संसार में इल्मेनाइट का वार्षिक उत्पादन ५००,००० टन के लगभग है, जिसका अधिकांश भाग भारत तथा नार्वे से आता है। कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका भी अच्छे उत्पादक है।

वितरण—यद्यपि इल्मेनाइट आग्नेय (Igneous) तथा कायान्तरित (Metamorphic) शिलाओं का एक साधारण अंश है, तथापि बालुतटीय रेत (Beach Sand) के अतिरिक्त भारत में ऐसा कोई भी इल्मेनाइट-स्रोत नहीं है जिससे वाणिज्य-स्तर पर इल्मेनाइट उपलब्ध हो सके। इल्मेनाइट के संकेन्द्रण दक्षिण भारत में नन्दी करिया, जो पश्चिमी तट पर क्विलोन के उत्तर में स्थित है, तथा कन्या कुमारी के मध्य और इसके अतिरिक्त पूर्वी तट के किनारे-किनारे तिरुनलवेली जिले में लिपुरम् तक लगभग १०० मील के भूखण्ड (Tract) में विद्यमान है। इल्मेनाइट बालू रचूटाइल (टायटेनियम आक्साइड), जिरकन (ज़िरकोनियम सिलीकेट), सिलीमेनाइट (एल्यूमीनियम सिलीकेट) तथा मोनाज़ाइट (सीरियम धातुओं व थोरियम आदि के फॉस्फेट) के साहचर्य में प्राप्त होती है। मणिभीय शिलाओं से प्रवाहित होनेवाली सभी भारतीय नदियों की बालू के संकेन्द्रणों (Concentrates) में भी यह बहुधा प्राप्त होता है, किन्तु महत्त्वपूर्ण स्रोत केवल त्रावनकोर में ही सीमित हैं। त्रावनकोर रेत को कोलाचेल के समीप मानावालाकुरीची में तथा क्विलोन के उत्तर में ८ मील दूर स्थित कोविल्थाटम् में निकाला जाता है। इसमें इल्मेनाइट की मात्रा ५०-७०% तथा टायटेनिया की मात्रा ५५% तक होती है। रचूटाइल में, जो प्राकृतिक टायटेनियम डाई आक्साइड है, ६०% टायटेनियम होता है। विशेष उपयोगों, उच्च धात्विक अवयव (Contents) तथा सामान्यतः कमी के कारण रचूटाइल (Rutile) का व्यापारिक महत्त्व इल्मेनाइट की अपेक्षा अधिक है। रचूटाइल प्रचुर मात्रा में लंसाबुरू

(सिंहभूम) की कायनाइट-मय शिलाओं में विद्यमान है किन्तु अभी तक यह वाणिज्य स्तर पर उपलब्ध नहीं हो सका है।

केवल शिक्षात्मक महत्त्व के निक्षेप डिगाना व किशनगढ़ (राजस्थान), मान-बाजार तथा सुपुर (बिहार), मयूरभंज (उड़ीसा) तथा बारीख्वाह (काश्मीर) मिले हैं। टायटेनियम-मय मेग्नेटाइट सिंहभूम, मयूरभंज तथा मैसूर के चन्नापटना क्षेत्र से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त टायटेनियम का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत भारत के लेटराइट (Laterite) तथा बॉक्साइट के निक्षेप हैं। इनमें ८% तक टायटेनिया (Titania) होता है तथा इसकी प्राप्ति उपजात (By-product) के रूप में एल्यूमीनियम उद्योग से निकट भविष्य में की जा सकती है। टायटेनिया की उपलब्धि के लिए कई भारतीय रसायनज्ञों ने अपने सुझाव रखे हैं।

भारत की बालुतटीय रेत (Beach Sand) में पाये जाने वाले इल्मेनाइट के भण्डारों की अनुमानित मात्रा ३५ करोड़ टन के लगभग आँकी गयी है।

खनन तथा अयस्क-शोधन

त्रावनकोर की बालुतटीय रेत खनन के पश्चात् समीप ही स्थित संकेन्द्रण संयंत्रों को ले जायी जाती है जहाँ उसको सुखाया तथा छाना जाता है तथा इसके पश्चात् क्रमशः अनेकों आकार की छन्नियों तथा वैद्युत-चुम्बकीय पृथक्कारकों (Separators) द्वारा अयस्क-साधन (Ore-treatment) होता है। इन संयंत्रों द्वारा ९५% विशुद्धता का संकेन्द्रित इल्मेनाइट प्राप्त किया जा सकता है।

उपयोग—टायटेनियम रजत-श्वेत वर्ण की एक हलकी धातु है जिसका आपेक्षिक घनत्व (Sp. Gr.) ४.५ तथा द्रवणांक १७९५° सें० है। यह धातु दृढ़, कठोर तथा संक्षारण-प्रतिरोधी (Corrosion Resistant) होती है। सर्वाधिक लेपों (Paints) का निर्माण टाइटेनियम द्वारा ही होता है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इसका कुछ विशेष उपयोग नहीं किया गया है, किन्तु अब इसकी महत्ता इतनी अधिक बढ़ गयी है कि यह जस्त-आक्साइड (Zinc Oxide) तथा सीस-आक्साइड (Lead Oxide) का स्थान धीरे-धीरे लेता जा रहा है। इसका उपयोग मुख्यतः टायटेनियम आक्साइड के रूप में होता है। टायटेनियम लेप मुख्य रूप से या तो विशुद्ध टायटेनियम आक्साइड अथवा अन्य लेप यौगिकों से मिलाकर निर्मित किये जाते हैं। टायटेनियम से निर्मित पिगमैन्टों (Pigments) का विस्तृत उपयोग लेपों (Paints), इनेमिल (Enamels), लेक्वेर (Lacquer),

कागज़, चमड़ा, सूती कपड़े, रबर, शृंगार-प्रसाधनों, प्लास्टिक उद्योग, लिनोलियम, कृत्रिम रेशम, श्वेत स्याहियों, रंगीन काँच, चीनी मिट्टी के बर्तनों पर चमक तथा रंजाई (झलाई) करने वाली छड़ों (Welding rods) पर तह (Coating) करने के लिए किया जाता है। टेट्राक्लोराइड (Tetrachloride) के रूप में इसका उपयोग धूमपट (Smoke screen) तथा आकाश-लेखन (Sky Writing) में होता है।

धातविक टायटेनियम का प्रयोग इन दिनों इस्पात उद्योग में अनेकों मिश्र-धातवीय-इस्पात (Alloy-steel) बनाने के लिए किया जाता है। इनमें लोहस टायटेनियम तथा लोहस-कार्बोटायटेनियम (Ferro-Carbotitanium) सर्वाधिक महत्त्व के हैं। अलोहस-धातु-शोधन के क्षेत्र में भी यह विस्तृत रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ है। ऊँचे तापक्रम को रोधन करने की शक्ति, हलकापन तथा इसका शक्ति-भार-अनुपात (Strength - Weight - Ratio) ऊँचा होने के कारण इसकी मिश्र-धातुओं का उपयोग वायु-चालित यंत्रों (Aeronautics) तथा प्रक्षेपणास्त्रों (Rockets) में किया जाता है। इस दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धातु है।

टायटेनियम कार्बाइड (Titanium Carbide) अत्यन्त कठोर होने के कारण टंगस्टन तथा अन्य धातुओं के कार्बाइड्स (Carbides) के साथ मिलकर इस्पात काटने के यन्त्रों (Steel Cutting Tools), रंगों (Dies) तथा अपघर्षण चक्रों (Abrasive Wheels) के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है।

उद्योग तथा उत्पादन

भारत से सन् १९३८ के अन्त तक, १० लाख टन इल्मेनाइट संकेंद्रण का विदेशों को निर्यात किया गया। यह मात्रा १९४५ में दो गुनी हो गयी और यहाँ तक कि सन् १९५० में उत्पादन का कुल योग ३,२०३,६२५ टन तक पहुँच गया।

देश की स्थानीय आवश्यकताओं के अतिरिक्त इल्मेनाइट के उत्पादन की मात्रा कहीं अधिक है तथा लगभग सम्पूर्ण उत्पादित मात्रा का विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। वास्तव में भारतीय इल्मेनाइट उत्पादन टायटेनियम श्वेत (Titanium White) के विकास के साथ संबद्ध है और टायटेनियम श्वेत की माँग में वृद्धि ही इल्मेनाइट की उत्पादन-वृद्धि का एकमात्र कारण है। सन् १९५३ से १९५७ तक के उत्पादन के आँकड़े निम्न प्रकार हैं—

वर्ष	उत्पादित मात्रा (टनों में)	मूल्य (रुपयों में)
१९५३	२१५,२५९	९२,०५,१३८
१९५४	२४०,५१३	७९,८०,०००
१९५५	२५०,७७४	१,३१,९०,०००
१९५६	३३५,५९०	१,७८,१२,०००
१९५७	२९६,०००	१,६८,१२,०००

व्यापारिक आधार पर टायटेनियम उत्पादन करने के लिए अनेकों विधियाँ व्यवहार में आती हैं। अधिकांशतः इन विधियों का भी आर्थिक दृष्टिकोण से अधिक उपयोग न होने के कारण टायटेनियम का उत्पादन अत्यन्त सीमित है। भविष्य में जब आर्थिक दृष्टि से सस्ते मूल्य पर यह प्राप्त हो सकेगा, तब संरचनात्मक तथा यान्त्रिक-अभियन्त्रीकरण (Mechanical Engineering) उद्योगों में इस धातु की माँग में विशेष वृद्धि की पूर्ण संभावना है।

भविष्य

सबसे पहले भारत में त्रावनकोर टायटेनियम प्रोडक्ट्स लि० द्वारा टायटेनियम श्वेत पिगमैन्ट (Pigment) का निर्माण-कार्य लघु-उद्योग आधार पर सन् १९५१ में प्रारंभ किया गया था तथा इधर कुछ दिनों से और अधिक संयंत्रों की संरचना की जा रही है। ये विशाल स्तर पर टायटेनियम के उत्पादनों का निर्माण करेंगे।

गत कुछ वर्षों से इल्मेनाइट की माँग संसार भर के देश कर रहे हैं और संभव है कि इस प्रकार की माँग में यह वृद्धि निकट भविष्य में भी जारी रहे। भारत विश्व के इल्मेनाइट उत्पादन में विशेष स्थान रखता है। भारत के अतिरिक्त कुछ अन्य देशों में भी इल्मेनाइट के निक्षेप पर्याप्त विकसित हो गये हैं। ऐसी स्थिति में भारत अपना स्थान बनाये रखने में समर्थ रह सकेगा, इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

भारत में टायटेनियम उद्योग का विकास शनैः-शनैः ही हो रहा है क्योंकि हमारे अन्य उद्योग अभी इतने विकसित नहीं हैं जो धातविक टायटेनियम तथा इसकी मिश्रधातुओं के भौतिकीय-रासायनिक (Physico-chemical) गुणों का प्रभावशाली शोषण कर सकें। आशा की जाती है कि निकट भविष्य में औद्योगिक विकास के साथ ही भारत में इल्मेनाइट की स्थानीय खपत में भी पर्याप्त वृद्धि होगी।

टंगस्टन (Tungsten)

टंगस्टन कठोर, भारी तथा भूरी-श्वेत वर्ण की धातु है जिसका द्रवणांक (Metling Point) ३३८२° सें० है जो सम्पूर्ण धातुओं में अधिकतम है। इसका मुख्य उपयोग विद्युत-लट्टुओं में होता है। इसके अतिरिक्त इसके अनेक उपयोग विद्युत-यन्त्रों, एक्स-रे ट्यूब्स (X-ray tubes), वाति-स्राव भ्राशमान व विक्षेपक दीपकों (Gas-discharge fluorescent and proejctor lamps) में होता है। रैडार, टेलीविजन यन्त्र, रेडियो, कैथोड-किरण ट्यूब्स, पारद संशोधकों (Mercury rectifiers) आदि के निर्माण में भी यह महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। कुल टंगस्टन उत्पादन का लगभग ८५% भाग तो केवल लौहस-मिश्र-धातुओं (Ferrous alloys) के निर्माण में प्रयुक्त होता है। युद्ध के समय इसके अनेक विशेष उपयोग है और यह कहना अनुचित न होगा कि यदि कोई देश टंग-स्टन-विहीन है तो उसकी सैन्य-शक्ति दुर्बल है और वह शान्तिकालीन समय में औद्यो-गिक रूप से अविकसित देश रहेगा। उच्चगति इस्पातों (High Speed Steels) मे १४-१८% तक टंगस्टन रहता है तथा इसके साथ ४% क्रोमियम (Chromium) एवम् १-३% तक वैनेडियम (Vanadium) को मिश्रित किया जाता है। टंगस्टन कारबाइड इस्पातों से कहीं अधिक कठोर है और इसकी कठोरता हीरे (Diamond) से कुछ ही कम है। अतः उच्चगति-इस्पातों को काटने वाले यन्त्रों में इसका प्रयोग करते है।

टंगस्टन का मुख्य अयस्क वॉल्फ्रेम (Wolfram) है जो स्वयम् दो खनिजों, फर्बेराइट (Ferberite) जो लोहे का टंगस्टन है तथा हुब्नेराइट (Hubnerite) जो मेंगनीज का टंगस्टेट है, के मिश्रण से निर्मित हुआ है। भारत में वॉल्फ्रेम के निक्षेप आकार में सीमित तथा अधोवर्ग (Interior grade) के हैं। किन्तु फिर भी आपत्कालीन स्थितियों में देश के इन निक्षेपों से भी थोड़ा उत्पादन अवश्य किया जा सकता है। सन् १९०७ में अगर गाँव (नागपुर) बम्बई प्रदेश में स्थित धारवाड़ युगीन स्फटिक-पट्टिकाओं (Quartz veins) से टंगस्टन का उत्पादन किया गया था। इसी प्रकार १९१६ में सिंहभूम जिले के कालीमाटी नामक स्थान से लगभग ८ टन खनिज प्राप्त हुआ था। पश्चिमी बंगाल के बंकुरा जिले से भी इसी प्रकार लगभग ४५ टन खनिज की प्राप्ति सन् १९४२-४३ में हुई। अहमदाबाद जिले के झेर तथा पल्ला स्थानों में अरावली शिष्ट (Schist) के अन्तर्गत वॉल्फ्रेम-मय राशियाँ मिली हैं। तिरुचिरापल्ली जिले (मद्रास) के कदावूर नामक स्थान से

भी इसकी प्राप्ति के कुछ संकेत मिले हैं। जोधपुर (राजस्थान) में डिगाना के समीप रावत पहाड़ी पर वॉल्फ्रेम की पट्टिकाएँ (Veins) मिली हैं जिनमें अशुद्धियों के रूप में फ्लोराइट (Fluorite), बायोटाइट (Biotite) तथा अल्प मात्रा में अन्य खनिज भी रहते हैं। सन् १९४२ में रावत में एक संकेन्द्रण-कारखाने (Concentration Plant) का निर्माण किया गया था तथा उसी समय अनुमान भी किया गया था कि रावत की पट्टिकाओं में ०·६५% वॉल्फ्रेम है। सन् १९३७ से १९४६ तक ३०७ टन वॉल्फ्रेम का उत्पादन किया गया। उसके पश्चात् उत्पादन केवल ३ टन प्रति वर्ष रह गया और तब खनन-कार्य बन्द कर दिया गया।

उत्पादन एवम् वितरण—सन् १९३९ में सम्पूर्ण संसार का उत्पादन "६०% वॉल्फ्रेम संकेन्द्रण के रूप में" ३४००० टन हुआ जिसमें चीन से ३३.६%, बर्मा से २०.८% तथा पुर्तगाल और संयुक्त-राज्य अमेरिका से ११.४% व ११.३% आया। सन् १९५५ के आसपास सम्पूर्ण विश्व का वार्षिक उत्पादन २०-६० हजार टन संकेन्द्रण के रूप में होता रहा है जिसमें भी $\frac{1}{3}$ भाग चीन से तथा शेष संयुक्तराज्य अमेरिका, बर्मा, कोरिया, पुर्तगाल, ब्राजील, बोलीविया, जापान, अर्जेन्टाइना तथा आस्ट्रेलिया से प्राप्त हुआ है। अमेरिका में टंगस्टन धातु के भण्डारों का न्यूनतम अनुमान २ करोड़ ६० लाख पौण्ड से भी अधिक किया गया है। अमेरिका का वार्षिक उत्पादन ५००० से १०००० टन खनिज संकेन्द्रण के रूप में होता है।

वेनेडियम (Vanadium)

वेनेडियम कोमल तथा रजत-श्वेत धातु है जो कि वेनेडियम पैन्टोक्साइड (Pentoxide) को कैल्शियम (Calcium) के साथ अवकृत (Reduce) कर के निर्मित की जाती है। साधारणतया प्रारंभिक रूप से आजकल के बड़े उद्योगों में इसका कोई विशेष स्थान नहीं है। लगभग ९५%वेनेडियम इस्पातों तथा मिश्र-धातुओं एवम् शेष ५% रासायनिक उद्योगों में प्रयुक्त होता है। इस्पातों में या तो इसके आक्साइड्स (Oxides) अथवा लोह-वेनेडियम (Ferro-Vanadium) का उपयोग करते हैं तथा इसकी थोड़ी-सी मात्रा भी इस्पात को अधिक शक्तिशाली एवम् कठोर बना देती है। वेनेडियम इस्पात जिनमें और भी मिश्र-धातविक धातुएं (Alloy metals) जैसे क्रोमियम, निकल, मेंगनीज तथा मोलिब्डिनम आदि मिश्रित रहते हैं, अनेकों विशिष्ट उपयोगों में, जैसे धुरी की संरचना, मोटर गाड़ियों

के स्प्रिंग तथा दूसरे भाग एवम् रेलगाड़ियों के कई भागों में प्रयुक्त किये जाते हैं। इस प्रकार के इस्पात में १-१·२५% तक वेनेडियम का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार उच्चगति-इस्पातों (High Speed steels) में भी ४-५% वेनेडियम का प्रयोग होता है। इनका उपयोग क्वथन-प्लेटों (Boiling plates), दाब-पात्रों (Pressure Vessels), शिला-पेषक (Rock-pressures) और शस्त्र-पट्टिकाओं (Armour plates) तथा उच्चगति इस्पातों के काटने के यन्त्रों में भी किया जाता है। अमोनिया के संश्लेषण में वेनेडियम पैन्टोक्साइड्स का विशाल स्तर पर आवेजक (Catalytic agent) के रूप में उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार गंधकाम्ल के निर्माण की संस्पर्श-विधि (Contact Process) में भी प्लेटिनम के स्थान पर वेनेडियम पैन्टोक्साइड प्रयुक्त होने लगा है। इसके कुछ लवणों का सीमित उपयोग लेपों (Paints) तथा काँच उद्योगों एवम् औषधि-निर्माण में किया जाता है। कुछ अन्य उद्योग जिनमें वेनेडियम धातु अथवा इसके आक्साइड या अन्य लवणों का उपयोग होता है—विद्युत्, रासायनिक, मृच्छिल्प (Ceramic), रंग (dye) तथा मुद्रण हैं।

भारत में वितरण

वेनेडियम-मय टिटैनीफेरस (Titaniferous) मैग्नेटाइट्स निक्षेप जिनमें वेनेडियम-पैन्टोक्साइड ०.१ से ३% तक होता है, सिंहभूम जिले के दालभूम में तथा उड़ीसा में मयूरभंज तक फैले हुए हैं। मुख्य प्राप्ति-स्थान कुमारडूबी तथा डुबलावेरा हैं। इसी प्रकार के अयस्क किओन्झर जिले में नुआसाही के समीप भी मिले हैं। मध्य प्रदेश के भण्डारा जिले में महलगाँव के क्वार्ट्जाइट (Quartzite) में हरा अभ्रक (Green-mica) वितरित है जिसमें ०.४२% वेनेडियम आक्साइड तथा २.७४% क्रोमियम आक्साइड होता है। वेनेडिफेरस (Vanadiferous) मैग्नेटाइट जिसमें सामान्यतः ०.५६% वेनेडियम पैन्टोक्साइड होता है, उड़ीसा में गोदासाही के उत्तर में प्राप्त होता है। श्री एच० नन्दी के अनुसार लगभग दो लाख टन मैग्नेटाइट इस क्षेत्र में विद्यमान है। किओन्झर जिले में भी इस प्रकार के मैग्नेटाइट की अनुमानित मात्रा ५० हजार टन के लगभग श्री वी० सी० गुप्ता द्वारा आँकी गयी है। कुछ लोगों का अनुमान है कि मद्रास में दक्षिण आरकोट जिले के नैवेली नामक स्थान की लिग्नाइट भस्म (Ash) में तथा त्रावणकोर के वरकाला (Varkala) की लिग्नाइट भस्म में २% तक

वेनेडियम आक्साइड की मात्रा विद्यमान है। इसका कुछ लोगों ने खण्डन भी किया है।

उत्पादन तथा वितरण—२०-८० लाख पौण्ड वेनेडियम प्रति वर्ष मुख्यतया पेरू तथा संयुक्त राज्य अमेरिका से उत्पादित होता है। केवल आंशिक भाग द० प० अफ्रीका एवम् उत्तरी रोडेसिया से प्राप्त होता है।

भारत में वेनेडियम उद्योग का प्रारंभ टाइटेनियम-मय मैग्नेटाइट से वेनेडियम की प्राप्ति की विधियों के सफल विकास पर आधारित है, किन्तु फिर भी हर प्रकार के अभ्रक, भारतीय कोयलों तथा लिगनाइट की भस्मों, लेटराइट्स तथा बाक्साइट्स आदि में वेनेडियम अंश का होना कुछ अन्य विधियों द्वारा इसकी प्राप्ति का स्रोत हो सकता है।

मोलिब्डिनम

इस धातु का मुख्य खनिज मोलिब्डिनाइट (Molybdenite) है जो मोलिब्डिनम का सल्फाइड है तथा जिसमें ६०% धातु होती है। यह खनिज द्युतिमय तथा सीसे के समान भूरे रंग (Lead grey colour) का होता है। यह धातु मोलिब्डिनम आक्साइड को हाइड्रोजन के साथ अवकृत (Reduce) करने पर प्राप्त होती है। धातु का वर्ण रजत-श्वेत होता है तथा द्रवणांक २६२०° सें० है। यह तापदीप्त विद्युत लट्टुओं (Incandescent electric bulbs), वायर-लैस वाल्व्स, विद्युत यन्त्रों, रेडियो आदि अनेक उद्योगों में प्रयुक्त होता है। इसका मुख्य उपयोग लौह और इस्पात उद्योग में होता है जहाँ इसके मिश्रण से अनेक प्रकार की कठोर मिश्रधातुओं का निर्माण किया जाता है। इन मोलिब्डिनम इस्पातों को वायुयान, मोटर गाड़ियों तथा रेलगाड़ियों के इंजिनों, वेधन-यन्त्रों (Drilling instruments), शाफ्ट्स (Shafts), पम्पों, उच्च-गति यन्त्रों (High Speed tools), तारों तथा सामरिक सामग्री में प्रयुक्त किया जाता है। मोलिब्डिनम के अनेक यौगिक रासायनिक तथा मृच्छिल्प-उद्योगों में काम आते हैं।

उत्पादन एवं वितरण—सम्पूर्ण संसार का मोलिब्डिनाइट का उत्पादन ३००-६५० लाख पौण्ड तक घटता-बढ़ता रहता है जिसका ८५% भाग संयुक्त राज्य अमेरिका से तथा शेष भाग मेक्सिको, चिली, कनाडा तथा नार्वे से आता है।

भारत में भी यह अनेक स्थानों पर मिलता है जिनमें छोटा नागपुर, हजारीबाग

जिले में बारागुन्दा तथा अन्य स्थान सम्मिलित हैं। यह आसाम की खासी पहाड़ियों में चेरापूंजी की कणाश्म नाइसों (Granite gneisses) में, आन्ध्र प्रदेश के गोदावरी जिले में, कुम्मावरम तथा अन्य स्थानों की पेग्मेटाइट पट्टिकाओं (Pegmatite Veins) में एवम् मद्रास के मदुराई जिले में करादीकुट्टम, त्रावणकोर में मगामलाई तथा राजस्थान के किशनगढ़ जिले में प्राप्त होता है।

परिच्छेद ४

सामान्य धातुएँ

सीसा तथा जस्ता (Lead and Zinc)

अभी तक कोई भी इस प्रकार का अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है जिससे इस तथ्य का पता चल सके कि किस समय प्राचीन भारत में सीसा तथा जस्ता का खनन एवम् प्रयोग प्रारंभ हुआ। राजपूताना गजेटियर (Rajputana Gazetteer) के अनुसार राजस्थान के झावर क्षेत्र में राना लाखासिंह के समय अर्थात् सन् १३८२-९७ में ही सीसा तथा चाँदी की खानों का अन्वेषण हो चुका था, किन्तु राज्य की ओर से प्रथम बार सन् १८७२ में इस क्षेत्र का पूर्वेक्षण किया गया। इस समय यहाँ पर इस काम में लगभग १५०००रु० भी व्यय हुए, किन्तु कोई विशेष परिणाम न हुआ। यह भी ज्ञात हुआ है कि अजमेर के समीप तारागढ़ पहाड़ियों में सीसे के निक्षेपों में अनेक वर्षों तक कार्य होता रहा और सन् १८५७ के पूर्व जब इन खानों से उत्पादन बन्द हुआ, यहाँ का उत्पादन १४,००० मन (सीसा) प्रतिवर्ष तक पहुँच गया था।

भारतीय भूतात्त्विक समीक्षा के अभिलेख प्रदर्शित करते हैं कि भारत में गैलेना (Galena) की प्राप्ति अनेक भागों, जैसे बिहार, उड़ीसा, हिमांचल प्रदेश तथा मद्रास आदि में हो सकती है, किन्तु अभी तक विस्तृत पूर्वेक्षण अथवा खननकार्य इन क्षेत्रों में प्रारंभ नहीं हुए हैं जिससे इन अयस्क निक्षेपों की गुप्त शक्तियों का स्पष्टीकरण हो सके। अक्टूबर सन् १९४५ में झावर क्षेत्र के लिए पूर्वेक्षण पत्र (Prospecting License) राजस्थान सरकार द्वारा मेसर्स मेटल कॉर्पोरेशन ऑफ इण्डिया लि० को दिया गया। तभी से इस कम्पनी ने विस्तृत खनन-कार्य मोचिया मोगरा पहाड़ियों में प्रारंभ कर दिया है तथा समीप के अन्य क्षेत्रों में भी पूर्वेक्षण चल रहा है। सन् १९५५-५६ तक यह कम्पनी लगभग एक करोड़ रुपया खनन एवम् धातु-शोधन कार्यों में लगा चुकी है। पूंजीगत वस्तुओं (Capital goods), यातायात तथा अन्य पदार्थों की उपलब्धि की अनेकों कठिनाइयाँ होते हुए भी खानों तथा कम्पनी

द्वारा संचालित विद्रावण-संयंत्र (Smelting Plant) की पर्याप्त उन्नति हुई है। भारत में इस समय सीसा, जस्ता तथा चाँदी के पूर्वेक्षण, खनन एवम् बंधन-संभार (Dressing) आदि कार्य राजस्थान के झावर क्षेत्र में ही केन्द्रित हैं।

भारत में वितरण

यद्यपि प्राचीन भारत में सीसे का खनन अनेक स्थानों पर होता था, किन्तु आधुनिक जस्ता तथा सीसा उद्योग का इतिहास झावर खानों के शोषण तथा सीसा और जस्ते के धातवीय (Metallurgical) एवम् पेषण विधियों (Milling Processes) के विकास तक ही सीमित है। सीसा तथा जस्ता के अयस्क मुख्यत: गैलेना तथा ज़िंक ब्लैण्ड (Zinc Blende) स्फटिक (Quartz) अथवा केल्क-मेग्नीशियम कार्बोनेट्स के साहचर्य में पूर्व-कैम्ब्रियन मणिभित शिष्टों (Pre-Cambrian crystalline schists) अथवा **विन्ध्य** चूना पत्थरों की पट्टिकाओं (Veins) तथा गोहों (Pockets) में प्राप्त होते हैं। इनके प्राप्ति-स्थान भारत के अनेक प्रदेशों में स्थित हैं। उदाहरणार्थ, उत्तर आसाम में बोर कामती क्षेत्र; बिहार में भागलपुर तथा पालामऊ जिले; आन्ध्र प्रदेश में गुन्टूर; बम्बई में नागपुर; पंजाब में पर्वती घाटी (कूलू क्षेत्र) तथा राजस्थान में उदयपुर एवम् जयपुर। इन के अतिरिक्त इन खनिजों के साधारण निक्षेप उत्तर प्रदेश के टेहरी गढवाल एवम् कुमाऊँ तथा जम्मू कश्मीर के रियासी एवम् बारामूला में भी स्थित हैं। इन निक्षेपों मे से अधिकाश वैज्ञानिक महत्त्व के ही हैं और उनका अपना कोई आर्थिक महत्त्व नही है।

झावर की खानें (राजस्थान)

झावर लगभग २२° २३′ उत्तर अक्षांश तथा ७०° ४३′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। मोचिया मोगरा पहाड़ी खनन-कार्य का प्रमुख स्थल है जो सड़क से उदयपुर नगर के ठीक दक्षिण में २७ मील की दूरी पर स्थित है। उदयपुर से टुन्डू (झरिया क्षेत्र) की, जहाँ कम्पनी का विद्रावण यन्त्र (Smelting plant) है, दूरी आगरा किला से होती हुई १०४८ मील है। झावर क्षेत्र अरावली श्रेणियों के अन्तर्गत स्थित है। पहाड़ियों की ऊँचाई घाटी तल से लगभग ४००–५०० फुट है। टोपो शीट के अनुसार समुद्री तल से पहाड़ियों की ऊँचाई १००० फुट से २८०० फुट तक है। इस क्षेत्र का जलवायु भी राजस्थान के अन्य भागों के

समान ही है तथा इस प्रकार की कोई भी समस्या उत्पन्न नहीं करता जिससे खनन-कार्य में किसी प्रकार की बाधा पड़े। जल-वितरण का प्रश्न और विशेषकर पेषण कार्य (Milling) के लिए पानी की प्राप्ति एक मुख्य समस्या थी जो अब तीरी नदी की तली पर बने अधोभूमि (Subsoil) बाँधों तथा अतिच्याव कूपों (Percolation Wells) द्वारा बहुत अंशों तक सुलझ गयी है।

झावर की खान बहुत पुरानी है। उसके आकार तथा आस-पास पड़े हुए धातुकीट के ढेरों से यह अनुमान होता है कि प्राचीन समय में बहुत बड़ी मात्रा में यहाँ से सीसा तथा जस्ता निकाला गया होगा। यहाँ भू-तात्त्विक समीक्षा से ज्ञात हुआ है कि विशाल क्षेत्रों में खनिजीकरण (Mineralization) प्राप्य है जिसमें दो खनिज जिंक ब्लेण्ड (Zinc Blende) तथा गैलेना (Galena) प्रायः साथ-साथ पाये जाते हैं और बहुधा इनके साथ थोड़ी मात्रा में चाँदी भी पायी जाती है। ये खनिज डोलोमाइट स्थानीय शिला (Dolomite Country Rock) में, जो अत्यन्त सिलिकामय (siliceous) है, पाये जाते हैं। ये निक्षेप मुख्य रूप से विदर-पूरण (Fissure filling) प्रकार के हैं तथा इन शिलाओं के साहचर्य में फाइलाइट्स (Phyllites) भी मिलते हैं। मोचिया मोगरा पहाड़ी दो मील से भी अधिक लम्बाई में पूर्व-पश्चिम दिशा में फैली हुई है। इसकी चौड़ाई पूर्वी किनारे पर १½ मील से कुछ कम तथा पश्चिम में एक मील के लगभग है। मुख्य अयस्क-राशियाँ जहाँ खनन-कार्य होता है, संरचना में एक विकृन्तन कटिबन्ध (Shear zone) द्वारा प्रतिबन्धित हैं। इस विकृन्तन कटिबन्ध की चौड़ाई विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न है। अयस्क-राशि का ऊपरी भाग अधिक संघनित (Compact) तथा समृद्ध है तथा नीचे की ओर चौड़ी एवम् कम संकेन्द्रित है। अधिक पूर्व की ओर अयस्क मुख्यतः समृद्ध गोहों (Pockets) में प्राप्त होता है। अयस्क-राशियों का उद्भव मध्य-तापीय (Mesothermal) है। अयस्क खनिज प्रतिस्थापित पट्टिकाओं (Replacement Veins), स्तारित कटिबन्धों (Sheeted Zones) तथा विप्रथित (Disseminated) और अपकीर्ण (Dispersed) भूखंडों (सिध्मों, Patches) के रूप में प्राप्त होते हैं। स्थूल कणोंवाले गैलेना की विशाल गोहें अधिकांशतः सीसा-समृद्ध क्षेत्र में ही मिलती हैं। मुख्य अयस्क खनिजों गैलेना व स्फेलेराइट (Sphalerite) के साथ-साथ पायराइट (Pyrite) भी विद्यमान है। स्फेलेराइट यद्यपि कुछ स्थानों पर अत्यन्त संकेन्द्रित है तथापि अधिकतर यह नियमित रूप से वितरित है, किन्तु गैलेना बड़ी

या छोटी गोहों में ही मिलता है। चाँदी मुख्यतः गैलेना के साथ ठोस विलयन (Solid Solution) में मिलती है तथा उच्च संस्तरों (Horizons) में यह कभी-कभी प्राकृत अवस्था में विदर-पूरण (Fissure Filling) के रूप में भी प्राप्त होती है। भारतीय भूतात्त्विक समीक्षा द्वारा किये हुए आधुनिक अन्वेषण के अनुसार ऐसा अनुमान है कि मोचिया मोगरा नामक पहाड़ी में ही सभी वर्गों के अयस्क लगभग एक करोड़ सात लाख टन होंगे जिसमें से ७ लाख टन से भी अधिक अयस्क उच्च श्रेणी के होंगे।

खनन (Mining), **अयस्क-बंधनसंभार** (Dressing) **तथा साधन** (Treatment)

५०० टन अयस्क प्रतिदिन का खनन विकास कार्यक्रम जून १९५७ से प्रारम्भ हो चुका है। पेषण-समावेशन (Milling Capacity) भी १९५६ के प्रारंभ में ही ५०० टन प्रतिदिन तक पहुँच चुका है। खान में सम्पूर्ण कार्य भूमिगत तथा पूर्णरूपेण आधुनिक खनन यन्त्रों द्वारा संचालित होता है।

सीसा-जस्ता-चाँदी के अयस्क को पहले कूट कर वर्गीकृत किया जाता है और तत्पश्चात् इसका फ्लोटेशन सैल्स (Floatation Cells) में साधन (Treatment) होता है। यहाँ पर स्फेलेराइट इस मिश्रित अयस्क से पृथक् हो जाता है। शेष बचे हुए सीसा-चाँदी अयस्क को टुण्ड्र (ऊरिया क्षेत्र) भेज दिया जाता है जहाँ शोधन के पश्चात् सीसा तथा चाँदी का पृथक्करण किया जाता है। बाद में सीसे का संकेन्द्रण किया जाता है।

भारत में इस समय कोई भी जस्ता का विद्रावण संयंत्र (Smelting plant) नहीं है। अतः संकेन्द्रित जस्ता (Zinc Concentrate), जो भारत में ही उत्पन्न किया जाता है, जापान भेज दिया जाता है। साधन (Treatment) के पश्चात् धातु को भारत वापस भेजा जाता है। खानों के विकास, उत्पादन में वृद्धि और देश की माँग को देखते हुए एक विद्युत्-विश्लेषक (Electrolytic) जस्ता-शोधक के प्रतिष्ठापन की आवश्यकता अब अनुभव होने लगी है क्योंकि वर्तमान स्थिति आर्थिक दृष्टि से अव्यावहारिक है। १२००० टन समावेशन के एक विद्युत्-विश्लेषक जस्ता शोधक संयंत्र के प्रतिष्ठापन के सम्बन्ध में कई देशों से बातचीत भी की गयी है। इसका फल यह हुआ है कि यह संयंत्र इसी वर्ष (१९६०) में कार्य आरंभ कर देगा।

उत्पादन—सीसा तथा जस्ता के सम्बन्ध में उत्पादन के आँकड़े यहाँ दिये

आ रहे हैं। १९५३ से १९५७ तक भारत में उत्पन्न धात्विक सीसे का उत्पादन इस प्रकार है—

वर्ष	मात्रा (टनों में)	मूल्य (रुपयों में)
१९५३	१६९४	१८,३९,४८५
१९५४	१७९१	२३,०८,०००
१९५५	२२३४	३१,१७,०००
१९५६	२४९७	३६,५८,०००
१९५७*	३१७५	३९,४४,०००

इसी प्रकार टुण्डू शोधक संयंत्र में उत्पन्न शुद्ध किये हुए सीसे का उत्पादन निम्न प्रकार है—

वर्ष	मात्रा (टनों में)
१९५०–५१	७७३·९२०
१९५१–५२	१०००·९९६
१९५२–५३	१११४·०००
१९५३–५४	१८४५·०००
१९५४–५५	१८८३·८००

सन् १९५६ तथा ५७ में क्रमशः ६८८० तथा ७४६९ टन जस्ते का संकेन्द्रण उत्पन्न हुआ जिनका मूल्य क्रमशः २,३१६,००० तथा २,५३२००० रुपये हुआ।

भविष्य—यद्यपि भारत के सीसे के उत्पादन में गत कुछ वर्षों से प्रशंसनीय उन्नति हुई, फिर भी माँग तथा उत्पादन के बीच बड़ी भारी खाई है। प्रतिवर्ष १५,००० टन सीसे की देश में माँग रहती है तथा मिश्रधातुओं (Alloys), पिगमेन्ट (Pigment), टेलीफोन उद्योग, तथा रासायनिक एवम् विद्युत उद्योगों में इसका उपयोग किया जाता है। भारत में उत्पन्न सीसे की कुल मात्रा केवल २,५०० टन प्रतिवर्ष के लगभग ही है। इस प्रकार अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए हमें पर्याप्त मात्रा में सीसे का आयात करना पड़ता है।

इसी प्रकार धातविक जस्ते की माँग भी काफी है। प्रतिवर्ष लगभग ३३,०००

* अस्थायी (Provisional)

टन जस्ते का उपयोग पीतल, लोहा, इस्पात, सूती कपड़ों और लेप (Paint) उद्योगों में किया जाता है तथा लगभग सम्पूर्ण जस्ते की माँग की पूर्ति विदेशों से आयात किये हुए जस्ते से होती है।

भारत में हलके तथा भारी उद्योगों के विस्तार के साथ ही सीसे तथा जस्ते की माँग में अभूतपूर्व वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अनेक विस्तार-कार्यक्रम इन खनिजों के विकास के लिए प्रारंभ कर दिये गये हैं तथा अन्य स्थानों पर पूर्वेक्षण कार्य भी हो रहा है। इस सम्बन्ध में अल्मोड़ा तथा टेहरी गढ़वाल (उत्तर प्रदेश) में हाल में ही प्राप्त निक्षेपों पर काफी कार्य हो रहा है तथा अच्छे भविष्य की आशा की जा सकती है क्योंकि इन स्थानों में प्राप्त अयस्क बहुत समृद्ध है। अभी तक यहाँ पर भण्डारों का अनुमान नहीं लग सका है। उधर इस वर्ष के अन्त तक झावर खानों का उत्पादन ६०० टन अयस्क प्रतिदिन हो जायगा तथा जस्ता शोधन संयंत्र भी अपना कार्यारंभ कर देगा। इस प्रकार सीसे तथा जस्ते का उत्पादन क्रमशः ९००० टन तथा १२,००० टन प्रति वर्ष हो जायगा।

ताँबा (Copper)

हजारों वर्षों पहले से मानव ताँबे का उपयोग करता आया है तथा लोहे के पश्चात् शायद यही धातु थी जिसका ज्ञान उस प्राचीन मानव को प्रारंभ में ही हो गया था। प्राचीन समय के सभी सुसंस्कृत देशों--भारत, मिस्र, यूनान, तथा चीन आदि—में उन दिनों में ही ताँबे के धातु-कर्म के सम्बन्ध में वहाँ के निवासियों को पर्याप्त ज्ञान था।

अन्य धातुओं से प्रतिस्पर्धा होते हुए भी ताँबा आज तक लोहे के ठीक बाद दूसरे स्थान पर जमा हुआ है। आज की मानव सभ्यता का यह एक आवश्यक अंग बन चुका है। यह धातु औद्योगिक एवम् सामरिक महत्त्व की तो है ही, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इसकी विशेष महत्ता है। सारे संसार में इस धातु की आवश्यकता उत्तरोत्तर वृद्धि पर है तथा इस बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए धातु के उपयुक्त खनन के साथ ही यातायात के सुलभ साधनों, शोधन व शक्ति संयंत्र तथा विकास के लिए विपुल धन आदि का होना अत्यन्त आवश्यक है।

संसार भर का धातविक ताँबे का वार्षिक उत्पादन २० से २८ लाख टन तक होता है तथा इसके एक बड़े भाग का उपयोग विद्युत् सम्बन्धी वस्तुओं के निर्माण, मोटर गाड़ियों, विभिन्न प्रकार के तारों, प्रकाश व शक्ति-वितरक तारों, भवनों,

तार व टेलीफोन, रेडियो, वातानुकूल यन्त्रों, सामरिक सामग्री तथा अनेक मिश्र-धातुओं के निर्माण में किया जाता है। तांबे के उपयोग में अभूतपूर्व वृद्धि का अनुमान इस से लगाया जा सकता है कि पिछले १०० वर्ष पूर्व से आज तक जो तांबा प्राप्त किया गया है उसका ८०% भाग केवल गत २५ वर्ष में ही उत्पन्न हुआ है। ताँबे के प्रमुख उत्पादक देश संयुक्त राज्य अमेरिका (३६%), चिली (२०%), रोडेसिया (१०%), कनाडा (९%), बेल्जियन कांगो (७%), रूस (७%), तथा मेक्सिको (३%) हैं। थोड़ा सा उत्पादन जापान, जर्मनी, यूगोस्लाविया, पेरू, फिनलैण्ड, स्वीडन, टर्की, दक्षिणी अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया आदि देशों में होता है। भारत में वर्तमान उत्पादित मात्रा देश की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं है और यथेष्ट मात्रा में इसे विदेशों से मँगाना पड़ता है।

भारत में ताँबा प्रायद्वीपीय भाग में प्राचीन धारवाड़ मणिभित (Crystalline) शिलाओं तथा कुडप्पा, बिजावर एवम् अरावली युग की शिलाओं में प्राप्त होता है। प्रायद्वीप बाह्य क्षेत्र (Extra-Peninsular region) में ताँबे के खनिज अत्यन्त कायान्तरित (Metamorphosed) शिलाओं में मिलते हैं। ताँबे के प्रमुख अयस्क चाल्कोपायराइट (Chalcopyrite), मैलाकाइट (Malachite), तथा एज़्यूराइट (Azurite) आदि हैं।

वैसे तो देश के अनेक भागों में, जिनमें सिंहभूम (बिहार), खेत्री व दरीबो (राजस्थान), दार्जिलिंग (बंगाल), अनन्तपुर एवम् नैल्लोर (आन्ध्रप्रदेश), अल्मोड़ा एवम् गढ़वाल (उत्तर प्रदेश) तथा सिक्किम आदि सम्मिलित हैं, ताँबे के निक्षेप मिलते हैं, किन्तु वर्तमान समय में केवल बिहारके निक्षेप ही व्यावहारिक हैं तथा वहीं से तांबे की प्राप्ति होती है।

सिंहभूम में ताँबे के खनिजों की पेटिका (Belt) ८० मील के विस्तार में है। यह पेटिका दुआर पारम से प्रारंभ होकर डालभूम के खर्सवान तथा सिरायकेला प्रभृति स्थानों को पार करती है और फिर राखा तथा मोसाबानी खानों से होती हुई दक्षिण पूर्व में बहारगोरा में समाप्त हो जाती है। वास्तव में ताम्र खनिज इस पेटिका में इतने अनियमित ढंग से फैले हैं कि नियमित रूप से उनका खनन करना असम्भव है। किन्तु यह तथ्य राजदाह तथा बादिया के मध्य क्षेत्र पर लागू नहीं होता। राखा तथा मोसाबानी की खानें इसी क्षेत्र में स्थित हैं। यहाँ प्राप्त ठोस अयस्क की मोटाई कुछ एक इंचों से लगाकर कई फुट तक हो सकती है। राखा की खान में धातु-पट्टिका (Lode) की मोटाई सामान्यतः ५ फुट है जब कि मोसाबानी

में तो कहीं-कहीं ३० फुट तक पहुँच जाती है। मोसाबानी में देशीय-शिला (Country rock) कणाश्म (Granite) है जो पट्टिका के अनुप्रस्थ क्लोराइट-बायोटाइट-क्वार्टज शिष्ट में परिवर्तित हो गयी है। गाखा की खानों में यह स्फटिक शिष्ट है जो क्लोराइट-सेरीसाइट-क्वार्ट्ज शिष्ट में परिवर्तित हो गयी है। प्रमुख खनिज चाल्कोपायराइट तथा पायरोटाइट (Pyrrhotite) है एवम् उप-खनिज पायराइट, पेन्टलैण्डाइट (Pentlandite), बायोलेराइट (Biolarite) तथा मिलेराइट (Millerite) आदि हैं।

आजकल इस क्षेत्र में इण्डियन कॉपर कार्पोरेशन लि० द्वारा खनन-कार्य किया जा रहा है तथा इस कम्पनी का अधिकार-क्षेत्र २४,०८९ एकड़ के लगभग है जिसमें ताम्र-अयस्क उत्पादक मोसाबानी, बादिया तथा धोवानी की खानें भी सम्मिलित हैं। प्रथम दो खानें भूमिगत परस्पर सम्बन्धित हैं तथा धोवानी की खान इनसे कुछ दूरी पर स्थित है। अक्टूबर १९५३ में यह खान बन्द कर दी गयी क्योंकि आर्थिक-स्तर पर इससे ताम्र-खनिजों की प्राप्ति समाप्त हो चुकी थी। मोसाबानी में दो लगभग समानान्तर पट्टिकाओं पर खनन किया गया है। ये पट्टिकाएँ तीन मील तक जाती हैं तथा सन् १९५० में ही इनकी गहराई २००० फुट तक पहुँच गयी थी। उस समय यहाँ पर भण्डारों की मात्रा ३,०८७,१९५ टन आँकी गयी थी जिसमें औसत रूप से २·५१ प्रतिशत ताँबे का अंश था। अयस्क को इन खानों से निकाल कर वायव्य रज्जुमार्ग (Aerial rope way) द्वारा ६ मील की दूरी पर स्थित मऊभाण्डेर (घाट शिला के निकट) को भेजा जाता है। यहाँ पर इस कॉर्पोरेशन के संकेन्द्रण, विद्रावक, शोधक तथा पेषण संयंत्र (Concentration Smelter, refinery and milling plants) स्थित हैं। पहले यहाँ पर उत्पन्न शुद्ध ताँबे को जस्ते में मिलाकर पीतल के उत्पादन में प्रयुक्त करते है, किन्तु सन् १९५० के पश्चात् अब सीधे ताँबे को ही चादरों में ढाल दिया जाता है।

राजस्थान में आज भी प्राचीन खानों के अवशेष खेतड़ी, बबाई तथा सिघाना में दिखाई पड़ते हैं। जयपुर के इस क्षेत्र में बहुत समय से ताँबे का खनन होता रहा है। ये तीनों क्षेत्र अजबगढ़ युग की स्लेट तथा शिष्ट के अन्तर्गत हैं और नियमित रूप से १५ मील के विस्तार में हैं। कुछ समय पूर्व ही अलवर जिले में पुनः ताँबे की खोज की गयी थी और इससे ज्ञात हुआ है कि इस क्षेत्र से आशाजनक फल की प्राप्ति तभी हो सकती है जब विस्तृत रूप से यहाँ पर गवेषणा (Exploration) की जाय। खेतड़ी में एक वर्ष पूर्व भारतीय भूतात्त्विक समीक्षा के पूर्वेक्षण तथा

सर्वेक्षण आदि किया गया था जिससे इस खान में खननीय अयस्क के प्राप्त होने की सूचना मिली है। इसका परिणाम इतना आशाजनक बताया जा रहा है कि बहुत अंशों तक ताँबे के सम्बन्ध में देश आत्म-निर्भर हो जायगा।

आन्ध्रप्रदेश के नैल्लोर जिले में गारीमनी पेन्टा के निकट कुछ प्राचीन खानें मिली हैं तथा गत कुछ वर्षों में अल्प मात्रा में ताँबे की प्राप्ति भी इनसे हुई है। इसी प्रकार चितालद्रुग जिले (मैसूर) में भी कुछ निक्षेप पाये गये हैं, किन्तु इनके सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं है। मध्यप्रदेश में भी ताम्र अयस्क, जबलपुर जिले में सलीमनाबाद व निवाड़ के समीप तथा नरसिंहपुर में मिलती हैं। सलीमनाबाद में अयस्क-पट्टिका की चौड़ाई ६ इंच से ३ फुट तक पायी गयी है।

हिमालय की बाह्य शृंखलाओं में पूर्व में सिक्किम से लेकर पश्चिम में कश्मीर तक विभिन्न दूरियों पर अनेक प्राप्ति-स्थान हैं। सिक्किम में ये निक्षेप भोटांग, डिकचू, रोटक (Rhotak), सिरबोंग, पाचीखानी तथा पाक्योंग नामक स्थानों पर मिलते हैं। यहाँ पर ताँबे का खनिजायन (Mineralization) अत्यन्त मणिभित अभ्रक शिष्ट तथा आयोजित नाइस (Gneiss) शिलाओं की पेटिका में ही सीमित है। भोटांग में दो समानान्तर, किन्तु अनियमित अयस्क की पेटियाँ (Bands) हैं जिनकी मोटाई क्रमशः ३ तथा २ फुट है। इन पेटियों का अयस्क डिकचू के अयस्क की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। दोनों ही स्थानों पर अयस्क-खनिज चाल्कोपायराइट तथा पायरोटाइट (Pyrrhotite) हैं एवम् गैलेना (Galena) तथा स्फेलेराइट (Sphalerite) सामान्यतः, विशेषकर भोटांग में, ताम्र अयस्कों के साथ आयोजित रहते हैं। रोटक (Rhotak) घाटी के अन्य निक्षेप जो सिरबोंग, पाचीखानी, पोक्योंग तथा अन्य स्थानों में मिलते हैं अन्तरस्तरित (Interbedded) प्रकार के ही हैं।

सिक्किम के दक्षिण में पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले में ताम्र खनिज स्लेट तथा शिष्ट शिलाओं में विप्रथनों (Disseminations) के रूप में मिलते हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण निक्षेप कोमाई में हैं जहाँ पर २-४ फुट तक की चौड़ाई के वीक्ष (Lenses) स्लेटों में पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश के अल्मोड़े जिले में भी देवालथाल नामक स्थान में ताँबे की प्राचीन खानें देखी गयी हैं। फिर आगे और पश्चिम की ओर जाने पर गढ़वाल के पोखरी तथा धानपुर स्थानों पर भी इसी प्रकार की प्राचीन खानें मिलती हैं। ऐसा कहा जाता है कि इस क्षेत्र में एक खनिजित प्रदेश है, जो कि ताँबा तथा सीसा आदि के खनिजों की उपस्थिति

से पहिचाना जा सकता है, तथा वह प्रदेश ६० मील के विस्तार में है और भागीरथी घाटी में टेहरी गढ़वाल से लेकर गढ़वाल में धानपुर तक फैला हुआ है। अभी तक इन निक्षेपों की आर्थिक उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। और भी आगे उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ने पर ताँबे की खानों के अवशेष शिमला पहाड़ियों में सोलन के निकट तथा कुल्लू क्षेत्र के अन्य अनेक स्थानों में मिले हैं। कांगड़ा जिले में सुनगाम के निकट छोटे-छोटे वीक्ष पाये जाते हैं जिनमें समृद्ध अयस्क मिलता है, किन्तु अभी तक इनके सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं है। जम्मू तथा कश्मीर में भी ताम्र-मय खनिज अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं तथा कुछ स्थानों पर तो उनका खनन भी किया गया है। दो महत्त्वपूर्ण निक्षेप कश्मीर घाटी में हापटनार के समीप शूमहल तथा रियासी जिले में गैन्टी में स्थित हैं।

हिमालय की इन ताम्र-मय पेटिकाओं का सर्वेक्षण तथा पूर्वेक्षण अभी तक भली प्रकार से नहीं किया गया है। इनके पूर्व-निरीक्षण तथा इन दुर्लभ स्थानों तक पहुँचने के लिए यातायात के साधन जुट जाने पर हम इन निक्षेपों से कुछ प्राप्त करने की आशा अवश्य ही रख सकते हैं।

उत्पादन—गत दस वर्षों से भारत में ताँबे का उत्पादन लगातार थोड़ा-थोड़ा बढ़ रहा है। निम्नांकित सारणी में सन् १९५३ से १९५७ तक पाँच वर्ष के विशुद्ध ताँबे के उत्पादन के आँकड़े दिये जा रहे हैं—

वर्ष	उत्पादन (टनों में)	मूल्य (रुपयों में)
१९५३	४९२०	१,४५,४९,१२८
१९५४	७१६१	२,२२,००,०००
१९५५	७२८१	२,९२,२०,०००
१९५६	७६२८	३,३१,७२,०००
१९५७*	७८४८	२,६३,०२,०००

भविष्य—विशुद्ध ताँबे तथा पीतल का उत्पादन भारत में बहुत ही थोड़ा है तथा आन्तरिक खपत (जो लगभग ३०,००० टन प्रतिवर्ष है) को देखते हुए यह उसकी बहुत थोड़ी आवश्यकता-पूर्ति कर पाता है। दूसरा एक तथ्य और है जिसको भुलाया नहीं जा सकता। देश की औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ देश में उत्पन्न

* अस्थायी

अथवा निर्यात किये हुए कच्चे माल (Raw material) की भी खपत बढ़ेगी जिसका प्रभाव यह होगा कि कम से कम ताँबे के लिए हमें दूसरे देशों की ओर न देखना पड़ेगा। इन सब को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार पूरा प्रयत्न कर रही है कि किसी भी तरह इस सामरिक महत्त्व के धातु के नवीन निक्षेप खोजे जायँ तथा वर्तमान निक्षेपों को शक्तिशाली आधार-शिला पर विकसित किया जाय।

टिन (Tin)

टिन आज के युग की एक महत्त्वपूर्ण धातु है तथा सभी देशों को चाहे वे विकसित हों या अविकसित इसकी आवश्यकता समान रूप से होती है। दुर्भाग्य से भारत में अभी तक टिन का कोई भी स्रोत नहीं मिल सका है जिससे इसका उत्पादन किया जा सके। प्रतिवर्ष हमें अपने विनिमय-मुद्रा-कोष की एक विशाल धन-राशि, जो करोड़ों रुपयों में आती है, इसके आयात में व्यय करनी पड़ती है। इसका मुख्य उपयोग छतें बनाने, डिब्बे आदि के निर्माण में, काँसे तथा पीतल के उद्योगों में, पनारीदार नलिकाओं तथा पाइपों में, मुड़ी हुई चादरों में, मिश्रधातुओं तथा रासायनिक उद्योगों आदि में करते हैं। जोड़ने के कामों में तथा श्वेत-धातु (White metal) के निर्माण में भी इसकी खपत होती है। इनके अतिरिक्त दिन प्रतिदिन की अनेक उपयोगी वस्तुओं का निर्माण भी टिन द्वारा होता है।

उत्पादन व वितरण

सम्पूर्ण संसार का टिन का वार्षिक उत्पादन १५०,००० से २५०,००० टन के बीच होता है। बोलिविया तथा चीन को छोड़कर शेष सारे संसार के उत्पादन का लगभग ७० प्रतिशत भाग जलोढ़ अथवा व्यपघर्षण निक्षेपों से प्राप्त होता है। प्रमुख उत्पादक देशों में मलाया, इंग्लैण्ड, इण्डोनेशिया, चीन, आस्ट्रेलिया, थाईलैण्ड, बोलिविया, नाइजीरिया, कांगो (काटंगा प्रदेश) आदि उल्लेखनीय हैं। बर्मा तथा कुछ अन्य देशों में टिन के साधारण निक्षेप विद्यमान हैं। मलाया सम्पूर्ण संसार के उत्पादन का लगभग एक तिहाई भाग उत्पन्न करता है।

बिहार राज्य के हजारीबाग, रांची तथा गया जिलों में अनेक स्थानों पर टिन खनिज कैसीटेराइट (Cassiterite) की प्राप्ति हुई है, पर इन निक्षेपों को कोई आर्थिक महत्त्व अभी तक नहीं दिया गया है। पारसनाथ के समीप पालगंज में टिन का एक साधारण निक्षेप मिला है। सर लेविस फर्मर के अनुसार यहाँ

पर कैसीटेराइट-ग्रेनूलाइट की एक पतली सी तह (Layer) है जिसकी मोटाई ६ इंच के लगभग है तथा जिसमें ३० से ५० प्रतिशत तक टिन अयस्क विद्यमान है। कई बार इस अयस्क के खनन-कार्य को विभिन्न व्यक्तियों ने सँभालने का प्रयत्न किया, किन्तु असफलता ही हाथ लगी। भविष्य में भी इससे कुछ प्राप्त हो सकेगा, इसकी आशा अभी से नहीं की जा सकती। हज़ारीबाग के अन्य तीन निक्षेप जो सिमरातनरी, पीहरा तथा चप्पतण्ड में मिले हैं केवल भू-वैज्ञानिक महत्त्व के ही हैं। गया जिले में देवराज क्षेत्र तथा छकरबंद में भी कैसीटेराइट के प्राप्त होने की सूचना मिली है। धनरास पहाड़ (छकरबंद) में तो इस खनिज की मात्रा १·५ प्रतिशत तक देखी गयी है। रांची जिले में सिल्ली के समीप यह पिग्मेटाइट में पाया गया है जो ग्रैनूलाइट में अन्तर्भेदित (Intrusive) हैं। इसी जिले के पहाड़सिंह क्षेत्र से पूर्वेक्षण कार्यों के अन्तर्गत कई बार समय-समय पर कैसीटेराइट की प्राप्ति की गयी है। यह काम पिछले छः वर्षों से चल रहा है। भारतीय खनि-विभाग इस क्षेत्र में पूर्वेक्षण-कार्य संचालित कर रहा है। इसी विभाग ने राजस्थान के भीलवाड़ा जिले में शाहपुरा से लगभग १७ मील दूर स्थित परोली क्षेत्र के कैसीटेराइट निक्षेपों का प्रारंभिक निरीक्षण भी किया है। उनके निरीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि यहाँ कुछ स्थानों पर खनिज की मात्रा ०·४ से ०·९ प्रतिशत तक है तथा इनके खनन से कुछ आर्थिक लाभ की आशा की जा सकती है।

जहाँ तक बर्मा का सम्बन्ध है वहाँ कैसीटेराइट के निक्षेप तथा वॉल्फेमाइट के निक्षेप एक ही स्थानों पर पाये जाते हैं। ये दोनों ही खनिज एक दूसरे के साथ आयोजित रहते हैं तथा उनका उद्भव भी एक जैसा ही है। इनके निक्षेप वहाँ मेरगुई जिले के दक्षिणी भाग में कई स्थानों पर मिलते हैं। मेरगुई के उत्तर में तावोय जिला स्थित है। मेरगुई तथा तावोय दोनों में ही भू-वैज्ञानिक स्थितियाँ समान ही हैं। यद्यपि तावोय से मुख्यतः वॉल्फेम ही प्राप्त होता है तथापि इसके घने जंगलों का एक बड़ा भाग कैसीटेराइट में भी समृद्ध है। अल्प मात्रा में खनिज की प्राप्ति एमहर्स्ट (Amherst) तथा थाटोन जिलों से भी हुई है।

आयात—सिंगापुर तथा मलाया भारत को टिन निर्यात करने वाले प्रमुख देश हैं तथा सन् १९५८ में भी कुल आयात की हुई मात्रा के मूल्य का ९० प्रतिशत भाग इन्हीं देशों को प्राप्त हुआ। सन् १९५७ तथा १९५८ में क्रमशः ६,४५७ तथा ५,३१४ टन टिन का आयात किया गया जिसका मूल्य क्रमशः ४८,९८८ तथा ४८,००४ रु० हुआ।

परिच्छेद ५

बहुमूल्य धातुएँ

सोना

मानव के सांस्कृतिक एवम् आर्थिक इतिहास में सोने का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत, चीन, ग्रीक, मिस्र तथा अन्य ऐतिहासिक देशों में भी सोने का चलन प्रागैतिहासिक समय से है। सोने की प्राप्ति या तो शिला-संरचनाओं की पट्टिकाओं से अथवा नवीन या प्राचीन नदियों द्वारा अवसादित एल्यूवियम मिट्टी से की जाती है। सोने के खनन के संबंध में एक बड़ा तथ्य यह है कि जब अन्य धातुओं की प्राप्ति उनके अयस्कों से पर्याप्त मात्रा में सरलतापूर्वक की जा सकती है और साथ ही व्यर्थ-पदार्थों की मात्रा भी कम होती है तब सोने के साथ ऐसा नहीं होता, वरन् इसके निक्षेपों में इसकी स्वयं की मात्रा अत्यन्त अल्प होगी और अन्य व्यर्थ पदार्थों की मात्रा इसकी हजारों गुनी हो सकती है, किन्तु फिर भी आश्चर्य की बात तो यह है कि इतना सब कुछ होते हुए भी आर्थिक दृष्टि से इसका खनन उपयोगी तथा लाभदायक सिद्ध होता है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, प्राचीन समय से ही यहाँ के निवासी या तो खनन द्वारा अथवा नदियों की बालू धोकर सोने की प्राप्ति करते रहे हैं। यही नहीं, इन आदि-निवासियों को सोने की धातुकर्म-कला का भी पर्याप्त ज्ञान था।

भारत में यद्यपि अल्प मात्रा में सोना उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा मद्रास में भी अनेकों नदियों की मिट्टी या रेत में मिलता है, किन्तु इसकी मात्रा अधिकांशतः इतनी कम होती है कि इसके आधार पर आधुनिक ढंग का कोई भी व्यवसाय आरंभ नहीं किया जा सकता, केवल स्थानीय निवासी अपने अवकाश के समय में इस मिट्टी या रेत को धोकर थोड़ा-बहुत सोना निकाल लेते हैं। वर्तमान समय में देश में उत्पन्न सम्पूर्ण सोना मैसूर राज्य के कोलार तथा हट्टी स्वर्ण-क्षेत्रों से आता है। मैसूर तथा आन्ध्र प्रदेश (पहले का हैदराबाद राज्य) के कई भागों में अनेक स्थानों पर प्राचीन खानों के अवशेष मिलते हैं। इनमें से कई खानों में से

तो सोना इतनी अच्छी विधियों से निकाला गया था कि अब लेश मात्र को भी उनमें सोना नहीं रह गया है यद्यपि कुछ में सोने के प्राप्त होने की आशा की जा सकती है।

कोलार स्वर्ण-क्षेत्र (Kolar Gold-Field)

कोलार स्वर्ण-क्षेत्र मैसूर राज्य में है तथा इसकी दूरी मद्रास से पश्चिम की ओर १२५ मील है। यह समुद्र-तल से २८०० फुट ऊँचे पठार पर स्थित है। यहाँ की चार खानें 'मैसूर', 'नन्दीद्रुग', 'उरगाम' और 'चैम्पियन रीफ' संसार की सबसे गहरी खानों में से हैं। सन् १८८२ से सन् १९५५ के पूर्व तक लगभग ८०० टन सोना इस क्षेत्र से प्राप्त किया जा चुका है जिसका मूल्य लगभग ढाई अरब रुपया हुआ। इधर कुछ वर्षों से इसका उत्पादन २००,००० औंस के लगभग रहता है जिसका मूल्य ५ करोड़ रुपये से भी अधिक होगा। पिछले ७० वर्षों से इन खानों में लगातार खनन होता रहा है जिसके फलस्वरूप इनमें से तीन की गहराई ८००० फुट से भी अधिक तथा दो की १००० फुट से अधिक पहुँच चुकी है। चैम्पियन रीफ खान की वर्तमान गहराई लगभग १२००० फुट है और इस प्रकार यह भारत की ही नहीं, अपितु संसार की सबसे अधिक गहरी खान है।

कोलार स्वर्ण क्षेत्र की खानें पूर्व-कैम्ब्रियन हॉर्नब्लेण्ड शिष्ट (Schist) की एक पेटिका में हैं, जो ४० मील तक उत्तर-दक्षिण दिशा में फैली हुई है तथा जिसकी चौड़ाई २ से ४ मील तक हो सकती है। इस पेटिका में प्राप्त शैलभित्ति (Reef) की चौड़ाई कुछ इंच से लेकर २० फुट तक हो सकती है और औसत चौड़ाई ३–४ फुट के लगभग है। इस शैलभित्ति के विभिन्न स्थानों में सोने का वितरण एक-जैसा ही नहीं है। कुछ स्थानों में प्राप्त वीक्ष तथा पट्टिकाएँ स्वर्ण अयस्क में पर्याप्त समृद्ध हैं। इस क्षेत्र में २६ से अधिक ही स्वर्णमय स्फटिक पट्टिकाएँ हैं, किन्तु इनमें से अधिकांश आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी हैं। इस क्षेत्र से उत्पन्न कुल सोने का एक बड़ा भाग चैम्पियन रीफ तथा उसकी शाखाओं से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त आर्थिक-स्तर की एक और पट्टिका (Lode) है जिसको 'ओरिएण्टल लोड' (Oriental Lode)) कहते हैं। ओरिएण्टल पट्टिका चैम्पियन संदर के पश्चिम में लगभग १।३ मील की दूरी पर स्थित है। यह पट्टिका (Lode) पर्याप्त चौड़ी है और पायराइट से समृद्ध है तथा कोलार क्षेत्र की उत्तरी खानों में पायी जाती है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व चैम्पियन तथा ओरिएण्टल पट्टिकाओं से

कुछ ही खानें सोना निकालती थीं और उसका मुख्य कारण यह था कि सोने का औसत मूल्य लगभग ५५ रु० प्रति औंस था तथा इस प्रकार इन खानों को अधिक गहराई तक खोदना और फिर सोने का खनन करना आदि व्यापारिक दृष्टि से अनुपयोगी था। महायुद्ध के प्रारंभ होने से इसका मूल्य दो गुना तक बढ़ गया और इसका फल यह हुआ कि बहुत-सी खानें, जिनमें खनन का काम बन्द कर दिया गया था, पुनः खोल दी गयीं। इस प्रकार ओरिएण्टल पट्टिका पर बहुत गहराई तक काम किया जाने लगा। सन् १९५४ में इसकी गहराई ५००० फुट से भी अधिक हो गयी तथा इस गहराई पर पहले की अपेक्षा और भी अधिक उपयोगी अयस्क की प्राप्ति हुई।

कोलार क्षेत्र की पट्टिकाओं (Veins) का अभिलम्बा (Strike) विस्तार उत्तर-दक्षिण दिशा में है। चैम्पियन रीफ में, जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पट्टिका है, प्राप्त स्फटिक (Quartz) नीले भूरे रंग का है। इसमें प्राप्त सोना अत्यन्त सूक्ष्म कणों में मिलता है जिनको बिना किसी यन्त्र की सहायता से नहीं देखा जा सकता। कुछ स्थानों पर ये पट्टिकाएँ स्फटिक की विशाल राशियों के रूप में देखी जाती हैं जब कि कभी-कभी उनका आकार केवल एक उप-पट्टिका (Veinlet) का ही रह जाता है। कुछ स्थानों पर बलन (Folds) भी देखे गये हैं जिनसे इन पट्टिकाओं की चौड़ाई बहुत बड़े स्तर पर बढ़ गयी है और इस प्रकार ये स्थान उत्तम प्रकार के अयस्क के समृद्ध भण्डार सिद्ध हुए हैं। गौण-खनिजों (Accessory Minerals) में टूरमेलीन (Tourmaline) सबसे महत्त्वपूर्ण है। क्लोरीटॉयड भी सामान्य रूप से मिलता है। अन्य सह-खनिजों में गैलेना, आर्सेनोपायराइट (Arsenopyrite), पायरोटाइट (Pyrrhotite), पायराइट, चाल्कोपायराइट (Chalcopyrite) इल्मेनाइट, मेग्नेटाइट, तथा शीलाइट (Scheelite) आदि मुख्य हैं।

सन् १९५३ में 'उरगाम' खान की गहराई ९८७६ फुट तक पहुँच गयी और इस प्रकार यह उस समय की सबसे गहरी खान घोषित की गयी। किन्तु इसके पश्चात् ही कुछ कारणों से इस खान को बन्द कर देना पड़ा। इस खान की मुख्य अयस्क-राशि दक्षिण की ओर स्थित चैम्पियन रीफ खान की सीमा तक फैली हुई थी। जिन कारणों से इस खान को बन्द करना पड़ा था उनमें से मुख्य कारण यह था कि उरगाम माईनिंग कं० लि० इतनी अधिक गहराई पर इनके सीमित उत्पादन के कारण इसके कार्य-संचालन में असफल रही थी। इसके पश्चात् ही इस कम्पनी

ने अपने अधिकारों को चैम्पियन रीफ गोल्ड माइन्स ऑफ इण्डिया (के० जी० एफ० लि०) को सौंप दिया। यह कम्पनी ही आजकल इस क्षेत्र में खनन-कार्य का संचालन कर रही है।

६ मई १९४९ तक इन खानों का संचालन इनके प्रधान कार्यालय, लंदन से होता था, किन्तु इसके पश्चात् इनका प्रबन्ध जॉन टेलर एण्ड कम्पनी (इण्डिया) लि० को सौंप दिया गया और तब से इनका संचालन मैसूर से ही होता रहा। कोलार की इन सोने की खानों का राष्ट्रीयकरण गत कुछ वर्ष पूर्व ही कर दिया गया है और अब इनका प्रबन्ध मैसूर सरकार के हाथ में है। आजकल भारतीय भू-तात्त्विक समीक्षा (Geological Survey of India) इस क्षेत्र का गहन अध्ययन कर रही है और उत्पादन बढ़ाने के लिए सभी प्रयत्न किये जा रहे हैं।

इस क्षेत्र से सोने का सबसे अधिक उत्पादन सन् १९०५ में हुआ। इस वर्ष उत्पन्न सोने की मात्रा ६१६,७५८ औंस थी। इसके पश्चात् इसका उत्पादन अनवरत रूप से कम होता गया। सन् १९४९–५० में औसत उत्पादन १७५,२५८ औंस था जो भारत में उत्पन्न सोने का ९७% था तथा इसका मूल्य ५,४५,४३,१४० रुपये था। इन आँकड़ों से ऐसा आभास होता है कि जिस स्वर्ण-क्षेत्र से इतने वर्षों से लगातार सोना निकलता रहा हो, शायद भविष्य के कुछ ही वर्षों में उसका अन्त आ जाय। किन्तु अभी इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता।

कोलार क्षेत्र में खनन की समस्याएँ

कोलार क्षेत्र की खानें संसार की सबसे गहरी खानों में से होने के कारण कई वर्षों से अनेकों समस्याएँ उपस्थित करती रही हैं तथा इन समस्याओं का समाधान भी समय-समय पर अनेक भूगर्भ-वेत्ताओं तथा खनन-अभियन्ताओं (Mining Engineers) ने संतोषजनक ढंग से किया है। सबसे पहली समस्या उच्च तापक्रम की है। जैसा कि हम जानते हैं, प्रति ११० फुट की गहराई पर तापक्रम १° फारेनहाइट से बढ़ जाता है तथा इस प्रकार १०००० फुट की गहराई पर तापक्रम १४८° फारेनहाइट तक पहुँच जाता है। आज से १५–२० वर्ष पूर्व जब इन खानों की गहराई ८००० फुट तक पहुँची तो यह अनुभव हुआ कि इस गहराई पर खनन करना कम से कम उन दशाओं में तो असम्भव था और तब इस तथ्य पर बल दिया गया कि यदि इस गहराई पर सोना निकालना ही है तो खानों के भीतर ऐसी उपयुक्त स्थिति उत्पन्न की जाय कि काम करना

सम्भव हो सके। उस समय सभी खानों में वातानुकूलन संयंत्र (Airconditioning plants) लगाये गये। इन संयंत्रों से शीतल वायु का प्रवेश खानों के भीतर अनवरत रूप से कराया जाता है। छोटी खानों में औसत रूप से १२०,००० घन फुट शीतल वायु प्रति मिनट प्रविष्ट करायी जाती है। बड़ी खानों के लिए यह संख्या २५०,००० तक पहुँच सकती है। वातानुकूल साधनों द्वारा ऐसी आशा की जाती है कि १०००० फुट तथा उससे भी गहरी खानों में तापक्रम तथा वायु की कमी के कारण उत्पन्न कठिनाइयाँ बिलकुल ही समाप्त हो जायँगी। किन्तु कुछ खानों में इतना सब करने पर भी स्थिति सामान्य नहीं हो पाती अतः अतिरिक्त वातानुकूलन संयंत्र उन खानों के भीतर गहराई पर स्थापित किये जा रहे हैं।

खनन में उपस्थित दूसरी प्रमुख समस्या शिला-विखण्डन (Rock burst) की है। यह विखण्डन अथवा प्रस्फुटन कभी-कभी बड़े भीषण एवम् भयंकर सिद्ध होते हैं। इनका मुख्य कारण यह है कि ९५०० फुट की गहराई पर प्रति वर्ग फुट पर शिलाओं का दबाव (Rock-pressure) लगभग ८०० टन होता है तथा इस भयंकर दबाव के अन्तर्गत शिलाएँ संपीडित (Compressed) रहती हैं एवम् किसी भी समय अनुपयुक्त खनन के कारण अथवा किसी अन्य कारणवश इनका विखण्डन सम्भव है। कोलार स्वर्ण क्षेत्रमें इस प्रकार के शिला-विखण्डन सामान्यतः १००० फुट की गहराई पहुँचने के पश्चात् अनवरत रूप से होते रहे हैं। खनन के विकसित साधनों के द्वारा इस प्रकार की घटनाओं की संख्या अब पर्याप्त कम हो गयी है।

इसी प्रकार खानोंके भीतर, पहले दीवारें बनाने में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था जिससे थोड़ी-सी गहराई पर पहुँचने से ये दीवारें टूट जाती थीं और कभी-कभी तो भयंकर दुर्घटना का रूप धारण कर लेती थीं। इस समस्या को सुलझाने के लिए कणाश्म (Granite) शिलाओं का उपयोग किया गया जो पर्याप्त उपयुक्त सिद्ध हुई तथा निकटस्थ क्षेत्र में उपलब्ध होने के कारण सरलता से इनका उपयोग सम्भव हो सका।

एक अन्य समस्या, जो किसी भी समय उपस्थित हो सकती है, आग की है। खान के भीतर आग लगने का जो दुष्परिणाम होगा उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। कोलार क्षेत्र की सारी खानों में वायु-वितरण का नियन्त्रण द्वारों के खुलने या बन्द होने से होता है। खान के किसी भी भाग में यदि आग लगती है तो उससे सम्बन्धित वायु-द्वार बन्द कर दिये जाते हैं। खान में काम करने वाले

खनिकों को आग की सूचना देने के लिए एक मनोरंजक विधि का उपयोग किया जाता है। संपीडित वायु मुख्य द्वारों (Compressed air mains) में इलायची का तेल (Eucalyptus oil) उडेल दिया जाता है जिसका फल यह होता है कि दस मिनट में ही सारी खान में इसकी गन्ध फैल जाती है। आगसे रक्षा के लिए पूर्ण सुसज्जित केन्द्रीय आपत्कालीन सहायता स्टेशन (Central Rescue Station) भी है जो किसी भी आपत्कालीन स्थिति में खान में होने वाली धन और जन की हानि को बचाता है।

कोलार स्वर्ण-क्षेत्र के अयस्क में औसत रूप से प्रतिटन खनिज में लगभग पौने तीन माशे सोना पाया जाता है। सोने की मात्रा का इतना कम अनुपात होने पर भी सोने की प्राप्ति में सर्वोत्तम खनन तथा अभियन्त्रीकरण (Engineering) के प्रयुक्त होने से कोलार की खानों से सोने की उपलब्धि आर्थिक स्तर पर हो जाती है। जहाँ तक कोलार नगर का प्रश्न है यह संसार के आदर्श खनन नगरों में से एक है। सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि कोलार क्षेत्र आने वाले अनेक वर्षों तक सोने-जैसी मूल्यवान् धातु की उपलब्धि कराता रहेगा।

३१ मार्च १९५१ तक विभिन्न खानों में स्वर्ण-भण्डारों की अनुमानित मात्रा निम्न प्रकार थी—

खान	मात्रा (टनों में)	अयस्क का औसत वर्ग पेनीवेट (dwt.) प्रतिटन
मैसूर	२६१,२००	१२·३५
चैम्पियन रीफ	५२७,४०९	११·४७
उरगाम	१५५,०२६	९·१५
नन्दीदुर्ग	३२२,५७०	१०·०६

मैसूर का दूसरा स्वर्ण-क्षेत्र हट्टी में स्थित है। राज्य पुनर्गठन (States Re-organisation) के पूर्व यह क्षेत्र हैदराबाद राज्य में था। इस क्षेत्र के कई भागों में प्राचीन खानों के अवशेष मिले हैं। सन् १९४८–५१ (दोनों वर्ष मिलाकर) तक इस क्षेत्र से २०,३३६ औंस सोने की प्राप्ति हुई है जिसका मूल्य ७०,९८,२९० रु० हुआ। सन् १९५१ के सितम्बर के अन्त में अयस्कों के भण्डारों की अनुमानित मात्रा १२८,५०२ टन आँकी गयी थी जिसमें औसत रूप से ५·३२ पेनीवेट (dwt.) प्रतिटन सोने की मात्रा विद्यमान है। इस क्षेत्र में पहले केवल

एक ही पट्टिका (vein) का पता था, किन्तु कुछ दिनों पश्चात् दो नयी पट्टिकाओं का पता चला है जिनसे व्यापारिक स्तर का सोना प्राप्त हो सकेगा।

मैसूर सरकार ने टुमकुर जिले की बेलारा खान के विकास के लिए एक दस वर्षीय कार्यक्रम तैयार किया था जिसके अन्तर्गत १९५३–५४ तक ५४४७ तोले सोना, जिसका मूल्य ५,५३,४०७ रु० हुआ, प्राप्त हुआ। कुछ भू-वेत्ताओं का मत था कि कोलार क्षेत्र का विस्तार शायद आन्ध्र के चित्तूर जिले तक हो। इस दिशा में पर्याप्त काम हुआ और वास्तव में यहाँ से ६००० औंस सोने की प्राप्ति भी हुई। इधर गत ३०–३५ वर्ष से कई बार इस क्षेत्र से सोना निकालने की कोशिश की गयी, किन्तु आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त न होने के कारण इस क्षेत्र में खनन-कार्य बन्द करना पड़ा।

कोलार तथा हट्टी दोनों ही क्षेत्रों में अयस्क के पेषण (Milling) तथा कूटने (Crushing) आदि के लिए संयंत्र स्थापित किये गये हैं। कोलार के स्वर्ण अयस्क में अधिकांशतः स्वतन्त्र रूप से सोना (Free Gold) मिलता है, बहुत ही अल्प मात्रा में इसमें सल्फाइड आदि होता है तथा इस प्रकार धातु-कर्म की दृष्टि से यह कोई समस्या उत्पन्न नहीं करता और सरलतापूर्वक सायनीडेशन (Cyanidation) विधि द्वारा सोने की प्राप्ति हो जाती है।

सन् १९५६ तथा १९५७ में भारत के सभी क्षेत्रों से कुल मिलाकर २०९,००० तथा १७९,००० औंस सोना उत्पन्न हुआ जिसका मूल्य क्रमशः ५७,६७३,००० तथा ५१,०६९,००० रुपये आँका गया।

जहाँ तक सोने के उत्पादन का प्रश्न है भारत इसमें आत्मनिर्भर है। पहले भारत में उत्पन्न सोने का एक बड़ा भाग निर्यात कर दिया जाता था, किन्तु द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् निर्यात बन्द कर दिया गया। देश में उत्पन्न सोना अधिकांशतः आन्तरिक आवश्यकताओं, जिनमें आभूषण मुख्य हैं, की पूर्ति के लिए पर्याप्त है, किन्तु उत्पादन और खपत की वर्तमान दर के अनुसार यह संभव है कि कुछ वर्षों के पश्चात् हमें सोने का आयात करना पड़े। इस समस्या से बचने के लिए सोने के संरक्षण (Conservation) पर विशेष बल दिया जाने लगा है।

चाँदी

सोने की भाँति यद्यपि चाँदी का उपयोग भी भारत में अन्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है, किन्तु जहाँ तक उत्पादन का सम्बन्ध है उससे देश की आव-

व्यकता का एक अंश ही पूरा होता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रतिवर्ष हमें विदेशों से लाखों रुपये की चाँदी का आयात करना पड़ता है। विदेशी विनिमय-मुद्रा के अभाव के कारण इधर कुछ वर्षों से चाँदी के आयात में पर्याप्त कमी कर दी गयी है। आजकल इस बात का पूरा प्रयत्न किया जा रहा है कि देश के उन सभी संसाधनों को काम में लाया जाय जिनसे थोड़ी मात्रा में भी चाँदी की प्राप्ति हो सकती है।

संसार के वे देश जो चाँदी के उत्पादन में प्रमुख स्थान रखते हैं मैक्सिको, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा पेरू हैं तथा सम्पूर्ण संसार के कुल उत्पादन का लगभग ६० प्रतिशत भाग इन देशों से प्राप्त होता है। इन देशों तथा अन्य कुछ देशों का पृथक्-पृथक् उत्पादन इस प्रकार है—

मैक्सिको ३३%, संयुक्तराज्य अमेरिका १६%, कनाडा १०%, पेरू ९%, आस्ट्रेलिया ७%, बोलिविया ५%, बेल्जियन कांगो ५%, होंडूराज २%, तथा अन्य देश १३%।

सन् १९५८ में प्रथम पाँच देशों मैक्सिको, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, पेरू तथा आस्ट्रेलिया का उत्पादन क्रमशः १,४६१,८६४; १,०२७,१००; ९७३,८८२; ९५७,९८८ तथा ५०५,४३२ किलोग्राम था।

उपयोग तथा खपत

चाँदी का उपयोग प्रमुख रूप से विभिन्न देशों की सरकारें मुद्रा-कोष कार्यों के लिए करती हैं। भारत तथा कुछ अन्य देशों में इसका प्रयोग पर्याप्त मात्रा में आभूषणों आदि के निर्माण में किया जाता है। रासायनिक उद्योगों तथा औषधि-निर्माण में भी यह काम में लायी जाती है। फोटोग्राफी उद्योग में चाँदी का प्रमुख स्थान है और गत कुछ वर्षों से सुरक्षात्मक उद्योगों (Defence Industries) में इसका महत्त्व इसलिए बहुत अधिक हो गया है क्योंकि इसका उपयोग अणु-आयुधों के निर्माण में भी किया जाता है। भारत की साधारण जनता सोने की भाँति चाँदी को भी अपने पास संचित करके रखती है जो सुरक्षित पूंजी की भाँति उनके पास रहती है क्योंकि बैंकिंग की सुविधाओं की देश में बहुत कमी है। सन् १९५८ में भारत में चाँदी की खपत का अनुमान ३५१९ किलोग्राम था।

वितरण

सम्पूर्ण संसार में चाँदी के उत्पादन का आधे से अधिक भाग सीसा तथा जस्ता

के अयस्कों से प्राप्त होता है। चाँदी सदैव ही इन अयस्कों के साथ आयोजित रहती है। यह दूसरी बात है कि चाँदी की मात्रा किन्हीं स्थानों में कम तथा अन्य अयस्कों में अधिक हो। ताँबे के भी कुछ अयस्क ऐसे होते हैं जिनमें चाँदी की कुछ मात्रा विद्यमान रहती है। इस प्रकार के अयस्क भारत में अनेक स्थानों पर मिलते हैं, किन्तु राजस्थान में झावर (उदयपुर) को छोड़कर कोई भी अयस्क इस प्रकार के नहीं हैं जिनसे आर्थिक स्तर पर चाँदी की अथवा सीसे या जस्ते की ही प्राप्ति की जा सके। इन अयस्कों का विद्रावण (Smelting) तथा शोधन (Refining) मेटल कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया द्वारा संस्थापित विद्रावकसंयंत्र से किया जाता है जो बिहार में कटरासगढ़ के समीप टुण्डू नामक स्थान में स्थित है। विद्रावण तथा शोधन की विधियों में चाँदी के अतिरिक्त अन्य अशुद्धियों के रूप में कुछ ताँबा तथा एण्टीमनी, बिस्मथ, लोहा, कैडमियम तथा आर्सेनिक की बहुत ही अल्प मात्राएँ भी मिलती हैं। सीसे तथा जस्ते के संकेन्द्रण, जो टुण्डू में प्राप्त किये जाते हैं, उनमें क्रमशः २५-३० औंस तथा ५-६ औंस चाँदी प्रतिटन तक होती है।

इसी प्रकार कोलार स्वर्ण-क्षेत्र से प्राप्त सोने के साथ भी थोड़ी मात्रा में चाँदी आयोजित रहती है जो विद्रावण तथा शोधन के पश्चात् प्राप्त की जाती है। हुट्टी स्वर्णक्षेत्र से भी यह उपजात के रूप में उत्पन्न होती है।

उत्पादन

सन् १९५८ का उत्पादन पूर्व वर्ष (१९५७) के उत्पादन से लगभग १३ प्रतिशत कम हुआ क्योंकि राजस्थान से प्राप्त होनेवाली चाँदी के उत्पादन में कमी हो गयी। इसी प्रकार कुछ कमी मैसूर क्षेत्र के उत्पादन में भी हुई। निम्न तालिका में चाँदी का दो वर्षों का उत्पादन दिया जा रहा है—

	१९५७		१९५८	
	मात्रा (किलोग्राम)	**मूल्य** (रु० ०००)	**मात्रा** (किलोग्राम)	**मूल्य** (रु० ०००)
राजस्थान	३,५०५	५४१	३,०३८	४८७
मैसूर	४१०	६४	३७८	६१
योग	३,९१५	६०५	३४१६	५४८

आयात

सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत में चाँदी का आयात क्रमशः ७६ तथा १०३ किलोग्राम हुआ जिनका मूल्य क्रमशः २१००० रु० तथा १७००० रु० था।

परिच्छेद ६

हलकी धातुएँ

एल्यूमीनियम

एल्यूमीनियम उद्योग का प्रारंभ भारत में ६ मार्च १९४३ को हुआ, जब कि प्रथम बार व्यापारिक स्तर पर इस धातु का उत्पादन इण्डियन एल्यूमीनियम कम्पनी के अलुपुरम् वर्क्स की भट्ठियों से किया गया। यह धातु आज विश्व की सर्वाधिक उपयोगी धातुओं में से एक है। इसके इतने अधिक उपयोग हैं कि शायद इसके बिना आज की मानव सभ्यता निष्प्राण हो जायगी। डा० विलियम जे० हेल (Dr. William J. Hale) ने सन् १९३३ में इस बात की भविष्यवाणी की कि मानव लौह-युग से उस युग की ओर जा रहा है जहाँ मैग्नीशियम तथा एल्यूमीनियम का कहीं अधिक उपयोग होगा। यह वक्तव्य बहुत कुछ अंशों तक ठीक है। इस भविष्यवाणी के २५ वर्ष पश्चात् ही एल्यूमीनियम का उत्पादन तथा उपयोग पहले से बीस गुना अधिक हो गया है और आज भी यह उद्योग अत्यधिक गति से उन्नति कर रहा है, जो इस बात का प्रमाण है कि इस उद्योग का भविष्य अपूर्व उज्ज्वल है।

यह धातु व्यापारिक धातु के रूप में तभी आ सकी जब कि अमेरिका में हाल (Hall) ने तथा फ्रान्स में हिरॉल (Heroult) ने सन् १८८६ में विद्युत्-विश्लेषण विधि (Electrolytic process) द्वारा एल्यूमिना (Alumina) से एल्यूमीनियम की प्राप्ति की। उस समय इस धातु का उत्पादन-मूल्य ३० रु० से ३ रु० प्रति पौण्ड तक आ गया।

क्लार्क तथा वाशिंगटन के अनुसार अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी की पर्पटी (Crust) में एल्यूमीनियम धातु अनुपात से पृथ्वी के कुल भार की ८·१३% होगी। इस प्रकार एल्यूमीनियम खनिजों को अत्यधिक मात्रा में ही नहीं अपितु असमाप्य समझा जा सकता है। ये खनिज अधिकांश रूप से एल्यूमीनियम के

आक्साइड (Oxides) हैं जो सिलिकन (Silicon) तथा लोहे (Iron) के संयोग में प्राप्त होते हैं। वर्तमान समय में एल्यूमीनियम का केवल अयस्क बॉक्साइट (Bauxite) है जो व्यावहारिक तथा व्यापारिक स्तर पर एल्यूमीनियम उत्पादन में प्रयुक्त होता है।

एल्युमीनियम के गुण—इस धातु के वे गुण जिनके कारण इसका उपयोग अत्यन्त विस्तृत हो गया है निम्न प्रकार हैं—हलकापन, घातवर्ध्यता (Malleability), संक्षारण का प्रतिरोध, उच्च-वैद्युतिक तथा तापीय संचालकता (High electric and heat conductivity), रजत-द्युति तथा ताप को परावर्तित (reflect) और विकिरित (radiate) करने की पर्याप्त सामर्थ्य। अन्य धातुओं से मिलकर यह अनेकों मिश्र-धातुओं (alloys) का निर्माण करता है जिनके विभिन्न भौतिक-यांत्रिक गुण (mechanical properties) हैं तथा जिन मिश्र-धातुओं को इस्पात (Steel) की भाँति ही अनेकों संरचनात्मक (Structural) तथा अन्य इंजीनियरिंग सम्बन्धी कार्यों में प्रयुक्त किया जा सकता है।

उपयोग—प्रारंभिक उपयोगों में कुछ साधारण वस्तुएँ ही सम्मिलित थीं जैसे बरतन अथवा कुछ अच्छी तुलाओं (Balances) के पलड़े। इसके पश्चात् इस धातु का उपयोग विद्युत-संचालन में किया गया, जहाँ यह ताँबे से भी अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। विश्वयुद्धों के कारण इसके उत्पादन तथा उद्योग को पर्याप्त बढ़ावा मिला और इसका उपयोग ऊँचे स्तर पर वायुयानों के निर्माण में होने लगा। लगभग तीस वर्षों से इसकी अनेकों मिश्र-धातुएँ इस्पात के स्थान पर, संरचनात्मक कार्यों, रेल के डब्बों तथा जलयानों के निर्माण-कार्य में भी प्रयुक्त होने लगी हैं। उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि तथा सामरिक दृष्टि से अत्यधिक खपत होने के कारण अन्य क्षेत्रों में भी इसका उपयोग आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गया है। गत कुछ ही दिन पूर्व अमेरिका में एल्यूमीनियम की एक ऐसी मिश्रधातु विकसित की गयी है जो ध्वनि-वेग से चलने वाले वायुयानों की ऊपरी सतह पर वायु के तीव्र घर्षण द्वारा उत्पन्न ताप का बड़ी सरलता से सामना कर सकती है। इस मिश्र-धातु को अनेकों प्रक्षेप्यास्त्रों (Missiles) तथा अग्निबाणों (Rockets) में प्रयुक्त किया गया है। विशाल स्तर पर इस धातु का उपयोग परमाणु-चिति (Atomic Pile)' को आच्छादित (Cladding) करने तथा विखण्डनीय पदार्थों (Fissionable material) जैसे भोजन आदि को परमाणु-विकिरण से सुरक्षित रखने के लिए बरतन (Containers) के निर्माण के लिए होता है। इसके अतिरिक्त

इसका उपयोग रसायनों (Chemicals), तापरोधी पदार्थों (Refractories), अपघर्षी (abrasives) तथा एल्यूमीनियम के सीमेन्टों (Aluminous Cements) में भी होता है।

उत्पादन विधियाँ (Manufacturing Processes)

गत सत्तर वर्षों से एल्यूमीनियम का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन दो विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है। प्रथम विधि में बॉक्साइट से उच्च विशुद्धता का एल्यूमिना (Alumina) तैयार किया जाता है तथा दूसरी विधि में एल्यूमीनियम का उत्पादन एक द्रव-तापन (liquid bath) से, जिसमें क्रायोलाइट तथा कुछ अन्य लवण (Salts) रहते हैं, किया जाता है। इन दोनों विधियों में कोई उभय कार्यविधि (Common Operation) नहीं है, अपितु दोनों ही नितान्त विभिन्न प्रणालियाँ हैं। बॉक्साइट से एल्यूमिना-उत्पादन की अनेकों विधियाँ हैं किन्तु सर्वाधिक उपयुक्त तथा आर्थिक दृष्टि से उत्तम विधि "बेयर विधि" (Bayer Process) है जिससे उत्तम प्रकार का एल्यूमिना तैयार किया जा सकता है। इस विधि द्वारा लगभग सभी देश एल्यूमिना का निर्माण करते हैं।

एल्यूमीनियम-निर्माण की आधारभूत आवश्यकताएँ--

बेयर विधि से एल्यूमिना तथा वैद्युतिक विश्लेषण विधि द्वारा विशुद्ध एल्यूमीनियम का उत्पादन करने के लिए बॉक्साइट तथा सस्ती विद्युत् के अतिरिक्त अनेक पदार्थों की आवश्यकता होती है। लगभग दो टन एल्यूमिना से एक टन एल्यूमीनियम की प्राप्ति होती है और दो टन एल्यूमिना के निर्माण के लिए निम्न कच्चे पदार्थों (Raw Materials) की आवश्यकता होती है।

(१) ४ से ५ टन तक बॉक्साइट (Bauxite)
(२) ४ से ५ टन तक कोयला (Coal)
(३) लगभग १८ टन कॉस्टिक सोडा (Caustic Soda) तथा
(४) पर्याप्त मात्रा में पानी।

इसी प्रकार एक टन एल्यूमीनियम उत्पादन करने के लिए निम्न कच्चे पदार्थों की आवश्यकता होगी —

(१) २ टन एल्यूमिना
(२) ०·६ टन सोडरबर्ग पेस्ट (Soderberg Paste)

(३) २०,००० से २५,००० कि० वा० आ० (K.W.H.) विद्युत शक्ति
(४) ०·०४ टन क्रायोलाइट (Cryolite)
(५) ०·००६ टन एल्यूमीनियम फ्लोराइड (Aluminium Fluoride)
(६) ०·००७ टन सोडाभस्म (Soda Ash) तथा
(७) ०·००२ टन एल्यूमीनियम केसिंग (Aluminium Casing)

बाक्साइट (Bauxite)

बॉक्साइट की संरचना बहुत ही विषमांग (Heterogeneous) है और यही कारण है कि इसको स्पष्ट रूप से एक खनिज के नाम से नहीं पुकारा जा सकता। यह वास्तव में एक शिला (Rock) है जो मुख्य रूप से एल्यूमीनियम के हाइड्रोक्साइड द्वारा निर्मित है। इसके साहचर्य में सिलिका (Silica), लोहा तथा टाइटेनिया (Titania) भी रहता है। इसके अतिरिक्त बॉक्साइट की कुछ अन्य अशुद्धियाँ (Impurities) टाइटेनियम, वेनेडियम (Vanadium) तथा फॉस्फोरस हैं। अभी तक प्राप्त बॉक्साइट में तीन हाइड्रेट आक्साइड (Hydrated Oxides) पाये गये हैं।

(१) बोकमाइट (Bochmite) जो आल्फा-मोनोहाइड्रेट है तथा जिसमें ८५.०१% एल्यूमिना रहता है।
(२) डायस्पोर (Diaspore) जो बीटा-मोनो हाइड्रेट (Beta-mono-hydrate) है, जिसमें ८५.०१% एल्यूमिना की मात्रा है।
(३) गिबसाइट (Gibbsite) जो आल्फा-ट्राईहाइड्रेट है, जिसमें ६५·४१% एल्यूमिना रहता है।

रूस, चीन, आरकान्सास (संयुक्त राज्य अमेरिका) तथा भारत में जम्मू और कश्मीर के निक्षेप डायस्पोरिक (Diasporic) प्रकार के हैं। बोकमाइट-निक्षेप मुख्यतः यूरोपीय देशों में स्थित हैं। गिबसाइट प्रकार के निक्षेप विस्तृत रूप से नम, समशीतोष्ण तथा उप-समशीतोष्ण (Sub-tropical) प्रदेशोंमें, जहाँ बारी बारी से नम तथा सूखी ऋतु रहती है, विकसित हुए हैं। इन प्रदेशों में कैरीबियन द्वीप (Caribbean Islands), सुरीनाम (Surinam), ब्राजील, ब्रिटिश गायना, घाना तथा प्रायद्वीपीय भारत सम्मिलित हैं।

वर्तमान विश्व एल्यूमीनियम-उद्योग की एक मुख्य विशेषता यह है कि वे क्षेत्र जिनमें एल्यूमीनियम अयस्क के प्रचुर भण्डार स्थित हैं, एल्युमीनियम धातु को उत्पन्न

करने में असमर्थ हैं या वर्तमान समय में उत्पन्न नहीं करते। एल्यूमीनियम-धातु उद्योग कच्चे पदार्थों के प्राप्ति-स्थानों के बजाय उन स्थानों पर केन्द्रित है जो कि सस्ती विद्युत-शक्ति के स्रोत हैं। संसार के महत्त्वपूर्ण बाक्साइट निक्षेप अविकसित देशों, जैसे ब्राज़ील, जमाइका, घाना तथा भारत में स्थित हैं, जब कि एल्यूमीनियम उत्पादन का अधिकांश भाग उन देशों से आता है जहाँ बाक्साइट निक्षेप या तो महत्त्वपूर्ण नहीं हैं या निक्षेप प्राप्य ही नहीं हैं। कनाडा, पश्चिमी जर्मनी, नार्वे, स्वीडन, स्पेन, स्विट्ज़रलैण्ड, इंग्लैण्ड, जापान आदि देशों में कोई बॉक्साइट निक्षेप नहीं हैं तथापि अवकरण संयंत्र (Reduction plants) अधिकांशतः इन्हीं देशों में स्थित हैं और ये देश "स्वतंत्र संसार" (Free World) की ३३% एल्यूमीनियम धातु का उत्पादन करते हैं। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व-उत्पादन का ५०% उत्पन्न करता है, यद्यपि बॉक्साइट के निक्षेप वहाँ भी या तो घटिया वर्ग (Poor grade) के हैं या सीमित हैं। इसका कारण भी अत्यन्त सरल है। एल्यूमीनियम के प्रत्येक पौण्ड उत्पादन के लिए ८.५ कि० वा० आ० (K. W. H.) विद्युत शक्ति की आवश्यकता होती है तथा एल्यूमीनियम-उत्पादन में व्यय हुई सम्पूर्ण पूँजी का २०% केवल शक्ति (Power) की खपत पर व्यय आता है।

आजकल अल्प विकसित देश, उपयुक्त एवम् विशाल बॉक्साइट भण्डारों से समृद्ध होते हुए भी दुर्भाग्यवश शक्ति (Power) के नाम पर शून्य हैं।

सन् १९५७ में सम्पूर्ण स्वतन्त्र संसार (Free World) का बॉक्साइट-उत्पादन लगभग १८,३००,००० टन आँका गया, जिसका अर्ध भाग से अधिक कैरीबियन क्षेत्र (Carribean Region) से आया। इसी प्रकार एल्यूमीनियम धातु का उत्पादन इसी वर्ष २,७३४,००० टन रहा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि रूस तथा अन्य पूर्व-यूरोपीय देशों का कुल धातु-उत्पादन लगभग ७००,००० टन हुआ।

उपर्युक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि एल्यूमीनियम-उत्पादक देशों को बॉक्साइट की आवश्यकता-पूर्ति के लिए इसका आयात अधिकांशतः दूर के देशों से करना पड़ता है। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमेरिका में डायस्पोरिक बॉक्साइट के भण्डार केवल आरकेन्सास (Arkansas) में ही सीमित हैं, जब कि इस देश के बड़े बड़े अवकरण संयंत्र (Reduction Plants) ३,०००,००० टन एल्यूमिना को प्रति वर्ष धातु में परिवर्तित करते हैं तथा इस देश का सम्पूर्ण आन्तरिक बॉक्साइट-उत्पादन केवल ६००,००० टन प्रति वर्ष ही है। इस प्रकार संयुक्त राज्य को

जमैका, सुरीनाम तथा ब्रिटिश गायना से बॉक्साइट अयस्क का आयात करना पड़ता है। यही स्थिति कनाडा की है। इस तरह कच्चे पदार्थों तथा समापित उत्पादनों (Finished Products) की दूरी हजारों मील है। किन्तु यह कठिनाई दूर करने के लिए कुछ प्रयत्न प्रारंभ हो गये हैं। जिन स्थानों की दूरी अत्यन्त अधिक है वहाँ बॉक्साइट-अयस्क के प्राप्ति-स्थान पर ही बॉक्साइट का शुद्धीकरण करके उसको एल्यूमिना (Alumina) में परिवर्तित कर दिया जाया करेगा, जिससे संवहन (Transport) के व्यय में कम से कम ५०% कमी हो जायगी।

अनेक अविकसित देशों के स्वतन्त्र हो जाने के कारण साम्राज्यवादी देशों के हाथों से इन देशों का निकल जाना भविष्य की परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन होने का सूचक है। सभी देश, मुख्य रूप से अविकसित देश, आज इस बात के प्रयत्न में हैं कि किसी प्रकार उनके प्राकृतिक संसाधनों (Resources) का उन्हें अधिकाधिक लाभ मिले। इस सब का प्रभाव एल्यूमीनियम उद्योग पर विशेष रूप से होगा। इसका कारण यह है कि वर्तमान समय में इन अविकसित देशों के पास शक्ति-साधन नहीं हैं, किन्तु प्रत्येक देश इन साधनों का विकास अपनी सीमा के अन्तर्गत करना चाहता है और जब इनके पास अपनी स्वयम् की शक्ति (Power) होगी तो ये अपने उद्योगों को अपने देश में ही विकसित करने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे। उस समय इनको कच्चे पदार्थों का अन्य देशों को निर्यात करने की आवश्यकता नहीं रह जायगी, जो आज उनके साधनों के अविकसित होने का कारण है।

संसार के बॉक्साइट भण्डार

महाद्वीप	करोड़ टनों में
यूरोप	६१.७२०
दक्षिण अमेरिका	३०.७००
आस्ट्रेलिया-क्वीन्सलैण्ड	१०.०००
अफ्रीका	२३.५००
एशिया	३९.१२० (भारत ३०.०० करोड़ से अधिक)
*कैरीबियन द्वीप	३४.९५०

*** इसको महाद्वीप न समझिए।**

ये आँकड़े अधिक विश्वसनीय नहीं हैं तथापि आज तक प्राप्त विभिन्न देशों की सूचनाओं एवम् अनुमान पर आधारित हैं। कम से कम भारत के सम्बन्ध में तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि यहाँ के भण्डार ३० करोड़ टन से कहीं अधिक हैं। श्री जे० सेबोट (J. Sabot) के अनुसार धातु-वर्ग (Metal Grade) का उत्तम बॉक्साइट अमरकंटक (मध्य प्रदेश) में ही २० से ३० करोड़ टन तक होगा।

जहाँ तक एल्यूमीनियम का सम्बन्ध है, भारत की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ है। भारत के पड़ोसी, बर्मा, श्रीलंका, पाकिस्तान तथा मध्यपूर्वीय देशों में बॉक्साइट का अभाव होने के कारण भारतीय एल्यूमीनियम उद्योग के एक सुदृढ़ व्यापारिक स्तर पर विकसित होने का अवसर हाथ में है। यदि भारत में इस उद्योग को इतना विकसित किया जाय कि आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त हम अन्य पड़ोसी देशों को भी एल्यूमीनियम-धातु तथा उसके उत्पादनों का निर्यात कर सकें तो इस उद्योग का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल एवम् आशायुक्त है।

एल्यूमीनियम उद्योग में प्रयुक्त अनेक विधियों में सुधार तथा अन्वेषण-कार्यों में उन्नति होने के फलस्वरूप कुछ अधोवर्गीय (Lower-graded) अयस्कों का भी उपयोग हो सकेगा तथा धातु-उत्पादन की मात्रा बढ़ने की और भी अधिक संभावनाएँ हो जायँगी। विदेशों में इस दिशा में हुए नवीन अन्वेषण पर्याप्त आशातीत प्रतीत होते हैं।

भारत के बॉक्साइट निक्षेप

भारत के सभी बॉक्साइट निक्षेप लैटेराइट (Lateritic) प्रकार के हैं और उनमें से अधिकांश असिताश्म लावाओं (Basaltic lavas) के ऋतुक्षरण (Weathering) द्वारा उत्पन्न हुए हैं। प्राथमिक बॉक्साइट साधारणतया अधित्यका अथवा छोटे समतल शृंग शैलों की टोपिकाओं (Cappings) के रूप में प्राप्त होता है।

नवीन अनुमान के अनुसार सारे विश्व में बॉक्साइट के भण्डार दो अरब टन आँके गये हैं, किन्तु इस अनुमान को यदि रूढ़िवादी और नितान्त अविश्वसनीय कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। संसार में बॉक्साइट के भण्डार इतने विपुल हैं कि भविष्य में किसी भी आवश्यकता की पूर्ति करने में वे समर्थ होंगे। भारतीय भूतात्त्विक समीक्षा द्वारा दिये गये आँकड़ों के अनुसार भारत में बॉक्साइट के भण्डार

२०.०-२५.० करोड़ टन हैं, जिनमें सभी वर्गों का बॉक्साइट सम्मिलित है। इसमें २.५-३.० करोड़ टन बॉक्साइट उत्तम वर्ग का तथा उत्पादन की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त है। इस प्रकार के बॉक्साइट की संरचना निम्न प्रकार की होनी चाहिए—

Al_2O_3	५२ % से भी अधिक
SiO_2 क्रियात्मक (Reactive)	३% से कम
FeO (फेरस) ..	३% से कम
(Loss on Ignition)	२८%

वैद्युत-रासायनिक परिषद की भारतीय शाखा (Indian section of Electro-Chemical Society) की अक्टूबर १९५५ की पत्रिका में भारत में उत्तम वर्ग के बॉक्साइट का अनुमान ३.५५ करोड़ टन किया गया था। सन् १९५७ के फ्रांसीसी प्रतिनिधि मंडल ने, (French Mission) जिसमें मेसर्स पेशिने एण्ड कं० ऑव फ्रांस (M/s Pechinney & Co. of France) के श्री जे० सेबोत (J. Sabot) भी थे, निम्नलिखित खननीय निक्षेपों को एल्यूमीनियम उद्योग के लिए संस्तुत (Recommend) किया है—

क्र० स० क्षेत्र	निक्षेप	टिप्पणी (Remark)
१. कटनी (म० प्र०)	१० लाख टन	महत्त्वपूर्ण नहीं
२. सौराष्ट्र (गुजरात)	,,	,,
३. शिवारोय पहाड़ियाँ (जि० सेलम, मद्रास)	३०-४० लाख टन	कुछ वर्षों पर्यंत एक लघु एल्यूमीनियम संयंत्र के लिए पर्याप्त
४. कोल्हापुर (बम्बई)	५ करोड़ टन	संस्तुत (Recommended)
५. विलासपुर क्षेत्र (अमरकंटक, म० प्र०) तथा मैनपट निक्षेप (अमरकंटक से १५० कि० मी० की दूरी पर स्थित)	कई करोड़ टन उत्तम बॉक्साइट	एक विशाल एल्यूमीनियम उत्पादन केन्द्र के लिए विशेष रूप से संस्तुत

बॉक्साइट के निक्षेप भारत में बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मद्रास, जम्मू व कश्मीर तथा मध्य प्रदेश में विद्यमान हैं। इन प्रदेशों में बॉक्साइट के भण्डार निम्न प्रकार हैं—

प्रदेश	भण्डार	सर्वेक्षक
बिहार	९० लाख टन	भा० भू० स० (G.S.I.)
मध्य प्रदेश	२०-३० करोड़ टन	जे० सेबोत (J. Sabot)
उड़ीसा	८० हजार टन	भा० भू० स०
बम्बई (सौराष्ट्र सहित)	५.१ करोड़ टन	जे० सेबोत
मद्रास	३०-४० लाख टन	,,
जम्मू व कश्मीर	२० लाख टन	भा० भू० स०

भारतीय बॉक्साइट का विशेष विवरण—

बिहार

बिहार के बॉक्साइट-निक्षेप राँची तथा पालामऊ जिले में छोटा नागपुर उच्च-स्थली (Plateau) पर स्थित हैं। इनकी ऊँचाई समुद्रतल से २५००-३५०० फुट है। सरकारी तथा व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा संतोषजनक एवम् विस्तृत पूर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि इन निक्षेपों की मोटाई स्थान-स्थान पर भिन्न भिन्न है। अनुमानित भण्डारों की मात्रा ९,०००,००० टन है। यहाँ प्राप्त बॉक्साइट के निक्षेप मुख्यतः गिबसाइटिक (Gibbsitic) प्रकार के हैं, जिनमें एल्यूमिना (Alumina) की मात्रा ४७ से ६८ %, सिलिका १–४ %, लोह-आक्साइड ३-१० %, टाइटेनिया (Titania) ८-१२% है।

लोहारडागा रेलवे स्टेशन से ६ से ४० मील तक दूर स्थित निक्षेपों पर एल्यूमीनियम कार्पोरेशन ऑव इण्डिया तथा इण्डियन एल्यूमीनियम कं० का अधिकार है। ये दोनों कम्पनियाँ ३०,००० टन बॉक्साइट प्रति वर्ष निकालती हैं। इसका मूल्य १८ रु० प्रति टन के लगभग पड़ता है। हीराकुड में अवकरण संयंत्र (Reduction Plant) के कार्य करने पर लोहारडागा क्षेत्र से १००,००० टन प्रति वर्ष बॉक्साइट निकाला जाना प्रारंभ हो जायगा। उस समय इसके बढ़ते हुए मूल्य में भी कमी की संभावना होगी। हीराकुड तथा आसनसोल के अवकरण संयंत्र के अतिरिक्त किसी भी नये संयंत्र की आवश्यकता-पूर्ति ये निक्षेप नहीं कर सकते।

उड़ीसा

बॉक्साइट के कुछ निक्षेप कालाँहांडी तथा सम्बलपुर जिले में प्राप्त हुए हैं।

एल्यूमिना के लिए उपयुक्त खननीय वर्ग के बॉक्साइट भण्डारों की मात्रा ४००,००० टन तक ही सीमित है। इस बॉक्साइट की संरचना निम्न प्रकार है —

Al_2O_3	...	६७.८८ %
Fe_2O_3	...	४.०९ %
SiO_2	...	०.९३ %
TiO_2	...	१.०४ %
H_2O	...	२६.४७ %
CaO	...	०.३६ %

निक्षेपों के अल्प महत्त्व के होने के अतिरिक्त इस क्षेत्र में अभी यातायात के साधनों को भी विकसित होना है।

मद्रास

मद्रास प्रदेश के सलेम जिले में शिवरोय पहाड़ियों में बॉक्साइट के प्रमुख निक्षेप विद्यमान हैं। १९५७ के फ्रांसीसी मिशन ने इस क्षेत्र में ३०-४० लाख टन खनन योग्य बॉक्साइट प्राप्त होने का अनुमान किया है। बॉक्साइट के ये निक्षेप शिवरोय मेसिफ (Massif) की चोटियों पर ६ समतल शीर्ष-पहाड़ियों एवम् सीढ़ियों (Terraces) पर स्थित हैं। इस पहाड़ी के एक विशेष हिस्से द्वारा यह स्पष्टतः प्रकट है कि उसका ऊपरी भाग ५ फुट तक लोहस (Ferruginous) है तथा इस शीर्षटोपिका (Capping) के ठीक नीचे अच्छे वर्ग का बॉक्साइट मिलता है। इसके नीचे लिथोमार्ज (Lithomarge) तथा अपरिवर्तित चार्नोकाइट (Charnockite) शिलाएँ हैं। इन निक्षेपों से प्राप्त उपयुक्त प्रकार के बॉक्साइट की औसत संरचना निम्न प्रकार है—

Al_2O_3	...	५२ %	(न्यूनतम ४८ %)
SiO_2	...	९० %	(केवल २% क्रियात्मक)
Fe_2O_3	...	८ %	
TiO_2	...	१ %	
(Loss on Ignition)	...	३० %	

ये निक्षेप गिबसाइट प्रकार के हैं तथा इनमें टाइटेनियम आक्साइड व क्रियात्मक (Reactive) सिलिका के अवयव बहुत थोड़े हैं। अतः इनको एल्यूमिना

उत्पादन के लिए आर्थिक आधार पर शोषित किया जा सकता है। केवल कोयले का यहाँ पर न होना ही एक समस्या है, जिसका समाधान अब द० आरकोट (South Arcot) से प्राप्त लिग्नाइट के विशुद्धीकरण के पश्चात् कोयले के स्थान पर इसके उपयोग द्वारा किया जा सकता है।

शिवरोय बॉक्साइट प्रोडक्ट कं० यहाँ पर खनन-कार्य करती है। इस खान पर बॉक्साइट का मूल्य ४-५ रु० प्रति टन तक पड़ता है। इस प्रकार खनित बॉक्साइट को हवाई रस्से के मार्ग (Aerial Rope way) द्वारा समीपतम रेलमार्ग स्टेशन दानिशपेट तक भेजा जाता है। रेल तक बॉक्साइट को पहुँचाने पर इसका मूल्य १४·२५ रु० प्रति टन पड़ता है।

बम्बई प्रदेश

भारत के विशालतम निक्षेपों में बंबई के निक्षेप दूसरा स्थान रखते हैं। बॉक्साइट के प्रमुख निक्षेप कोल्हापुर तथा बेलगाँव जिलों में स्थित हैं तथा उनके अनुमानित भण्डारों की मात्रा ५०,०००,००० टन है। समुद्रतल से ३२०० फुट की ऊँचाई पर स्थित पहाड़ियों तथा उच्चस्थलियों में होलम्बी, उदगिर, घंगरवाडी, वाकी तथा राधानगरी (कोल्हापुर) एवम् मोगलगढ़, कसरसादा तथा अम्बोली घाट (बेलगाँव) में पर्याप्त समृद्ध बॉक्साइट मिलता है।

यहां प्राप्त बॉक्साइट अपेक्षाकृत अधिक कठोर होता है। इसका रासायनिक विश्लेषण इस प्रकार है—

अवयव	कोल्हापुर निक्षेप	बेलगांव निक्षेप
Al_2O_3	६४.७७	५६.३०
Fe_2O_3	०.३१	४.१४
SiO_2	०.८०	३.५३
TiO_2	३.२३	८.२०
H_2O	३१.५४	२७.००
MgO	आंशिक	०.७२

ये निक्षेप पर्याप्त उत्तम प्रकार के बॉक्साइट से पूर्ण हैं तथा एल्यूमिना (Alumina) उद्योग के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त हैं। किन्तु यहाँ भी कोयला

या अन्य किसी ईंधन के अभाव में आर्थिक दृष्टि से इनका शोषण अलाभकर है। इन निक्षेपों तक पहुँचने के लिए यातायात के साधनों का अब भी अभाव है। यदि एल्यूमीनियम संयंत्र इस क्षेत्र में स्थापित किया जाय तो उसके लिए कोयना-जल-विद्युत् स्टेशन से विद्युत् शक्ति प्राप्त हो सकेगी, किन्तु ईंधन की समस्या ने यहाँ पर एल्यूमीनियम संयंत्र के विचार को अव्यावहारिक सिद्ध कर दिया है।

सौराष्ट्र (गुजरात)

इस प्रदेश की इष्टकिजित (Lateritic) शिलाओं में निरीह, छिटपुट संग्रह (Isolated patches) के रूप में बॉक्साइट के संकेन्द्रण प्राप्त होते हैं। ये निक्षेप पश्चिम में नवानगर तथा ओखा से लेकर पूर्व में भावनगर तक प्रायद्वीपीय भाग में दक्षिणी पठार के किनारों तक फैले हुए हैं। इस इष्टकिजित समूह में निचले अलग अलग पहाड़ तथा पर्वत श्रेणियाँ सम्मिलित हैं। लोहस इष्टकिज (Ferriginous laterites) के भूखण्ड (patches), जिन्होंने अच्छे प्रकार के बॉक्साइट को जन्म दिया है, भावनगर, महुवा, जफराबाद, बन्तवा, पोरबन्दर, लम्बा तथा भाटिया के समीप प्राप्त होते हैं। ये निक्षेप अधिकांशतः श्वेत संकोचक मृत्तिका (Fuller's Earth), रंगीन (Clays) तथा ओकर (Ochres) के साहचर्य में मिलते हैं।

पूर्व के अनुमानों के अनुसार इस क्षेत्र में कई लाख टन उपयुक्त वर्ग के बॉक्साइट की मात्रा आँकी गयी थी, किन्तु फ्रांसीसी विशेषज्ञ श्री जे० सेबोत के अनुसार इस क्षेत्र में बॉक्साइट के निक्षेपों की मोटाई बहुत कम है, इस लिए १० लाख टन से अधिक बॉक्साइट प्राप्त होने की आशा नहीं करनी चाहिए।

रासायनिक संरचना में यह अयस्क विभिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न है। मेवासा से एकत्रित पाँच नमूनों का विश्लेषण इस तथ्य की पुष्टि करता है—

अवयव	१	२	३	४	५
Al_2O_3	६४.१६	६०.५२	४८.३२	४२.४४	६१.००
Fe_2O_3	१.८०	४.०४	१.२९	३३.२६	N.D.
SiO_2	१.००	२.१२	०.८०	०.३०	०.७५
TiO_2	२.०३	२.५०	२.३९	२.०२	N.D.
(Loss)	३०.७०	३०.५१	३४.४४	२१.८४	२५.००

इन निक्षेपों के सम्बन्ध में प्राप्त वर्तमान जानकारी के अनुसार इस क्षेत्र में

कोई भी एल्यूमीनियम संयंत्र स्थापित नहीं किया जा सकता। यह पदार्थ रासायनिक उद्योगों, तापरोधी पदार्थों एवम् द्रावक (Flux) के रूप में अत्यन्त उपयोगी है।

जम्मू तथा कश्मीर

इस प्रदेश के रियासी जिले में बॉक्साइट के निक्षेप विद्यमान हैं। ये निक्षेप भारत में खचित बॉक्साइट के एकमात्र नमूने हैं। इन संस्तरों (Beds) की मोटाई ३–२० फुट तक है। ये निक्षेप इयोसीन युग के (Nummulitic) चूना पत्थरों पर विद्यमान हैं तथा पहाड़ों की ढालों पर विशेष रूप से स्पष्टतया विरक्षित (Exposed) हैं। यहाँ उपलब्ध बॉक्साइट गुणों में डायस्पोरिक प्रकार का है तथा पर्याप्त कठोर है। शृंग की ओर अयस्क (Pisolitic) है तथा एल्यूमिना की प्रतिशत मात्रा पर्याप्त है, किन्तु जैसे-जैसे नीचे जाते हैं, सिलिका बढ़ती जाती है और एल्यूमिना की मात्रा कम होती जाती है। यहाँ पर बॉक्साइट के पाँच प्रमुख क्षेत्र हैं जिनमें उत्तम वर्ग के अयस्क के भण्डारों की अनुमानित मात्रा २० लाख टन के लगभग है। इस अयस्क में ७५-८२ % एल्यूमिना, १–५ % तक सिलिका तथा व्यावहारिक रूप से लोहे का कोई अंश नहीं होता।

इस क्षेत्र में स्थित इन बॉक्साइट-निक्षेपों के विकास की ओर कोई पग नहीं उठाया गया है। निकट भविष्य में भी इस क्षेत्र में आयात की सुविधाएँ, ईंधन सामग्री तथा शक्ति के स्रोत उपलब्ध नहीं हो सकेंगे।

मध्य प्रदेश

भारत में सबसे अधिक विस्तृत बॉक्साइट-निक्षेप मध्य प्रदेश में विद्यमान हैं। यद्यपि इन निक्षेपों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं हुई है, तथापि इस प्रदेश के भूशास्त्र व खनन निदेशकालय (Directorate of Geology & Mining, M.P.) एवम् फ्रांसीसी मिशन (१९५७) के अन्वेषण-कार्य के पश्चात् इन निक्षेपों की विपुलता के सम्बन्ध में सन्देह का कोई स्थान नहीं रह गया है। इस तथ्य में भी अब सन्देह नहीं किया जा सकता कि एल्यूमीनियम-उद्योग के लिए सर्वाधिक उपयुक्त बॉक्साइट के विशालतम निक्षेप मध्य प्रदेश में ही स्थित हैं। अमरकंटक की उच्चस्थलियों में काम करते हुए फ्रांसीसी विशेषज्ञ श्री जे० सबोत ने इन निक्षेपों की अनुमानित मात्रा २०-३० करोड़ टन तक बतायी।

अमरकंटक का यह क्षेत्र मध्य प्रदेश के विशाल क्षेत्र का केवल एक आंशिक भाग है, जिसमें बॉक्साइट के विपुल निक्षेप हैं। सरलता के लिए इन निक्षेपों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है।—

१. कटनी-निवाड़ क्षेत्र,

२. अमरकंटक–बालाघाट क्षेत्र,

३. उपरोरा-मैनपट-जशपुर क्षेत्र।

कटनी निवाड़ क्षेत्र

सीमेंन्ट, तापरोधी पदार्थ, रासायनिक पदार्थ, तैल-विशुद्धीकरण (Oil Refining) तथा अन्य उद्योगों की आवश्यकता-पूर्ति के लिए कटनी-निवाड़ क्षेत्र बहुत पहले से ही बॉक्साइट को उपलब्ध कराता रहा है। लोहारडागा (राँची) क्षेत्र में बॉक्साइट के खनन प्रारंभ होने तथा देश में स्थित दो एल्यूमीनियम संयंत्रों को बॉक्साइट वितरित करने से इस क्षेत्र की स्थिति में थोड़ा परिवर्तन आ गया है, फिर भी कटनी क्षेत्र प्रति वर्ष लगभग ४०,००० टन बॉक्साइट का उत्पादन करता है।

जहाँ भारत के अन्य भागों में लगभग ३,००० या उससे भी अधिक फुट ऊँचे पठारों पर बॉक्साइट मिलता है, वहाँ कटनी में यह केवल १२०० फुट पर ही प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी बातों में कटनी का बॉक्साइट देश के अन्य भागों में पायेजाने वाले बॉक्साइट के समान ही है तथा उसी प्रकार बेसाल्ट (Basalt) के इष्टकिजन (Laterization) द्वारा निर्मित हुआ है। यहाँ पर यह विन्ध्यन चूना-पत्थर पर स्थित निक्षेपों में मिलता है।

कटनी-जबलपुर मार्ग की बायीं ओर स्थित बरगावान पहाड़ी में उत्तम वर्ग का तथा गुलाबी रंग का बॉक्साइट मिलता है। इस पहाड़ी का सम्पूर्ण मुख्य भाग खनन के अन्तर्गत है तथा एक खनि (Quarry) में तो अयस्क-पट्टी की मोटाई ४५ फुट तक पहुँच गयी है। इस पहाड़ी के समानान्तर दो अन्य पहाड़ियाँ टिकरिया तथा टिकुरी हैं, जिनके शृंगों पर भी इसी प्रकार का बॉक्साइट प्राप्त होता है। इन पहाड़ियों में २५ से भी अधिक खनियों (Quarries) में खनन कार्य होता है तथा इनमें से अधिकांश में प्राप्त बॉक्साइट-निक्षेपों की मोटाई २० फुट से अधिक है। इसके अतिरिक्त पदरवारा, खजुरी, ठरका, ढंगवान, हतवाई, मिहिगावान, राउन-सारा, जमुनिया प्रभृति स्थानों में बॉक्साइट के निक्षेप विद्यमान हैं।

कटनी क्षेत्र में बॉक्साइट के भण्डारों का अनुमान बड़ी विविधता से किया गया है। इस क्षेत्र में कोई भी बॉक्साइट-निक्षेप अधिक विस्तृत नहीं है तथा विस्तृत पूर्वेक्षण एवं सर्वेक्षण के अभाव में यह कहना कठिन है कि यहाँ के निक्षेप किस सीमा तक समृद्ध हैं तथा बॉक्साइट की यहाँ कितनी मात्रा विद्यमान है।

यह बॉक्साइट यद्यपि बहुत अधिक लोहस (Ferruginous) नहीं है तथापि इसमें सिलिका की प्रचुरता है, जो इसके निक्षेपों के नीचे स्थित लिथोमार्ज से पृथक् हो बॉक्साइट से संयुक्त हो गयी है।

अमरकंटक-बालाघाट क्षेत्र

मध्य प्रदेश के सहडोल, मण्डला, बिलासपुर, दुर्ग तथा बालाघाट जिलों की सीमा के अनुप्रस्थ २५० मील की दूरी तक एक ऐसा अनियमित प्रदेश है जो घने जंगलों द्वारा आच्छादित है। यह क्षेत्र ऊँचे-ऊँचे पठारों तथा पहाड़ों का प्रदेश है जिसमें बड़े गहरे-गहरे नाले बहते हैं। इन्हीं उच्चस्थलियों पर ३००० फुट से भी अधिक ऊँचाई पर बॉक्साइट के संवर्धन (Enrichment) मिलते हैं।

इस क्षेत्र में यातायात के साधन बहुत कम हैं। अभी कुछ वर्षों में ही यहाँ पर कुछ ऐसे मार्ग बनाये गये हैं जिन पर किसी भी ऋतु में सरलता से जाया जा सकता है। अधिक सुविधा के उद्देश्य से इस क्षेत्र को भी दो भागों में वर्गीकृत कर दिया गया है; (अ) अमरकंटक–चौरादादर क्षेत्र तथा (आ) मवाई—बालाघाट क्षेत्र।

(अ) अमरकंटक-चौरादादर क्षेत्र

इस क्षेत्र के बॉक्साइट-निक्षेप सहडोल, बिलासपुर तथा मण्डला जिलों में स्थित हैं और अधिकांशतः ३००० फुट ऊँची उच्चस्थलियों पर विद्यमान हैं। इनके शृंग ३६५० फुट तक ऊँचे हैं। बॉक्साइट का संकेन्द्रण मुख्यतः और विशेषतया रेखाबद्ध (Linear) उच्चस्थलियों में हुआ है।

अमरकंटक पठार का क्षेत्रफल ३ वर्ग कि० मी० (K.M.) है, इसका विस्तार अनेक दिशाओं में है तथा कहीं-कहीं तो यह विस्तार अमरकंटक पठार स्वयम् से भी ऊँचे पठारों में है। इस क्षेत्र में अन्य पठार भी स्थित हैं जिनका क्षेत्रफल कई व० कि० मी० है तथा जो बॉक्साइट अयस्क से पर्याप्त समृद्ध हैं। विभिन्न स्थानों पर प्राप्त निक्षेपों का विश्लेषण आगे दिया जा रहा है—

उच्चस्थली	Al_2O_3	Fe_2O_3	SiO_2	TiO_2	(Loss)
अमरकंटक (द० भाग)	५६.७१	८.००	१.२४	९.२८	२४.६५
राजमेरगढ़ (उ० प० भाग)	५९.५८	६.९९	०.९२	८.६३	२३.७७
पढ़मानादादर (उ० प० भाग)	५९.११	५.६५	०.८४	९.७३	२४.५९
खपरी पानी (द० भाग)	५२.६८	८.०२	३.१०	१०.५०	२५.७४
देवसानी पहाड़	५८.२७	७.४०	०.६२	९.२५	२४.६२
सराहकोन्हा कूट (Ridge)	५७.०१	४.९३	२.३२	९.०५	२६.३५
पोंडीबहाड़ा पहाड़	५४.०८	८.६३	४.३६	८.४१	२३.९१
दैकी बांदा पहाड़	५९.१४	७.४०	१.२६	७.६०	२४.१९
गढ़ी दादर	५८.५९	७.०९	२.०६	८.०२	२४.०५
राकथीदादर	५७.३१	९.२६	१.५१	८.६४	२३.१६
खरखारी दादर	५५.७०	८.५२	१.५२	८.६०	२५.८६
कबीर दादर	५४.१९	९.७४	१.२०	७.१२	२७.९२
हजारी दादर	५८.०६	५.५२	१.९६	८.०१	२६.३०
समलिया दादर	५४.६२	८.१२	१.४४	८.३०	२७.८२
बओली का प० पठार	५७.४४	५.६७	१.१२	११.७०	२३.८०

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि इन समृद्ध क्षेत्रों में बॉक्साइट के निक्षेप लगभग उत्तम प्रकार के हैं। ये कठोर, गुलाबी अथवा पिसोलिटिक (Pisolitic) होते हैं। सामान्यतः ऐसा होता है कि जब बॉक्साइट का संवर्धन (Enrichment) पूर्ण नहीं होता, तब लोहस (Ferruginous) बॉक्साइट निर्मित होता है। इसका रंग भूरा कत्थई अथवा कत्थई ही होता है। इस प्रकार जो चार प्रतिदर्श (Samples), अमरकंटक उच्चस्थली से प्राप्त किये गये हैं, उनका विश्लेषण निम्न प्रकार है--

	Al_2O_3	SiO_2	Fe_2O_3
१. ...	४७.५७	३.०६	३०.७५
२. ...	५४.२९	१.१४	२४.२८
३. ...	४७.७५	४.३६	२९.७४
४. ...	४९.०६	३.३०	२३.१५

यह स्पष्ट है कि लोहस प्रकार के इन निक्षेपों में एल्यूमिना की मात्रा ४७-५४% है और इनका उपयोग सरलता से तथा आर्थिक स्तर पर एल्यूमीनियम निर्माण में किया

जा सकता है। इसमें सिलिका की प्रतिशत मात्रा काफी कम होती है तथा जो होती भी है वह स्वतंत्र अवस्था में होती है। अधिकांशतः एल्यूमिना गिबसाइटिक प्रकार का होता है जिसमें कुछ भाग बोकमाइट का भी होता है। बॉक्साइट का यह प्रकार जमाइका तथा हैटी के बॉक्साइट के समान ही है तथा इस क्षेत्र में अथवा इसके समीप में किसी भी एल्यूमीनियम निर्माण संयंत्र के प्रतिष्ठापन के पूर्व इन निक्षेपों के बॉक्साइट के भण्डारों को भी दृष्टिगत रखना चाहिए।

इन निक्षेपों के अतिरिक्त अन्य उत्तम प्रकार के निक्षेप हरीमुनारा दादर, बैरागडोंगरी, चौरादादर, बांवंगली पहाड़, भलुआ दादर, हजारी दादर, बीजा पहाड़, चकमी दादर, तांगलीपछार-दादर, भोटा डोंगर, दुआरी टोला तथा धुबाई के समीप प्राप्त होते हैं। ये भी एल्यूमिना से पर्याप्त समृद्ध हैं तथा इन सभी निक्षेपों को मिलाकर औसत एल्यूमिना की मात्रा ५६ % से भी अधिक है।

(अ) मवाई-बालाघाट क्षेत्र

अमरकंटक तथा चौरा-दादर का लेटराइटिक (Lateritic) प्रदेश दक्षिण की ओर २०० किलोमीटर की दूरी तक मण्डला, बालाघाट तथा दुर्ग जिलों की सीमा के अनुप्रस्थ तथा और भी दक्षिण की ओर बालाघाट नगर के उत्तर में २० कि० मी० की दूरी पर स्थित लौगुर उच्चस्थली तक फैला हुआ है। अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व के निक्षेप सन् १९५०-५२ में मावावली-दादर, बैला के दक्षिण का पठार, जोरकी दादर, बिम्होरी कूट (Ridge), छिन्दी-पहाड़, लकरेरा कूट, काकरा-पहाड़ तथा मोतीनाल (मण्डला जिले में); तोपला उच्चस्थली, बिजलपुर, कँवाझर, धनियाझेर, कुसेरा-दादर, पिटनी पानी, नागझोला, बाबा-डोंगर, काडला, गढ़ी-दादर, सुपखर लखा कूट तथा छत्तरपुर पठार (बालाघाट जिले में) तथा खुरीपानी दादर, मोरंदा-दादर, राब्दा, दालादल पकरी-दादर, बंगाडरा, मुकाम, चन्द्रा, धनवाही एवम् बहेरा-डोंगर, (द्रुग जिले में) प्राप्त हुए हैं। इनमें से कुछ निक्षेपों का विश्लेषण निम्न प्रकार है—

स्थान	Al_2O_3	Fe_2O_3	SiO_2	TiO_2	(Loss)
मावावली दादर	५२.५९	११.५३	०.९६	७.०६	२७.७५
जोरकी दादर	४९.४९	१५.४०	१.६२	८.६८	२४.६४
कँवाझर	५८.२६	११.९२	०.५८	१२.६३	१६.६५
नागझोला	५२.३१	९.४५	१.४४	९.७०	२७.०४
मोरंदा-दादर	५५.१९	६.१७	०.८८	९.०६	२८.८८
धानवाही	४६.९५	१६.८७	१.९६	९.३५	२४.८९

बॉक्साइट के अन्य निक्षेप बहुत विस्तृत प्रदेश में डिंडोरी तहसील (मण्डला), उस्कल तथा लंगूर पठार (बालाघाट) एवम् आमगढ़ पहाड़ी (सिउनी) में मिले हैं। अभी तक ये निक्षेप अधिक महत्त्व के नहीं समझे जाते। जब तक इस क्षेत्र में और अधिक पूर्वेक्षण तथा सर्वेक्षण कार्य नहीं किये जाते तब तक इसके सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहा जा सकता।

उपरोरा-मैनपट-जशपुर क्षेत्र

अमरकंटक से १२० हवाई मीटर (Aerial Meters) दूर अरपा तथा हापो नदियों की घाटियों के उस पार मध्य प्रदेश में बॉक्साइट उत्पन्न करनेवाला तीसरा प्रदेश है। फुटका पहाड़ से प्रारंभ होकर पहाड़ियों तथा पठारों की एक शृंखला उत्तर-पूर्व की ओर पौन-खरा-पहाड़, रानाइखेत, गौरद्वारी पहाड़, करेला पहाड़, सतपत्रिका पहाड़ (उपरोरा-विलासपुर), मैनपट पठार (सरगुजा) से होती हुई रायगढ़ जिले में खुरिया उच्चस्थलों तथा जमीरा पाट तक जाती है।

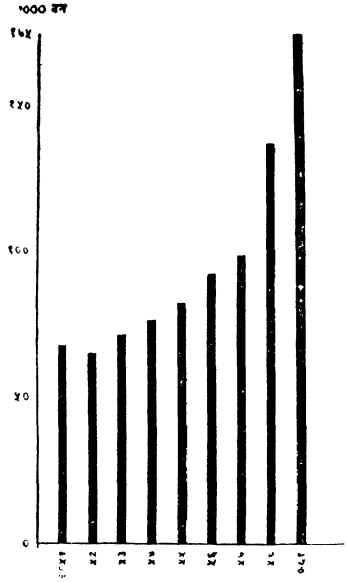

रेखाचित्र ३—बॉक्साइट उत्पादन व योजना-लक्ष्य

मैनपट के विस्तृत पठार में बॉक्साइट के समृद्ध निक्षेप नर्बदा पुर, बरीमा, कोदारीडीह, हुण्डाखैर, सप-नाडंड, नगरडंड तथा अम्बाझरिया पहाड़ी में स्थित हैं। कम महत्त्व के निक्षेप कसेरा, डंकासेरा, लोरेना तथा सारभंज में मिले हैं। अनुमानित भण्डार ८० लाख टन है।

रायगढ़ जिले के खुरिया उच्च-स्थलों के बॉक्साइट-निक्षेप पन्डरापट, दैतुनपानी, रौनी, मुढ़ी, बीजाघाट, ढुटापानी पहाड़, पटिया, गढ़-पहाड़, जाड़ापट तथा मारोल पठार में पाये गये हैं। भण्डारों की अनुमानित मात्रा ५२१,००० टन

सन् १९३६-३९ में दी गयी है। इस जिले के विशाल लेटराइटिक (Lateritic) उच्चस्थली के एक बड़े भाग का सर्वेक्षण शेष है। यह क्षेत्र रायगढ़ जिले का उत्तर-उत्तरपूर्व का भाग है तथा इसका विस्तार छोटा नागपुर पठार तक है। क्योंकि लोहारडागा क्षेत्र से बॉक्साइट प्राप्त हुआ है अतः आशा की जाती है कि रायगढ़ जिले के इस अछूते भाग से भी बाक्साइट के अच्छे निक्षेप मिल सकेंगे।

बॉक्साइट का उत्पादन

इधर कुछ वर्षों से बॉक्साइट का उत्पादन देश में बराबर बढ़ रहा है। सन् १९५३-५७ तक के उत्पादन के आँकड़े नीचे दिये जा रहे हैं।

वर्ष	उत्पादन (टनों में)	मूल्य (रुपयों में)
१९५३	७०,८४८	७८८,९६६
१९५४	७४,७४७	८२८,०००
१९५५	८१,१७२	८०१,०००
१९५६	९१,२२५	८१८,०००
१९५७	९६,७५०	९१५,०००

एल्यूमीनियम उद्योग

इस उद्योग के लिए बॉक्साइट के अतिरिक्त अन्य कई कच्चे पदार्थों की आवश्यकता होती है। इन पदार्थों के संबंध में एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

(१) बेयर विधि से बॉक्साइट का उपयोग कर एल्यूमिना की प्राप्ति के लिए चूना तथा सोडा-भस्म (Ash) अथवा कास्टिक सोडा की आवश्यकता होती है। इन पदार्थों के लिए भारतीय उद्योग को आंशिक रूप से आन्तरिक तथा बाह्य स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है।

(२) एल्यूमिना के विद्युत-विश्लेषणों के लिए कुछ तापन-पदार्थों (Bath Materials) की आवश्यकता होती है। निम्न पदार्थ प्रमुख हैं।

(अ) क्रायोलाइट (Cryolite)—यह एल्यूमिना का विलेयक (Solute) है जिसका आयात ग्रीन-लैण्ड से होता है:—

(आ) फ्लोरस्पार (Fluorspar) व एल्यूमीनियम फ्लोराइड—इनकी आवश्यकता तापन-समायोजन (Bath Adjustment) में होती है। इनका भी विदेशों से आयात होता है।

(३) विद्युत द्वारों (Electrodes) तथा कोशा-आस्तर (Cell Lining) के लिए कुछ कार्बनिक पदार्थ प्रयुक्त होते हैं। इसके लिए मृत्तैल कोक (Petroleum Coke) डिगबोई (आसाम) से प्राप्त किया जाता है, किन्तु इसके अतिरिक्त और अधिक माँग पूरी करने के लिए इसका आयात विदेशों से किया जाता है। मृदु निराल (Soft Pitch), कोक-कन्दु टार (Coke Oven Tar) एवम् संधानी-भस्म (Foundry ash) की प्राप्ति बंगाल कोयला क्षेत्र से की जाती है।

विद्युत्-शक्ति—एल्यूमीनियम उद्योग में अब मुख्य समस्या विद्युत्-शक्ति की रह जाती है। यद्यपि भारत में उच्च कोटि के बॉक्साइट निक्षेप प्रचुर परिमाण में हैं, पर एल्यूमीनियम उत्पादन का उद्योग सन् १९४२ से ही प्रारंभ हो सका। विपुल मात्रा में सस्ती विद्युत् का अभाव इस विलम्ब का प्रमुख कारण था। वास्तव में विद्युत्-शक्ति आर्थिक एवम् वाणिज्य-स्तर पर उपलब्ध होनी चाहिए। यह इस उद्योग की आर्थिक सफलता का एक मूलभूत आधार है, क्योंकि प्रत्येक पौण्ड उत्पादित एल्यूमीनियम के लिए १० कि० वा० घं० (K.W.H.) विद्युत्-शक्ति की आवश्यकता होती है।

वर्तमान उद्योग

भारत में बॉक्साइट से एल्यूमिना बनाने के दो कारखाने हैं—एक आसनसोल में तथा दूसरा टाटानगर से लगभग ५० मील दूर मूरी नामक स्थान में। आसनसोल के कारखाने में एल्यूमिना से एल्यूमीनियम उत्पन्न करने की भी व्यवस्था है। मूरी में बने एल्यूमिना को परिष्कृत कर एल्यूमीनियम बनाने की व्यवस्था केरल प्रदेश में अलवे में है। दोनों कारखानों में मिलाकर लगभग ५ हजार टन एल्यूमीनियम धातु प्रति वर्ष उत्पन्न होती है। इस समय भारत में इस धातु की माँग प्रति वर्ष लगभग २५,००० टन है, जब कि उत्पादन बहुत थोड़ा है। एल्यूमीनियम उत्पादन के उद्योगीकरण में देश का विशेष स्थान होने तथा भारत में बॉक्साइट के विपुल निक्षेप होने के कारण इस उद्योग का बड़ी तीव्र गति से विकास तथा विस्तार करने का एक योजनाबद्ध कार्यक्रम भारत सरकार ने स्वीकृत किया है। अतः द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत एल्यूमीनियम का उत्पादन अलवे तथा जे० के० नगर के कारखानों से साढ़े सात हजार से १५ हजार टन प्रति वर्ष होगा। इसके अतिरिक्त रिहन्द बाँध कार्य-स्थल के समीप तथा सलेम (मद्रास प्रदेश) में दो नवीन एल्यूमीनियम संयंत्र प्रतिष्ठापित किये जा रहे हैं। इस उद्योग की विकास-योजनाओं के अन्तर्गत

स्थापित होनेवाले नवीन संयंत्रों के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

एल्यूमीनियम विद्रावण संयंत्र (Aluminium Smelting Plant) **हीराकुड**

मेसर्स इण्डियन एल्यूमीनियम कं० लि० के नवीन एल्यूमीनियम विद्रावक संयंत्र का श्रीगणेश ६ जनवरी १९५९ को हुआ। इस विद्रावक संयंत्र का प्रतिष्ठापित समावेशन (Installed Capacity) १०,००० टन प्रति वर्ष होगा। इसी के अलुपुरम् विद्रावक (आलवे) का समावेशन ५,५०० टन है। इस संयंत्र के अधिष्ठापन से भारतीय उत्पादन की मात्रा दूनी से भी अधिक हो जायगी, क्योंकि आलवे के अतिरिक्त एक अन्य विद्रावक संयंत्र ज० के० नगर में ही था, जिसका समावेशन केवल २,५०० टन था।

इस कम्पनी की योजना है कि शीघ्र ही इस संयंत्र का विस्तार किया जायगा और इसका समावेशन २०,००० टन हो जायगा। उड़ीसा सरकार के अनुसार दो वर्ष के भीतर ही इस विद्रावक संयंत्र को इतनी विद्युत् उपलब्ध हो सकेगी कि इसका समावेशन ३०,००० टन प्रति वर्ष हो जायगा। इस संयंत्र को विद्युत् ०.२५ आना प्रति इकाई की दर से मिलेगी।

उत्तर प्रदेश में एल्यूमीनियम संयंत्र

इस संयंत्र को स्थापित तथा संचालित करने के लिए हिन्दुस्तान एल्यूमीनियम कॉर्पोरेशन की स्थापना २० करोड़ रुपये की पूँजी लगाकर की गयी है। यह फर्म रिहन्द बाँध के समीप में २०,००० टन अधिस्थापित समावेशन का एक संयंत्र खड़ा करेगी। यह बिड़ला तथा कैसर्स (Kaisers) का एक संयुक्त प्रयास होगा।

इस संयंत्र के लिए १० करोड़ रुपये के भाग (shares) जनता के लिए होंगे। श्री एच० जे० कैसर २६% पूँजी लगायेंगे तथा शेष पूँजी बिड़ला द्वारा प्रदत्त होगी। उत्पादन सन् १९६१ में प्रारंभ हो जायगा। प्रारंभ में उत्पादन १०,००० टन प्रति वर्ष होगा, किन्तु बाद में इसका विस्तार ६०,००० टन तक किया जायगा।

इस कम्पनी को बॉक्साइट की उपलब्धि अमरकंटक के निक्षेपों से होगी। मेसर्स बिड़ला (ग्वालियर) लि० को इस प्रदेश से ३.५ व० मी० के क्षेत्र में पूर्वेक्षण तथा खनन के लिए अनुज्ञापत्र (Licence) प्रदान किया गया है। मेसर्स कैसर

इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन ओवरसीज़ लि० इन निक्षेपों के सम्बन्ध में प्राविधिक परामर्श देंगे।

ऐसा विचार किया जा रहा है कि बॉक्साइट से एल्यूमिना निर्मित करने के लिए संयंत्र मध्यप्रदेश में ही स्थापित किया जाय तथा इस एल्यूमिना से रिहन्द बाँध पर बने संयंत्र में एल्यूमीनियम प्राप्त किया जाय। इस एल्युमिना संयंत्र को कोयला सिंगरौली कोयला क्षेत्र से तथा विद्युत् नवीन तापीय विद्युत्-स्टेशन (Thermal Power Station), जो एल्यूमिना संयंत्र से अधिक दूर नहीं होगा, प्राप्त हो सकेगी।

एल्यूमीनियम संयंत्र को विद्युत्-शक्ति रिहन्द बाँध के शक्ति गृह से मिलेगी। यातायात की सारी सुविधाएँ शीघ्र ही उपलब्ध हो जायँगी।

इस प्रकार यह संयंत्र व्यक्तिगत पूँजी (Private Enterprise) के अन्तर्गत होगा तथा निदेशक बोर्ड (Board of Directors) के अध्यक्ष श्री घनश्याम-दास बिड़ला होंगे। बिड़ला ग्वालियर (प्राइवेट) लि० इस कम्पनी के मैनेजिंग एजेन्ट्स होंगे।

सलेम (मद्रास) में एल्यूमीनियम संयंत्र

मद्रास राज्य के सलेम जिले में १०,००० टन समावेशन का एक संयंत्र स्थापित करने की योजना भारत सरकार के विचाराधीन है। इस क्षेत्र में बॉक्साइट के उपयुक्त निक्षेप हैं तथा नेवेली लिग्नाइट के खनन और उससे प्राप्त विद्युत्-शक्ति का उपयोग कर यह संयंत्र सरलता से संचालित किया जा सकता है, क्योंकि संयंत्र-संस्थापन के लिए अन्य तथ्य भी समुचित रूप से उपयुक्त हैं। इस योजना के लिए फ्रांसीसी फर्म "पेशिने" (Pechiney) तथा इटालियन फर्म "मोण्टीकाटिनी" (Monticatini) प्रतिवेदन तैयार कर रही हैं। "पेशिने" राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation) के सहयोग से एक सरकारी संयंत्र स्थापित करना चाहते हैं। "मोण्टीकाटिनी" मद्रास के कुछ उद्योगपतियों के साथ मिलकर व्यक्तिगत पूँजी के अन्तर्गत इस संयंत्र का निर्माण करना चाहते हैं।

मैग्नीशियम (Magnesium)

मैग्नीशियम का हलकी धातुओं में प्रमुख स्थान है। इसका आपेक्षिक घनत्व १·७४ है, जब कि एल्यूमीनियम का २·७ है। इस प्रकार मैग्नीशियम असामान्य रूप

से हलकी धातु है। यह रजत-श्वेत वर्ण की प्रतन्य (Ductile) धातु है। पृथ्वी की पर्पटी तथा समुद्र के जल दोनों ही स्थानों पर मैग्नीशियम अपने यौगिकों के रूप में विद्यमान रहता है, किन्तु उसका निकालना कठिन काम है। मैग्नीशियम की व्यापारिक स्तर पर प्राप्ति के लिए मैग्नीशियम क्लोराइड, जो समुद्री जल या किसी अन्य स्थान से प्राप्त किया जाता है, द्रावित (Fused) कर उसका वैद्युतांशिक अनाक्सीकरण (Electrolytic Reduction) किया जाता है। कभी-कभी मैग्नीशिया के तापीय-अनाक्सीकरण द्वारा, जो फेरो-सिलिकन, कोक अथवा कैलसियम कार्बाइड की सहायता से किया जाता है, मैग्नीशियम धातु तैयार की जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसका उत्पादन सब से अधिक होता है।

मैग्नीशियम धातु के निर्माण के लिए आवश्यक प्रारंभिक पदार्थों में मैग्नेसाइट, जिसमें २८·९ प्रतिशत मैग्नीशियम रहता है, डोलोमाइट, जिसमें १३ प्रतिशत धातु रहती है तथा ब्रूसाइट (Brucite) हैं, जिसमें मैग्नीशियम धातु, ४१·६ प्रतिशत तक हो सकती है, आदि उल्लेखनीय हैं। मैग्नेसाइट तथा डोलोमाइट के सम्बन्ध में और अधिक तापरोधी पदार्थों से सम्बन्धित अध्याय में लिखा गया है।

उपयोग

मैग्नीशियम धातु वायुमण्डल से आक्सीजन लेकर अत्यन्त श्वेत प्रकाश के साथ जलती है। इस गुण के कारण इसको अंधेरे में चित्र खीचने के लिए विशेष लट्टुओं में प्रयोग किया जाता है। युद्ध के समय में विशेष बमों के निर्माण में भी इसका उपयोग होता है। धातुओं तथा मिश्र धातुओं के शोधन में भी यह काम आती है। रेडियो-वाल्वों से वातियों को पूर्ण रूप से निकालने के लिए भी इसे काम में लाया जाता है। जहाँ तक अभियन्त्रीकरण (Engineering) का सम्बन्ध है, विशुद्ध एल्यूमीनियम का उपयोग बहुत कम होता है, किन्तु इसकी मिश्र धातुएँ सम्पूर्ण उपलब्ध मिश्र धातुओं में सर्वाधिक हलकी होती हैं तथा संरचनात्मक कार्यों के लिए प्रयोग की जाती हैं। इनका सामान्य आपेक्षिक घनत्व १.८४ के लगभग होता है और इस प्रकार ये एल्यूमीनियम की मिश्रधातुओं से भी कहीं अधिक हलकी होती हैं। ये मिश्रधातुएँ वायुयानों के विभिन्न अवयवों, ट्रैक्टरों तथा सभी प्रकार की मोटर गाड़ियों में प्रयुक्त होती हैं। इनके अतिरिक्त इन मिश्र धातुओं के सब से हलके होने के कारण अनेक उद्योगों में तथा विभिन्न प्रकार के दृढ़, शक्तिशाली ढांचे आदि के निर्माण में उनका प्रयोग किया जाता है। भूमिगत तेल की पाइप-लाइनों में भी

मैग्नीशियम का उपयोग किया जाता है। एल्यूमीनियम, जस्ता तथा मैंगनीज वे प्रमुख धातुएँ हैं जिनके साथ मिलकर मैग्नीशियम धातु अनेकों मिश्र धातुओं का निर्माण करती है, जिनका उपयोग विस्तृत रूप से विभिन्न कार्यों में होता है। ये मिश्र धातुएँ कठोर तो होती ही हैं, साथ ही इनका संक्षारण-रोधन (Corrosion Resistance) बहुत अधिक होता है। मैग्नीशियम की २ से १० प्रतिशत तक की मात्राएँ एल्यूमीनियम के साथ मिलकर ऐसी मिश्र धातुएँ निर्मित करती हैं जो समुद्री जल के संक्षारण से पूर्ण रूप से सुरक्षित रहती हैं। आजकल जिरकोनियम के साथ मिश्रित कर मैग्नीशियम की अनेक मिश्र धातुएँ बनायी जा रही हैं, जिनके गुण कुछ दशाओं में पूर्व मिश्र धातुओं से अधिक उत्तम हैं।

मैग्नीशियम के अनेक लवणों का उपयोग रासायनिक उद्योगों, मृच्छिल्य तथा काँच-निर्माण, कागज़ बनाने, शक्कर के शोधन में, अग्निरोधी लेपों, रबर तथा औषधि उद्योगों में किया जाता है। अपने विशेष गुणों के कारण मैग्नीशियम क्लोराइड का उपयोग भारत के उन तमाम सूती कपड़ों के कारखानों में सूत को कोमल तथा अवनाम्य (Pliable) बनाने के लिए किया जाता है, जो उष्ण तथा सूखे जलवायु वाले प्रदेशों में स्थित हैं। रेलगाड़ियों में फर्श को बनाने के लिए ऑक्सी-क्लोराइड सीमेन्ट के निर्माण में भी मैग्नीशियम क्लोराइड काम में आता है। मैग्नीशियम सल्फेट का उपयोग सूती कपड़ों की रंगाई, सूती वस्तुओं (Cotton Fabrics) के समापन तथा औषधि, कागज़ और चर्म उद्योगों में भी किया जाता है।

बेरीलियम (Beryllium)

यह विरल धातु बेरीलियम मुख्यतः प्रारंभिक (Acecssory) खनिज बेरील (Beryl) के रूप में आग्नेय शिलाओं (Igneous rocks) से प्राप्त होती है। बेरील, बेरीलियम तथा एल्यूमीनियम का सिलीकेट है जिसका आपेक्षिक घनत्व २·६–२·८ होता है। इसकी अनेक विशेषताओं, जैसे मिश्र-धातविक धातु (Alloy metal) होने, इसका प्रबल संक्षारण-प्रतिरोध, उच्च द्रवणांक (१२८०° सें०), न्यूट्रान को मन्द (Moderate) करने के गुण तथा कुछ अन्य उपयुक्त गुणों के कारण इसका उपयोग उत्तरोत्तर परमाणु-प्रक्रिया-वाहकों (Atomic Reactors) में वृद्धि पर है। बेरीलियम आक्साइड का द्रवणांक २७५०° सें० होता है।

प्रकृति में लगभग २७ बेरीलियम-मय खनिज प्राप्त हुए हैं, किन्तु इनमें केवल बेरील (Beryl) ही ऐसा है जिसका वाणिज्य एवं आर्थिक स्तर पर उपयोग किया जा सकता है तथा जिसमें अधिकतम १४% बेरीलियम आक्साइड अथवा ५% बेरीलियम होता है। भारत में प्राप्त होनेवाला बेरील बहुत अच्छे प्रकार का है जिसमें बेरीलियम-आक्साइड की मात्रा ११-१३% तक होती है।

यद्यपि विभिन्न निक्षेपों में पृथक् पृथक्, बेरील की मात्रा सीमित अवश्य है तथापि भारत में यह अनेक स्थानों पर वितरित है। बेरील के निक्षेप पूर्व-कैम्ब्रियन युग के कणाश्मों (Granites) तथा नाइसों (Gneisses) में विलम्बित अवस्था के अवशिष्ट विकलनों (Residual differentiates) की भाँति पिग्मेटाइट पुंजों (Pegmatite masses) में प्राप्त होते हैं। ये निक्षेप अरावली अथवा धारवार-आधार-शिला-मिश्र (Basement Complex) का निर्माण करते हैं। अधिक उत्पादक बेरील-निक्षेप बिहार के हजारीबाग, कोडर्मा तथा गया क्षेत्रों में, दक्षिणी और पूर्वी राजस्थान के अनेक भागों, आन्ध्र-प्रदेश के नैल्लोर तथा मद्रास के कोयम्बटूर जिले में विद्यमान हैं। स्तंभाकार (Columnar) बेरील मणिभों का, जिनकी लम्बाई १५ से २० फुट तथा चौड़ाई ४ फुट एवं जिनका भार १०-२० टन होता है, खनन राजस्थान के अनेक स्थानों से किया जाता है। बेरील अनेक वर्णों में प्राप्त होता है, जिनमें हरा तथा नीला सर्व-सामान्य हैं और अम्बर (Amber), गुलाबी, नारंगी , कत्थई तथा काले वर्ण के भी अनेकों मणिभ मिलते हैं। बेरील के बहुमूल्य रूपों (Varieties) एक्वामेरीन (Aquamarine) तथा एमेराल्ड (Emerald) का खनन मुख्यत: राजस्थान के कुछ भागों में ही सीमित है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व भारत में बेरील का उत्पादन नगण्य था किन्तु सन् १९४९ में उत्पादन २०००-३००० टन प्रतिवर्ष तक बढ़ गया। वर्तमान उत्पादन १०००-२००० टन प्रतिवर्ष ही है।

बेरीलियम धातु तथा बेरीलियम आक्साइड के निर्माण के लिए एक संयंत्र (Plant) स्थापित करने की योजना चल रही है तथा इस वर्ष के अन्त तक इसके पूर्ण हो जाने की पूरी संभावना है। इस संयंत्र द्वारा बेरीलियम आक्साइड को ईंटों के आकार में ढाला जायगा ताकि उनका उपयोग प्रक्रियावाहकों (Reactors) में किया जा सके। न्यूट्रोन की गति को कम तथा सीमित करने और उनको प्रचूषित (Absorb) करने की प्रवृत्ति आदि गुण होने के कारण बेरीलियम आक्साइड को अधिक प्रभावशाली माडरेटर समझा जाता है।

बेरीलियम की मिश्र धातुएँ अनेक प्रकार के यन्त्रों के स्प्रिंग, नियन्त्रक भागों (Control parts), वाल्व (Valves), वायुयान के कारब्युरेटर (Carburettors) आदि में प्रयुक्त होती हैं। मिश्रधातुओं का उपयोग विस्फोटक पदार्थों तथा मृत्तैल (Petroleum) उद्योगों में भी होता है। बेरीलियम धातु का उपयोग एक्स-रे ट्यूब्स, भ्राशमान दीपकों (Fluorescent lamps) निऑन संकेत (Neon Signs) तथा साइक्लोट्रोन (Cyclotrons) में करते हैं।

बेरील का वितरण

संसार का बेरील का वार्षिक उत्पादन ३०००-५००० टन तक होता है तथा सम्प्राप्ति (Supply) सीमित है। उत्पादक देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका (ब्लेक हिल्स-साउथ डाकोटा), ब्राजील, अर्जेन्टाइना, भारत तथा रूस हैं। कुछ साधारण भण्डार (Reserves) कनाडा, मेक्सिको, दक्षिणी अफ्रीका तथा मेडागास्कर में मिले हैं।

भविष्य

भूभौतिक (Geophysical) तथा रेडियोधर्मी (Radioactive) विधियों तथा भू-वैज्ञानिक (Geological) परीक्षण ही पृथ्वी के गर्त में छिपे हुए उत्तम पिग्मेटाइट्स को प्रकाश में ला सकते हैं। यद्यपि बेरील के भण्डार भारत में प्रचुर हैं तथापि पूर्वेक्षण (Exploration) और खनन-मूल्य में वृद्धि संभवतः भविष्य की सम्प्राप्ति (Supply) में बाधा उत्पन्न करे। सौभाग्य से भारत में बेरील का खनन अभ्रक-उत्पादन से सम्बद्ध है। अतः जब तक भारत संसार का प्रमुख अभ्रक उत्पादक रहेगा तब तक बेरील अयस्क का उत्पादन भी सहयोगी उद्योग के रूप में होता रहेगा।

परिच्छेद ७

रेडियो-सक्रिय खनिज

(Radio-active Minerals)

अनादि काल से मानव इस बात का प्रयत्न करता रहा है कि उसका जीवन अधिक सुखमय हो और जीवन के हर पहलू में अधिक सुविधाएँ, अधिक सुख तथा उसका पूरा भौतिक आनन्द उसे मिले। यही कारण था कि उसने विभिन्न पदार्थों के उपयोग के साथ प्रकृति की आधारभूत शक्तियों को पहिचाना और उन्हें उपयोग में लाने की भरसक कोशिश की। प्रकाश, ताप, ध्वनि तथा चुम्बकत्व के पश्चात् उसने विद्युत् को जाना और इस प्रकार मानव का वह प्राचीन समाज धीरे-धीरे बिल्कुल परिवर्तित हो गया तथा इस पृथ्वी पर न मालूम कितनी सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्रान्तियाँ हुईं। अन्ततोगत्वा मानव ने एक नवीन शक्ति पा ली—नितान्त नवीन—जिसे हम अणुशक्ति कहते है। भारी नाभिकों (Heavy Nuclei) के नियन्त्रित विखण्डन (Fission) द्वारा जनित अणुशक्ति का क्षमता-उत्पादन (Power Generation) में उपयोग करना अब कठिन काम नहीं रह गया है और इस अणुशक्ति ने मानव-जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है।

रेडियम

रेडियम (Radium), यूरेनियम तथा थोरियम (Thorium) एवं कुछ अन्य तत्त्व ऐसे हैं जिनसे अनेक प्रकार के विकिरण (Radiations) निकलते रहते हैं और इसीलिए इनको रेडियो-सक्रिय (Radio active) कहा जाता है। रेडियम की मात्रा सम्पूर्ण संसार में बहुत कम है और यही दशा कुछ अन्य रेडियो-सक्रिय पदार्थों की है, किन्तु जहाँ तक यूरेनियम तथा थोरियम के खनिजों का प्रश्न है, कुछ देशों में इनके भण्डार प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। रेडियम यूरेनियम का वियोजन पदार्थ (Disintegration product) है तथा संसार में प्राप्य अत्यधिक विरल तत्त्वों में से एक है। रेडियम का उपयोग औषधियों, घड़ियों में द्युति-पूर्ण अक्षर लिखने के लिए जिससे अंधेरे में समय देखा जा सके, तथा इस्पात और अन्य मिश्र-

धातुओं में दरारों (Flaws) आदि का पता लगाने के लिए किया जाता है। यूरेनियम के प्रारंभिक उपयोगों में काँच को पीला या कत्थई रंग देना, केलिको (Calico), लेप (Paint) तथा चीनी मिट्टी के बर्तनों आदि में चमक-पूर्ण रंग करने तथा इस्पात, ताँबा और निकल की कुछ विशेष मिश्रधातुओं में प्रयोग करना, आदि सम्मिलित थे। किन्तु वर्तमान समय में मुख्यतः इसका उपयोग अणुशक्ति उत्पन्न करने में होता है, साथ ही रेडियम के निकालने (extraction) में तथा समस्थानिक (Isotopes) निर्माण में जो औषधियों, कृषि-कार्यों तथा उद्योगों में प्रयोग किये जाते हैं। प्रतिरक्षा-कार्यों में अणु तथा हाइड्रोजन बमों के निर्माण में भी इसको प्रयुक्त किया गया है। गत कुछ ही वर्षों में अणुशक्ति-संचालित प्रक्षेपणास्त्रों तथा अन्तर्महाद्वीपीय नियंत्रित क्षेप्यास्त्रों (Intercontinental guided missiles) का निर्माण किया गया है। इस प्रकार दिनों दिन इसके उपयोग बढ़ते जा रहे हैं।

रेडियो-सक्रिय खनिज प्रकृति में अनेक प्रकार के निक्षेपों में प्राप्त हो सकते हैं। इन खनिजों के प्राथमिक निक्षेप मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—प्रथम तो पेगमेटाइट तथा दूसरे धातविक पट्टिकाएँ (Metallic Lodes) मुख्यतः पेगमेटाइट्स में रेडियो-सक्रिय खनिजों की प्राप्ति होती है। कुछ खनिज वियोजन (Disintegration) तथा ऋतुक्षरण (Weathering) के पश्चात् शेलों (Shales) तथा फॉस्फेटिक अवसादीय शिलाओं (Sedimentary rocks) के रूप में पुनः निक्षेपित हो गये हैं। रेडियो-सक्रिय विलयन (Solutions) विकृन्तन कटिबन्ध (Shear Zone) से होकर किसी उपयुक्त स्थान में प्रवेश पा सकते हैं तथा इन स्थानों में रेडियो-सक्रिय खनिजों के प्राप्त होने की पूरी आशा की जा सकती है। भारत में ही इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है। मोसाबानी ताम्रपट्टी (Copper Belt) में ताँबे के अयस्कों एपेटाइट (Apatite) तथा मेग्नेटाइट के अतिरिक्त कुछ रेडियो-सक्रिय खनिज भी मिले हैं। इन धातविक पट्टिकाओं के ये खनिज पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं। इन खनिजों की प्राप्ति धाव प्रकार (Placer-type) के अवसादीय निक्षेपों में भी हो सकती है, उदाहरणार्थ त्रावणकोर की बालुतटीय रेत (Beach Sand)। ये कारनोटाइट में भी मिलते हैं तथा कारनोटाइट जब विशुद्ध होता है तो उसमें ६०% तक यूरेनियम आक्साइड (U_3O_8) हो सकता है। कुछ विशेष विधायनों (Processes) में ये उपजात के रूप में भी मिल सकते हैं।

यूरेनियम

यूरेनियम का मुख्य खनिज पिचब्लेण्ड है जो प्रारंभिक रूप से बेल्जियन, कांगो, कनाडा और चेकोस्लोवाकिया में विदर-पट्टिकाओं (Fissure-Veins) में मिलता है। भारत के यूरेनियम भण्डार भी पर्याप्त उत्तम प्रकार के हैं। पिचब्लेण्ड कभी-कभी यूरेनाइट (Uranite) के साहचर्य में भी प्राप्त होता है, किन्तु अधिकतर यूरेनाइट पेग्मेटाइट्स (Pegmatites) में ही पाया जाता है।

सन् १८६० ई० के पूर्व ही एक जर्मन भू-वेत्ता श्री एमिल स्टोर (Emil Stoehr) ने इस बात का संकेत किया था कि सिंहभूम में ताम्र-यूरेनाइट विद्यमान है। उसके पश्चात् फर्मर (Fermor) हॉलैण्ड तथा बर्टन आदि ने अनेक स्थानों पर रेडियो-सक्रिय खनिजों के प्राप्त होने की पुष्टि की। बर्टन ने एक विशाल पेग्मेटाइट पट्टिका अबरकी पहाड़ नामक स्थान पर प्राप्त की। इस पट्टिका से उसे पिचब्लेण्ड की भी प्राप्ति हुई। पिचब्लेण्ड अथवा यूरेनीनाइट गोलाकार तथा विभिन्न आकारों के पिण्डों (Nodules) में प्राप्त होता है। ये पिण्ड आधारिक पृथक्कारकों (Basic Segregations) के रूप में मिलते हैं। ट्रिपलाइट (Triplite), इल्मेनाइट, टूरमेलीन (Tourmaline) तथा टोर्बरनाइट भी इसके साथ आयोजित रहते हैं। पिचब्लेण्ड अधिकतर यूरेनियम ओकर (Uranium Ochre) की एक परिधि (Rim) द्वारा घिरा रहता है।

बिहार के गया जिले में स्थित पिछली नामक स्थान पर भी पिचब्लेण्ड के निक्षेप हैं। यहाँ पर भी इस खनिज की प्राप्ति उसी रूप में होती है जैसा कि अभी अबरकी पहाड़ के सम्बन्ध में कहा गया है। टोर्बरनाइट तथा ऑट्यूनाइट (Autunite) के अतिरिक्त कोलम्बाइट, मोनाजाइट काला टूरमेलीन तथा गुलाबी गारनेट आदि खनिज भी इसके साहचर्य में पाये गये हैं।

इसी प्रकार राजस्थान के अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र के विसुण्डी नामक स्थान पर पिचब्लेण्ड मिला है। यहाँ पर (Nodules) गहरे काले रंग के तथा स्थूल (Massive) हैं। इन स्थानों के अतिरिक्त भारत के कुछ विरल खनिजों, जैसे समर्सकाइट, फेर्गूसोनाइट तथा यूक्सेनाइट (Euxenite) एवं टेण्टेलम तथा नियोबियम के कुछ अन्य खनिजों में भी यूरेनियम आंशिक रूप से उपस्थित रहता है।

सन् १९५५ में जेनेवा में अणुशक्ति के शांतिकालीन उपयोगों पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। इसमें भारतीय दल के कुछ भू-वैज्ञानिकों ने एक अनुसन्धान-पत्र द्वारा यह संकेत किया था कि भारत में कुछ स्थानों पर यूरेनियम तथा

थोरियम खनिजों के विशाल निक्षेप प्राप्त हुए हैं जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

बिहार के सिंहभूम जिले में जादुगूदा क्षेत्र में यूरेनियम की विशालतर अयस्क-राशियाँ (Ore bodies) मिली हैं। ये निक्षेप ६० मील लम्बी खनिजीकृत पेटी (Mineralised Belt) में विद्यमान हैं। जादुगूदा के अवरुद्ध क्षेत्र में मुख्य खनिजीकृत कटिबन्ध का जिसकी सामान्य मोटाई ८ फुट है, अभिलम्बा विस्तार(Strike--extension) लगभग ३५०० फुट हैं। अभी तक व्यधित-संछिद्रों (Drilled holes) से अयस्क-राशि का १००० फुट की गहराई तक विद्यमान होने का संकेत मिला है। साथ ही, अनेक गौण अयस्क-राशियां भी इन्हीं सामान्य दशाओं में मिली हैं जिनका अभिलम्बानुसार-विस्तार (Strike-wise extension) १३०० फुट है तथा इस अयस्क में ०·०५% से ०·१५% तक यूरेनियम आक्साइड (U_3O_8) है।

मध्य-राजस्थान के यूरेनियमनिक्षेप

उदयपुर के समीप यूरेनियम खनिजायन लगभग १०० व० मी० के क्षेत्र में प्राप्य है। सामान्यतः कार्बनीकृत शेल (Carbonaceous shales) केवल नाममात्र सक्रिय हैं क्योंकि इसमें यूरेनियम आक्साइड (U_3O_8) अवयव का अनुपात केवल ०·०२ प्रतिशत है, किन्तु क्लोराइट शिष्ट तथा कार्बनीकृत जम्ब शिलाओं के जोड़ पर सक्रियता पर्याप्त होती है।

उदयपुर नगर से लगभग ९ मील दक्षिण-पूर्व दिशा में उमरा नामक स्थान पर अत्यन्त समृद्ध यूरेनियम अयस्क प्राप्त हुए हैं। चौथाई वर्ग मील के क्षेत्र में पृथक् पृथक स्थानों पर पाँच यूरेनियममय वीक्ष (Lenses), जो भिन्न-भिन्न आकार के हैं, प्राप्त हुए हैं। इसके साथ ही १/२"–१" तक चौड़ी पट्टिकाओं में, जो इस क्षेत्र में विस्तृत रूप से फैली हुई हैं, यूरेनाइट अपने परिवर्तित सृष्टों (Alteration products) गमाइट (Gummite) तथा अन्य गौण खनिजों ऑट्यूनाइट, टोबर्नाइट, मेटाटोबर्नाइट आदि के साहचर्य में पाया जाता है। कुछ वीक्ष तो २५ फुट लम्बे, ५ फुट चौड़े और २० फुट गहरे हैं। नवीन विकसित ईषाओं (Shafts) द्वारा कुछ गहराइयों पर अन्य अनेक वीक्षों (Lenses) की प्राप्ति हुई है। यहाँ पर प्राप्त अयस्क चल वर्ग (Variable grade) का है तथा इस खनिज के समृद्धतम नमूनों से तो ३९% तक यूरेनियम आक्साइड (U_3O_8) प्राप्त हुआ है तथा औसत वर्ग के अयस्क में ०·८% (U_3O_8) होता है।

उदयसागर क्षेत्र, उदयसागर नगर से लगभग ९ मील पूर्व में तथा उमरा क्षेत्र से उ० उ० प० दिशा में लगभग ६ मील की दूरी पर स्थित है। इस क्षेत्र की मुख्य शिलाएँ कार्बनमय (Carbonaceous) शेल तथा भूरी क्लोराइट शिलाएँ और गारनेट-मय फायलाइट (Phyllites) हैं। क्लोराइटिक शिलाओं तथा गारनेट-मय फायलाइट में ही रेडियो-सक्रिय खनिज यूरेनीनाइट तथा कुछ अन्य गौण खनिजों (Secondary minerals) के छोटे-छोटे कण प्राप्त होते हैं। भूरी शेल (Shales) में यूरेनियम आक्साइड (U_3O_8) की मात्रा ०·३ प्रतिशत तक है। सिलिकामय प्रस्तर-खण्डों (Siliceous breccias) में, जो लौहस (Ferruginous) तथा मेंग-नीजमय भी हैं, पर्याप्त मात्रा में रेडियो-सक्रियता अनुभव की गयी है। इस प्रकार की दो संरचनाओं (Formations) में, जिनकी मोटाई ८-१० फुट तक है, ९०० फुट तक के विस्तार में सक्रिय क्षेत्र पाये गये हैं। विभिन्न स्थानों पर इन संरचनाओं की गहराई भिन्न-भिन्न है। औसत यूरेनियम आक्साइड, जो यहाँ के अयस्क में प्राप्त होगा, प्रतिशत मात्रा ०·०५ से ०·९७ प्रतिशत तक घट-बढ़ सकती है।

यूरेनियम अयस्क का एक अन्य उपयोगी तथा खनन-योग्य निक्षेप राजस्थान में अरावली द्रोणीमाला (Aravalli Synclinorium) के पूर्वी भाग पर भील-वाड़ा जिले के भूनास नामक स्थान पर स्थित है। यहाँ पर पेग्मेटाइट शिलाएँ वीक्ष रूप में प्राप्त होती हैं तथा इनकी उपलब्धि का क्षेत्र कम से कम ३०० × २०० फ़ुट तो अवश्य ही है। इनमें यूरेनाइट तथा क्रायोलाइट (Cryolite) के, जो अधिकांशत: आयोजित रहते हैं, टुकड़े प्राप्त होते हैं, जिनका भार चार पौण्ड तक हो सकता है। ये खनिज फेल्सपार (Felspar) तथा एपेटाइट (Apatite) के साथ भी विभिन्न आकार के कणों के रूप में मिलते हैं। यूरेनियम आक्साइड (U_3O_8) की औसत मात्रा यहाँ पर प्राप्त हरित अभ्रक कटिबन्ध (Green-mica zone) में लगभग ०·१% तक है। स्थानीय रूप से यह मात्रा कम और अधिक हो सकती है तथा न्यूनतम और अधिकतम मात्राएँ क्रमश: ०·०६% तथा ०·४५% हैं। इस अयस्क को पर्याप्त अंशों तक, हाथ से ही चुन कर, समृद्ध किया जा सकता है तथा गुरुत्वाकर्षण (Gravity) एवं प्लवन (Floatation) विधियों द्वारा यूरेनियम आक्साइड की मात्रा का संकेन्द्रण ३% तक किया जा सकता है। इस क्षेत्र के केवल विकसित भाग की संचिति में, जो ३००′ × ५′ × १००′ में विद्यमान है, में शुद्ध यूरेनियम आक्साइड की मात्रा १० टन आँकी गयी है।

इन निक्षेपों के अतिरिक्त देश के अनेक भागों में पर्याप्त मात्रा में मोनाजाइट

पाया जाता है जो थोरियम के साथ-साथ यूरेनियम प्राप्ति का ही एक अच्छा साधन है। हम इन निक्षेपों के सम्बन्ध में तब विचार करेंगे जब थोरियम खनिजों के प्राप्ति-स्थानों की चर्चा की जायगी।

थोरियम (Thorium)

थोरियम कोमल तथा सीसे (Lead) के समान धातु होती है जो कैल्शियम तथा कैल्शियम क्लोराइड के साथ निष्क्रिय वातावरण में अनाक्सीकरण (Reduction) द्वारा प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार प्राप्त चूर्ण (Powder) को संघनित करके इसको विधायित (Process) किया जाता है। प्रारंभिक दिनों में थोरियम का उपयोग थोरियम नाइट्रेट के रूप में जलने वाली गैस बत्तियों की जालियाँ बनाने में किया जाता था, किन्तु विद्युत् के पर्याप्त विकास के कारण थोरियम का महत्व सहसा कम हो गया यद्यपि इसमें कोई विशेष कमी नहीं आयी, क्योंकि इस समय भी भारत तथा चीन में बड़े स्तर पर इनका उपयोग हो रहा है। थोरिया, जो एक भारी श्वेत चूर्ण है, तापरोधी कार्यों में अत्यन्त उपयोगी है। मिश्रातु औषधियों तथा रसायन बनाने में भी यह धातु संतोषजनक रूप से सहायक सिद्ध हुई है। मेग्नीशियम तथा थोरियम के सम्मिश्रण के रूप में इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। भार में हलकी, किन्तु फिर भी दृढ़ और ऊँचे तापक्रमों के भी अवरोध की सहन-शक्ति होने के कारण यह मिश्रातु अथवा मिश्रधातु आधुनिक विज्ञान युग में ध्वनि से भी अधिक गतिमान जेट विमानों (Supersonic jet planes), उपग्रहों (Satellites) तथा प्रक्षेपणास्त्र (Rockets) आदि में प्रयुक्त हो रही है।

गत कुछ वर्षों से थोरियम का मुख्य प्रयोग आणविक शक्ति कार्यक्रम में किया जाने लगा है। थोरियम की एक समस्थानिक (Isotope) थोरियम २३३ क्लीवाणु (Neutron) की बमबारी से उत्पन्न होती है। एक विद्युदणु त्याग कर वह यूरेनियम समस्थानी यू० २३३ में परिवर्तित हो जाती है। यह सृष्ट (Product) सरलता से ही भंग हो सकता है और पारमाणविक ईंधन के रूप में प्रस्तुत है। अब भारत अपने भावी आणविक शक्ति कार्यक्रम में थोरियम को ही पारमाणविक ईंधन का स्थान दे रहा है क्योंकि थोरियम प्रचुर मात्रा में भारत में विद्यमान है।

मोनाजाइट थोरियम का मुख्य अयस्क है जो विरल धातुओं लेन्थेनम (Lanthanum), प्रेसियोडीमियम (Praseodymium), नियोडीमियम (Neodymium) तथा सेमेरियम (Samarium) एवं मुख्य रूप से सीरियम (Cerium) का

ऑर्थोफास्फेट है। इसके साथ-साथ इसमें थोरिया की मात्रा भी रहती है। थोरिया तथा यूरेनिया की अधिकतम मात्राएँ क्रमशः ३३ प्रतिशत तथा ४·५ प्रतिशत तक हो सकती हैं। इसमें अत्यन्त अल्प मात्रा में रेडियम तथा मेसोथोरियम भी हो सकता है। मोनाजाइट के रासायनिक सूत्र के सम्बन्ध में निश्चित रूप से अब भी कुछ नहीं कहा जा सकता।

आर्थिक एवं वाणिज्यिक की दृष्टि से मोनाजाइट के महत्त्वपूर्ण निक्षेप समुद्र-तटीय बालुओं तक ही सीमित हैं। हम साधारणतया है मन्त अथवा कैम्ब्रिन युग से भी प्राचीन मणिभित शिलाओं (Crystalline rocks) में मोनाजाइट पाते हैं। युगों-युगों तक जल तथा वायु के प्रभाव से ये शिलाएँ भग्न हो चुकी हैं और इसके टूटे टुकड़े वर्षा से नदियों, नालियों से बहते हुए समुद्र तक भी पहुँच गये। यह प्रक्रिया अभी तक चलती रही और इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रकृति ने घनता के अनुसार उसके स्तर बनाये। जल-प्रवाह ने उन्हें छाँट कर नदियों तथा समुद्र-तट पर जमा दिया। खनिज मोनाजाइट पर्याप्त भारी, कठोर तथा रासायनिक दृष्टि से स्थिर होता है और यही सब गुण होने के कारण इसके आदि स्रोत शिलाओं से सागर के किनारे तक पहुँचने में यह खनिज नष्ट न हो सका। बालुतटीय रेत में मोनाजाइट के अतिरिक्त इल्मेनाइट, एरिजोनाइट, मेग्नेटाइट, गारनेट, ज़िरकन तथा रुटाइल भी मिलते हैं।

भारत में मोनाजाइट के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निक्षेप, जिनमें मोनाजाइट के साथ इल्मेनाइट तथा अन्य भारी खनिज भी प्राप्त होते हैं, दक्षिण-पश्चिमी समुद्र तट की रेत में ही निहित हैं। इनमें केरल प्रदेश के चावरा तथा मद्रास के मानावाला-कुरीची के प्रसिद्ध निक्षेप भी सम्मिलित हैं। इन निक्षेपों की रेत में प्राप्त मोनाजाइट में थोरिया (Tho2) की मात्रा ७·५–९% तक तथा यूरेनियम-आक्साइड (U_3O_8) की मात्रा ०·३–०·४ प्रतिशत तक हो सकती है। समुद्र तट के इस भाग के लगभग ३००० एकड़ क्षेत्र में औसत ५०० फुट चौड़ाई के १६ स्थानों से विधिवत मोनाजाइट के नमूने इकट्ठे किये गये हैं तथा १५ से २५ फुट की गहराई तक इन निक्षेपों में इल्मेनाइट तथा मोनाजाइट की अनुमानित मात्रा क्रमशः ५·२ करोड़ टन तथा १४ लाख टन है। केरल तट की इस काली रेत में मोनाजाइट ४-५% तक हो सकता है और इस प्रकार संसार के सबसे अच्छे निक्षेपों से भी मोनाजाइट की इतनी मात्रा प्राप्त नहीं हो सकती जितनी त्रावणकोर के इस क्षेत्र से होती है। प्रकृति इसे पहले ही छान चुकी है और अब चुम्बकीय क्रिया तथा विद्युत् की छननियों से इनको

संकेन्द्रित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त मोनाजाइट की शुद्धता ९७-९९ प्रतिशत तक होती है। केरल तट पर प्राप्त मोनाजाइट मिश्रित रेत ही हमारे थोरियम-प्राप्ति का प्रमुख स्रोत है। अणु-शक्ति-आयोग (Atomic Energy Commission) के अनुमान के अनुसार लगभग २००,००० टन मूल धातु हम मोनाजाइट के इन निक्षेपों से प्राप्त कर सकेंगे। समुद्र के तटीय तथा उथले भागों का तट से एक मील तक प्रारंभिक सर्वेक्षण किया गया है जिससे पता चला है कि उस रेत में १५% तक भारी खनिज विद्यमान है।

इसी प्रकार भारत के पूर्वी तट के कुछ भागों से भी, विशेषकर बड़ी नदियों के मुहानों तथा डेल्टाओं पर, लहरों, ज्वारों (Tides) तथा वायु के द्वारा भारी खनिजों के अवसाद अस्तित्व में आये हैं। इस प्रकार के प्रमुख निक्षेप आन्ध्र के भीमलीपतनम तथा वाल्टेयर आदि स्थानों में स्थित हैं। यह रेत केरल तट पर पायी जाने वाली रेत से बहुत कुछ अंशों में भिन्न है। इसमें मेग्नेटाइट तथा गारनेट प्रमुख खनिजों के रूप में नहीं मिलते। इस रेत में प्राप्त भारी खनिज इल्मेनाइट, मोनाजाइट, सिलीमिनाइट, जिरकन तथा रुटाइल आदि हैं जिनके साथ एम्फीबोल (Amphibole) तथा पायरोक्सीन (Pyroxene) खनिज भी आयोजित रहते हैं। इल्मेनाइट की मात्रा इस रेत में ४२% तक तथा मोनाजाइट की मात्रा ०.१४–८% तक हो सकती है।

बिहार तथा पश्चिमी बंगाल के रांची, पुरलिया एवम् अन्य संलग्न जिलों में स्थित आर्कियन प्राचीन भूखण्ड (Archaeon Shield) की अधोनवीन (Subrecent) युग की एल्यूवियम के विस्तृत क्षेत्र में अन्तर्देशीय धाव निक्षेप (Inland placer deposits) मिले हैं जिनकी खनिजीय संरचना बालुटतीय रेत (Beach Sand) के समान ही है तथा साथ ही इनमें कुछ अतिरिक्त खनिज, जैसे कोलम्बाइट-टेण्टेलाइट, यूरेनियम-मय एलानाइट, बेराइट, कैसीटेराइट (Cassiterite) आदि आयोजित रहते हैं। इस मोटी जलोढ (Alluvium) मिट्टी में भार के अनुसार भारी खनिजों का संकेन्द्रण लगभग १० प्रतिशत है। पुरलिया जिले के निक्षेप मोनाजाइट में समुद्र तट की रेत की अपेक्षा अधिक समृद्ध हैं। सर्वाधिक समृद्ध रेत में भारी खनिजों की मात्रा ४-१०% तक हो सकती है। इसी प्रकार मध्य-वर्गीय तथा अधो-वर्गीय रेतों में इनकी मात्रा क्रमशः २-४ प्रतिशत तथा २ प्रतिशत के लगभग आँकी गयी है।

पुरुलिया जिले के काथलडीह नामक स्थान के आसपास से एकत्रित किये गये विभिन्न खनिजों के नमूनों से विभिन्न-विभिन्न स्थानों पर प्राप्त आँकड़ों के अनुसार

उच्च तथा मध्यम वर्गीय रेतों से प्रतिवर्ग मील के क्षेत्र में भारी खनिजों के प्राप्त होने का अनुमान इस प्रकार किया गया है—

खनिज	उच्चवर्गीय रेत के प्रति वर्ग मील क्षेत्र में प्राप्त भारी खनिजों की कुल मात्रा	मध्य-वर्गीय रेत के प्रति वर्ग मील क्षेत्र में प्राप्त भारी खनिजों की कुल मात्रा
मोनाजाइट	३४८०० टन	१५६०० टन
कोलम्बाइट	६९६० ,,	३८२८ ,,
इल्मेनाइट	३७२९० ,,	१८६४० ,,
जिरकन	१३९०० ,,	१३९० ,,
रुटाइल	६९०० ,,	५८६५ ,,
सिलीमिनाइट	३४८०० ,,	२७८०० ,,
एपेटाइट	२४०० ,,	२०४० ,,
मेग्नेसाइट	९५५० ,,	३१८३ ,,

भारत में अणुशक्ति खनिजों के भण्डार

परमाणु शक्ति आयोग के अनुसन्धान-कार्य के आधार पर भारत में १२,००० से १४,००० टन यूरेनियम खनिज तथा १५-२० लाख टन थोरियम खनिज मिलने की आशा की जाती है। इस प्रकार अभी तक प्राप्त आँकड़ों के अनुसार भारत के सम्पूर्ण थोरियम तथा यूरेनियम द्वारा प्रदत्त अणुशक्ति इतनी होगी जितनी शक्ति हम ६०,००० करोड़ टन कोयला जला कर प्राप्त करते।

अणु शक्ति आयोग ने भारत सरकार तथा केरल सरकार (उस समय त्रावनकोर राज्य) के साथ सन् १९५२ के जुलाई मास में कोचीन के निकट अलवाए ग्राम में एक संयंत्र स्थापित करने का निश्चय किया। स्थानीय रूप में प्राप्त मोनाजाइट मिश्रित रेत से फासफेट और विरल मिट्टियों को पृथक् करके थोरियम विलग करना सरल होने के कारण इस योजना के अन्तर्गत था। विरल मिट्टियों तथा ट्रायसोडियम फासफेट के अतिरिक्त इस संयंत्र से एक प्रकार की केक (Cake) भी तैयार की जाने लगी जिसमें यूरेनियम तथा थोरियम होता है तथा जो बम्बई के निकट ट्रॉम्बे को भेजी जाती हैं जहाँ उनसे शुद्ध थोरियम तथा यूरेनियम लवण प्राप्त किये जा सकते हैं।

अलवाए से आये हुए अशुद्ध थोरियम लवणों को विशुद्ध तथा संकेन्द्रित करने के लिए अणु शक्ति संस्थान ट्रॉम्बे में एक थोरियम संयंत्र की स्थापना की गयी।

इस संयंत्र ने १९५५ के जुलाई मास में उत्पादन आरम्भ कर दिया तथा १९५८ के अन्त तक इसकी कार्य-क्षमता लगभग ६ गुनी बढ़ गयी। थोरियम नाइट्रेट निर्माण करने के लिए यह संयंत्र संसार के सबसे बड़े संयंत्रों में से एक है। एशिया के गैस मैंटल उद्योग की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करने के अतिरिक्त यह यूरोप और अमेरिका के बाजारों की भी माँग पूरी करता है। भारत की भावी अणुशक्ति योजना में काम में लाने के लिए इसके उत्पादन का एक भाग जमा कर लिया जाता है।

अणु शक्ति संस्थान ट्रॉम्बे में ही एक यूरेनियम संयंत्र भी स्थापित किया गया है। इसमें प्रतिदिन ५०० टन यूरेनियम अयस्क का पेषण (Milling) तथा विधायन (Process) किया जाता है। इस संयंत्र की स्थापना इस प्रकार की गयी है कि भविष्य में इसका पेषण तथा विधायन समावेशन दोगुना किया जा सके। इस संयंत्र ने जनवरी सन् १९५९ में कार्य करना प्रारंभ कर दिया तथा इससे प्रतिक्रिया वाहक (Reactor) वर्ग का यूरेनियम उत्पन्न होने लगा। इस संयंत्र द्वारा किसी भी प्रकार के यूरेनियम अयस्क का विशुद्धीकरण, संकेन्द्रण तथा विधायन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ईंधन तत्त्वों के तत्वीकरण (Fabrication) के लिए भी एक लघु संयंत्र शीघ्र ही स्थापित होने वाला है। इसकी संरचना प्रारंभ की जा चुकी है।

अणुशक्ति-उत्पादन के लिए भारत में इस समय दो प्रतिक्रिया-वाहक (Reactors) हैं तथा सन् १९६१ के अन्त तक तीसरा भी कार्य करना प्रारम्भ कर देगा। भारत के प्रथम प्रतिक्रिया वाहक 'अपसरा' ने सन् १९५६ में काम करना प्रारंभ किया तथा दूसरा, जो कि 'भारत-कनाडा-प्रतिक्रिया-वाहक' के नाम से विख्यात है, १० जुलाई १९६० की प्रभात वेला में ठीक ५ बज कर ३६ मिनट पर 'चरमता' (Criticality) पर पहुँच गया। यह समस्थानी (Isotopes) उत्पादन के क्षेत्र में संसार के सबसे बड़े प्रतिक्रिया-वाहकों में से एक होगा तथा देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त हम अनेक समस्थानियों का निर्यात भी कर सकेंगे।

परिच्छेद ८

विरल-धातुएँ

एण्टीमनी (Antimony)

साधारण उद्योगों तथा युद्ध-सामग्री में एण्टीमनी के विभिन्न तथा आवश्यक उपयोग हैं। ठण्डे होने पर सिकुड़ने के स्थान पर आकार-वृद्धि का गुण होने के कारण इसका मुख्य उपयोग टाइप मेटल मिश्रधातु (Type metal alloy) के रूप में होता है। केवल एण्टीमनी धातु किसी काम में इसलिए नहीं आती क्योंकि यह बहुत अधिक भिदुर (भंगुर, Brittle) होती है किन्तु अनेक धातुओं और विशेष कर सीसा तथा टिन के साथ मिलकर यह कई मिश्रधातुओं का निर्माण करती है। बहुत से ऐसे कार्यों में जहाँ सीसा अपनी कोमलता के कारण प्रयुक्त नहीं हो सकता उसके साथ एण्टीमनी मिश्रित करने से मिश्रधातु पर्याप्त कठोर तथा अनेक उपयोगों में आने योग्य हो जाती है। इस प्रकार की मिश्रधातुओं में ५ से १२ प्रतिशत तक एण्टीमनी हो सकता है तथा इनको स्टोरेज बैटरी प्लेटों, चादरों तथा पाइपों, विद्युत्-तार उद्योगों, बन्दूक की गोलियों, महीन बर्क़ों (Foils), टूथपेस्ट रखने की ट्यूबों, रासायनिक उद्योगों में अम्ल को एकत्रित करने वाले टैंकों, आभूषणों तथा प्रतिघर्षण वाल्व बियरिंगों (Anti-friction valve bearings) आदि के निर्माण में उपयोग करते हैं। एण्टीमनी के यौगिकों के भी अनेक उपयोग हैं। उत्तरी भारत में एण्टीमनी के सल्फाइड से आँखों में लगाने वाला सुरमा बनाया जाता है। सल्फाइड, ट्राईसल्फाइड तथा पैन्टासल्फाइड एवं अन्य यौगिकों का प्रयोग पिगमैन्टों, इनेमलों, दियासलाइयों, काँच उद्योग, रबर को पकाने तथा औषधियों के निर्माण में भी किया जाता है।

उत्पादन व वितरण

सारे संसार का एण्टीमनी का वार्षिक उत्पादन २५,००० और ५०,००० टनों के बीच घटता-बढ़ता है। इसके मुख्य उत्पादक देश चीन, बोलिविया, मैक्सिको,

संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका तथा पेरू हैं। हंगरी, आस्ट्रिया, यूगोस्लाविया, इटली, टर्की, अल्जीरिया तथा मोरक्को से भी अल्प मात्रा में इसकी प्राप्ति होती है।

भारतीय उपमहाद्वीप में केवल पाकिस्तान में चितराल से १३ मील की दूरी पर **पार्टसन तथा ब्रिज** में एण्टीमनी का प्राकृतिक ट्राईसल्फाइड (स्टिबनाइट) मिलता है। इसमें लगभग ७१·८ प्रतिशत तक धातु होती है। यहाँ के निक्षेप आर्थिक दृष्टि से साधारण ही कहे जाने चाहिए। पूर्वी पंजाब में लाहुल में शिगरी हिमनद के समीप भी एण्टीमनी के अयस्क मिलते हैं। इन अयस्कों में स्टिबनाइट (Stibnite) के अतिरिक्त सेरवेन्टाइट (Cervantite) तथा कर्मेसाइट (Kermesite) भी विद्यमान हैं। रजतमय गैलेना, जिंक ब्लेण्ड, पायराइट तथा मेंगनीज़मय सिडेराइट भी इनके साहचर्य में पाया जाता है। इस स्थान की स्थिति तथा जलवायु के कारण इनका खनन अभी तक नहीं हो सका है और निकट भविष्य में भी संभवतः नहीं हो सकेगा। मैसूर के चितालद्रुग जिले में चिक्कन्नानहाली की कुछ स्फटिकीय शिलाओं में भी स्टिबनाइट तथा एण्टीमनी ओकर (Antimony ochre) के सिध्म (स्थलखंड) (Patches) मिलते हैं। कहीं-कहीं इन पट्टिकाओं की, जिनमें स्टिबनाइट पाया गया है, मोटाई एक फुट तक देखी गयी है। वैसे सामान्यतः वे दो इंच मोटी है। इन निक्षेपों का पूर्वेक्षण भी हो चुका है किन्तु इससे कोई विशेष लाभ होने की संभावना नहीं है।

आयात

भारत में एण्टीमनी की जो भी खपत होती है उसके लिए हमें विदेशों के आयात पर निर्भर रहना पड़ता है। यद्यपि विकरोली (बम्बई) में इसकी एक शोधन-शाला भी है तथापि वहाँ भी बाहर से आये हुए अयस्कों का ही साधन होता है। सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने क्रमशः ३५३ तथा ९५० मीट्रिक टन एण्टीमनी अयस्क का आयात किया जिसका मूल्य क्रमशः ४३२,००० तथा ९१७,००० रुपया हुआ।

आर्सेनिक (Arsenic)

आर्सेनिक भी एण्टीमनी की भाँति एक भिदुर (भंगुर) धातु है जिसका रंग इस्पातीय-भूरा होता है। इसके वैसे तो कई खनिज हैं किन्तु सर्वप्रमुख खनिज

आर्सेनोपायराइट अथवा मिसपिकेल (Mispickel) है। इस खनिज में ४६ प्रतिशत तक आर्सेनिक होता है। इसके अन्य सल्फाइड रियलगर (Realgar) तथा आर्पिमेन्ट (Orpiment) हैं, जिनमें क्रमशः ७० तथा ६१ प्रतिशत के लगभग आर्सेनिक रहता है। धातुकर्म सम्बन्धी कार्यों में इसका प्रमुख उपयोग आर्सेनिकल ताम्र (Arsenical Copper) के निर्माण में होता है। इसमें ०·१ से ०·५ प्रतिशत तक आर्सेनिक धातु रहती है। आर्सेनिक के इस प्रकार मिश्रण से निर्मित धातु अधिक कठोर तथा शक्तिशाली होती है तथा ताप और संक्षारण के रोधन करने में उसकी क्षमता बढ़ जाती है। आर्सेनिकल तांबे का उपयोग रेल के इंजनों, मोटरगाड़ियों के विकिरकों (Radiators) तथा अन्य इसी प्रकार के यन्त्रों में होता है। सीसे के साथ लगभग १ प्रतिशत आर्सेनिक मिलाकर तोप के गोले (Shot) का निर्माण किया जाता है। श्वेत आर्सेनिक बहुत ही विषैला पदार्थ होता है तथा इसका उपयोग मुख्यतः कीटनाशक पदार्थों के बनाने में होता है। इस कार्य के लिए सम्पूर्ण संसार के कुल श्वेत आर्सेनिक उत्पादन के लगभग ७० प्रतिशत भाग का प्रयोग किया जाता है। सीसा तथा कैल्शियम के आर्सेनेट तथा पेरिस ग्रीन (Paris Green) आदि भी उत्तम प्रकार के कीटनाशक पदार्थ हैं। आर्सेनिक के यौगिकों का उपयोग काँच, लकड़ी, चर्म, रंगों, पिगमैन्टों, औषधियों तथा रासायनिक उद्योगों आदि में भी होता है।

उत्पादन व वितरण

आर्सेनिक के मुख्य उत्पादक देश संयुक्त राज्य अमेरिका, मैक्सिको, स्वीडन, फ्रान्स, बेल्जियम, जर्मनी, जापान तथा आस्ट्रेलिया हैं। सभी देशों का कुल श्वेत आर्सेनिक का उत्पादन मिलाकर ६०००० से ७०००० टन प्रति वर्ष तक होता है।

भारत में भी कुछ स्थानों पर आर्सेनिक के खनिजों का पता चला है किन्तु सभी निक्षेप अति अल्प महत्त्व के हैं। कुमाऊँ हिमालय में शंकल्पा हिमनद के हिमोढ़ों (Moraines) में बिखरे हुए खण्डों के रूप में ऑर्पिमेन्ट तथा रियलगर दोनों ही मिलते हैं तथा स्थानीय लोग ही उनको इकट्ठा करते हैं। दार्जिलिंग जिले (पश्चिमी बंगाल) के कालिम्पोंग सबडिवीजन में सम्पथार पहाड़ी पर आर्सेनिकल पायराइट पाया गया है। इस प्राप्ति-स्थान के सम्बन्ध में श्री एफ० आर० मेलेट (F. R. Mallet), ने सन् १८८२ में ही विस्तृत विवरण दिया था। बिहार के हजारी

बाग जिले में भी अभ्रकमय पेग्मेटाइटों में लौह आर्सेनाइडों की प्राप्ति हुई है। इनके प्रमुख खनिज ल्योलिंगाइट (Lollingite) तथा ल्यूकोपायराइट (Leucopyrite) हैं। किन्तु इन निक्षेपों का भी कोई आर्थिक महत्त्व नहीं है। पाकिस्तान में चितराल के आर्सेनिक निक्षेप भी साधारणतः आर्थिक निक्षेप नहीं कहे जा सकते क्योंकि आयात किये हुए आर्सेनिक उत्पादन फिर भी पर्याप्त सस्ते पड़ते हैं।

सन् १९५७ तथा १९५८ में ऑपिमेन्ट तथा रियलगर की आयात की हुई सम्मिलित मात्रा क्रमशः २८ तथा २४ मीट्रिक टन थी जिसका सम्मिलित मूल्य क्रमशः ५३००० तथा ३२००० रु० हुआ।

बिस्मथ (Bismuth)

एण्टीमनी तथा आर्सेनिक की भाँति बिस्मथ भी या तो प्राकृतिक रूप में अथवा प्राकृतिक यौगिकों के रूप में मिलता है। प्राकृतिक बिस्मथ रजत-श्वेत वर्ण का होता है जिसमें प्रायः हलके गुलाबी रंग की छाप रहती है। यह द्युतिमय तथा भिदुर होता है। इसके कुछ विशेष गुण होने के कारण मुख्य रूप से इसका उपयोग औषधि व शृंगार-प्रसाधन आदि के निर्माण में होता है। इसके अतिरिक्त इनेमल, कपड़ों की छपाई, तथा काँच-उद्योग एवं पोर्सिलीन की वस्तुओं को चमक देने के लिए भी यह काम में आता है। बिस्मथ के तार का विद्युत यन्त्रों तथा उत्तम प्रकार के मापक यन्त्रों में प्रयोग किया जाता है। सीसा, टीन, एण्टीमनी तथा कैडमियम आदि के साथ मिलकर बिस्मथ कुछ ऐसी मिश्रधातुओं को जन्म देता है जिन्हें उनके विशेष गुणों के कारण अनेक उद्योगों तथा कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है।

उत्पादन व वितरण

सम्पूर्ण संसार का बिस्मथ धातु का वार्षिक उत्पादन केवल १००० से १७०० टन तक ही सीमित है। प्रमुख उत्पादक देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, पेरू, कनाडा, मैक्सिको तथा बोलिविया उल्लेखनीय हैं। अन्य देश, जहाँ से थोड़ी मात्रा में बिस्मथ की प्राप्ति होती है, जापान, जर्मनी, स्पेन, आस्ट्रेलिया, यूगोस्लाविया, स्वीडन, फ्रांस, सोवियत यूनियन, चीन, कांगों तथा दक्षिणी अफ्रीका आदि हैं।

भारत तथा बर्मा में बिस्मथ के कई खनिज मिले हैं जिनमें प्राकृतिक बिस्मथ, बिस्मथिनाइट (Bismuthinite), बिस्माइट बिस्म्यूटाइट (Bismutite) तथा बिस्म्यूटोस्फेराइट (Bismutosphärite) आदि मुख्य हैं। बिहार में सिंहभूम के

ताम्र अयस्कों के साथ बिस्मथ भी थोड़ी मात्रा में मिला रहता है। पुरुलिया (मानभूम) के निकट मालथोल में बिस्मिथिनाइट तथा बिस्म्यूटोस्फेराइट गैलेना, बेराइटीज़ तथा सेरूसाइट (Cerussite) के साहचर्य में देखे गये हैं। अल्प मात्रा में बिस्मथ पू० पंजाब में कुल्लू की सीमा पर सीरी के मेंगनीज अयस्क के साथ भी आयोजित हैं।

कैडमियम (Cadmium)

कैडमियम संसार की विरलतम साधारण धातुओं में है। इसका वर्ण रजत श्वेत होता है तथा यह कोमल, प्रतन्य (Ductile), घनवर्धनीय (Malleable) तथा सरलता से द्रावणीय (fusible) होती है। अधिकांशतः यह जस्ते के अयस्कों के साथ मिली रहती है जिनमें इसकी मात्रा ०·१ से ०·४ प्रतिशत तक सल्फाइड के रूप में रहती है। कुछ अन्य धात्विक अयस्कों के साहचर्य में भी इसकी अल्पतम मात्राएँ मिलती हैं। वास्तव में कैडमियम पूर्णतया एक उपजात धातु है जो मुख्य रूप से जस्ता-विद्रावण से प्राप्त होती है। अनेकों धातुओं से मिल कर यह भी मिश्रधातुओं का निर्माण करती है। इन मिश्रधातुओं को विभिन्न कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है। कैडमियम के यौगिकों तथा मिश्रधातुओं को रासायनिक, फोटोग्राफिक पदार्थ, पेन्ट, रबर, साबुन, सूती कपड़ों की छपाई, इनेमल तथा काँच-उद्योगों में काम में लाया जाता है।

उत्पादन व वितरण

सारे संसार का वार्षिक उत्पादन ९० से ११० लाख पौण्ड तक होता है। मुख्य उत्पादक देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, मैक्सिको, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया आदि उल्लेखनीय हैं। कम महत्व के देश जर्मनी, वेल्जियम, पोलैण्ड, नार्वे, दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका आदि हैं।

बर्मा में बाउदविन के अयस्क कायों के ज़िकब्लेण्ड में कैडमियम की अत्यन्त अल्प मात्रा रहती है। राजस्थान में झावर की खान के जस्ता-संकेन्द्रण में भी ०·२ प्रतिशत तक यह धातु पायी गयी है। काश्मीर की रियासी तहसील में भी दाराबी के निकट "ग्रेट लाइम्स्टोन" से प्राप्त ज़िकब्लेण्ड में भी ०·१७ प्रतिशत तक कैडमियम धातु विद्यमान है।

पारा (Mercury)

केवल पारा ही एक ऐसी विशुद्ध धातु है जो सामान्य तापक्रम तथा दबाव पर द्रव रहती है। यह सबसे भारी तत्त्वों में से एक है तथा प्राकृतिक रूप से केवल अल्प मात्रा में ही मिलती है। यदि इसको संसार की प्रमुख महत्त्वपूर्ण धातुओं में, इसकी उपयोगिता के अनुसार, रखा जाय तो संभवतः अतिशयोक्ति न होगी। इस धातु के इतने अधिक उपयोग हैं कि यहाँ उनका विस्तृत विवरण संभव नहीं है। अनेक विद्युत् यन्त्रों उदाहरणार्थ स्वचालित स्विचों, क्लचों, रेक्टीफायर्स (Rectifiers) तथा रेडियो यन्त्रों, आदि में, यह काम आती है। औषधियों, ड्राई बैटरियों, आवेजकों (Catalysts), औद्योगिक एवं नियन्त्रक यन्त्रों तथा कृषि संबंधी कीटनाशकों आदि के निर्माण में यह पर्याप्त ऊँचे स्तर पर प्रयुक्त होती है। सोना, चाँदी तथा टिन आदि कई धातुएँ पारे में घुल जाती हैं और जो मिश्रधातुएँ इस प्रकार बनती हैं उन्हें अमलगम कहते हैं। इस गुण का उपयोग सोने तथा चाँदी की पुनःप्राप्ति में भी किया जाता है। दाँत बनाने वाले चिकित्सक भी अनेक कामों में पारे का प्रयोग करते हैं। जलयानों की रक्षा के लिए विशेष प्रकार के पेन्ट्स में भी पारे का उपयोग किया जाता है। विद्युत् यन्त्रों, वैज्ञानिक यन्त्रों, ताप व दबाव मापकों, पारद-वाष्प दीपकों (Mercury Vapour lamps) तथा विशाल अधिष्ठापनों (Big Installations) के पारद वाष्प-बॉयलरों में इस धातु का प्रमुख रूप से उपयोग होता है। पारे को प्लास्टिकों, विशेष प्रकार की रंगसामग्रियों में तथा रासायनिक उद्योगों जैसे क्लोरीन तथा कॉस्टिक सोडा के लिए तथा विद्युदांशिक सामग्री (Electrolytic Preparation) के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है।

उत्पादन व वितरण

पारे का वार्षिक उत्पादन १४०००-२७५००० फ्लास्क तक सीमित है। इस उत्पादन का ९० प्रतिशत भाग इटली, स्पेन, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा मेक्सिको से आता है। अल्प मात्रा में पारा कनाडा, चीन, जापान, दक्षिणी अफ्रीका, चिली, सोवियत संघ तथा पेरू से भी प्राप्त होता है। सम्पूर्ण प्रमुख देश जहाँ पारे का उत्पादन होता है, इसके सल्फाइड खनिज सिनाबार (Cinnabar) से ही इसकी प्राप्ति करते हैं।

भारत में भी सिनाबार के अनेक स्थानों पर मिलने की सूचना मिली है किन्तु

इनमें अधिक तथ्य नहीं समझना चाहिए। केरल में क्विलोन के निकट नीदाकारा की काली बालुतटीय रेत के संकेन्द्रण से सिनाबार के कुछ कण मिले हैं। पाकिस्तान में सिनाबार खनिज के सिध्म चितराल में देखे गये हैं। कुछ लोगों का विचार है कि भूवैज्ञानिक-काल की दृष्टि से पारे का निर्माण उत्तर-युगों (Later periods) में हुआ है और क्योंकि भारतीय हिमालयन कटिबन्ध के दोनों ओर उत्तर-पश्चिम में यून्नान (चीन) तथा पश्चिम में अफगानिस्तान में सिनाबार मिला है, इस संभावना को पूर्ण रूप से तथ्यहीन नहीं कहा जा सकता कि इसके विशाल निक्षेप हिमालय क्षेत्रों में आसाम से लेकर काश्मीर तक अब भी अपूर्वेक्षित पड़े हों। वर्तमान समय में भारत की सभी पारे की आवश्यकताओं की पूर्ति आयात किये हुए पारे से होती है।

परिच्छेद ९

खनिज-इंधन

पत्थर-कोयला (Coal)

आधुनिक युग में विद्युत्, उद्योग तथा यातायात के विकास के लिए कोयला परमावश्यक पदार्थ है। भारत के औद्योगिक विकास में भी इसकी देन किसी से कम नहीं है। भारतीय रेल-यातायात में कोयले का सर्वाधिक प्रयोग होता है तथा देश में उत्पन्न सम्पूर्ण कोयले का एक-तिहाई भाग इस कार्य में प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त लोहा तथा इस्पात उद्योग में भी ऐसे उत्तम कोयले की आवश्यकता होती है जिससे कोक (Coke) बनाया जा सके। भारत में साधारण तथा घटिया प्रकार के कोयले के भण्डार तो प्रचुर हैं किन्तु कोक उत्पादन योग्य उत्तम प्रकार का कोयला अपेक्षाकृत सीमित मात्रा में ही विद्यमान है। इस्पात उद्योग के अतिरिक्त कोयले की खपत विद्युत् उत्पन्न करने, अनेक प्रकार के कारखाने संचालित करने तथा घरेलू कार्यों में होती है। राष्ट्र मंडलीय (Commonwealth) देशों में इंगलैण्ड के पश्चात् ही भारत का स्थान दूसरा है।

भारत में कोयले के खनन का वास्तविक प्रारम्भ विलियम जोन्स ने दामलिया (रानीगंज) के समीप में सन् १८१५ में किया जब कि ईषाएँ (Shafts) निमज्जित (Sunk) की गयी थीं और उनसे कोयला निकाला गया था। यद्यपि रानीगंज में कोयला-प्राप्ति की सूचना सन् १७७४ में ही मिल चुकी थी पर खनन सन् १७७७ में ही किया जा सका था। कुछ इस प्रकार के भी संकेत मिलते हैं कि श्री जोन्स ने बेल-पिट विधि (Bellpit Method) द्वारा भी कोयले की थोड़ी सी खुदाई की थी। निमज्जन का व्यय कम होने के कारण ईषाओं (Shafts) द्वारा सकरे स्तरों (Seams) का पर्याप्त विकास हुआ। यह क्रमिक विकास कोयले की माँग पर आधारित था। १९वीं शताब्दी के मध्यकाल में ऐसा समझा जाता था कि "ईषाओं द्वारा अधिक छिद्रों (Holes) से अधिक कोयला प्राप्त होगा"।

इन दिनों कोयले को खोदने के स्थान से धरातल तक लाने में वही विधियाँ प्रयुक्त की जाती थीं जो कुएँ से पानी खींचने में आज भी की जाती हैं और इनमें प्रायः बैल तथा मानव-शक्ति का प्रयोग किया जाता था। जब यातायात के साधन और बढ़े तथा सँकरे स्तरों तक पहुँचना सम्भव हो सका तब प्रवणकों (Inclines) का विकास हुआ। रेल तथा नदी यातायात के साधन १८५५-५६ में उपलब्ध हो चुके थे तथा कुछ कोयले की खानों तक रेल की पटरियाँ भी बिछा दी गयी थीं और कलकत्ता के समीप ईस्ट इण्डिया रेलवे पर विद्यावती में कोयले का एक संग्रह स्थल (Coal-depot) भी स्थापित कर दिया गया था। धीरे-धीरे खनन का विकास हुआ और परिणामतः सन् १८६० में रानीगंज क्षेत्र कुल भारत के उत्पादन का लगभग ८८% कोयला उत्पन्न करने लगा। सन् १९०० ई० में रानीगंज क्षेत्र का उत्पादन २५·५ लाख टन हो गया जब कि सम्पूर्ण भारत का उत्पादन ६५·५ लाख टन था। सन् १९०० से कोयले का निर्यात भी प्रारंभ हुआ। सन् १९०६ तक झरिया क्षेत्र का उत्पादन रानीगंज से भी अधिक हो गया, फलस्वरूप १९१४ में वह १६५ लाख टन तक जा पहुँचा जिसमें ९१·५ लाख टन झरिया का तथा ५० लाख टन कोयला रानीगंज क्षेत्र का सम्मिलित था।

प्रथम महायुद्ध के प्रारंभ होने से कोयला-खनन उद्योग को काफी आघात लगा तथा १९२०-२४ के बीच कोयले का मूल्य पर्याप्त बढ़ गया। सन् १९२९-३० में उत्पादन २३० लाख टन तक पहुँच गया। महायुद्ध से उत्पन्न कठिनाइयों के होते हुए भी उत्पादन वृद्धि पर ही रहा और १९५० में यह मात्रा ३२३०७४८१ टन हो गयी। भारत-विभाजन के पश्चात् बलूचिस्तान, सीमांत प्रदेश तथा पश्चिमी पंजाब आदि के पाकिस्तान में सम्मिलित हो जाने के कारण उत्पन्न हुई स्थिति का भारतीय कोयला उद्योग पर कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ।

भारत में कोयले का वितरण

भारत में कोयला मुख्यतः दो विभिन्न युगों के स्तर-समूहों में पाया जाता है जिनमें एक है गोंडवाना युग तथा दूसरा तृतीयक युग। इनमें गोंडवाना कोयला अधिक उच्च श्रेणी का है। इस कोयले में भस्म की मात्रा कम तथा तापोत्पादक शक्ति अधिक होती है। तृतीयक युग का कोयला अपेक्षाकृत घटिया प्रकार का होता है जिसमें विशेष रूप से गंधक की प्रचुरता होती है तथा इसी कारण इस कोयले का कतिपय उद्योगों में प्रयोग नहीं किया जा सकता। मुख्य गोंडवाना

अपावरण (Exposers) तथा अन्य सम्बन्धित कोयला-निक्षेप प्रायद्वीपीय भारत में दामोदर, सोन, महानदी, गोदावरी और उनकी सहायक नदियों की घाटियों के अनुप्रस्थ के एक रेखाबद्ध क्रम में वितरित हैं। इस क्षेत्र का कोयला पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, बम्बई तथा आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों में मिलता है।

पश्चिमी बंगाल

रानीगंज कोयला क्षेत्र—इस क्षेत्र का अधिकांश भाग पश्चिमी बंगाल में स्थित है। कलकत्ता से उत्तर पश्चिम में १२०-१२५ मील की दूरी पर यह क्षेत्र बीरभूम, बर्दवान तथा बिहार के मानभूम जिले में फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल ४२२ वर्ग मील (ए० के० डे के अनुसार ६१९ व० मी०) है तथा पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी रेल मार्ग यातायात के प्रमुख साधन हैं। यहाँ अधोगोंडवाना (Lower Gondwana) क्रम की तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है—सबसे नीचे तालचीर श्रेणी, मध्य में दामूदा श्रेणी तथा सबसे ऊपर पन्चेट श्रेणी है। दामूदा श्रेणी पुनः तीन उप-श्रेणियों में विभक्त कर दी गयी है। बराकर अथवा अधो-कोल मेजर्स (Lower Coal Measures), लौह-प्रस्तर शेल (Iron stone shails) तथा रानीगंज अथवा उच्च कोल मेजर्स। ये उप-श्रेणियाँ क्रमशः सबसे नीचे, मध्य तथा सर्वोपरि हैं। अधो-मेजर्स (बराकर) में कुल सात कोयले के संस्तर हैं जिनमें चन्च, लाइकडी, रामनगर, दामगरिया तथा सलनपुर जिनकी औसत मोटाई २० फुट है, अधिक प्रसिद्ध हैं। उच्च मेजर्स (रानीगंज) में ९ स्तर हैं जिनमें दिसरगढ़ (१८′) संकटोरिया (१०-१५′) तथा रानीगंज (१०-२०′) भी सम्मिलित हैं। बराकर युग के कोयले में अपेक्षाकृत अल्प आर्द्रता (Moisture) है तथा तुलनात्मक दृष्टि से अल्प-उत्पत (Low-volatile) [२१-३०%] एवं स्थिर कार्बन (Fixed Carbon) का अनुमान भी ५२ से ६४% तक है जब कि साधारणतया यह मात्रा ५५% तक ही सीमित रहती है। बराकर मेजर्स का सम्पूर्ण कोयला कोकिंग प्रकार का है तथा लाइकडीह और रामनगर स्तरों से विशेष रूप से इस प्रकार का कोयला प्राप्त होता है। इस क्षेत्र के कुछ भागों से ऐसा भी कोयला प्राप्त होता है जिसका उपचार (Treatment) यदि उचित रूप से किया जाय तो इसका प्रयोग अनेक उद्योगों में अच्छे कोयले की भाँति किया जा सकता है। रानीगंज (उच्च मेजर्स) के कोयले की संरचना विभिन्न स्थानों पर

भिन्न-भिन्न है। बराकर कोयले की तुलना में इस कोयले में आर्द्रता अधिक होती है तथा यह मात्रा ३-१०% तक हो सकती है। इसी प्रकार उत्पत-अंश की मात्रा भी इसमें २९-३८% तक घटती बढ़ती है। तापोत्पादक शक्ति भी इसकी कम है। दिसरगढ़ एवं संकटोरिया-पोनियाती स्तरों से उत्तम प्रकार का वाति-कोयला (Gas coal) प्राप्त होता है। उच्च मेजर्स के शेष स्तरों से या तो नान-कोकिंग (Non-coking) अथवा बहुत कोमल (Soft) कोक मिलता है। दामोदर घाटी के अन्य कोयला क्षेत्रों की भाँति रानीगंज कोयला मेजर्स में भी अति-क्षारीय (Ultra-basic) डाइकों (Dykes) तथा सिलों (Sills) का प्रवेश मेसोज़ोइक (Mesozoic) युग में हुआ है। परिणामतः अनेक स्थानों पर कोयला अंशतः भस्म कोयले (Coked coal) में परिवर्तित हो गया है जिसे साधारणतः "झामा" कहते हैं।

(विश्लेषण-तालिका पृ० १६२ पर देखिए)

इस क्षेत्र के विभिन्न स्तरों का विश्लेषण निम्न प्रकार हैं

	स्तर	आर्द्रता	उत्पत पदार्थ ((V. M.)	स्थिर कार्बन (F. C.)	भस्म	कैलोरी शक्ति (C. V.)	कोक का प्रकार
उच्च मेजर्स (रानीगंज)	दिसरगढ़	१·८३	३५·९५	५०·५४	११·६८	७०७४	कठोर रंध्र कोक
	संकटोरिया	२·३१	३४·७८	५१·०७	११·८४	६९८३	,,
	गुसिक	४·१०	३३·८०	५३·५०	१२·७०	६७९१	अधो-कोक
	रानीगंज	५·८१	३३·१४	४५·९०	१५·१५	६०६७	,,
	जामबाद	५·१९	३६·९८	४५·५९	१२·२४	—	,,
अधो-मेजर्स (बराकर)	चंच	१·६३	२८·९६	५६·०२	१३·३९	—	अत्यंत कोकिंग
	रामनगर	१·६१	२७·९७	५८·१५	१२·२५	७०२२	,,
	लाइकडीह	१·५८	२८·७४	६०·२७	९·४१	७४०८	,,
	दामगरिया	१·२४	२३·००	६२·००	१५·००	७१४९	कोकिंग

रानीगंज कोयला क्षेत्र में १००० फुट की गहराई तक कोयला के भण्डारों का अनुमान इस प्रकार किया गया है—

कोकिंग कोयला		२८७७ लाख टन
(Non-coking)		२७५९२ ,, ,,
उत्तम कोयला		
(Non Coking)		४९४९४ ,, ,,
अधोवर्गीय कोयला		
योग...		७९९६३ लाख टन
अभी तक उत्पादित कोयला		५४०० लाख टन
स्वस्थाने प्राप्य कोयले के भण्डार		७४५६३ लाख टन
	(Less) १०%	७४५६ लाख टन
खनन योग्य भण्डार		६७१०० लाख टन

बिहार

झरिया कोयला क्षेत्र—यह क्षेत्र लगभग १७५ वर्ग मील के विस्तार में है तथा रानीगंज कोयला क्षेत्र के पश्चिम में ३० मील की दूरी पर स्थित है। अधो-मेजर्स (बराकर) मोटाई में २००० फुट हैं। इनमें अनेक महत्त्वपूर्ण स्तर हैं जिनमें बहुतों की चौड़ाई २० फुट से भी अधिक है। उच्च मेजर्स (रानीगंज) में अपेक्षाकृत कम महत्त्व के स्तर हैं। बराकर मेजर्स में २४ से अधिक ही विभिन्न स्तर हैं जिनमें किसी भी स्तर की मोटाई ४ फुट से कम नहीं है तथा अनेकों की २० फुट अथवा इससे भी अधिक है। जियलगारा तथा भागावन्द संघों (Stages) में सर्वोत्कृष्ट कोकिंग कोयला प्राप्त होता है। अभी तक देश के लोहे तथा इस्पात के उद्योग इस क्षेत्र के कुछ स्तरों पर ही निर्भर रहे हैं। गोंडवाना युग के प्राप्त कोयलों में यह उत्तम प्रकार का तथा चुने हुए प्रथम वर्ग का कोयला है।

बराकर (अधो-मेजर्स) के कुछ प्रमुख स्तरों के कोयले का विश्लेषण इस प्रकार है—

कोयला खान	स्तर	आर्द्रता (M.)	उत्पत पदार्थ (V. M.)	स्थिर कार्बन (F. C.)	भस्म (Ash)	कैलोरी शक्ति
धामाबन्द	XVIII	१.८०	२४.६०	६५.००	१०.४०	७६०८
बलियारी	XVII A	१.६८	२६.८५	६३.३०	९.८५	७६३४

जामादोवा	XVII	१.७०	२६.७०	६२.३०	११.००	७५१७
द० बलियारी	XVI	२.१०	२४.३५	५२.६५	२३.००	६४१०
लोदना	XV	१.२४	२२.१०	६४.६६	१३.२४	७६९३
भालगोरा	XIV	१.०८	२४.३२	६०.६५	१५.०२	७१८५
बानजोरा	XIII	०.८०	२१.२०	६६.४०	१२.४०	७४०३
चेतूडीह	XII	०.०८	२०.६५	६२.८०	१७.४०	७००४
कतरास	XI	१.०८	२०.६५	६४.४७	१४.८८	७२९१
कुजूरा	X	१.२०	२०.२०	५०.४०	२०.४०	६६८१

उच्च-मेजर्स (Upper Measures) में चार स्तर (Seams) हैं जिनके गुण निम्न प्रकार हैं—

स्तर	आर्द्रता (M)	उत्पत पदार्थ (V. M.)	स्थिर कार्बन (F. C.)	भस्म (Ash)	कैलोरीशक्ति (C. V.)
D	२.११	२८.४०	५२.८०	१८.८०	६६०७
हतुडीह	२.०७	३२.२०	५२.७५	१५.०५	७०८४
बानन गोरा	१.६४	२८.७५	५५.१०	१६.१५	६९४४
कोराडीह	२.२०	२७.९८	५७.२०	१५.१२	७४०३

इस क्षेत्र के कोयला भण्डारों की अनुमानित मात्रा घटिया तथा उत्तम प्रकार के कोकिंग कोयले के लिए क्रमशः ९५८२० तथा २१४५० लाख टन है जो X से XVIII स्तर तक प्राप्त होगा।

बोंकारो कोयला क्षेत्र

यह क्षेत्र झरिया कोयला क्षेत्र के पश्चिम में लगभग २-३ मील की दूरी पर स्थित है तथा इसका क्षेत्रफल लगभग २२० व० मी० है जिसमें बोकारो नदी का आवाह-क्षेत्र (Catchment area) भी सम्मिलित है। बराकर की कुल मोटाई २३७० फुट है तथा इनमें निम्न प्रमुख स्तर भी सम्मिलित हैं—

'अ' ('A') स्तर	१२	फुट
करगाली	४१ से १२३	,,
बर्मो	४० से ४६	,, तथा
कारो	७० से १२०	,,

इस क्षेत्र का पूर्वी भाग प्रदेशीय कोयला खानों द्वारा अधिक विकसित किया गया है। करगाली स्तर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा संसार के सर्वाधिक मोटे स्तरों में इसका अपना विशिष्ट स्थान है। इस स्तर के १६ फुट गहराई तक के ऊपरी भाग का विश्लेषण इस प्रकार है—

आर्द्रता (M.) १.५०%; उत्पत पदार्थ २४.९८%; स्थिर कार्बन ६२.७२% भस्म—१२·३०% तथा कैलोरी शक्ति—७३४५।

क्षेत्र के पश्चिमी भाग में ९ स्तर हैं जिनमें भस्म का अनुपात साधारणतया अधिक है।

एक हजार फुट की गहराई तक इस कोयला क्षेत्र के अनुमानित भण्डार इस प्रकार हैं—

करगाली स्तर	१७५०	लाख टन
बर्मी ,,	१४८०	,, ,,
कारो ,,	११००	,, ,,
पश्चिमी बोकारो के ९ स्तर	१०१०	,, ,,
योग	५३४०	लाख टन

रामगढ़ कोयला क्षेत्र

कम से कम चार प्रमुख स्तर, जिनमें प्रत्येक की औसत मोटाई २५ फुट होगी, इस क्षेत्र में मिले हैं। रामगढ़ क्षेत्र बोकारों के दक्षिण-पश्चिम में लगभग ३० मील की दूरी पर है। एक हजार फुट की गहराई तक भण्डारों की अनुमानित मात्रा १०००० लाख टन समझी जाती है।

करनपुरा कोयला क्षेत्र

यह क्षेत्र दामोदर घाटी के पश्चिमी भाग में बोकारो कोयला क्षेत्र के पश्चिम में कुछ ही मील की दूरी पर स्थित है।

दक्षिणी करनपुरा क्षेत्र में, जिसका विस्तार ७५ व० मी० में है, १८ स्तर है जिनकी कुल मोटाई २८२ फुट के लगभग होगी। कुछ स्तरों का विश्लेषण निम्न प्रकार है—

स्तर	आर्द्रता (M.)	उत्पत पदार्थ (V.M.)	स्थिर कार्बन (F. C.)	भस्म (Ash)	कैलोरी शक्ति (C. V.)
सिमाना	५·२८	३१·७३	५१·३६	११·६३	६३५२
सिरका	१·६३	३१·१३	५२·१८	१५·०५	६५६२
अरगदा	४·१५	३२·८५	५०·८५	१६·३०	६६४६

उत्तरी करनपुरा क्षेत्र का विस्तार ४७५ व० मी० में है जिसमें कई स्तर हैं। इनकी मोटाई १२-९० फुट तक है। इसका पूर्वेक्षण अभी भली प्रकार नहीं किया गया है।

दक्षिणी तथा उत्तरी करनपुरा के कोयला-भण्डारों का अनुमान क्रमशः ११७४० लाख टन तथा ४५०८० लाख टन किया गया है।

गिरडीह कोयला क्षेत्र

यह क्षेत्र बिहार राज्य के हजारीबाग जिले में स्थित है। यद्यपि इस क्षेत्र का विस्तार केवल ११ व० मी० ही है तथापि अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण यह काफी महत्त्वपूर्ण है। इसके महत्त्व का एक और कारण यह है कि इस क्षेत्र ने सर्वोत्तम प्रकार के कोयले का उत्पादन किया है। प्रमुख स्तरों अधो-करहरवाड़ी (Lower), उत्तर-करहरवाड़ी (Upper) तथा मद्दुआ की मोटाई क्रमशः १०-२४ फुट, ४-१० फुट तथा ६ फुट के लगभग है। दोनों करहरवाड़ी स्तरों से सर्वोत्तम प्रकार का धातवीय कोकिंग कोयला प्राप्त हुआ है। सर फॉक्स (Sir Fox) ने इस क्षेत्र में कुल कोयले की मात्रा का अनुमान ४·९ करोड़ टन के लगभग किया था। सन् १९५० में उत्तम प्रकार के कोकिंग कोयले की केवल १·७ करोड़ टन मात्रा ही शेष बची थी।

दामोदर घाटी के उत्तर में तथा पूर्वी बिहार की राजमहल पहाड़ियों के पश्चिमी किनारे पर लगभग ७० व० मी० क्षेत्र में छोटे-छोटे निरीह सिध्मों (Patches, स्थल खंड) के रूप में बराकर युग के कोयले के निक्षेप मिले हैं। इस क्षेत्र में केवल स्थानीय खपत के लिए ही कोयले का थोड़ा-बहुत शोषण होता है।

पालामऊ जिलेके कोयला-निक्षेप

दामोदर घाटी के कोयला-क्षेत्रों की पेटी (Belt) पश्चिम की ओर कोइल नदी तथा उसकी सहायक नदियों तक फैली हुई है। औरंगा, हुतार तथा डाल्टनगंज

के इन कोयला क्षेत्रों को पालामऊ समूह के अन्तर्गत माना जाता है। औरंगा कोयला क्षेत्र का विस्तार १०० व० मी० में है तथा इसमें मुख्यतः कार्बोनेशियस शेल (Carbonaceous shale) तथा कुछ छुट-पुट कोयले के लक्षण दिखते हैं। यद्यपि यहाँ पर प्राप्त स्तर ४० फुट तक मोटाई के हैं, फिर भी इनमें प्राप्त कोयले में इतनी अधिक मात्रा में भस्म तथा आर्द्रता है कि इन क्षेत्रों का विधिवत् शोषण संदेहपूर्ण है। हुतार क्षेत्र औरंगा से १२ मील पश्चिम में है। इसका क्षेत्रफल ८० व० मी० है तथा ५ स्तर प्राप्त हुए हैं। अधिकांश कोयला जो इस क्षेत्र से मिल सकता है बहुत ही घटिया प्रकार का है। डाल्टन गंज क्षेत्र का विस्तार लगभग ३२ व० मी० के क्षेत्र में है। यहाँ प्राप्त कोयला नान-कोकिंग (Non-coking) तथा द्वितीय वर्ग का है। इस क्षेत्र के भण्डारों का अनुमान करने के लिए पर्याप्त भूतात्विक सर्वेक्षण तथा पूर्वेक्षण करना पड़ेगा। श्री लाटूश (१८९१) के अनुसार रझारा के निकट मध्यम प्रकार के कोयले के भण्डार एक वर्ग मील में ९० लाख टन आँके गये थे।

उड़ीसा

तालचीर कोयला-क्षेत्र

यह क्षेत्र तालचीर नगर के पश्चिम में कटक से ६४ मील उ० प० में स्थित है तथा इसका क्षेत्रफल ७०० व० मी० है। बराकर शिलाओं की कुल १८०० फुट की मोटाई में केवल दो ही स्तर हैं जिनमें चोटी (Top) तथा आधार तल (Bottom) के स्तरों की मोटाई क्रमशः ९ फुट तथा १२ फुट है। इस समय पर कार्य कर रही खानों में कोयले के भण्डारों का अनुमान ७·४ करोड़ टन है।

ईब नदी कोयला-क्षेत्र

यह क्षेत्र सम्बलपुर जिले में झुरसुगूदा नामक रेलवे स्टेशन से केवल ६ मील की दूरी पर स्थित है। कुल मिलाकर इस क्षेत्र में ५ कोयला-स्तर हैं जो इस प्रकार हैं—गम्हादरा (२½ फुट), लाज कुरिया (६ फुट), रामपुर (१० फुट), बंगला (७ फुट) तथा एक अन्य ईब नदी स्तर १६ फुट मोटाई का है जिसका तली वाला १० फुट मोटा भाग उत्तम कोयले से परिपूर्ण है। कुछ स्तरों का विश्लेषण निम्न प्रकार है—

स्तर	आर्द्रता (M.)	उत्पत पदार्थ (V.M.)	स्थिर कार्बन (F. C.)	भस्म (Ash)	तापीय शक्ति (C.V.)
लाजकुरिया	९·९०	३१·४५	३७·४४	२१·२४	९०३६
रामपुर	१०·७	३५·३२	४८·६६	१६·०२	—
बंगला	९·८०	२८·४४	४८·९६	१२·८०	१०८४०

लाजकुरिया तथा रामपुर स्तरों के लिए १००० फुट की गहराई तक भण्डारों का अनुमान ७४ करोड़ टन किया गया है।

हिंगीर कोयला क्षेत्र—ईब नदी कोयला क्षेत्र के उत्तर-पश्चिम में यह कोयला क्षेत्र स्थित है। इसमें ५ स्तर मिले हैं।

बम्बई

वर्धा-घाटी कोयला-क्षेत्र

वर्धा क्षेत्र १६०० व० मी० के विशाल क्षेत्र के विस्तार में है। यहाँ पर कई स्तर हैं। सर्वाधिक मोटे स्तर की मोटाई लगभग ७० फुट है।

बरोरा कोयला-क्षेत्र

यह बरोरा रेलवे स्टेशन के समीप ही उ० पू० में स्थित है। यहाँ पर चार स्तर क्रमशः ४½ फुट, ९ फुट, ७ फुट तथा ४ फुट मोटाई के प्राप्त हुए हैं। दो स्तरों से प्राप्त कोयले का विश्लेषण इस प्रकार है—

		आर्द्रता	उत्पत पदार्थ	स्थिर कार्बन	भस्म
चोटी का स्तर	१५′	१३·९०	२६·५०	४५·४०	१४·२०
तली का स्तर	१०′	९·७८	२९·६०	४३·७२	१६·८८

बन्दर कोयला-क्षेत्र

यह क्षेत्र बरोरा के उत्तर-पूर्व में ३० मील की दूरी पर स्थित है तथा इसमें ४ स्तर हैं जिनकी मोटाई क्रमशः ७ फु०, १७ फु०, ३ फु० तथा ६ फु० है। इस अविकसित कोयला क्षेत्र के भण्डार १०·८ करोड टन आँके गये हैं।

राजुर कोयला-क्षेत्र

१८ फुट से ३० फुट तक के स्तर कम गहराई पर पिस गाँव से बरोरा तक

मिलते हैं। एक अन्य स्तर जिसकी औसत मोटाई लगभग १५ फुट है बुन तथा पापुर में १३ मील के विस्तार में पाया गया है। पिस गाँव-बरोरा क्षेत्र में २० फुट मोटे एक स्तर में प्राप्त कोयले की मात्रा का अनुमान २४·० करोड़ टन तथा वुन-पापुर क्षेत्र के कोयले का अनुमान १०·५ करोड़ टन है। राजुर कोयला खान से प्राप्त कोयले का विश्लेषण इस प्रकार है—आर्द्रता १०·९१; उत्पत पदार्थ ३५·३०; स्थिर कार्बन ४९·३०; तथा भस्म १५·४०; एवम् तापीय-शक्ति ६५३९ कैलोरी।

घूगुस-तेलवासा कोयला-क्षेत्र

इस क्षेत्र के एक प्रमुख स्तर की मोटाई १५ फुट है। कभी-कभी यह मोटाई ७० फुट तक हो गयी है। उत्तरी क्षेत्र में स्थित माजरी कोयला खान में इसकी मोटाई ५० फुट है तथा घूगुस खान में मोटाई केवल १७ फुट है। इसी प्रकार जुनाद तथा नलजाई में इसी स्तर की मोटाई क्रमशः ६२ तथा ७० फुट है।

घूगुस स्तर का विश्लेषण—आर्द्रता १३·५६, उत्पत पदार्थ २८·२४, स्थिर कार्बन ५३·५६ तथा भस्म १८·२०, एवम् तापीय शक्ति ६२४९ कैलोरी।

सम्पूर्ण क्षेत्र से प्राप्त कोयले की मात्रा का अनुमान लगभग एक अरब टन किया गया है।

चान्दा नगर के समीपस्थ क्षेत्र में दो स्तर क्रमशः १९ फुट तथा २६ फुट मोटाई के प्राप्त हुए हैं।

बल्लारपुर कोयला-क्षेत्र

क्रमशः ५ फु०, १४ फु०, ४ फुट तथा १०½ फुट मोटाई के चार स्तर इस क्षेत्र में मिले हैं। बल्हारशाह कोयला खान में चोटी तथा तली (Bottom) स्तरोंपर खनन-कार्य होता है। इनका विश्लेषण इस प्रकार है—

	आर्द्रता	उत्पत पदार्थ	स्थिर कार्बन	भस्म
चोटी का स्तर	९·००	३४·००	४२·००	१५·००
तलीय स्तर	१०·००	३३·००	४५·००	१२·००

चाँदा तथा बल्हारशाह के मध्य स्थित क्षेत्र के भण्डारों की अनुमानित मात्रा ८०० फुट की गहराई तक लगभग २ अरब टन है।

कामठी कोयला-क्षेत्र

कन्हान रेलवे स्टेशन के समीप इस क्षेत्र में कुल ६ स्तर हैं जिनमें चोटी (Top) के स्तर की मोटाई २१ फुट है। भण्डार लगभग १·८ करोड़ टन है।

आन्ध्र प्रदेश

सास्ती क्षेत्र

यह क्षेत्र वर्धा नदी के दक्षिणी किनारे की ओर है तथा एक प्रकार से बल्लारपुर क्षेत्र का ही विस्तार है। १७ फुट तथा १४ फुट के दो स्तर यहाँ मिले हैं। सन् १८७७ में ही १½ व० मी० क्षेत्र में ३ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान लगाया गया था। वामनपल्ली-लाथी क्षेत्र में एक अरब टन कोयला होने की संभावना है।

सिंगरेनी कोयला-क्षेत्र

सिंगरेनी क्षेत्र वारंगल जिले में स्थित है। यहाँ पर अधो-गोंडवाना युग की शिलाओं की सकरी पट्टियाँ (Strips) मिली हैं। वास्तविक पूर्वेक्षण के पश्चात् यह ज्ञात हो सका कि सिंगरेनी स्तर की मोटाई ७० फुट है। इसके नीचे और भी कोयले के सकरे स्तर प्राप्त हुए हैं। सन् १९०० ई० से पहिले ही इस क्षेत्र में ३·६ करोड़ टन कोयला होने का अनुमान किया जाता था।

इन क्षेत्रों के अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश में कोयले के स्तर अन्तगाँव-अक्सापुर, तान्दूर, चिनूर-सन्द्रा-पाली, कामारम्, कोठागुदियम् तथा अन्य स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। कोठागुदियम् में कोयले का भण्डार १५·६ करोड़ टन है।

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश के कोयला-क्षेत्रों का विभाजन तीन विभिन्न भागों में किया गया है—

(१) दक्षिणी छत्तीसगढ़ बेसिन के कोयला-क्षेत्र।
(२) मध्य भारतीय तथा सरगूजा कोयला-क्षेत्र।
(३) सतपुड़ा कोयला-क्षेत्र।

दक्षिण छत्तीसगढ़ बेसिन के कोयला-क्षेत्र

हसदे-रामपुर कोयला-क्षेत्र

यह आंशिक रूप से सरगूजा तथा आंशिक रूप से बिलासपुर जिले में स्थित

है। इसमें कई स्तर हैं जिनकी मोटाई १५ फुट तक है। उपरोरा पठार (विलासपुर) में मिलने वाले कोयले में ११-१५% तक भस्म रहती है। इस क्षेत्र में दस करोड़ टन कोयला मिलने का अनुमान है। अभी यह क्षेत्र अविकसित है तथा यातायात के साधन भी उपलब्ध नहीं हैं।

कोरबा कोयला-क्षेत्र

इस क्षेत्र में तीन मुख्य स्तर हैं—जटराज स्तर पर्याप्त मोटाई का है तथा तीन विभिन्न स्थानों पर इसकी मोटाई १४० फुट, २२ फुट तथा ४७ फुट है; भैरोताल स्तर (१० फुट); तथा घोरदेवा स्तर (५½ फुट)। घोरदेवा का कोयला कोमल तथा कोकिंग है।

मंड नदी कोयला-क्षेत्र

यह कोरबा कोयला-क्षेत्र का पूर्वी विस्तार है। इस कोयले में भस्म की मात्रा अधिक है।

उत्तरी तथा दक्षिणी रायगढ़ कोयला-क्षेत्र

उत्तरी तथा दक्षिणी क्षेत्रों में स्तरों की मोटाई क्रमशः ४-६ फुट तथा १४ फुट है। यहाँ प्राप्त कोयला घटिया प्रकार का होता है।

सतपुड़ा बेसिन के कोयला-क्षेत्र

नरसिंहपुर जिले में नर्वदा घाटी के दक्षिण में मोहपानी कोयला-क्षेत्र स्थित है। इसमें चार स्तर ४-१८ फुट मोटाई के हैं। इसका खनन आजकल बन्द है। इस क्षेत्र के दक्षिण में पेंच तथा कन्हान घाटी कोयला क्षेत्र पड़ते हैं जो छिन्दवाड़ा जिले में स्थित हैं। इन क्षेत्रों में दो स्तर क्रमशः १४-३१ फुट तथा ४½ फुट मोटाई के हैं। कन्हान घाटी क्षेत्र का कोयला उत्तम प्रकार का है तथा कोकिंग भी हैं। पेंच तथा कन्हान घाटी क्षेत्रों की खानों में विद्यमान कोयले की मात्रा का अनुमान क्रमशः ११·४ करोड़ टन तथा ६·६ करोड़ टन है। इसी प्रकार इन क्षेत्रों के विकास हो जाने पर इनसे क्रमशः १३·४ करोड़ टन तथा ७७·४ करोड़ टन कोयले की प्राप्ति हो सकेगी। इन क्षेत्रों के पश्चिमी किनारों से लगा हुआ तांबा क्षेत्र है जो बेतूल जिले में स्थित है तथा भूतात्विक दृष्टि से इसके गहन अध्ययन की अभी आवश्यकता है।

मध्यभारतीय तथा सरगूजा कोयला-क्षेत्र

सहडोल तथा सीधी जिलों के गोन्डवाना बेसिनों में मध्यभारतीय कोयला क्षेत्र स्थित हैं। इनमें उमरिया, जोहिल्ला, कोरार तथा सोहागपुर क्षेत्र सहडोल में तथा सिंगरौली क्षेत्र सीधी जिले में हैं।

उमरिया कोयला-क्षेत्र

यह ६ वर्ग मील के विस्तार में हैं तथा जोहिल्ला क्षेत्र के उत्तर-पश्चिम में स्थित है। कुछ समय पूर्व परीक्षण संछिद्रों से ऐसा ज्ञात हुआ है कि यहाँ पर ५ कोयला स्तर हैं जिनमें से दो खनन योग्य हैं। सर फॉक्स (Sir Fox) के अनुसार भण्डारों की अनुमानित मात्रा केवल ४·८ करोड़ टन है।

कोरार कोयला-क्षेत्र

कोरार क्षेत्र वास्तव में अविकसित क्षेत्र है जिसका क्षेत्रफल ९½ व० मी० है तथा इसकी दूरी उमरिया से उत्तर-पूर्व में ७ मील है। कोयले के भण्डार ३·२ करोड़ टन आँके गये हैं। इस कोयले में भस्म अधिक तथा उत्पत पदार्थ (Volatile Matter) कम होता है।

जोहिल्ला नदी कोयला-क्षेत्र

उमरिया से १३ मील दक्षिण-पूर्व में यह कोयला-क्षेत्र जोहिल्ला घाटी में स्थित है। इसका विस्तार लगभग १५ व० मी० में है तथा दो कोयला खानें खनन-कार्य में लगी हुई हैं। खनन-क्षेत्र में कोयले की मात्रा लगभग १·३५ करोड़ टन आँकी गयी है।

सोहागपुर कोयला-क्षेत्र

यह कोयला-क्षेत्र इस भूभाग का सबसे बड़ा क्षेत्र है तथा इसका क्षेत्रफल १२०० व० मी० है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत कई अन्य उप-क्षेत्र आते हैं—

बड़हर-क्षेत्र

इस क्षेत्र में कोयले की चार खानें हैं—बड़हर (धनपुरी), अमलाई, रंगटा तथा पश्चिमी बड़हर। बड़हर खान के कुछ भाग में उत्तम प्रकार का कोयला तथा

शेष में इस तरह का कोयला मिलता है जिसमें शेल (Shale) की पट्टियाँ भी होती हैं तथा भस्म का प्रतिशत भी बढ़ जाता है। रुंगटा खान का कोयला अर्द्ध-कोकिंग (Semi-coking) है। पश्चिमी बड़हर खान का कोयला उत्तम प्रकार का तथा कोकिंग है, किन्तु यह खान बन्द कर दी गयी है। इस क्षेत्र के प्रमुख स्तरों का विश्लेषण निम्न प्रकार है—

खान	आर्द्रता	भस्म	उत्पत पदार्थ	स्थिर कार्बन	गंधक	फास्फोरस	तापीय शक्ति	कोकिंग संख्या
बड़हर	८·९	१८·५	२८·५	४३·१	०·२·६	०·००२	१०२१०	—
रुंगटा	२·४	३०·१	२६·५	४१·०	०·७१	०·००५	९७७७	१०
प० बड़हर	५·१	२४·२	२८·७	४२·०	०·५५	०·००७	१०२८०	१४

इस क्षेत्र में प्राप्त कोयले के भण्डारों की अनुमानित मात्रा १२·४ करोड़ टन है।

कोटमा-राजनगर क्षेत्र

कोटमा रेलवे स्टेशन के ६ मील दक्षिण में भालूमारा नामक स्थान पर एसोशिएटिड सीमेन्ट कं० एक खान का संचालन कर रही है। इस क्षेत्र की दूसरी खान भादरा में है। राजनगर खान डोला के निकट काम कर रही है। यहाँ पर स्तर की मोटाई १५ फुट है।

सम्पूर्ण सोहागपुर कोयला क्षेत्र के सभी प्रकार के कोयलों के भण्डारों की अनुमानित मात्रा ४ अरब टन के लगभग आँकी गयी है।

सिंगरौली कोयला क्षेत्र

यह क्षेत्र म० प्र० के सीधी जिले में स्थित है तथा पूर्व की ओर मिर्जापुर जिले के दक्षिणी-पश्चिमी कोने में भी इसका विस्तार है। इसका क्षेत्रफल ९०० व० मी० है। इस क्षेत्र के कुछ मुख्य स्तरों का विश्लेषण नीचे दिया जा रहा है—

स्तर	आर्द्रता	उत्पत पदार्थ	स्थिर कार्बन	भस्म
टुर्रा (३० फु०)	८·१६	२९·६८	४४·७७	१७·३८
पिपरौन्ही (४३ फु०)	७·४७	३०·९६	४१·९६	१९·६०
परारी (६ फु०)	४·६०	२६·००	४१·१२	२८·२८

नौनागर स्तर में ही प्रति व० मी० क्षेत्र में ५ करोड़ टन कोयले की मात्रा विद्यमान है तथा ऐसा समझा जाता है कि यहाँ पर कोयला कम से कम ३० व० मी० तो है ही। भण्डारों की कुल मात्रा का अनुमान अभी नहीं किया गया है।

सरगूजा के कोयला-क्षेत्र

झगराखण्ड कोयला-क्षेत्र—वास्तव में यह क्षेत्र सोहागपुर क्षेत्र का ही सरगूजा में द० पूर्वी विस्तार है। यह महेन्द्रगढ़ रेलवे स्टेशन से ४ मील दूर है तथा इसका क्षेत्रफल ३० व० मी० है। इस क्षेत्र में तीन खानें खनन-कार्य कर रही हैं। कुल भण्डार लगभग ६ करोड़ टन हैं जिसमें से ३·६ करोड़ टन कोयला तो केवल झगराखण्ड स्तर में ही विद्यमान है।

चिरीमिरी-कुरासिया कोयला-क्षेत्र—इसका क्षेत्रफल ५० व० मी० है तथा अनूपपुर से चिरीमिरी की दूरी लगभग ५४ मील है। इस क्षेत्र में लगभग आठ कोयला खानें खनन-कार्य कर रही हैं। सम्पूर्ण क्षेत्र के भण्डारों की कुल मात्रा ३८·८ करोड़ टन है। यह कोयला चुने हुए वर्ग का उत्तम कोयला है।

सनहट कोयला-क्षेत्र

यह क्षेत्र सोहागपुर कोयला-क्षेत्र का ही विस्तार है। क्षेत्र में यह ३३० व० मी० है। यहाँ पर पूर्व-पश्चिम दिशा में अभिलम्बा (Strike) के अनुप्रस्थ अनेक कोयले संस्तर प्राप्त हुए हैं। साधारणतः यह कोयला पर्याप्त अंशों तक कोकिंग जैसा ही है। कुल कोयले की मात्रा का अनुमान ९·४ करोड़ टन का है जिसमें ४·१ करोड़ टन मध्यम-कोकिंग तथा ३.७ करोड़ टन द्वितीय वर्ग का है।

झिलमिली कोयला-क्षेत्र

सरगूजा जिले की झिलमिली तहसील में सनहट क्षेत्र का पूर्वी विस्तार झिलमिली कोयला क्षेत्र के नाम से पुकारा जाता है। इसका क्षेत्रफल ७१ वर्ग मील है। यहाँ प्राप्त कोयले का औसत विश्लेषण निम्न प्रकार है—आर्द्रता ४·७९, उत्पत पदार्थ २३·३३, स्थिर कार्बन ५६·३४, भस्म १५.५१ तथा तापीय शक्ति १२,०५० ब्रिटिश ताप इकाई है। विभिन्न स्तरों के सम्बन्ध में कुछ तथ्य नीचे दिये जा रहे हैं—

क्षेत्र	संस्तर (Horizon)	मोटाई	क्षेत्रफल (व० मी०)	भण्डार (करोड़ टन में)
भास्करापारा	I	१३–१४फु०	५½	७·५
	II	८–९ ,,	५½	४·५
	III	५–६ ,,	४½	२·४
	IV	५ ,,	६	३·०
	V	७ ,,	६	४·२
खादापारा		९ ,,	५	४·५
खान्धौर	IV	५ ,,	३	१·५
	III	७½ ,,	३	२·४
गोकनाई	I	११ ,,	४	४·४
			योग	३४·४ करोड़ टन

बन्दाकेह, कटकेह तथा सारडीह का कोयला मध्यम कोकिंग है। ब्लेण्डिंग (Blending) के पश्चात् इस क्षेत्र से उत्तम प्रकार का धातवीय उपयोग का कोकिंग कोयला उपलब्ध हो सकेगा। राष्ट्रीय कोयला विकास निगम (N. C. D. C.) ने इस क्षेत्र से लगभग ३० व० मी० क्षेत्र का विकास करने का काम अपने हाथों में लिया है।

विसरामपुर कोयला-क्षेत्र

यह कोयला क्षेत्र मध्य सरगूजा की चौड़ी तथा नीची भूमि में लगभग ४०० व० मी० के विस्तार में फैला हुआ है। दुपी, पासंगनाला, पाट पहाड़ी तथा बादौली क्षेत्र से कुल मिला कर २१·६ करोड़ टन कोयला उन क्षेत्रों से मिलने की आशा है जिनके खनन लाइसेंस दे दिये गये हैं।

पंचबैनी कोयला-क्षेत्र

यह विसराम पुर क्षेत्र के दक्षिण में स्थित है। ४ से १० फुट तक चौड़े स्तरों से लगभग ४ करोड़ टन कोयला प्राप्त होने की आशा है।

जूरेसिक, क्रिटेशियस तथा तृतीयक युग के कोयला क्षेत्र

ये क्षेत्र आसाम में गारो, मिकिर तथा जयन्तिया पहाड़ियों एवम् कश्मीर के

साल्ट रेंज (Salt Range) में विद्यमान हैं। इन क्षेत्रों से सम्पूर्ण भारतीय उत्पादन का लगभग १½ प्रतिशत कोयला निकलता है। इन युगों के अधिकांश कोयले अधोवर्ती वर्ग के हैं।

भारतीय कोयलों के भण्डार (Total Reserves of Indian Coal)

प्राप्त आँकड़ों के अनुसार प्राय: ४ फुट से अधिक मोटे कोयले के स्तरों में १००० फुट की गहराई तक व्यवसाय में व्यवहार योग्य गोंडवाना कोयले की मात्रा २० अरब टन होने का अनुमान है। सभी वर्ग के कोयलों की सम्मिलित निधि (एक फुट से अधिक मोटे स्तर १००० फुट की गहराई तक) ६० अरब टन अनुमानित है। निस्सन्देह ही कोयले का १००० फुट से अधिक गहराई तक खनन सम्भव होगा और उसी के अनुसार उपलब्ध कोयले की मात्रा अधिक होगी। तृतीय कल्प के कोयले और लिग्नाइट की उपलब्ध मात्रा साढ़े चार अरब टन आँकी गयी है। कोक बनाने योग्य कोयले की मात्रा लगभग दो अरब टन होने का अनुमान है; यह समस्त राशि केवल झरिया और गिरीडीह के क्षेत्रों में ही प्राप्त है। अन्य क्षेत्रों के कोयले से उत्तम 'कोक' नहीं बन पाता। अन्वेषण द्वारा यह शोध करने की चेष्टा सतत की जा रही है कि निम्न कोटि के 'कोक' उत्पादक कोयले का भी उपयोग धातु शोधन के कार्य में कुछ न कुछ मात्रा में किया जा सके।

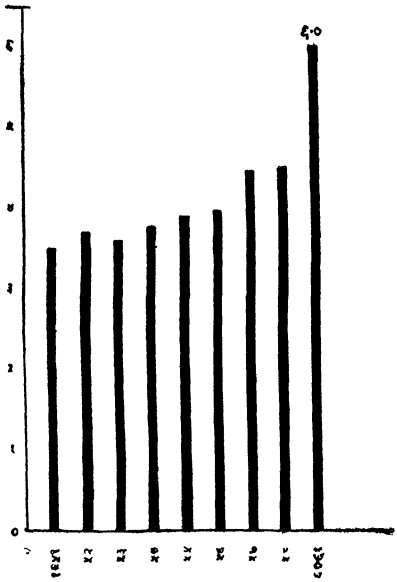

रेखाचित्र ४—कोयला उत्पादन व योजना-लक्ष्य

कोयले का १९५६–५८ का उत्पादन इस प्रकार है—

	मात्रा	मूल्य
१९५६	३·९२८ करोड़ टन	६५०,७९३,००० रु०
१९५७	४·३५० करोड़ टन	८१३,९९१,००० रु०
१९५८	४·९३० करोड़ टन	.....

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त (१९६०–६१) तक कोयले का उत्पादन लक्ष्य ६ करोड़ टन का था।

कोयला-खनन (Coal Mining)

भारतीय कोयला-खनन उद्योग के क्रमिक विकास के अनेकों पहलू है। प्रारंभ में कोयला-खनन का कार्य निम्न स्तर पर होता था तथा उसमें केवल वही विधियाँ प्रयुक्त की जाती थी जो साधारण एवम् उस समय के लिए उपयुक्त थीं। इस समय मानव-शक्ति ही इस उद्योग का मुख्य आधार थी तथा विद्युतीकरण और यन्त्रीकरण के सम्बन्ध में किसी की या तो कोई अभिरुचि नहीं थी अथवा आर्थिक या किसी अन्य कारणवश इस दिशा में खानों का विकास एकदम रुका हुआ था। अन्य उद्योगों के विकास तथा कोयले की अधिक माँग को देखते हुए कुछ लोगों ने खानों के आधुनिकीकरण की आवश्यकता अनुभव की और शनैः शनैः खानों में विद्युत तथा यन्त्रों का उपयोग होना प्रारंभ हो गया।

भारत में कोयले की खानों में प्रयुक्त होने वाला प्रथम यन्त्र एक वाष्प पम्प था जो १९वी शताब्दी के प्रारंभ में प्रयुक्त किया गया था। खानों में विद्युत विकास के साथ ही उनको विधिपूर्वक यन्त्रीकृत करना सम्भव हो सका और सन् १९०६-८ में दण्ड-कोयला-कर्तन (Bar Coal Cutting) यन्त्र प्रयुक्त किया गया। इस समय भी यन्त्रीकरण की उन्नति अत्यन्त मन्द थी और यही स्थिति सन् १९३८ तक रही। इसके पश्चात् ही इस दिशा में वास्तविक विकास हुआ। इधर सन् १९५२ में दामोदर घाटी योजना ग्रिडसे खानों में विद्युत् शक्ति और बढ़ा दी गयी तथा इससे सरकारी पावर स्टेशनों का पूरा लाभ खनन-उद्योग को मिला।

प्रशिक्षितों की समस्या (Personnel Problem)

अधिक विषम और मूल्यवान् यन्त्रों के विकास और उनके उपयोग के साथ साथ प्रशिक्षार्थियों की भी अति आवश्यकता है जो विशाल स्तर पर यन्त्रीकरण सम्बन्धी कार्य-संचालन और अधिष्ठापन की समस्याओं को सुलझा सकें। खनन में

विद्युत संयंत्रों की विशाल उन्नति होने के कारण ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि इस उद्योग के प्रशिक्षार्थी वर्ग की प्रशिक्षा एवम् सज्जा को पूर्ण रूप से आधुनिक रूप दिया जाय ताकि वे आधुनिक विद्युत् यन्त्रों आदि का संचालन सुचारु रूप से कर सकें। सरकार एक यन्त्रीकरण प्रशिक्षा-संस्थान प्रारंभ करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पारित करने वाली है जिसमें प्रशिक्षार्थियों को आधुनिक तथा जटिल यन्त्रों के कार्य-संचालन के सम्बन्ध में ज्ञान कराया जायगा जैसा कि एन० सी० बी० शेफील्ड **माइन्स मेकेनिकल** स्कूल (N. C. B. Sheffield Mines Mechanical School) में होता है। यह संस्था जब कार्य करने लगेगी तब एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो जायेगी।

खानों का विद्युतीकरण

भारत में सभी बड़ी कोयले की खानें या तो पूर्ण रूप से विद्युतीकृत हैं अथवा केवल वाइंडिंग इंजनों (Winding Engines) को छोड़कर शेष कार्योंमें विद्युत् का उपयोग करती हैं। इसका कारण यह है कि कुछ खानों में अधोवर्ती तथा न बिकने योग्य कोयला प्राप्य है जिसका उपयोग वाष्प बनाने तथा इस प्रकार के बाइण्डिंग इंजिनों में करते हैं। विद्युत् शक्ति पर्याप्त मात्रा में ११ कि० वोल्ट (K. V.) अथवा ३·३ कि० वोल्ट पर उपभोक्ताओं को वितरित की जाती है जो आवश्यकतानुसार उसे रूपान्तरित कर लेते हैं। सामान्य पारेषण (Transmission) में मुख्य वितरक विन्दुओं का वोल्टेज़ साधारणतया ३३०० वोल्ट होता है।

यन्त्रीकरण का आर्थिक पहलू

भारतीय कोयला खानों के पूर्ण स्तर पर यन्त्रीकरण करने में पर्याप्त पूँजी का अभाव ही मुख्य बाधा है। भारत में सारे खनन-यन्त्रों का आयात विदेशों से होता है जहाँ मूल्य का माप कोयले के विक्रय मूल्य (लगभग ७५ रु० प्रति टन) के आधार पर होता है जब कि भारत में कोयले का विक्रय मूल्य १४ रु० १२ आ० है। इसके अतिरिक्त यन्त्रों के ढोने का किराया, बन्दरगाह पर शुल्क, बीमे और आयातकर आदि देने पड़ते हैं। इससे प्रकट है कि कोयले की खानों के यन्त्रीकरण पर इतने बड़े व्यय केवल कुछ बड़ी खानें या कम्पनियाँ ही कर सकती हैं क्योंकि इस कार्य के लिए अधिक मात्रा में कोयले का उत्पादन होना आवश्यक है।

यन्त्रों का अधिक मूल्य होने के अतिरिक्त एक तथ्य और है जिसकी अवहेलना

नहीं की जा सकती और वह यह है कि पूर्ण रूपेण यन्त्रीकृत कोयले की खानें तभी लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं जब कि कोयले का उत्पादन और वितरण पर्याप्त उच्च स्तर पर किया जाय।

भारत की खानों में सामान्य यन्त्रीकरण तभी सफल हो सकता है जब कि कोयला-उद्योग की भृति-मूल्य-संरचना (Wage price structure) में मूलभूत परिवर्तन हो। यन्त्रीकरण का, जिसका अर्थ यन्त्रों द्वारा मानव-श्रम की स्थानपूर्ति है, भविष्य मुख्य रूप से इस तथ्य पर आधारित है कि किस अंश तक मानव-शक्ति सस्ती और उपलब्ध हो सकती है अथवा कहाँ तक कोयले का मूल्य ऊँचा हो सकता है ताकि यन्त्रों के क्रम में सुविधा हो सके।

खानों में आपातकालीन सेवाएँ (Rescue Services in the Mines)

आपातकालीन दल (Rescue Brigade) की सेवाओं की उस समय आवश्यकता होती है जब कि प्राकृतिक आपत्तियों के कारण साधारण खनन-कार्य रुक जाता है जैसे आग लगना, विस्फोट होना, खान का बैठ जाना अथवा खान में पानी का भर जाना। यह दल "खनन सैन्य संस्था" (Mining Military) के नाम से भी पुकारा जा सकता है जिसका मुख्य कार्य उन लोगों के जीवन की रक्षा करना जो इन आपातकालीन कठिनाइयों से पीड़ित हैं तथा खनिज धन को जो इन विपत्तियों के कारण निकाला नहीं जा सका, हानि से बचाना है।

भारतीय कोयला-क्षेत्रों में स्वयं-धारित श्वास यन्त्र का प्रयोग, आग, वाति तथा विस्फोट द्वारा संकट पड़ने पर मेसर्स बराकर कोल कं० लि० ने बीस वर्ष पहिले किया जबकि उन्होंने झरिया क्षेत्र से अपनी एक खान की, जोकि विस्फोट के परिणाम-स्वरूप बन्द हो चुकी थी, पुनः प्राप्ति की।

विस्फोट के कारण वायु के प्रवेश द्वारों को पुनः स्थापित करने तथा नष्ट-भ्रष्ट रोधनों (Stoppings) का जीर्णोद्धार करने के लिए अभी तक अभ्यन्तर की स्थितियों के ज्ञान के बिना ही वायु का प्रवेश कराया जाता था। ये कठिनाइयाँ अब सरल हो चुकी हैं और अब रक्षा एवम् पुनःप्राप्ति कार्य पर्याप्त सुरक्षा के साथ संचालित होते हैं।

सर्वप्रथम, भारत सरकार ने सन् १९३९ ई० में पूर्णरूपेण प्रशिक्षित एवं सज्जित सुरक्षादलों सहित सुरक्षा-स्टेशनों के स्थापित करने का निश्चय किया जिससे कोयला-क्षेत्रों में किसी भी आपत्कालीन स्थिति का सामना किया जा

सके। सन् १९४२ में रानीगंज तथा झरिया में दो सुरक्षा-स्टेशन स्थापित कर दिये गये।

वर्तमान केन्द्रीय प्रणाली के अन्तर्गत एक अधीक्षक तथा दो शिक्षकों के अतिरिक्त प्रशिक्षितों का एक दल होता है जो यन्त्रों का प्रयोग भली प्रकार जानता है तथा प्रत्येक सुरक्षा-स्टेशन (रानीगंज व झरिया) पर स्थायी रूप से रहता है। किसी खान की आपातिक याचना पर इस प्रशिक्षित दल की सेवाएँ अत्यन्त अल्प समय में ही कोयला-क्षेत्र के किसी भाग में भी प्राप्त की जा सकती हैं। इन स्थायी सुरक्षा दलों के अतिरिक्त दोनों कोयला-क्षेत्रों की कोयले की खानों में लगभग ४५० प्रशिक्षित व्यक्ति रहते हैं जो सूचना देने पर सहायता के लिए तुरन्त आ सकते हैं।

कोयले का धोना

कोयले का संस्करण (Beneficiation) अथवा धोना वह विधि है जिससे घटिया कोयले का विशुद्धीकरण तथा उसके गुणों में वृद्धि की जा सके। प्रारम्भ में केवल धात्वीय अयस्कों के लिए ही संस्करण विधियाँ उपयोग में लायी जाती थीं तथा ये विधियाँ सरल एवम् आर्थिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त नही थीं। कुछ समय पश्चात् इन विधियों का प्रयोग कोयले के लिए भी किया गया। किसी भी राष्ट्र में उद्योगों तथा यातायात के साधनों के संचालन के लिए जब तक उत्तम प्रकार का कोयला मिलता रहता है तब तक कोयले के संस्करण (Beneficiation) अथवा उसके धोने की कोई आवश्यकता नहीं होती किन्तु जब उत्तम प्रकार के कोयले के भण्डार समाप्त होने लगते हैं तब यह समस्या गम्भीर रूप धारण कर लेती है। भारत में भी माँग को देखते हुए पहिले पर्याप्त उत्तम प्रकार का कोयला प्राप्य था एवम् उस समय अधोवर्ती कोयले की कोई भी माँग नहीं थी किन्तु आज उत्तम कोयले के भण्डारों के केवल ७०-७५ वर्ष में ही समाप्त होने की सम्भावना के कारण भारत के सामने एक कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी है। आज प्रश्न यह है कि किस प्रकार अधोवर्ती (घटिया) कोयले को धोकर उद्योगों में प्रयुक्त किया जाय।

अनेक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कोयला धोने के परीक्षणों को १९१८ से १९३८ तक पर्याप्त बढ़ावा मिला और सन् १९३८ से १९४० तक टाटा की खानों में उच्च-स्तर पर कोयला धोने के सम्बन्ध में अनेकों प्रयोग किये गये। इन तथा अन्य परीक्षणों के पश्चात् यह पता चल सका कि अधोवर्ती कोयला समस्या के समा-

धान का प्रश्न सरलता से हल किया जा सकता है यदि उसके लिए कोई उपयुक्त विधि काम में लायी जाय।

टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि० ने अपने इस्पात संस्थानों में उत्तम प्रकार के कोयले की आवश्यकता-पूर्ति के लिए दो संयंत्र क्रमशः पश्चिमी बोकारो तथा जामादोवा कोयला खानों के साथ संस्थापित किये हैं। इन दोनों संयंत्रों का समावेशन क्रमशः दोनों कोयला खानों के उत्पादन तथा अन्य दशाओं के अनुसार निश्चित किया गया है। इन संयंत्रों के सम्बन्ध में कुछ विशेष आँकड़े नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

	प० बोकारो संयंत्र	जामादोवा संयंत्र
कच्ची कोयला भस्म (Raw Coal Ash)	१८-२२%	२०-२४%
प्रतिदिन का समावेशन (Capacity) दो शिफ्टों के आधार पर	२,१६० टन	४,८०० टन
वर्त्तमान...(Through put) प्रतिदिन	१,२०० टन	१,००० टन
विशुद्ध कोयला तथा भस्म	८५%तथा १३%	७६% तथा १५%
मध्यवर्ती-पदार्थ (Middlings) तथा भस्म	५% तथा २८%	१२%तथा ३०%
व्यर्थ-पदार्थ (Rejection) तथा भस्म	१०% तथा ५४%	१२%तथा ५०%
प्रति टन पर व्यय (Capital and Revenue)	रु० ०.७५ न०पै०	रु० १.०० न.पै.

टाटा के इन दोनों संयंत्रों में कोयले को धोने की कार्यविधियाँ लगभग एक-सी ही है। प० बोकारो संयंत्र का समावेशन १३५ टन प्रति घण्टे अथवा २१६० टन प्रतिदिन है जब कि दो शिफ्टों में कार्य होता है। इसी प्रकार जामादोवा का समावेशन ३०० टन प्रति घण्टे अथवा ४८०० टन प्रतिदिन है। प० बोकारो तथा जामादोवा के संयंत्र क्रमशः ८५ तथा ७५% विशुद्ध धुला हुआ कोयला उत्पन्न करते हैं। इन दोनों कारखानों में कोयला धोने का मूल्य जिसमें सभी व्यय सम्मिलित हैं क्रमशः ६२ न० पै० तथा एक रुपया प्रति दिन पड़ता है। जब इनसे संलग्न खानों का उत्पादन एक निश्चित सीमा तक पहुँच जायगा तब कोयले के धोने में और भी कम व्यय आने की सम्भावना है।

अनुमान है कि तीन नवीन सरकारी इस्पात कारखानों तथा व्यक्तिगत इस्पात

के कारखानों में लगभग ९० लाख टन धुला कोयला प्रतिवर्ष खर्च होगा। राष्ट्रीय कोयला विकास निगम (National Coal Development Corporation) कोयला धोने का एक कारखाना करगाली में स्थापित कर रहा है। यहाँ से राउरकेला को ११ लाख टन और भिलाई को ५ लाख टन धुला कोयला दिया जायगा।

टाटा के बोकारो और जामादोबा के कारखानों से भी १५ लाख टन धुला कोयला दिया जाने लगेगा। लौदना कारखाना इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० लि० को २ लाख २० हज़ार टन कोयला देता है।

करगाली में कारखाना खुलने और टाटा के कारखाने में विस्तार होने के पश्चात् लगभग ५५ लाख टन धुला कोयला देने के लिए कारखाने खोलने पड़ेंगे। दुर्गापुर कारखाने के लिए जो समझौता किया गया है, उसमें यह भी कहा गया है कि इस्पात कारखाने को कोयला देने के लिए कोयला धोने का कारखाना स्थापित करना पड़ेगा जो झरिया कोयला-क्षेत्र का कोयला धोयेगा। शेष ४८ लाख टन धुला कोयला प्राप्त करने के लिए दुगड़ा, भोजुदीह तथा पाचेरदीह में कारखाने खोले जा रहे हैं। दुगड़ा में झरिया का कोयला धोकर भिलाई और राउरकेला इस्पात संस्थानों को, भोजुदीह से टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि० और पाचेरदीह से इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कं० लि० को धुला कोयला प्राप्त हो सकेगा।

कोयला खानों में आम्भस-भरण (Hydraulic Stowing in Coal Mines)

कोयला खानों में खनन के पश्चात् बचे हुए रिक्त स्थानों के भरने की आवश्यकता सम्पूर्ण संसार में अनुभव की जा रही है। वास्तव में भारत में तो इस भरण-विधि के कारण कोयला उद्योग को पर्याप्त सहायता मिली। भारतीय खानों में आम्भस-भरण (Hydraulic Stowing) का इतने उच्च स्तर पर तथा इतने अधिक प्रयत्नों के पश्चात् अनुसरण किया गया है कि भारत इस क्षेत्र में अनुपम सफलता का दावा कर सकता है।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में भारतीय कोयलाखानों में इतनी अधिक कोयले की क्षति होती थी तथा अनेक बार कई उत्पादक कोयला-स्तरों को बिना किसी उत्पादन के कुछ प्राविधिक कठिनाइयों के कारण छोड़ दिया जाता था कि इस प्रकार होने वाली क्षति असह्य हो गयी। सन् १९३९ ई० में भारत सरकार ने "कोल माइन्स स्टॉविंग बोर्ड (Coal Mines Stowing Board) की स्थापना की। इस बोर्ड के सामने दो प्रमुख समस्याएँ थीं—एक तो कोयले के संरक्षण

की तथा दूसरे यह कि किसी भी व्यक्ति विशेष को इस बात के लिए विवश न किया जाय कि वह किसी भी मूल्य पर अपनी खान में आवश्यक रूप से आम्भस-भरण करवाये। सन् १९५२ में कोयला खान (संरक्षण एवम् सुरक्षा) अधिनियम पारित हुआ तथा इसके अनुसार वर्तमान कोयला-संस्थान (Coal Board) की स्थापना हुई।

प्रारंभ में आम्भस-भरण का उपयोग केवल खानों तथा श्रमिकों की सुरक्षा के लिए किया गया था। इस प्रकार मूलतः इसका उपयोग खानों में स्तूतों (Strata) के नियन्त्रण तथा खान में जलमय-स्तूतों से पानी के प्रवेश को रोकने के लिए किया जाता था। कालान्तर में इसको आग तथा वाति एवम् विस्फोटों के रोकने के लिए भी प्रयुक्त किया गया।

बालु-भरण (Sand stowing) ने भारतीय खानों के सुरक्षित एवम् विधिवत् कार्य-संचालन में एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। अब ऐसी आशा की जाती है कि शीघ्र ही वह समय आयेगा जब सुरक्षा के साथ ही इस का उपयोग कोयले के संरक्षण में भी उच्च-स्तर पर किया जा सकेगा। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् ही भारत सरकार का ध्यान कोयले के संरक्षण की दिशा में आकृष्ट किया गया है। भारत सरकार ने एक समिति भी नियुक्त की जो इस दिशा में सुझाव रखे। इस "धातवीय-कोयला-संरक्षण समिति" (Committee on the Conservation of Metallurgical Coal) ने एक प्रतिवेदन भी दिया जिसमें भारतीय कोयला खानों में आम्भस-भरण के बिना हुई क्षति पर भारी चिन्ता व्यक्त की गयी।

इस तथ्य में कोई संशय नहीं कि भरण-विधि खानों के गिरने, पानी भरने, आग तथा अन्य दुर्घटनाओं से बचाने में अपूर्व रूप से सहायक है। इससे श्रमिकों को अधिक सुरक्षित वातावरण में काम करने का अवसर मिलता है तथा खानों से कोयले की अधिकतम मात्रा की प्राप्ति की जा सकती है। यद्यपि इस भरण-विधि के कारण प्रारंभ में कोयला-खनन में कुछ अधिक ही व्यय आने की संभावनाएँ हैं तथापि कालान्तर में यह अवश्य ही कहीं अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। भारत में ६० से भी कहीं अधिक खानें हैं जिन्होंने भरण-विधि को अपना लिया है तथा अनुमान किया जाता है कि इसकी सहायता से लगभग ३० लाख टन कोयला प्रतिवर्ष निकाला जाता है तथा इस प्रकार खाली स्थानों में बालू की ४५ लाख टन मात्रा भरी जाती है।

आम्भस-भरण कार्य में बालू का भरण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। बिहार तथा बंगाल के प्रमुख कोयला-क्षेत्र से दामोदर तथा बराकर नदियाँ बहती हैं। ये नदियाँ बाढ़ के समय में विपुल मात्रा में बालू लाकर इकट्ठा कर देती हैं। इन नदियों की यह बालू पर्याप्त सस्ती तथा व्यावहारिक रूप से उपयुक्त सिद्ध हुई है। कालान्तर में इस बालू का प्राप्त होना भी एक समस्या हो जायगी क्योंकि दामोदर घाटी निगम के अन्तर्गत इन नदियों पर बांध बना दिये जायँगे तथा इस प्रकार बाढ़ों का आना भी रुक जायेगा और जो बालू नदी तल से उठा ली जायगी वह स्थान फिर दूसरी नवीन बालू न ले सकेगी। दूसरी समस्या यह है कि कुछ खानें इन नदियों से काफी दूर पड़ती हैं तथा इस प्रकार बालू को खानों तक पहुँचाने में पर्याप्त व्यय वहन करना पड़ता है। अतः अब आवश्यकता इस बात की है कि बालू को ही अत्यधिक महत्त्वपूर्ण साधन समझ कर संतोष नहीं कर लेना चाहिए, वरन् नवीन विधियों तथा उपयुक्त भरण-पदार्थ के लिए भी अन्वेषण-कार्य पर अधिक बल देना चाहिए।

केन्द्रीय भरण-योजनाएँ

अधिकतर ऐसा होता है कि एक भरण-संयंत्र एक ही खान के लिए निर्मित किया जता है। कभी-कभी एक ही कम्पनी की अनेक खानों के लिए एक ही संयंत्र कार्य करता है। किन्तु कभी यह भी एक समस्या बन जाती है जब छोटी-छोटी कम्पनियों द्वारा संचालित विभिन्न खानों में बालू-भरण का प्रश्न उठता है। यह समस्या तब और भी अधिक जटिल रूप धारण कर लेती है जब बालू का स्रोत इन खानों से दूर पड़ता हो। ऐसी स्थिति में केवल एक ही मार्ग शेष रह जाता है कि एक केन्द्रीय भरण-संयंत्र स्थापित किया जाय जो सामूहिक रूप से सहकारी आधार पर सभी खानों की आवश्यकता-पूर्ति कर सके। आर्थिक दृष्टि से भी ये योजनाएँ अत्यधिक उपयोगी हैं क्योंकि कोई भी छोटी कम्पनी अथवा व्यक्ति-विशेष अपने ही बलपर बालू-भरण के लिए संयंत्र स्थापित करने में शायद ही समर्थ हो सकता है।

कोयले के संरक्षण की समस्या

भारत की जनसंख्या सम्पूर्ण संसार की जनसंख्या का पाँचवां भाग है तथा कुल कोयले के भण्डार संसार की तुलना में केवल .०३% हैं। ऐसी स्थिति में भारत इस दिशा में एक गंभीर समस्या का सामना कर रहा है। यदि औद्योगिकीकरण की वर्तमान गति इसी प्रकार रही तथा भविष्य में और विकास हुआ तो उत्तम कोयले

के सारे भण्डार ६५-७५ वर्ष में ही समाप्त हो जायेंगे। अतः इस स्थिति की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि स्थिति और अधिक न बिगड़े तथा वे सभी साधन उपयोग में लाने चाहिए जिनसे कोयला-उद्योग को बढ़ावा मिले। कोयले के संरक्षण की समस्या के सम्बन्ध में कुछ तथ्य तथा सुझाव नीचे दिये जा रहे हैं।

(१) कोयले के खनन में प्रयुक्त साधन अधिक अच्छे, उपयुक्त, उचित तथा कम खर्चीले हों एवम् इस बात का प्रयत्न किया जाय कि खनन-कार्य में क्षति होने की न्यूनतम संभावना हो।

(२) चार फुट से कम चौड़े स्तरों पर भी खनन-कार्य हो।

(३) अधिक गहरे स्थानों पर भी कोयले की खुदाई की जाय।

(४) कोयले की धुलाई, विशुद्धीकरण एवम् संवर्द्धन में अधिक उपयुक्त एवम् विकसित साधनों का प्रयोग किया जाय जिससे उत्तम कोयले के अभाव की समस्या का समाधान हो सके और उसके स्थान पर घटिया कोयला प्रयुक्त किया जा सके।

(५) कोयले के त्रुटिपूर्ण उपयोग से भी काफी समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। कभी-कभी जिन कामों में घटिया कोयले से या नान-कोकिंग (Non-Coking) कोयले से काम चल सकता हो वहाँ पर कोकिंग कोयले को व्यर्थ में ही नष्ट किया जाता है। इस प्रकार के दुरुपयोगों से बचने के लिए तथा विभिन्न कार्यों के लिए उनके अनुरूप उपयुक्त कोयले का प्रयोग ही लाभदायक सिद्ध होगा।

(६) कोयले के आसवन (Distillation) से अनेकों कार्बनिक पदार्थ उपजात के रूप में प्राप्त किये जा सकते हैं तथा इस प्रकार रासायनिक-उद्योगों की स्थापना की जा सकती है।

(७) कोयले के बाजार में क्रय-विक्रय की प्रणालियाँ भी अधिक विकसित तथा सुसंगठित हों।

(८) कोयले का पाउडर के रूप में प्रयोग करना।

(९) अधिक गहराई पर जहाँ कोयले का खनन अधिक कठिन हो, कोयले का वातिकरण (Gasification) करके उसकी प्राप्ति करना, जैसा कि सोवियत संघ में किया जाता है।

(१०) कोयले का उपयोग टिकियों (Briquettes) के रूप में करना।

(११) कोयले से सस्ती विद्युत् उत्पन्न करना तथा कोयले के स्थान पर उसका प्रयोग करना।

(१२) कोयला-उद्योग का राष्ट्रीयकरण।

(१३) कोयला-उद्योग की वैज्ञानिक व्यवस्था (Rationalisation)।

(१४) खानों का आम्भस अथवा बालू-भरण आवश्यक कर दिया जाय। इससे सुरक्षा तथा उत्पादन दोनों में ही सहायता मिलेगी और संरक्षण की समस्या भी काफी अंशों तक हल हो जायगी।

(१५) इस प्रकार की उपयुक्त स्थितियाँ उत्पन्न की जायँ जो इस उद्योग से सम्बन्धित सभी के लिए अनुकूल हों।

लिगनाइट (Lignite)

लिगनाइट एक प्रकार का भूरे-कत्थई रंग का घटिया कोयला होता है जो भंजनशील होता है। इसका घनत्व भी कम ही होता है। यह वानस्पतिक पदार्थों से उत्पन्न होता है तथा इस विधि में होने वाले परिवर्तन दो विभिन्न अवस्थाओं में होते हैं। लाखों वर्षों पहले वनस्पतियों के उगने की दर शायद पर्याप्त तेज थी। लिगनाइट निर्माण की प्रथम अवस्था में उपर्युक्त वातावरण के अन्तर्गत वानस्पतिक पदार्थों का संचयन हुआ तथा इसके पश्चात् जीव-रासायनिक क्षय (Bio-chemical decay) द्वारा पीट का निर्माण हुआ। पीट एक प्रकार का गलित काष्ठ (Rotten wood) जैसा कार्बनिक पदार्थ होता है। द्वितीय अवस्था में इस संचित वानस्पतिक पदार्थ पर एकत्रित मिट्टी तथा अन्य अवसादित शिलाओं के दबाव के कारण जीवाणुओं की प्रतिक्रिया समाप्त हो गयी तथा पीट का लिगनाइट के रूप में संघनन (Consolidation) प्रारंभ हो गया। लिगनाइट के ऊपर जब और भी दबाव तथा विशेषकर अनुप्रस्थ दाब (Horizontal Thrust) पड़ता है तो लिगनाइट और भी अधिक संघनित हो जाता है तथा इसका आयतन भी कम हो जाता है और इस प्रकार कोयले का निर्माण होता है।

भारत, पाकिस्तान और बर्मा के काले-भूरे रंग के कोयले लिगनाइट अवस्था से आगे परिपक्व नहीं हुए हैं। भारत के मायोसीन (Miocene) युग अथवा उसके भी बाद में निर्मित कोयले को लिगनाइट का नाम ही दिया गया है। ये उथले पानी के वातावरण में दक्षिणी भारत के कुछ भागों में निर्मित हुए हैं। काष्ठ-जैसा हलका इयोसीन (Eocene) युग का कोयला बीकानेर (राजस्थान) से प्राप्त हुआ है। लिगनाइट का प्रमुख गुण यह है कि इसमें पर्याप्त मात्रा में आर्द्रता

होती है तथा उत्पत पदार्थों की मात्रा ३० से ५० प्रतिशत तक हो सकती है। इसमें स्थिर कार्बन भी ५० प्रतिशत के लगभग होता है।

दक्षिण भारत के लिगनाइट क्षेत्र

पाण्डिचेरी तथा कुड्डालोर के बीच के तटीय मैदानों में लिगनाइट के प्राप्त होने के सम्बन्ध में श्री डब्ल्यू० किंग (W. King) ने सन् १८८४ में ही एक अन्वेषण-पत्र द्वारा सूचना दी थी। कन्नानोर से उत्तर-उत्तर-पश्चिम में ५ मील दूर बाहुर; बाहुर से २½ मील उत्तर में अरंगनुर, तथा कन्नानोर से ३ मील उत्तर में स्थित कन्नियाँकोविल नामक स्थानों में परीक्षण-संछिद्र करने पर ज्ञात हुआ कि इन क्षेत्रों में लिगनाइट विद्यमान है। बाहुर, अरंगनुर तथा कन्नियाँकोविल में लिगनाइट की संरचनाओं (Formations) के स्तरों की मोटाई क्रमशः ३५', २७', तथा ५०' है। इन क्षेत्रों से प्राप्त उत्तम प्रकार के एक लिगनाइट का विश्लेषण इस प्रकार है—आर्द्रता १६·२८%; उलत पदार्थ ३८·५५%; स्थिर कार्बन ३७·७२%; भस्म ७.४५% तथा तापीय शक्ति ५३१८ कैलोरी है।

दक्षिण आरकोट का लिगनाइट क्षेत्र

भारत और विशेषकर मद्रास प्रदेश के लिए यह क्षेत्र राष्ट्रीय महत्त्व का लिगनाइट क्षेत्र है। मद्रास प्रदेश के दक्षिण आरकोट जिले में नेवेली नामक स्थान पर सन् १९३४ में पातालीय जल निकालने के लिए जब व्यधन कार्य (Drilling Operation) चल रहा था तो यहाँ पर लिगनाइट के प्राप्त होने के लक्षण दिखाई दिये। भारतीय भूतात्त्विक समीक्षा (Geological Survey of India) के एक दल ने डा० एम० एस० कृष्णन् के निर्देशन में विधिवत् व्यधन-कार्य आरंभ किया। यह कार्य सन् १९४७ में समाप्त हुआ तथा लिगनाइट के भण्डारों का अनुमान वृद्धाचलम् तथा कुड्डालोर के ताल्लुकों के २३ वर्गमील क्षेत्र में ३२ से ४० करोड़ टन तक किया गया। मद्रास प्रदेश में ईंधन तथा शक्ति के अभाव तथा उत्तरी भारत से कोयले आदि के यातायात में आये हुए व्यय की कठिनाइयों को दृष्टि में रखते हुए मद्रास सरकार ने अपना ध्यान लिगनाइट के इन निक्षेपों के विकास की ओर किया जिससे शक्ति, ईंधन तथा उद्योगों के लिए कच्चे पदार्थ (Raw material) के रूप में लिगनाइट का उपयोग किया जा सके। सन् १९४८ और ५१ के बीच अनेकों बार व्यधन-परीक्षण करने के उपरान्त ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस स्थान पर

लगभग १०० वर्गमील क्षेत्र में २०० करोड़ टन लिगनाइट विद्यमान है। इस क्षेत्र में संस्तर की मोटाई शून्य से ८.९ फुट तक है अथवा औसत मोटाई लगभग ५.५ फुट है। धरातल से इसकी गहराई १८० फुट है। लिगनाइट के नीचे विद्यमान पातालीय जल लिगनाइट पर ६ से ८ टन प्रतिवर्ग फुट ऊपर को उछाल (upthrust) मारता है।

इस क्षेत्र में कई स्थानों पर इन पाताल-तोड़ कुओं से सिंचाई के लिए पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता है। लिगनाइट-स्तर के नीचे कोई भी इस प्रकार की अप्रवेशनीय मार्गरोधी शिला नहीं हैं जिसकी मोटाई काफी हो तथा जो नीचे से क्रियाशील पानी के दबाव को रोक सके, अतः लिगनाइट के ऊपर जमी हुई मिट्टी की पर्त को हटाने पर सब से बड़ा भय इस बात का है कि लिगनाइट स्तर को तोड़ता हुआ पातालीय जल कहीं खान में बाढ़ की स्थिति न उत्पन्न कर दे। जब तक इस प्रकार के दबाव को पूर्णरूप से खनन-विधियों की उपयुक्त दशाओं द्वारा नियंत्रण में नहीं रखा जाता तब तक इस क्षेत्र से लिगनाइट की प्राप्ति भी एक समस्या रहेगी।

सन् १९५१ के पश्चात् और भी अधिक पूर्वेक्षण-कार्य किया गया तथा तभी यह निश्चित हो सका कि इस क्षेत्र में भूमि-गत खनन अव्यावहारिक सिद्ध होगा। अतः मद्रास सरकार ने अमेरिकी प्राविधिक सहकारी संस्थान (Technical Cooperative Mission of the United States) की सहायता से खुले हुए गड्ढों के रूप में खनन (Open-cut mining) प्रारंभ की। सन् १९५४ में इस कार्य की व्यावहारिकता में सभी को विश्वास हो गया, किन्तु फिर भी खनन तथा लिगनाइट के उपयोग के लिए कोई भी विशेष आयोजन नहीं हो सका था। अतः भारत सरकार ने कोलेम्बो-योजना के अन्तर्गत पावेल डफरिन टेक्नीकल सर्विसेज़ लि० (Powell Duffryn Technical Services Ltd.) की सेवाएँ प्राप्त कीं तथा एक निश्चित संयोजना, मितव्ययी खनन तथा लिगनाइट के उपयोग के लिए एक प्रतिवेदन तैयार किया गया। इस प्रतिवेदन में वे सभी बातें आ गयीं जिनसे लिगनाइट का खनन उपयुक्त विधियों, मितव्ययिता के आधार पर तथा पातालीय-जल नियन्त्रण द्वारा उत्पन्न नवीन स्थितियों के प्रकाश में किया जा सके।

नेवेली लिगनाइट योजना का आर्थिक पहलू

अनेक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने मेसर्स पावेल डफरिन टेक्नीकल सर्विसेज लि० द्वारा दी गयी मन्त्रणा के अनुसार एक विशेष योजना पर

कार्य करना प्रारंभ कर दिया। इस योजना के अन्तर्गत ३५ लाख टन लिगनाइट का खनन प्रतिवर्ष किया जायगा तथा विधायन (Processing) के पश्चात् लिग-नाइट को २०० मैगावाट (M. W.) विद्युत् शक्ति उत्पन्न करने के लिए उपयोग में लाया जायगा। इसी संयुक्त आयोजन (Integrated plan) के अन्तर्गत नाइट्रोजन-मय रासायनिक खादों (Nitrogenous fertilisers) काजिनमें ७०,००० टन नाइट्रोजन प्रतिवर्ष उपयोग की जायगी, तथा ७२०,००० टन कच्चे लिगनाइट की टिकियों (briquettes) का निर्माण तथा उनका कार्बनीकरण (Carbonization) ३८०,००० टन कार्बनीकृत आदि का उत्पादन किया जायगा। ३५ लाख टन प्रति-वर्ष के वर्तमान लक्ष्य के अनुसार लिगनाइट का उत्पादन १४ लाख टन उत्तम कोयले के समान होगा तथा अपेक्षाकृत सरलता से खनन योग्य लिगनाइट ५७ वर्ष में समाप्त होगा। तापीय विद्युत् शक्ति स्टेशन का अधिस्थापित समावेशन (Installed Capacity) २५०,००० किलोवाट (K. W.) होगा तथा इसके साथ ही एक व्युत-दबाव-टर्बाइन संयंत्र (Back Pressure Turbine Plant) भी होगा जो अन्य उत्पादन इकाइयों के साथ कार्य करेगा। अन्य उपजात के रूप में ४३,००० टन चार भस्म (Char dust), ६,४०० टन मोटर स्प्रिट, ५१,३०० टन टार (Tar) तथा १,०३२ टन फिनॉल (Phenol) प्रतिवर्ष कोयले की टिकियों (Briquettes) के कार्बनीकरण से प्राप्त होंगे। एक अन्य योजना के अन्तर्गत लिगनाइट के समीपस्थ ही प्राप्य उत्तम प्रकार की चीनी मिट्टी (China-clay) को धोने का एक संयंत्र स्थापित करने के सम्बन्ध में भी विचार किया जा रहा है।

इस प्रकार लिगनाइट योजना (नेवेली) के अन्तर्गत इसके विभिन्न अवयव-इकाइयों द्वारा सम्पूर्ण कच्चा लिगनाइट अनेक प्रकार के प्रमुख उत्पादनों में परिवर्तित कर दिया जाया करेगा। कार्बनीकृत टिकियाँ धुआँ-रहित ईंधन का काम देंगी तथा घरेलू खपत के लिए लकड़ी के कोयले अथवा पत्थर कोयले के स्थान पर सरलता के साथ उनका उपयोग किया जा सकेगा। इसी प्रकार औद्योगिक कार्यों के लिए भी ये उपयुक्त सिद्ध हो सकेंगी। जब उत्पादन पर्याप्त उन्नति पर पहुँच जायगा तब लिगनाइट की टिकियों को सीधे ह; कोयले के स्थान पर औद्योगिक ईंधन की भाँति प्रयुक्त कर सकेंगे।

अपने वास्तविक रूप में यह योजना एक संयुक्त (Integrated) तथा पूर्ण योजना है जिसमें प्रत्येक अवयव प्रत्येक अन्य अवयव को कुछ न कुछ अवश्य ही देता है। इस सम्पूर्ण योजना में लगभग ७५ करोड़ रुपया खर्च होगा तथा यह सन्

१९६३ तक पूरी हो जायगी। ऐसी आशा की जाती है कि इस क्षेत्र से प्राप्त लिगनाइट का मूल्य १० रुपये प्रतिटन से अधिक नहीं आयेगा। दूसरे शब्दों में कच्चे लिगनाइट का मूल्य तापीय मूल्य में एक टन कोयले के समान केवल २५ रुपये पड़ेगा जबकि केवल रेलमार्ग द्वारा वितरित कोयले का मूल्य ४५ से ५० रु० प्रतिटन तथा रेल व समुद्री मार्ग से प्राप्त कोयले का मूल्य मद्रास में लगभग ७० से ८० रु० प्रति टन पड़ता है। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से यह लिगनाइट तथा इसके विभिन्न उपयोग एवम् उनसे होने वाले प्रभाव मद्रास ही नहीं,अपितु सम्पूर्ण देश की आर्थिक व्यवस्था के विकास में कुछ अंश तक अवश्य ही सहायक होंगे। अतः यह आयोजन भारत के लिए राष्ट्रीय महत्त्व का आयोजन है जो आर्थिक दृष्टिसे बहुत लाभजनक है।

पश्चिमी तट के लिगनाइट-निक्षेप

पूर्वी तट के कुड्डाकोर बालू पत्थरों के समान पश्चिमी तट पर भी कुछ स्तरों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त हुआ है। ये वरकाली स्तर के नाम से पुकारे जाते हैं। ये स्तर वरकाला तथा क्विलोन में ही नहीं मिलते, अपितु इनका विस्तार उत्तर की ओर मालाबार तथा दक्षिणी कनारा तक है। इस क्षेत्र में सन् १९१० में ही ४१ व० मी० के विस्तार में लिगनाइट के भण्डारों का अनुमान २७·६ करोड़ टन किया गया था।

राजस्थान के लिगनाइट-निक्षेप

बीकानेर नगर से १३ मील दक्षिण-पश्चिम में गहरे कत्थई रंग के लिगनाइट का एक स्तर पलाना नामक स्थान पर मिला है। इसकी मोटाई कुल मिलाकर २० फुट के लगभग है तथा यह फोरामिनिफेरा-मय (Foraminiferal) चूना पत्थर के नीचे विद्यमान है। सम्भवतः यह अधो-इयोसीन युग (Lower Eocene) का है। यहाँ पर खनन-कार्य सन् १९०० में प्रारंभ हुआ तथा तब से लगातार ही इसका उत्पादन हो रहा है। इस लिगनाइट की टिकियाँ (Briquettes) बनाने के पश्चात् रेलों में इसका उपयोग होता है। जब लिगनाइट खनन के पश्चात् निकलता है तब इसमें आर्द्रता की मात्रा ४०-४५% तक होती है, किन्तु बाद में शुष्क व उष्ण जलवायु में खुला होने के कारण यह मात्रा केवल १५% ही रह जाती है। यहाँ प्राप्त स्तर लगभग एकसार (Flat) है तथा इस क्षेत्र का रेत द्वारा ढके रहने के कारण स्तर के विस्तार के सम्बन्ध में कोई निश्चित दृष्टिकोण नहीं बनाया जा सकता।

पलाना से २० मील पश्चिम में स्थित मध नामक स्थान पर तथा ३२ मील दूर चनेरी के निकट लिगनाइट के स्तर मिले हैं। इस प्रकार बीकानेर के लिगनाइट के निक्षेप पर्याप्त महत्त्वपूर्ण तथा आशाजनक प्रतीत होते हैं।

कश्मीर के लिगनाइट क्षेत्र

कश्मीर घाटी में स्थित तृतीयक युग (Tertiary Age) की करेवा संरचनाओं के अन्तर्गत लिगनाइट के क्षेत्र स्थित हैं। हण्डवारा क्षेत्र में ३२० लाख टन तथा शालीगंगा क्षेत्र के रैथान व लन्यालाव बेसिनों में लगभग ४० लाख टन लिगनाइट प्राप्त होने का अनुमान है। यह लिगनाइट घटिया ईंधन तथा इसका रंग चमकहीन गहरा कत्थई अथवा काला हो सकता है। इसका विश्लेषण इस प्रकार है—आर्द्रता १५%; उत्पत पदार्थ २८%; स्थिर कार्बन २७% तथा भस्म ३०%। कुछ विशेष दशाओं में ईंधन के रूप में यह उपयोगी सिद्ध हो सकता है। आशा की जाती है कि भविष्य में इसका आसवन (Distillation) करके इससे कुछ उपयोगी उपजातों का निर्माण किया जा सकेगा।

पीट (Peat)

अनेक प्रकार के कोयलों के विकास के प्रथम सोपान का प्रतिनिधित्व वर्तमान एवम् नवीन (Recent) युग की पीट संरचनाओं द्वारा होता है। छिछले गंदे गड्ढों, दलदल तथा अन्य इसी प्रकार के स्थानों में जल-मय परिस्थितियों के अन्तर्गत जब वानस्पतिक पदार्थों का संचयन तथा तत्पश्चात् विघटन होता है तो पीट का निर्माण होता है। इस प्रकार इन वानस्पतिक तथा अन्य कार्बनिक पदार्थों की पर्त पर पर्त जमती जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि सबसे ऊपर वाली सतह में तो इन पदार्थों के पर्याप्त चिह्न रहते हैं और जैसे-जैसे नीचे चलते जाते हैं ये चिह्न लगभग समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार संचित पदार्थों पर जब उपयुक्त दशाओं में ऊपर से दबाव पड़ता है तो पीट लिगनाइट तथा अन्य कत्थई रंग के घटिया कोयलों में परिवर्तित हो जाता है।

पीट की मूल अवस्था में आर्द्रता की मात्रा लगभग ८०% होती है, किन्तु उपयुक्त साधनों तथा वायु में सुखाने के पश्चात् यह मात्रा २०% तक घटायी जा सकती है। इस प्रकार प्राप्त पीट की ऊष्मीय अर्हा (Calorific value) इसके भार के समान भार वाले कोयले की **तापीय शक्ति** की आधी होती है। अब भी

इस पीट का ईंधन के रूप में उपयोग कुछ निर्जन स्थानों के रहने वाले लोग करते हैं जिन्हें समीपस्थ क्षेत्रों में पीट प्राप्त हो जाता है। आर्थिक दृष्टि से पीट का खनन तथा उपयोग नितान्त अव्यावहारिक है और वे देश भी जिनमें पीट के विशाल निक्षेप विद्यमान हैं पीट को निकाल कर, उसको चुन कर तथा विधायन (Processing) के पश्चात् पूर्ण रूप से उपयुक्त बनाने में आयी हुई कठिनाइयों के कारण बड़े और वाणिज्य स्तर पर उनसे लाभ उठाने में अनेक समस्याओं का अनुभव करते हैं। यही कारण है कि इसको ईंधन के रूप में न उपयोग कर अनेक यूरोपीय देश इसका उपयोग कृषि-कार्यों, खाद बनाने तथा फलों और तरकारियों की पैकिंग आदि में करते है।

पीट-निर्माण के लिए उपयुक्त जलवायु शीत तथा समशीतोष्ण देशों में ही प्राप्य है, जैसे उत्तरी यूरोप के देश तथा कनाडा। कभी-कभी उष्ण तथा मानसूनी क्षेत्रों में भी ऊँचाई के कारण अथवा अन्य किसी कारणवश कुछ इस प्रकार की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें पीट का निर्माण सम्भव हो सकता है, अन्यथा सामान्य रूप से इन क्षेत्रों में संचित पदार्थ पीट-निर्माण करने के पूर्व ही विघटित हो जाते हैं तथा अनेकानेक कार्बनिक (Organic) पदार्थों को जन्म देते है।

भारत में मद्रास राज्य के नीलगिरि पर्वत पर ६००० फुट की ऊँचाई पर कुछ खाली स्थानों (Hollows) में वास्तविक पीट का सर्जन हुआ है। इन निक्षेपों की संरचना तथा अन्य विवरण के सम्बन्ध में अभी तक कुछ भी मालूम नहीं हो सका है।

सेलम जिले की शिवरॉय पहाड़ियों में लगभग ४००० फुट की ऊँचाई पर पीट के प्राप्त होने की सूचना मिली है। इसी प्रकार कुछ अच्छे प्रकार के पीट के निक्षेप नेपाल तथा कश्मीर की घाटियों में विद्यमान हैं। पीट के समान ही एक पदार्थ जिसको अभी तक पीट ही कहा जा रहा है ब्रह्मपुत्र घाटी में सिलहट तथा कछार की झीलों में प्राप्त होता है। यह पदार्थ पूर्व और पश्चिमी बंगाल के डेल्टा-जिलों में भी मिलता है।

परिच्छेद १०

द्रव-ईंधन

प्राकृतिक तेल (Natural Oil)

तेल का ज्ञान मनुष्य को आज से बहुत पहिले ही हो गया था। कई स्थानों पर इस प्रकार के संदर्भ देखने को मिलते हैं जिनमें तेल के सम्बन्ध में कुछ न कुछ अवश्य लिखा गया है। पश्चिमी एशिया में कुछ स्थानों पर यह प्राकृतिक तेल अपने आप ही अनन्त ज्वाला के रूप में जला करता था जिसका प्रभाव वहाँ के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन पर बहुत अंशों तक पड़ा, यहाँ तक कि वे प्राचीन निवासी अग्नि के पुजारी बन गये और यह सामाजिक परम्परा वहाँ आज भी विद्यमान है। मिस्री, इराकी, चीनी तथा रेड इण्डियनों ने उन अंधकारपूर्ण दिनों में ही तेल के अनेक उपयोग निकाल लिये थे। अमेरिका आदि देशों में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में दीपकों से प्रकाश प्राप्त करने के लिए ह्वेल (Whale) का तेल प्रयोग करते थे किन्तु इसके पश्चात् जब प्राकृतिक तेल की प्राप्ति होने लगी तो ह्वेल तेल का स्थान इस प्राकृतिक तेल ने ले लिया। यही समय था जब कि तेल का विशुद्धीकरण प्रारंभ हुआ तथा इस विशुद्ध तेल को मिट्टी के तेल (Kerosene Oil) का नाम दिया गया।

तेल का व्यापारिक महत्त्व उस समय बढ़ा जब एडविन एल० ड्रेक (Edwin L. Drake) ने सर्वप्रथम ६९½ फुट की गहराई पर टायटसविले (Titusville) नामक स्थान पर पेनसिलवेनिया (अमेरिका) में सन् १८५९ में तेल की प्राप्ति की। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक इस तेल का प्रमुख उपयोग प्रकाश के लिए तथा स्नेहकों (लुब्रीकेन्टों Lubricants) के रूप में किया जाता था। तब शक्ति-प्राप्ति का प्रमुख साधन कोयला था। किन्तु आज जीवन के प्रत्येक पहलू में हम तेल की महत्ता स्वीकार करते हैं। आज के इस युग में हमारा खाना, कपड़े, यातायात, उद्योग, कृषि, रासायनिक उद्योग सभी प्राकृतिक तेल अथवा उसके

उत्पादनों (Products) पर निर्भर हैं। सामरिक दृष्टि से तो यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक स्रोत है।

यद्यपि जल-विद्युत्, कोयला तथा अणुशक्ति पर्याप्त अंशों तक हमारी शक्ति अथवा ऊर्जा की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, फिर भी ५० प्रतिशत से अधिक शक्ति के लिए हमें तेल तथा प्राकृतिक वाति (Gas) पर आश्रित रहना पड़ता है। संसार का सबसे बड़ा तेल-उत्पादक देश संयुक्त राज्य अमेरिका है किन्तु साथ ही यह देश सबसे अधिक मात्रा में तेल की खपत भी करता है और यहाँ तक कि अमेरिका की आन्तरिक माँग पूरी करने के लिए विदेशों से तेल का आयात करना पड़ता है। सन् १९५७ में अमेरिका में अशोधित तेल (Crude oil) का उत्पादन २,६१६,७७८,००० बैरल (Barrels) था जब कि सम्पूर्ण संसार का उत्पादन ६,४४६,०३०,००० बैरल था। खपत के अनुसार देश की माँग पूरी करने के लिए अमेरिका को ५७३,१५५,००० बैरल अशोधित-तेल तथा १९९,९००,००० बैरल तेल के विशुद्ध सृष्टों (Refined products), का आयात करना पड़ा। अमेरिका के पश्चात् वेनेज्वेला (Venezuela), सोवियत रूस, मेक्सिको, कोलम्बिया, कनाडा तथा पश्चिमी एशिया के कुछ देश तेल के प्रमुख उत्पादक हैं।

गत अर्द्धशताब्दी में किसी भी खनिज उद्योग ने इतनी प्रगति नहीं की जितनी खनिज तेल ने। भारत जैसे अल्प विकसित देशों में भी बहुत अंशों तक यह उद्योग पनपा किन्तु इन देशों में तेल के विकास के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ अभी तक उत्पन्न नहीं हो सकी हैं। इसके लिए आवश्यकता है आधुनिकतम वैज्ञानिक यन्त्रों की, प्राविधिक प्रशिक्षितों (Technical personnel) की तथा एक विशाल धन-राशि की। प्रत्येक अल्प विकसित देश में स्वभावतः इन सभी की कमी महसूस की जा रही है। दूसरा तथ्य यह है कि रहन-सहन का मापदण्ड ऊँचा करने में भी इस प्राकृतिक तेल का महत्त्व सबसे अधिक है और जब सभी देश अपने अपने देशवासियों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाने के प्रयत्न में हैं तब तेल की यह समस्या और भी कठिन हो जाती है। यहाँ से ही प्रारंभ होता है तथाकथित शीतयुद्ध। युद्ध एवम् औद्योगिकीकरण में तेल की बढ़ती हुई महत्ता ने अन्तर्राष्ट्रीय तनाव उत्पन्न कर दिया है और अनेक अवसरों पर ये तनाव बड़े बड़े युद्धों का रूप भी ले चुके हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि इन आर्थिक, वैत्तिक (Financial) तथा राजनीतिक कारणों को दृष्टिगत रखते हुए कई राष्ट्रों को अपनी तेल की खपत

में कमी करनी पड़ी है। जिन देशों में आवश्यकता-पूर्ति के लिए पर्याप्त तेल है उन्होंने भी अपने तेल-भण्डारों के संरक्षण (Conservation) के लिए कृत्रिम रूप से प्राकृतिक वाति (Gas), कोयला, तैल शेल (Oil shale) तथा लकड़ी से तेल उत्पन्न करना प्रारंभ कर दिया है।

आजकल भारत में खनिज तेल की खपत प्रति व्यक्ति पर तीन गैलन है जब कि अन्य उन्नत औद्योगिक देशों में यही खपत ६०० गैलन प्रति व्यक्ति है। देश की ऊर्ज्जा की आवश्यकताओं की २० प्रतिशत पूर्ति कोयला, तेल तथा जल-विद्युत् से होती है, शेष पूर्ति लगभग ४५·५ प्रतिशत गोबर तथा लकड़ी और ३४·५ प्रतिशत जन तथा जन्तुओं के श्रम से होती है। ईंधन के रूप में गोबर का व्यवहार करने से देश को ६००० लाख टन अच्छी खाद की वार्षिक हानि होती है। इसी प्रकार भारत की ४०० लाख टन लकड़ी ईंधन के रूप में प्रयुक्त की जाती है। इससे वनस्पतियों को महान् क्षति पहुँचती है। बाढ़ तथा भू-कटाव को रोकने के लिए इस क्षति से बचना परम आवश्यक है। स्पष्ट है कि देश को प्राकृतिक तेल के अभाव में ईंधन के रूप में अनेक ऐसी वस्तुओं का उपयोग करना पड़ता है जिनको यदि उपयुक्त स्थानों पर प्रयुक्त किया जाता तो शायद अधिक लाभ होता। ये आँकड़े इस बात के भी प्रदर्शक हैं कि देश के रहन-सहन को ऊँचा उठाने के लिए तथा अन्य देशों की तुलना में उसे उन्नत बनाने के लिए आवश्यक है कि भारत में ही अधिक से अधिक तेल की प्राप्ति की जाय जिससे तेल के लिए विदेशों को जाने वाली विनिमय मुद्रा में कटौती की जा सके।

तेल की उत्पत्ति तथा प्राप्ति-स्थान

खनिज तेल हाइड्रो-कार्बन यौगिकों का ही मिश्रण है। विश्वास किया जाता है कि लाखों करोड़ों वर्षों की अवधि में वनस्पति व जीवों के बहुमात्रा में कीचड़ (Mud), साद (Silt), बालू आदि में दबे रह जाने से तथा उन पर उष्णता, दबाव, रसायन, शाकाणु (Bacteria, जीवाणु) और रेडियो-सक्रियता आदि क्रियाओं के फलस्वरूप खनिज तेल की उत्पत्ति हुई है। ये क्रियाएँ इतनी जटिल हैं कि आज तक इनके सम्बन्ध में मतभेद है तथा भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक खनिज तेल के उत्पादन में विभिन्न क्रियाओं को महत्त्व देते हैं। तेल की उत्पत्ति की दीर्घकालीन तथा संतत क्रिया कार्बनिक पदार्थों (Organic Matter) के अवसादों (Sediments) में संचित होने के साथ ही प्रारंभ हो जाती है। इस प्रकार उत्पन्न तेल की बूँदें अधिशायी शिलाओं के दबाव या भूचलन से निष्पीड़ित होकर अपना प्रगमन तब तक

जारी रखती हैं जब तक कि कोई अप्रवेश्य (Impervious) शिला नहीं मिलती। यहाँ पर तेल जिन अनुकूल स्थानों में संचित होता है उन्हें ट्रेप (Trap) कहते हैं। ट्रेप मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं—उद्वलि ट्रेप (Anticlinal trap), भ्रंश ट्रेप (Fault Trap), स्तृत ट्रेप (Stratigraphical trap) तथा लवण-निग ट्रेप (Salt-plug trap).

खनिज-तेल सम्बन्धी अन्वेषण-कार्य

इस संदर्भ में यदि खनिज तेल के अन्वेषण कार्य के सम्बन्ध में कुछ कहा जाय तो अवांछनीय नहीं होगा। तेल-अन्वेषण-कार्य का मुख्य ध्येय उन संरचनाओं का पता लगाना है जिनमें तेल-संचय की संभावना हो। इस कार्य के लिए सबसे पहिले संभावित तेल-क्षेत्र का विभिन्न विधियों द्वारा विधिवत् अध्ययन तथा सर्वेक्षण किया जाता है। इन सर्वेक्षणों में वाभूतात्विक सर्वेक्षण (Aerial Geological Survey), भूतात्विक सर्वेक्षण, चुम्बकीय सर्वेक्षण (Magnetic Survey), भ्वाकृष्टि सर्वेक्षण (Gravimetric Surrvey), भूकम्पीय सर्वेक्षण (Seismic Survey) आदि प्रमुख हैं। वायुयान द्वारा लिये गये चित्रों के अध्ययन के फलस्वरूप उस क्षेत्र की मुख्य भूतात्विक संरचनाओं का ज्ञान होता है। इसी प्रकार भूतात्विक दल विभिन्न शिला-रचनाओं का मान चित्रण करते हैं। इस प्रकार संगृहीत सामग्री के द्वारा विभिन्न स्तरों के आकार का ज्ञान होता है। जलोढावरण, मरुस्थली बालू, कंकर तथा मिट्टी से छिपी शिलाओं की संरचनाओं की रूपरेखा, चुम्बकमान (Magnetometer), भ्वाकृष्टिमान (Gravimeter) तथा भूकम्प-लेखक (Seismograph) आदि यन्त्रों द्वारा जानी जाती है। चुम्बकीय सर्वेक्षण द्वारा आधार-शिलाओं की आकृति तथा गहराई ज्ञात होती है और उस क्षेत्र की तेल-संभाविता का शीघ्र अनुमान लगाने के लिए वाचुम्बकीय (Aero-magnetic) सर्वेक्षण किया जाता है। तत्पश्चात् आशाप्रद क्षेत्रों में अन्य भू-भौतिक विधियों से सर्वेक्षण किया जाता है। भ्वाकृष्टिमान (Gravimeter) संभाव्य अतिसूक्ष्म परिवर्तनों को अंकित कर सकता है। भ्वाकृष्टि सर्वेक्षणों द्वारा वलन (Fold), भ्रंश (Fault) या लवण-छाद (Salt dome) जैसी भूगर्भीय संरचनाओं के तथा उनके प्रसारण के विषय में बहुमूल्य सूचनाएँ मिलती हैं। भूकम्पीय सर्वेक्षण (Seismic Surveys) उन क्षेत्रों में किये जाते हैं जो भ्वाकृष्टि तथा चुम्बकीय दृष्टि से आशाजनक प्रतीत होते हैं। इस विधि में कम गहरे

गड्ढों में बारूद छोड़कर कृत्रिम भूकम्प तरंगें उत्पन्न की जाती हैं। इनमें से कुछ तरंगें नीचे की ओर जाकर शिला-रचनाओं से टकरा कर वापस आती हैं। उनके सतह पर पहुँचने का समय भूकम्प-लेखक से ज्ञात कर लिया जाता है और भूकम्प लेखों द्वारा परावर्ती स्तरों (Reflecting-beds) की गहराई तथा प्रवृत्ति जानी जा सकती है।

इन विभिन्न विधियों तथा सर्वेक्षणों द्वारा तेल-संचय के अनुकूल संरचनाओं की उपस्थिति ही ज्ञात होती है किन्तु इन संरचनाओं में तेल की उपस्थिति या अनुपस्थिति का ज्ञान तभी हो पाता है जब व्यधन (Drilling)-कार्य किया जाय। आजकल जो व्यधक मुख्य रूप से प्रयुक्त किये जाते है वे रोटरी (Rotary) तथा टर्बो (Turbo) व्यधक हैं। व्यधन बहुत ही जटिल कार्य है जिसके पहिले सम्पूर्ण दृष्टिकोणों से सावधानी बरतनी आवश्यक है। एक व्यधक यन्त्र (Rig) का, जो कि १०,००० फुट से १५,००० फुट गहराई तक व्यधन करने की क्षमता रखता है, मूल्य ५० लाख रुपए तक हो सकता है। (१०,०००) फुट के परीक्षणात्मक तेल-कूप-व्यधन का व्यय तो इससे भी अधिक हो सकता है। एक पूर्ण-व्यधक यंत्र का अत्यावश्यक यन्त्रों सहित भार लगभग २००० टन होता है। एक तेल-कूप को १०,००० फुट तक व्यधन करने के लिए १२५ प्रशिक्षित व्यक्तियों, १२००० फुट फौलाद के पट्टों, १०००० से १२००० फुट तक व्यधन नलों, २५ से ५० तक बरमों (Drilling Bits), २००० से ५००० तक सीमेन्ट के बोरों और ३००० बैरल ईंधन तेल की आवश्यकता होती है। इन सभी आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि खनिज तेल की खोज करना कितना बड़ा जुआ है जिसमें थोड़ी सी असावधानी भी लाखों रुपयों पर पानी फेर दे सकती है। तेल की खोज में आजकल विद्युत्-लेखा (Electro-logging) को बहुत महत्त्व दिया जाता है। किसी भी क्षेत्र के तेल-कूपों में भूतात्विक संरचनाओं की सीमा, गैस, तेल या जलयुक्त स्तरों का निर्धारण करने तथा विभिन्न भूगर्भीय स्तरों में सहसम्बन्ध स्थापित करने में विद्युत्-लेखा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिकतम खोज कार्यों में रेडियो-सक्रियता (Radio-activity) का उपयोग भी बहुत अंशों तक होने लगा है।

सफल अन्वेषणों के उपरान्त तेल-कूप पर वाल्व (Valves), मीटर (Meter) तथा नल आदि लगाये जाते हैं। इनका सम्मिलित आकार एक "क्रिसमस-वृक्ष" (Christmas tree) की भाँति होता है तथा वे इसी नाम से जाने भी जाते हैं। यह क्रिया तेल की इस आकर्षक खोज का अन्तिम रूप है।

तेल और गैस को विभिन्न संग्रह-तालों (Storage Tanks) में भेजने का कार्य इनके द्वारा संचालित होता है।

भारत में खनिज तेल के प्राप्ति-स्थान

उत्तर आसाम के क्षेत्र (Fields of Upper Assam)

डिगबोई—उत्तर आसाम में डिगबोई तेल-क्षेत्र नागा अतिक्षेप (Naga Thrust) से संलग्न एक उद्वलि (Anticline) पर स्थित है तथा नागा पर्वत क्षेत्र की उन संरचनाओं में से एक है जहाँ पर भू-पर्पटी (Earth's Crust) अपेक्षाकृत मन्द रूप से वलित (Gently folded) हैं। डिगबोई को तेल विभिन्न बालुओं से प्राप्त होता है जो टीपम बालू-पत्थर संघ (Tipam Sandstone Stage) की ३००० फुट से भी अधिक मोटी शिलाओं में भिन्न-भिन्न स्थानों में मिलती हैं। ये बालुएँ सुरमा श्रेणी (Surma Series) जो टीपम माला के ठीक नीचे स्थित हैं, में भी पायी जाती हैं।

आसाम में तेल मिलने की कहानी बड़ी लम्बी तथा पुरानी है। प्रारंभ में उत्तर आसाम में थोड़ा बहुत सर्वेक्षण केवल इसलिए किया जाता था कि कोयले की खोज की जाय और इसी उद्देश्य से पूर्वेक्षकों (Explorers) के एक दल ने इस क्षेत्र की यात्रा सन् १८२८ में की। सन् १८३७ में सेना के एक अधिकारी ने, जो इस क्षेत्र में पूर्वेक्षण करने आया था, अनेक तेल के "झरने" (Springs) खोज निकाले। सन् १८६५ में एक सरकारी भू-वेत्ता इस क्षेत्र में कोयले की खोज के लिए भेजा गया। उसके प्रतिवेदन में कहा गया था कि डिहिंग नदी के दक्षिण में माकुम नामक स्थान पर तेल की खोज के लिए परीक्षणात्मक संछिद्र किये जायँ। तेल-प्राप्ति के लिए प्रथम संछिद्र बढ़ी दिहिंग के निकट नाहोर पुंग में नवम्बर सन् १८६६ में किया गया किन्तु असफलता ही हाथ लगी। किन्तु २६ मार्च १८६७ को माकुम के एक अन्य संछिद्र में ११८ फुट की गहराई पर तेल मिल गया तथा ३०० गैलन तेल इकट्ठा भी किया गया। सन् १८६८ में कूप संख्या ४ व कूप संख्या ५ से प्रति दिन क्रमशः १००-१२५ गैलन तथा ५५०-६५० तक गैलन तेल इकट्ठा किया जाने लगा।

सन् १८८२ में आसाम रेलवे एण्ड ट्रेडिंग कं० लि० ने उत्तर आसाम के कोयला क्षेत्रों तक रेल लाइन बिछा दी। मारघेरीता में एक वर्ष बाद ही एक छोटी सी

शोधनशाला (Refinery) का निर्माण किया गया। जिस स्थान पर तेल मिला था वहीं आसाम रेलवे एण्ड ट्रेडिंग कम्पनी ने व्यधन कार्य प्रारंभ कर दिया। प्रथम तेल कूप सन् १८९० में पूर्ण हुआ। इस स्थान का नाम 'डिगबोई' था। सन् १८९८ तक इस क्षेत्र में १५ कूप पूर्ण हो चुके थे। इस क्षेत्र के आस पास एक नगर बसने लगा था तथा आसाम आयल कं० की स्थापना हो चुकी थी। सन् १९२० तक इस कम्पनी को अनेकों आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा इसका अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया। अब तक ८० कूप पूरे हो गये थे तथा इस समय कम्पनी को समाप्त होने से बचाने के लिए विशाल आर्थिक सहायता की आवश्यकता थी। इसी वर्ष आसाम आयल कं० का प्रबन्ध बर्मा आयल कं० ने सम्हाल लिया तथा आधुनिकतम यन्त्रों से कार्य-संचालन के लिए पूंजी की सहायता दी। सन् १९२५ तक १२५ तेल कूप पूर्ण हो गये तथा प्रथम सफल कूप ने इसी वर्ष उत्पादन प्रारंभ किया। एक शोधन-शाला का निर्माण भी किया गया तथा अन्ततोगत्वा भारत ने संसार के तेल-मानचित्र पर स्थान पा ही लिया।

किन्तु कोई भी तेल क्षेत्र हमेशा के लिए तो नहीं रहता इसलिए यह आवश्यक है कि बराबर इस बात का प्रयत्न किया जाय कि तेल की प्राप्ति जारी रहे तथा उसके लिए नवीन तेलक्षेत्रों की खोज होती रहे। सन् १९४८ में इस बात में संशय होने लगा कि डिगबोई से तेल का उत्पादन उतनी ही मात्रा में जारी भी रह सकेगा, किन्तु नयी खोजों के उपरान्त अतिरिक्त तेल का पता लग गया और तब से बराबर ही उत्पादन ठीक प्रकार से चल रहा है। फिर भी एक दिन तो ऐसा आयेगा ही जब उत्पादन घटना प्रारंभ हो जायगा और तब एक बड़ी समस्या उपस्थित हो जायगी। नामफुक, नामचिक, माकुम-नामडांग, बरजान, ढेकियाजुली, बर-सिल्ला, टीरू पहाड़ियों, बण्डेरसूलिया, तथा नीचू गुर्वाद में, जो सभी नागा पहाड़ी क्षेत्र में स्थित हैं, तेल की प्राप्ति न होने की बात ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संरचनात्मक क्षेत्र में अतिरिक्त तेल के भण्डारों का मिलना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

नहारकटिया क्षेत्र

सन् १९५१ में विस्तृत वैज्ञानिक सर्वेक्षणों के फलस्वरूप ब्रह्मपुत्र घाटी में गहरे परीक्षणात्मक तेल-कूप के व्यधन के लिए एक उपयुक्त स्थान चुना गया। इस समतल और लक्षणहीन (Featureless) घाटी में, जो बालू और गाद

(Silt) से निर्मित हैं, कभी भी कोई तेल का चिन्ह नहीं मिला था। यहाँ पर व्यधन करना अपूर्व साहस और धैर्य का काम था, क्योंकि असफलता के अर्थ बहुत ही गंभीर होते। बहुत अधिक सोच-विचार के पश्चात् यह निश्चित किया गया कि व्यधन किया जायगा। सौभाग्य से व्यधन के परिणाम अच्छे निकले। इस कूप से तेल निकल आया और इस का नाम, नदी किनारे के एक गाँव के नाम पर, नहारकटिया कूप सं० १ रख दिया गया। इस कूप के पूर्ण व्यधन में दो वर्ष लगे तथा यह व्यधन ११,७१५ फुट की गहराई तक किया गया। दक्षिण-पूर्वी एशिया में अभी तक इस गहराई का कोई भी तेल-कूप न खोदा गया था। सन् १९५८ के अन्त तक इन क्षेत्रों में ४८ तेलकूप खोदे जा चुके थे जिनमें से ३६ तेल-उत्पादक, ४ वाति (Gas)-उत्पादक तथा ८ सूखे संछिद्र निकले।

आसाम तेलक्षेत्रों का स्तृतज्ञान (Stratiography of Assam Oil Fields)

श्री एफ० आर० मेलेट (F. R. Mallet) के पूर्व इन क्षेत्रों की भूतात्विक दशाओं के सम्बन्ध में बहुत कम मालूम था। भारतीय भूतात्विक समीक्षा के अन्य सदस्यों ने मेलेट के पश्चात् पर्याप्त काम इस क्षेत्र में किया और सन् १९१४ में जब बर्मा शेल कम्पनी के भू-विशेषज्ञों ने इस काम को सम्हाला तो इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध हो चुका था। सरलता के लिए इन क्षेत्रों को चार मुख्य भूतात्विक भागों में वर्गीकृत किया गया है।

(क) पूर्वी हिमालय (Eastern Himalayas) विस्तृत अधिक्षिप्त चादरों (Thrust sheets) से निर्मित हैं जो दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व की ओर प्रसरित (Moved) हो चुके हैं। उत्तर (Upper) आसाम की एल्यूवियल घाटी से संलग्न अधो-अधिक्षिप्त चादर (Lower Thrust-sheets) में तृतीयक शिलाएँ (Tertiary rocks) विद्यमान हैं। ये शिलाएँ अधो-गोंडवाना (परमियन) युग के स्तरों (beds) के नीचे स्थित हैं। ये संरचनाएँ हिमालयन-अधिक्षिप्त (Over-thrusts) के अन्तर्गत आती हैं।

(ख) हिमालय-श्रेणियों के सामने घाटी के उस पार नागा पहाड़ियाँ हैं जिनकी संरचना भी उपर्युक्त प्रकार की है किन्तु यहाँ पर अधिक्षेपण (Overthrusting) उत्तर-पश्चिम की ओर हुआ है। यहाँ अधिक्षिप्त चादरें (Thrust-sheets) तृतीयक शिलाओं द्वारा निर्मित हैं किन्तु यह संभव है कि यहाँ क्रिटेशियस शिलाएँ (Cretaceous rocks) भी विद्यमान हों। पर्याप्त दक्षिण की ओर बर्मा में इसी

सामान्य अभिलम्बा (General Strike) के अनुप्रस्थ ट्रायसिक युग की शिलाएँ तक मिली हैं।

(ग) दो पर्वत-श्रेणियों के मध्य इस क्षेत्र की भूतात्विकी (Geology) पूर्ण रूप से एल्यूवियम-निक्षेपों द्वारा आच्छादित हो गयी है किन्तु भू-भौतिक परीक्षणों से ऐसा ज्ञात हुआ है कि इन अभिनव (Recent) निक्षेपों के नीचे हजारों फुट मोटे तृतीयक युग के अवसाद (Sediments) हैं जिनका नमन (Dip) बहुत कम है।

(घ) उत्तर-आसाम की एल्यूवियम घाटी से संलग्न, दक्षिण-पश्चिम में, मिकिर पहाड़ियाँ हैं। ये प्राचीन नाइस (Gneiss) शिलाओं द्वारा निर्मित हैं तथा इनके ऊपर कम मोटाई वाले तृतीयक अवसाद स्थित हैं। मिकिर पहाड़ियाँ तथा शिलांग के पठार को भारतीय भूखण्ड (Indian Shield) का उत्तर-पूर्वी कोना समझा जा सकता है।

उत्तर-आसाम की चौड़ी एल्यूवियल घाटी के दक्षिण-पूर्व में तृतीयक (Tertiary) क्रम (Sequence) को नागा पहाड़ी क्रम कहा जा सकता है। नागा पहाड़ियों का क्रम इस प्रकार है—

अनुमानित आयु (Approximate age)		स्थानीय नाम
प्लायोसीन (Pliocene)		डिहिंग श्रेणी
	विषम विन्यास	(Unconformitv)
		नामसांग स्तर (Beds)
	संभवत: विषम विन्यास (Possible Unconformity)	
मायोसीन (Miocene)	टीपम श्रेणी	गिरुजान वले संघ (Stage) टीपम बालू पत्थर" (Stage
	सुरमा श्रेणी	
	विषम विन्यास	(Unconformity)
ऑलिगोसीन (Oligocene)	बरैल श्रेणी	टिकाक पर्वत संघ (Stage) बारागोलाई " " नौगाँव " "
इयोसीन (Eocene)	डिसांग श्रेणी	

टीपम बालू पत्थर संघ (Tipam Sandstone Stage) सुरमा श्रेणी पर स्थित है तथा इसकी अधिकतम मोटाई लगभग ७००० फुट २६° १५′ अक्षांश

(Latitude) पर देखी गयी है। उत्तर-पूर्व की ओर यह पतली होती जाती है तथा आसाम घाटी के शीर्ष (Head) पर इसकी मोटाई केवल ३५०० फुट रह जाती है। डिगबोई की तेलबालुएँ (Oilsands) इसी संघ (Stage) में स्थित हैं। स्थानीय रूप से इनका क्रम इस प्रकार स्थापित किया गया है—

हंसापुंग बालूपत्थर
बप्पापुंग मृत्तिका (Clay)
बप्पापुंग बालू पत्थर
उत्तर डिगबोई चित्रित मृत्तिका (Upper Digboi Mottled Clay)
नाहोर तेलबालू वर्ग (Nahor Oilsand group)
अधो-चित्रित मृत्तिका (Lower Mottled Clay)
डिगबोई तेलबालू वर्ग

तृतीयक क्रम (Tertiary Succession) का अध्ययन विस्तृत रूप से नहारकटिया तथा मोरान के समीप खोदे गये कूपों द्वारा किया गया है। इयोसीन (Eocene) शिलाओं के अतिरिक्त, शेष क्रम यहाँ भी नागा पहाड़ी क्षेत्र क्रम की भाँति ही है किन्तु यहाँ शिलाओं की मोटाई कम है। इयोसीन शिलाओं का प्रतिनिधित्व यहाँ जयन्तिया श्रेणी ने किया है जिसमें दो संघ (Stages) हैं—प्रथम कोपिली संघ तथा दूसरा सिलहट चूना-पत्थर संघ (Stage)। इस जयन्तिया श्रेणी की कुल मोटाई २००० फुट है। सुरमा श्रेणी में शेल (Shales) तथा शेलमय बालू पत्थर अनियमित रूप से वितरित हैं तथा नहारकटिया के अनेक क्षेत्रों में ये स्तर (Beds) पाये भी नहीं जाते। टीपम बालूपत्थरों के ऊपर गिरुजन क्ले स्थित हैं तथा नहारकटिया में इनकी मोटाई ३००० फुट तक पहुँच जाती है। मोरान में यह विशेष गिरुजन शिलाक्रम (Lithology) १०००-१८०० फुट की मोटाई तक ही सीमित है। इसके ऊपर स्थित शिलाएँ नामसांग स्तरों से मिलती जुलती हैं। मिकिर पहाड़ियों में तृतीय स्तर आधार-नाइस-शिलाओं (Basement Gneiss Rocks) के दक्षिण तथा पूर्व में नीची पहाड़ियों में ही अपावृत (exposed) हुए हैं।

खनिज तेल एवं भारतीय राष्ट्रीय योजनाएँ

आजकल भारत में खनिज तेल का उत्पादन ४ लाख टन प्रति वर्ष है जो आसाम के डिगबोई क्षेत्र से आता है। नहारकटिया, मोरान तथा हुगरीजन के तेलक्षेत्रों

से यह मात्रा ३० लाख टन प्रतिवर्ष तक बढ़ायी जा सकती है अर्थात् इन क्षेत्रों से २५ से २६ लाख टन तक अशोधित तेल (Crude Oil) प्राप्त हो सकेगा। भारत की खनिज तेल की आवश्यकता वर्तमान समय में लगभग ६० लाख टन है। द्वितीय तथा तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं के अन्त तक इसी के बढ़कर लगभग ७५ और १४० लाख टन प्रतिवर्ष हो जाने की संभावना है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वर्तमान योजनाओं तथा भविष्य के अन्य विकासों के पश्चात् चतुर्थ तथा पंचम पंचवर्षीय योजनाओं के अन्त तक भारत में तेल की खपत क्रमशः २५० लाख टन तथा ५०० लाख टन प्रति वर्ष हो जायेगी। भारत आजकल अन्य देशों से प्रति वर्ष ८५ करोड़ रुपये से अधिक का तेल आयात करता है। यदि देश में नवीन खनिज तेल भण्डार न खोजे गये तो १९७६ ई० के अन्त तक यही धनराशि लगभग ३४० करोड़ रुपये हो जायगी। खनिज तेल तथा तेल के अन्य उत्पादनों में आत्म-निर्भर बनने के लिए हमारे देश को पंचम पंचवर्षीय योजना के अंत तक लगभग ३६०० करोड़ रुपये व्यय करने पड़ेंगे जिससे नवीन तेल-भण्डारों का विकास, अशोधित तेल का शोधन तथा अन्य तेल-उत्पादनों का वितरण किया जा सके।

हमारे विदेशी मुद्रा के साधन तथा स्रोत भी सीमित ही हैं और उस पर भी केवल खनिज तेल की आवश्यकता-पूर्ति के लिए हमें इस मुद्रा की विशाल धनराशि तेल पर ही व्यय कर देनी पड़ती है। इन सभी तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शीघ्र ही तेल के नवीन क्षेत्रों का पता लगाना होगा। यही नहीं, आज इस बात की भी आवश्यकता है कि देश के सारे तेल-स्रोत तथा संसाधन गतिशील हों तथा नवीन क्षेत्रों के विकास, अपरिष्कृत तेल तथा उसके उत्पादनों का शोधन (Refiniug) तथा तेल से सम्बन्धित सभी कार्य सरकारी तथा व्यक्तिगत पूँजी के सहयोग से किये जायँ।

डीजल तेल की खपत यातायात, कृषि तथा अनेक उद्योगों में द्रुत गति से बढ़ रही है। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक खनिज तेल के विशुद्ध उत्पादनों जैसे मोटर स्प्रिट के निर्माण में तो वृद्धि होगी तथा खपत के अतिरिक्त ७२५,००० टन अतिरिक्त मोटर स्प्रिट प्राप्त हो सकेगा किन्तु खनिज तेल के मध्यसृष्टों (Middle products or distillates) की खपत उनके उत्पादनों से कहीं अधिक होगी तथा इस प्रकार १,९०५,००० टन मिट्टी का तेल, १,४७१,००० उच्च-गति डीज़ल तेल (High Speed Diesel Oil), १७१,००० टन हल्का डीज़ल तेल, २६८,००० टन भट्टियों का तेल (Furnace Oil) तथा १०१,००० टन

बिट्यूमिन (Bitumen) की अतिरिक्त आवश्यकता होगी। इस प्रकार इस समय तक खनिज तेल के परिष्कृत तथा अन्य सृष्टों (Products) के उत्पादनों में पर्याप्त अन्तर होगा तथा विभिन्न सृष्टों (Products) की उत्पादन-मात्राओं का संतुलन (Equilibrium) पूर्ण रूप से नष्ट हो जायगा। यह एक बहुत बड़ी तथा गंभीर समस्या है और इसका उन्मूलन करना आवश्यक है। भारत में वर्तमान समय में केवल चार शोधनशालाएँ (Refineries) हैं जो डिगबोई, बम्बई तथा विशाखापतनम् में स्थित हैं। ये शोधन-शालाएँ (Refineries) व्यक्तिगत पूँजी के अंतर्गत संचालित होती हैं। इन्हीं संयंत्रों से इतनी अधिक गैसोलीन (Gasoline) तैयार हो जाती है कि इसके बाद के अन्य मध्य-सृष्ट (Middle products) इसके उत्पादन के अनुपात में बहुत ही कम उत्पादित होते हैं। दूसरे नुनमाटी (डिगबोई के समीप) तथा बरौनी (बिहार) में दो अन्य शोधनशालाएँ (Refineries) और स्थापित हो रही हैं जो सन् १९६१ तक कार्य-संचालन प्रारंभ कर देंगी तथा इस प्रकार यह समस्या और भी अधिक गंभीर रूप धारण कर लेगी। अतः भारतीय तेल-उद्योग को तृतीय योजना के अन्तर्गत तेल-उत्पादनों में एक भारी असंतुलन का ही सामना नहीं करना है अपितु यह एक प्रकार की चुनौती है जो इस तथ्य की सूचक है कि इस उद्योग का विकास पूर्ण सावधानी बरतते हुए दृढ़ आधार-शिला पर सुनियोजित कार्यक्रम तथा संयोजनाओं द्वारा कार्यान्वित किया जाय।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से भारत सरकार तेल-संसाधनों को उन्नत करने की दिशा में अधिकाधिक ध्यान दे रही है। प्रारम्भ में भारतीय भूतात्विक समीक्षा के अन्तर्गत खनिज-तेल-भूतत्व विभाग की स्थापना की गयी। तत्पश्चात् दिसम्बर सन् १९५५ में तेल और प्राकृतिक वाति (Gas) संचालन-केन्द्र का संगठन किया गया तथा श्री ए० एम० एन०घोष इसके प्रथम संचालक नियुक्त हुए। इस संस्थान का मुख्य कार्यालय देहरादून रखा गया। अगस्त १९५६ में संचालन-केन्द्र को आयोग (Commonission) का रूप दिया गया तथा श्री केशवदेव मालवीय इसके प्रथम अध्यक्ष हुए। मुतथ्य यन्त्रों के साथ-साथ छिद्रण (Drilling) के लिए भारी यन्त्र विदेशों से प्राप्त किये गये। विदेशों से विशेषज्ञ भी आमंत्रित किये गये जिन्होंने सरकार को तेल के सम्भाव्य संसाधनों और उनकी विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में सम्मति प्रदान की। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ३० करोड़ रुपए से अधिक के व्यय का कार्यक्रम घोषित किया गया।

भारत सरकार ने सरकारी क्षेत्र में ही नवीनतेल-क्षेत्रों की खोज तथा विकास के लिए योजनाएँ कार्यान्वित नहीं कीं अपितु व्यक्तिगत क्षेत्र (Private Sector) को भी इस ओर प्रोत्साहित किया। एक ओर तो सरकार ने रूसी तथा रूमानियन प्रविधि-विशेषज्ञों की सहायता से आयोग के अन्तर्गत विस्तृत रूप से कार्य करना प्रारंभ किया और दूसरी ओर बर्मा शेल, स्टैण्डर्ड वैकुअम आयल कं० तथा कालटेक्स आयल कं० आदि को तेल-उत्पादन के सभी क्षेत्रों में सुविधाएँ तथा सहयोग प्रदान किया।

अब हम गत दस वर्षों में तेल की प्रगति पर विचार करेंगे। जैसा कि पहले कहा गया है, भारत को वर्तमान समय में वाणिज्य स्तर पर तेल केवल डिगबोई से प्राप्त होता है। डिगबोई क्षेत्रों का उत्पादन ४००,००० टन अशोधित तेल प्रतिवर्ष है। आसाम में ही आसाम आयल कं० ने जो बर्मा आयल कं० वर्ग (Group) की एक सदस्या है, इस क्षेत्र में विस्तृत रूप से कार्य किया है और इसी कम्पनी के अथक परिश्रम तथा विशाल धन राशि के फलस्वरूप नहारकटिया, मोरान तथा हुगरीजन तेल-क्षेत्रों की प्राप्ति सम्भव हो सकी है। सन् १९६१ के अन्त तक इन क्षेत्रों से प्रतिवर्ष २५-२६ लाख टन अशोधित तेल की उपलब्धि हो सकेगी। इन क्षेत्रों की तेल की अनुमानित मात्रा लगभग ३४,०००,००० टन है।

बम्बई के समीप कैम्बे के लुनेज क्षेत्र में तेल के विशाल भण्डार प्राप्त हुए हैं। इस क्षेत्र में रूसी भू-विशेषज्ञों की सहायता से खोज-कार्य अब तक जारी है तथा १९६० के अन्त तक इसके पूर्ण होने की आशा की जाती है। वैसे तो इस क्षेत्र में तेल-भण्डारों के सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता किन्तु भूतात्विक संरचनाओं तथा तेल-मय संस्तरों की मोटाई को देखते हुए रूसी वैज्ञानिकों का मत है कि यहाँ पर कम से कम ३ करोड़ टन तेल विद्यमान है तथा सरलता से ही १५ लाख टन तेल इस क्षेत्र से प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु भूतात्विक पूर्व-आवश्यकताएँ कैम्बे क्षेत्र के कुछ ही भागों में सीमित नहीं हैं। कैम्बे की खाड़ी (Gulf of Cambay) के अनुप्रस्थ (Along) तथा कैम्बे नगर के बाहरी भागों में अनेक तेल तथा गैस-निक्षेपों के विद्यमान होने की संभावनाओं को आशाहीन नहीं कहा जा सकता। इस समय यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र के तेल-स्थानों के विकास के साथ ही सर्वेक्षण तथा पूर्वेक्षण कार्यों को समीप के अन्य क्षेत्रों में जारी रखा जाय।

कुछ मास पूर्व ही कैम्बे (खंभात) से दक्षिण की ओर १०० मील की दूरी पर

तथा बडौदा के समीप अंकलेश्वर नामक क्षेत्र से तेल की प्राप्ति हुई है। यद्यपि ये क्षेत्र पर्याप्त आशाप्रद हैं तथा इन क्षेत्रों में एक विशाल तेल-भण्डार विद्यमान होने की पूर्ण संभावना है, फिर भी परीक्षणात्मक भूछिद्रण कार्य को और भी आगे बढ़ाना अति आवश्यक है। छिद्रण का यह कार्य सन् १९६१ के मध्य तक समाप्त हो जायेगा, ऐसी आशा की जाती है। अभीतक के छिद्रण-परीक्षणों तथा इस क्षेत्र के पूर्वेक्षण से ऐसा लगता है कि कम से कम यहाँ पर कैम्बे के क्षेत्र में उपलब्ध तेल भण्डारों की मात्रा के बराबर ही तेल की मात्रा विद्यमान है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इस तेल-क्षेत्र के विकास के पश्चात् यहाँ से भी १५ लाख टन तेल की प्राप्ति प्रति वर्ष हो सकेगी।

पंजाब राज्य में ज्वालामुखी नामक स्थान पर कूप संख्या १ में ही वाति (Gas) के विद्यमान होने का पता चला है। यहाँ पर छिद्रण-कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ है। जिन शिलाओं से बेधन संछिद्र प्रवेश करता है उनमें तेल तथा वाति होने के अनेक संकेत मिलते हैं। इस स्थान पर गैस के विशाल भण्डार विद्यमान होने में कोई संशय नहीं है तथा साथ ही आशाजनक तेल-क्षेत्र की भी प्राप्ति हो सकती है। ज्वालामुखी क्षेत्र में भूतात्विक दशाएँ कैम्बे की अपेक्षा अधिक विषम हैं। यहाँ पर बहुत अधिक भूतात्विक परीक्षणों तथा अन्य वैज्ञानिक अनुसन्धानों के किये बिना किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचना संभव नहीं है।

भारत में तेल के संभाव्य क्षेत्र तथा तेल-खोज की संभावनाएँ

अभी तक हमने केवल उन्हीं नवीन तेल-क्षेत्रों के संबंध में विचार किया है। जहाँ से व्यापारिक स्तर पर तेल-प्राप्ति की संभावनाएँ शत-प्रतिशत हैं अथवा जिनमें तेल के विशाल भण्डारों के विद्यमान होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं है। अब हम कुछ ऐसे क्षेत्रों के संबंध में विचार करने जा रहे हैं जिनमें या तो शिला-स्तरों की भूतात्विक संरचनाएँ तथा तेल-भण्डारों के लिए उपयुक्त स्थितियाँ विद्यमान हैं अथवा जिनमें ये सभी तथ्य होते हुए भी वे अभी तक के परीक्षणों में निराशाजनक ही सिद्ध हुए हैं तथा भविष्य में जिनसे शायद कुछ आशा की जा सके।

सारे भारत का वह क्षेत्र जिसमें तेल-प्राप्ति की कुछ संभावनाएँ प्रतीत होती हैं लगभग चार लाख वर्गमील का है। इस विशाल क्षेत्र में भूतात्विक तथा भू-भौतिक (Geophysical) विधियों द्वारा विस्तार में सर्वेक्षण तथा पूर्वेक्षण की

आवश्यकता है । यही नहीं, इसके पश्चात् परीक्षणात्मक छिद्रण कार्य को भी इन क्षेत्रों में जारी रखना आवश्यक है। देश के इन संभावित क्षेत्रों में से कुछ में तो द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ही काम प्रारंभ हो गया है, कुछ में तृतीय योजना के अन्तर्गत काम होगा। इसी बीच अन्य क्षेत्रों में भी तेल की संभावनाएँ आँकी जायेंगी। अभी तक जिन क्षेत्रों में तेल के संभाव्य भण्डार विद्यमान हैं वे इस प्रकार हैं --

भारत का प्रायद्वीपीय भाग (Peninsular India)

जैसा कि हमें विदित है, खनिज तेल की प्राप्ति केवल अवसादीय शिलाओं (Sedimentary rocks) में ही सम्भव है और वह भी तब जब तेल-निर्माण के लिए उपयुक्त भूतात्विक दशाएँ विद्यमान हों। आग्नेय तथा परिवर्तित शिलाओं में कभी भी तेल नहीं मिल सकता। यह दूसरी बात है कि किसी कारणवश कुछ अन्य शिलाओं से निकलकर तेल इन शिलाओं में प्रवेश कर गया हो। एक तथ्य और भी है कि तेल उन प्राचीन अवसादीय शिलाओं में भी नहीं मिलता जो कैम्ब्रियन युग से भी प्राचीन हैं। इस प्रकार देश के प्रायद्वीपीय भागों में जहाँ या तो प्राचीन मणिभित परिवर्तित शिलाएँ अथवा आग्नेय शिलाएँ है या फिर पूर्व-कैम्ब्रियन युग की अवसादीय शिलाएँ ही हैं, तेल का प्राप्त होना असम्भव-प्राय है। दूसरे ये अवसादीय शिलाएँ जीवाश्म-हीन (Unfossiliferous) हैं अतः तेल की प्राप्ति की शेष संभावनाएँ भी समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार दक्षिण- तथा मध्य-भारत का बहुत बड़ा भाग ज्वालामुखीय शिलाओं (Volcanic rocks) द्वारा आच्छादित है। कहीं कहीं तो इन शिलाओं की मोटाई ७,००० फुट तक है। इन शिलाओं से भी कोई आशा करना व्यर्थ है। यह और बात है कि इन शिलाओं के नीचे कही कहीं कुछ उपयुक्त अवसादीय शिलाएँ विद्यमान हों किन्तु उनकी संभावना भी बहुत ही अल्प है। गोंडवाना, जुरेसिक तथा क्रिटेशियस युगों की अवसादीय शिलाओं से भी अभी तक तेल का कोई संकेत नहीं मिला है। कच्छ की कुछ शिलाएँ अवश्य ही इस प्रकार की हो सकती है जिनमें शायद कहीं तेल प्राप्त होने के कुछ लक्षण दिखें पर यह भी तभी संभव है जब कि इन क्षेत्रों में कभी तेल का निर्माण हुआ हो। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सरलता से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उपर्युक्त शिलाओं में जो भारत के प्रायद्वीपीय भाग में स्थित हैं तेल-प्राप्ति की संभावनाएं लगभग नहीं के बराबर ही हैं।

पश्चिमी बंगाल—हिन्द-स्टेनवेक प्रायोजना (Indo-Stanvac Project) की भागीदार भारत सरकार की ओर से आयोग, स्टैण्डर्ड वैकुअम आयल कम्पनी द्वारा किये जाने वाले अन्वेषण-कार्यों में सहयोग दे रहा है। बर्दवान तथा गाल्सी के समीप गवेषणात्मक छिद्रण (Exploratory drilling) भी किया जा चुका है किन्तु अभी तक सफलता हाथ नहीं लगी है। इस प्रायोजना के अन्तर्गत छिद्रित चार कूपों के परिणामों ने तेल-उत्पत्ति के लिए अनुकूल शिलाओं का अस्तित्व तो अवश्य ही सिद्ध किया है किन्तु अभी तक व्यापारिक महत्त्व के तेल या वाति (Gas)-भण्डार की प्राप्ति नहीं हुई है। सुन्दरवन का क्षेत्र, जो बंगाल बेसिन (Basin) का दक्षिणी भाग निर्मित करता है, पर्याप्त समय तक समुद्री (Marine) तथा अरुद्ध नदमुख (Estuarine) अवस्थाओं में अवसादित हुआ है। यद्यपि इस क्षेत्र में कार्य करने में अनेक कठिनाइयों का अनुभव अवश्य होगा, फिर भी यहाँ पर संभाव्य तेल भण्डारों का पूर्वेक्षण अनिवार्य है तथा आशाजनक भी सिद्ध हो सकता है। इसी प्रकार बंगाल की खाड़ी के तटीय क्षेत्रों में भी तेल के विद्यमान होने की बात नितान्त निस्सार नहीं कही जा सकती। इन क्षेत्रों में सर्वेक्षण तथा पूर्वेक्षण के सारे संसाधनों तथा विधियों को प्रयुक्त कर कुछ आशा अवश्य की जा सकती है।

पूर्वी व पश्चिमी तट—यहाँ पर ३,००० वर्गमील के क्षेत्र में बहुत गहराई वाले अवसाद बिखरे पड़े हैं। ये अवसादीय शिलाएँ क्रिटेशियस (Cretaceous) तथा तृतीयक (Tertiary) युग की हैं। उपयुक्त संरचनाओं की अनुपस्थिति होने के कारण इन क्षेत्रों में तेल का कोई संकेत अभी तक नहीं मिला है किन्तु यहाँ पर तेल की संभावनाओं को बिल्कुल ही निराशाजनक नहीं कहा जा सकता। कावेरी द्रोणी (Cauvery Basin) तथा केरल में वाति-क्षरणों के होने की सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं। गोवा के उत्तर में पश्चिमी तट पर, तथा सौराष्ट्र एवम् कच्छ में भी तेल-प्राप्ति की आशा की जा सकती है। कुछ भू-वेत्ता अन्दमान तथा निकोबार द्वीपों में भी तेल मिलने के सम्बन्ध में आशावान् हैं। निकट भविष्य में ही इन सभी क्षेत्रों में भूतात्विक तथा श्वाकृष्टि (Gravimetric) सर्वेक्षण किये जायेंगे।

पंजाब—ज्वालामुखी में वाति की खोज तथा तेल के संकेत मिलने से इस क्षेत्र के पूर्वेक्षण की संभावनाएँ और भी बढ़ गयी हैं। ऐसी आशा व्यक्त की जा रही है कि पंजाब के होशियारपुर, लुधियाना तथा दासूजा जिलों में तेल अवश्य-

ही मिलना चाहिए क्योंकि यहाँ पर शिलाओं की संरचनाएँ ऐसी हैं जैसी कुछ अन्य देशों में हैं जिनसे तेल की प्राप्ति होती है। ज्वालामुखी में वाति (गैस) के मिलने से दो तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। प्रथम तो यहाँ से वाणिज्य-स्तर पर वाति की उपलब्धि हो सकेगी तथा दूसरे, सिद्धान्तों के आधार पर यह एक बड़ी चीज़ होगी। अभी तक यह विश्वास किया जाता था कि शिवालक संरचनाएँ या तो तेल अथवा वाति-रहित हैं अथवा उनमें अल्प मात्रा में इनकी प्राप्ति हो सकती है। वाति के मिलने से इस सिद्धान्त को बहुत ठेस पहुँची है। इस प्रकार इसका भारत की तैल-भूतात्विकी (Oil Geology) पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव हुआ है और एक नवीन समस्या उपस्थित हो गयी है कि क्या इन पूर्व-हिमालय संरचनाओं में तेल हो सकता है?

रूसी-भूवेत्ता श्री निकोलाई कालिनिन के अनुसार गंगा घाटी तथा पूर्व-हिमालय अवनमन (Pre-Himalayan-bending Flexture) के मध्य का भाग रूस की यूराल पर्वतमाला तथा वोल्गा के बीच के क्षेत्र के समान है जहाँ तेल के विशाल भण्डार विद्यमान हैं। उनके कथन के अनुसार भारत के तेल-भूवेत्ताओं को इसी क्षेत्र पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इस क्षेत्र में वातचुम्बकीय (Aero-magnetic) तथा भूकम्पीय (Seismic) सर्वेक्षण किये जा चुके हैं तथा इन सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि यहाँ पर संस्तरों की मोटाई कहीं कहीं पर तो १०,००० मीटर से भी अधिक है तथा यह इस बात का संकेत है कि यहाँ पर तेल के निक्षेप और भी विशाल होने चाहिए।

गंगाघाटी—उत्तरी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में गंगा की विस्तृत निक्षेपीय द्रोणी (Depositional basin) में साधारण जलोढ मिट्टी (एल्यूवियम, Alluvium) के नीचे तृतीयक युग (Tertiary) के संभवतः पर्याप्त मोटाई के अवसाद विद्यमान हैं, ऐसा विश्वास किया जाता है। इस भाग में तेल मिलने की संभावना तो है किन्तु इसके पूर्व विस्तृत भूभौतिक सर्वेक्षणों द्वारा इस क्षेत्र की उप-तलीय भूतात्विकी (Sub-surface Geology) को समझना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए परीक्षणात्मक बेधन भी करने पड़ेंगे। इस भाग के सामान्य भूतात्विक अध्ययन से पता चलता है कि बाह्य हिमालय (Outer Himalayas) के ठीक दक्षिण में घाटी के उत्तरी भाग में तेल की प्राप्ति की अपेक्षाकृत संभावनाएँ अधिक हैं क्योंकि संभवतः यहीं पर तेल के संचय के लिए उपयुक्त संरचनाएँ विद्यमान हैं। इन क्षेत्रों की भूगर्भीय संरचनाओं का पता लगाने के लिए भूतात्विक

तथा भू-भौतिक विधियों का आश्रय लिया जा रहा है। इस क्षेत्र में तेल-अन्वेषण कार्य जारी है।

जैसलमेर—वातचुम्बकीय (Aero-magnetic) सर्वेक्षण द्वारा पश्चिम व दक्षिण-पश्चिम के प्रदेशों में बहुत गहराई वाले अवसादों के संकेत मिले हैं। अगम्यता तथा कार्य करने की अत्यन्त कठिन परिस्थितियों के फलस्वरूप भू-तात्विक व भू-भौतिक अन्वेषण-कार्य अभी तक केवल गम्य स्थानों तक ही सीमित हैं। ये सर्वेक्षण अभी जारी रहेंगे तथा सफल तेल-क्षेत्रों के मिलने की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

खम्भात-कच्छ—भू-तात्विक तथा भू-भौतिक अन्वेषणों के परिणामस्वरूप गोआ, खम्भात तथा गुजरात के जलोढ (Alluvial) प्रदेश में कम गहराई पर तेल युक्त अवसादों के मिलने की संभावना है।

खम्भात के समीप भू-भौतिक विधि से एक अनुकूल संरचना का बहीरेखण (Outline) किया गया है। यहाँ पर बेधित कूप में एक से अधिक तहों में तेल पाया गया है। इस क्षेत्र की आर्थिक संभाव्यताओं (Economic potentialities) का विस्तृत रूप में परीक्षण करना आवश्यक है।

शिवसागर आसाम—तेल की खोज का कार्य इस क्षेत्र में रूसी विशेषज्ञों की सहायता से किया गया है। शिवसागर के समीप बहुत गहराई पर भूकम्पीय सर्वेक्षण द्वारा दो संरचनाओं की स्थिति ज्ञात हुई है। ये संरचनाएँ मोरान के तेल-क्षेत्र के पश्चिम में स्थित हैं। व्यावहारिक रूप से इस प्रदेश में पूर्वेक्षण के परिणाम इस तथ्य पर निर्भर करेंगे कि कितना भू-भौतिक सर्वेक्षण यहाँ पर किया जाता है। इन दो संरचनाओं में से एक संरचना का गहरे बेधन द्वारा परीक्षण करने का प्रबन्ध किया जा रहा है। इन सभी परीक्षणों तथा अन्वेषणों के परिणाम सफल होंगे, ऐसी आशा करनी चाहिए।

सुरमा-घाटी-आसाम—सुरमा घाटी में, जो आसाम के दक्षिण-पश्चिम भाग तथा संलग्न त्रिपुरा के क्षेत्र को निर्मित करती है, तेल के संचय के लिए उपयुक्त अनेक संरचनाएँ पायी गयी हैं। यद्यपि मासिमपुर तथा बदरपुर क्षेत्रों में पर्याप्त बेधन कार्य किया जा चुका है, फिर भी यहाँ पर और भी परीक्षणात्मक अन्वेषणों की आवश्यकता है। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त खासीमारा तथा खासी पहाड़ियों के अन्य स्थानों में भी तेल मिलने के अनेक संकेत मिले हैं। अभी कुछ ही वर्ष पूर्व इन क्षेत्रों से संलग्न पूर्वी पाकिस्तान के सिलहट

जिले में प्राकृतिक वाति के विशाल भण्डार विद्यमान होने के लक्षण दिखाई दिये थे।

भारत का वर्तमान तेल-उद्योग तथा उसका भविष्य

शक्ति के क्षेत्र में अणु-शक्ति का प्रवेश हो जाने के कारण अब यह कथन कि "वर्तमान युग तेल का युग है", तो सत्य नहीं माना जा सकता, फिर भी इससे खनिज तेल की मान्यता भी कम नहीं होती। तेल तथा वाति, उद्योग-प्रधान देशों में शक्ति के प्रमुख स्रोत हैं तथा एक समय आने वाला है जब भारत की औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था (Industrial Economy) पर भी इसका सर्व-प्रमुख प्रभाव होगा। भारत के औद्योगिक जीवन में ऊर्जा (Energy) की आवश्यकता की पूर्ति मुख्यत: कोयले से होती है। औद्योगिक ऊर्जा का ८०% भाग कोयले से तथा १४% खनिज-तेल-उत्पादनों से प्राप्त होता है। शेष जल-विद्युत द्वारा मिलता है। आगामी वर्षों में कोयले के उपयोग की मात्रा उपर्युक्त अनुपातों के अनुसार घट जायगी तथा उसके स्थान पर जल-विद्युत् का उपयोग ऊँचे स्तर पर किया जायगा किन्तु फिर भी तेल की खपत तो बढ़ेगी ही और इसका सीधा प्रभाव हमारी आर्थिक व्यवस्था पर होगा।

वर्तमान समय में आसाम से प्राप्त तेल से भारत की केवल १०% तेल की माँग पूरी होती है तथा शेष हमें बाहरी देशों से आयात करना पड़ता है। सन् १९६१ तक हम उद्योग-ऊर्जा का केवल १४% भाग ही अपने तेल-संसाधनों से प्राप्त कर सकेंगे। १९६६ में यह मात्रा १६% तथा १९७१ में १९% तक पहुँच जायगी। सन् १९७६ में अर्थात् पंचम पंचवर्षीय योजना के अन्त तक हम अपनी औद्योगिक ऊर्जा की २०% आवश्यकता अपने तेल-संसाधनों से पूरी करेंगे। किन्तु इन गणनाओं को कार्यरूप देने में एक विशाल धनराशि की आवश्यकता होगी। एक विशेषज्ञ के अनुसार सन् १९६७ तक प्रतिवर्ष १२० लाख टन तेल की खपत हो जायगी जिसमें सभी प्रकार के खनिज-तेल-उत्पादन सम्मिलित हैं। यह खपत आज की खपत की लगभग दो गुनी होगी। प्रत्येक अतिरिक्त टन तेल की खोज शोधन तथा अन्य विधियों में औसतन ६०० रुपए की आवश्यकता होती है। यह गणना सम्पूर्ण संसार के तेल-उत्पादन तथा तेल की आर्थिक-व्यवस्था के अनुसार की गयी है। इस प्रकार सन् १९६७ तक अपनी आवश्यकता की पूर्ति अथवा अन्य शब्दों में नवीन तेल क्षेत्रों के अन्वेषण, विस्तार तथा विकास आदि के लिए

हमें ३६० करोड़ रुपए से भी अधिक धन की आवश्यकता होगी जब कि तेल की दर हम स्थिर (Constant) मानते हैं। इसके अतिरिक्त तेल का शोधन करने तथा उसको बाजार में पहुँचाने के लिए भी पर्याप्त धन की आवश्यकता है। नवीन आँकड़ों तथा योजनाओं के अनुसार तृतीय योजना के अन्त तक १२० लाख के स्थान पर हमारी खपत १४० लाख टन होगी। इसके लिए कम से कम ४०० करोड़ रुपए की माँग खान तथा तेल मन्त्रालय, भारत सरकार से कर रहा है। किन्तु वास्तविकता निराशाजनक प्रतीत होती है। अभी तक तेल-क्षेत्रों के विकास के लिए ११५ करोड़ रुपये देना भारत सरकार ने निश्चित किया है। अंकलेश्वर में नवीन तेल-भण्डार मिल जाने से यह धन-राशि संभवतः १७० करोड़ रुपए तक पहुँच सकती है तथा इस प्रकार आर्थिक दृष्टिकोण से तेल के सम्बन्ध में आत्म-निर्भर बनने की दिशा में हम अपने को असफल ही पाते हैं।

तेल-उद्योग के विकास में विशाल धनराशि की लागत तथा साथ ही साथ पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अन्य उद्योगों, कृषि तथा विकास-आयोजनों में उन्नति एवम् उस पर भी देश के आन्तरिक संसाधन सीमित होना आदि तथ्य इस बात की पूर्ण रूप से पुष्टि करते हैं कि केवल सरकारी पूँजी के आधार पर हम भारत में तेल-उद्योग का विकास नहीं कर सकते। इन महत्त्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने देश के सभी तेल-संसाधनों का विकास सरकारी तथा व्यक्तिगत पूँजी के सम्मिलित सहयोग के आधार पर करना निश्चित किया है और सरकार की इस घोषणा में आशा की एक नवीन किरण छिपी है जिसका मूक संकेत भविष्य में हमारी तेल की आत्मनिर्भरता होगी।

प्राकृतिक वाति (Natural Gas)

ईंधन तेल में कुछ-न-कुछ अंशों में अवश्य ही प्राकृतिक वाति घुली रहती है। प्राकृतिक वाति वास्तव में अनेक हाइड्रोकार्बनों का सम्मिश्रण होती है जिसमें मीथेन प्रमुख है। तेल-मय संस्तरों में कभी-कभी यह 'वाति-टोपिका' (Gas Cap)के रूप में मिलती है। यह वाति अनेक दृष्टिकोणों से उपयोगी सिद्ध हुई है। इसकी प्रारंभिक उपयोगिता हम लोग उस समय स्वीकार करते हैं जब वेधन के पश्चात् तेल की प्राप्ति होती है। यह उस वाति का ही दबाव है जो तेल को वेधन-संछिद्र से होकर ऊपरी तल तक आने को वाध्य करता है। जहाँ तक आर्थिक महत्त्व का प्रश्न है, प्राकृतिक वाति से ही गैसोलीन जैसे उपयोगी पदार्थ निर्मित होते हैं। इस

वाति को ईंधन के रूप में जलाने के लिए तथा कभी कभी ऊर्जा-उत्पादन (Power generation) के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है। जब कभी अतिरिक्त वाति बच जाती है तो उसको पुनः अन्तर्भौमिक जलाशयों (Underground Reservoirs) में भेज दिया जाता है जिससे वे तेल तथा वाति पर पुनः और अधिक दबाव डालें।

तेल की प्राप्ति के लिए जब वेधन द्वारा कुएँ बनाये जाते हैं तो इनमें कुछ तो तेल तथा उसमें घुली वाति के उत्पादक होते हैं और कुछ सूखे छिद्र ही सिद्ध होते हैं जिनसे कुछ नहीं मिलता। इनके अतिरिक्त कुछ कुओं से केवल वाति की ही प्राप्ति होती है। इस प्रकार के कुएँ प्रायः प्रत्येक तेल-क्षेत्र में मिलते हैं। इनमें मीथेन तथा अन्य हाइड्रोकार्बन पूर्णरूपेण सूखी अवस्था में होते हैं।

डिगबोई के अतिरिक्त नहारकटिया क्षेत्र में अभी तक चार ऐसे कुएँ मिले हैं जिनमें केवल वाति ही है। सौराष्ट्र के जगतिया तथा गोधा नामक स्थानों में एवम् बड़ौदा में भी प्राकृतिक वाति के होने के संबंध में बहुत पहिले ही मालूम हो चुका था। तेल व प्राकृतिक वाति आयोग के नवीन अनुसन्धानों के फलस्वरूप इस संबंध में अनेक नवीन तथ्य प्रकाश में आये है। कांगड़ा घाटी में ज्वालामुखी में आर्थिक महत्त्व की वाति मिलने की पूरी संभावना व्यक्त की जा रही है। कैम्बे क्षेत्र के लूनेज नामक स्थान में भी पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक वाति मिली है। इधर बड़ौदा तथा अंकलेश्वर में भी इसके प्रचुर भण्डार मिलने की पूर्ण संभावना है।

आने वाले वर्षों में तेल की भाँति प्राकृतिक वाति का भी पर्याप्त अंशों तक हमारी आर्थिक व्यवस्था पर प्रभाव पड़ेगा। गैसोलीन तथा अन्य पदार्थों के उत्पादन में ही नहीं अपितु औद्योगिक स्तर पर शक्ति-उत्पादन के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकेगा, जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में होता है। नलों द्वारा वाति को घरों में भेजकर उससे ईंधन का काम लिया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग रासायनिक उद्योगों में भी विशाल स्तर पर किया जा सकता है और इस प्रकार अनेक रासायनिक पदार्थ जिनका प्रतिवर्ष आयात करना पड़ता है अपने देश में ही सरलता से बन सकेंगे।

परिच्छेद ११

बहुमूल्य खनिज

हीरा

भारत अत्यन्त प्राचीन समय से ही हीरों का उत्पादक रहा है और विश्व के सुन्दरतम तथा विशालतम हीरों में भारत की देन अनुपम है। दक्षिण अफ्रीका के किम्बरली प्रदेश की अत्यन्त उत्पादक खानों की खोज होने के पश्चात् भारतीय हीरा-उद्योग को बड़ा धक्का लगा। गत कुछ वर्षों से इस उद्योग को पुनः बढ़ावा मिल रहा है और आशा की जाती है कि हीरों के खनन का राष्ट्रीयकरण हो जाने के पश्चात् यह उद्योग प्रगति-पथ पर द्रुत गति से अग्रसर होगा।

संरचना एवम् गुण—हीरा शुद्ध रूपेण कार्बन का ही एक रूप है। यद्यपि अधिकतर यह वर्ण-हीन होता है। पर कभी-कभी इसमें पीले अथवा नीले आदि वर्णों की एक साधारण-सी झलक रहती है। इसके मणिभ (Crystals) अष्टानीक (Octahedral) होते हैं तथा दो चतुर्नीकों के संयोजन से इनका निर्माण होता है। मोह् के कठोरता मापदण्ड (Moh's Scale of Hardness) के अनुसार इसकी कठोरता दस है अर्थात् यह संसार का सबसे अधिक कठोर पदार्थ है। इसकी द्युति (Lustre) भी अपनी निज की विशेषता लिये होती है। अतः इसको हीरक द्युति (Adamantine Lustre) कहते हैं। हीरे के मणिभ भंगुर होते हैं। गहरे वर्ण के मणिभीय हीरे 'रूक्ष हीरे' (Bort) कहलाते हैं।

भारत में हीरों का वितरण

भारत में हीरा पूर्व-कैम्ब्रियन (Pre-Cambrian) की जीवाश्म-हीन शिलाओं में प्राप्त होता है जो क्रमशः उत्तर और दक्षिण भारत में विन्ध्य शैल श्रेणी और कुडप्पा एवम् कुर्नूल श्रेणी कहलाती हैं। भौगोलिक दृष्टि से भारत के हीरकमय क्षेत्रों का तीन भागों में वर्गीकरण किया जा सकता है—(१) मध्य भारतीय क्षेत्र, (२) दक्षिण भारतीय क्षेत्र, और (३) पूर्वी क्षेत्र।

मध्य भारतीय क्षेत्र

यथार्थतः भारत के हीरों के प्रमुख उत्पादन-केन्द्र इसी क्षेत्र में स्थित हैं तथा अन्य क्षेत्रों में उत्पादन अत्यन्त ही अल्प अथवा नगण्य ही है। मध्यप्रदेश के इन भागों में हीरों की खोज बहुत पहले हो चुकी थी तथा कई शताब्दियों से यहाँ खनन-कार्य भी होता आया है। यह क्षेत्र लगभग ६० मील लम्बा और १० मील चौड़ा है तथा इसके अन्तर्गत पन्ना, अजयगढ़, चरखारी, कोठी, कछार, पठार, चौबेपुर तथा बरौंधा प्रभृति स्थान आते हैं। स्थानीय हीरकमय शैल के प्रकारों के आधार पर इस क्षेत्र को तीन भागों में विभक्त किया गया है।

(क) हीरकमय संपिण्डित शैल (Diamondiferous Conglomerates) इस क्षेत्र की खानों का प्रधान स्रोत संपिण्डित शैल के स्तर ही हैं। इस क्षेत्र के लोग इनको मुड्ढा के नाम से पुकारते हैं। इसके दो मुख्य स्तर हैं जिनमें से एक विन्ध्यशैल श्रेणी के अन्तर्गत कैमूर तथा रीवा प्रस्तर-मालाओं के मध्य तथा दूसरा रीवा एवम् भण्डेर प्रस्तर-मालाओं के बीच स्थित है। इनमें से प्रथम स्तर हीरों का मुख्य उत्पादक है तथा इसकी मोटाई लगभग ५ फुट है जिसमें विभिन्न प्रकार के जैस्पर-मय (Jasper bearing) पिण्ड एवम् प्रस्तर-वटियाँ हैं। हीरों के मूल स्रोत के सम्बन्ध में अब भी मतभेद है तथा यह समस्या भारतीय भौमिकी की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है जिसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिल सका है। अनेक भूशास्त्रियों ने इस क्षेत्र का सर्वेक्षण तथा अध्ययन किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि यहाँ पर हीरे उसी प्रकार ज्वालामुखीय ग्रीवा (Volcanic Pipe) से प्राप्त हुए हैं जैसा कि दक्षिण अफ्रीका में हैं। इस क्षेत्र के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि यह हीरकमय ज्वालामुखी-ग्रीवा मझगवाँ ग्राम के समीप स्थित है जो पन्ना नगर के दक्षिण-पश्चिम में लगभग १२ मील की दूरी पर है। इस ग्रीवा (Pipe or Plug) की तलागत (Outcrop) अण्डाकार (Oval-shaped) है जिसका क्षेत्रफल १५०००० – २००००० वर्ग फुट होगा। लेखक ने स्वयम् सन् १९४८-४९ में इस क्षेत्र में विस्तृत कार्य किया है तथा इस बात के पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत किये हैं कि यह एक हीरकमय ज्वालामुखीय ग्रीवा है। इसी तथ्य को श्री के० पी० सिनोर के संछिद्रण (Bore hole) परीक्षणों आदि ने भी सिद्ध कर दिया है।

(ख) हीरकमय अलूवियम तथा बजरी (Diamondiferous Aluvium) and Gravels)—भौतिक दृष्टि से अत्यन्त कठोर एवम् रासायनिकतया सुदृढ़ होने के कारण साधारणतः हीरे पर ऋतुक्षरण आदि का प्रभाव नहीं होता। पूर्व-अर्वाचीन

और अर्वाचीन (Recent) युगों में विन्ध्य शैल श्रेणियां अपरदन (Erosion) तथा विखण्डन द्वारा अलूवियम और वजरी में परिवर्तित हो गयीं, किन्तु हीरे अप्रभावित ही रहे। इस प्रकार हीरकमय स्तरों ने अपरदन और विखण्डन द्वारा हीरकमय बालू और बजरी को जन्म दिया।

(ग) हीरकमय अग्लोमरेट शैल (Diamondiferous Agglomerate) मझगवाँ में हीरों का एक प्राथमिक निक्षेप पाया जाता है। इस अग्लोमरेट में सर्पेन्टीन की बहुलता है तथा इसमें श्वेत कैल्साइट (White Calcite) का अन्तर्गमन (Intrusion) इस प्रकार हुआ है कि एक नाल सा बन गया है। लौह अयस्क के कण भी इसमें अधिकता से विद्यमान हैं। इसके चारों ओर कैमूर बालू पत्थर की शिलाएँ हैं।

दक्षिण अफ्रीका की एंग्लो-अमेरिकन कारपोरेशन के खनन-अभियन्ता श्री ए० शैमडन हैरीसन तथा मुख्य भूशास्त्री डा० ए० ई० वार्टस ने सन् १९५० ई० में हीरों के उत्पादन के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट आँकड़े प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार हीरों की मात्रा की दर एक कैरट प्रति १०० घन फुट हुई। सन् १९५४-५५ में भारतीय भूतात्त्विक समीक्षा तथा भारतीय खनि-विभाग (Indian Bureau of Mines) द्वारा भी इस दिशा में प्रयास किया गया जिससे ज्ञात हुआ है कि १०० टन चट्टान से प्रायः १२·५ कैरट हीरे प्राप्त होते हैं जिनका औसत मूल्य पौने दो हजार रुपये के लगभग होता है।

अभी हाल में ही मंझगवां के समीप भू-भौतिक तथा वैद्युतिक सर्वेक्षणों द्वारा एक अन्य ज्वालामुखी-ग्रीवा का भी पता चला है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस प्रदेश के सभी पन्नों की उत्पत्ति इसी प्रकार की ग्रीवाओं के अपरदन द्वारा ही हुई है।

पन्ना (Emerald)

पन्ना बेरील का ही विरल रूप है। इसका रंग विशुद्ध रूप से हरा होता है। इसका उपयोग मुख्यतः आभूषणों के लिए ही किया जाता है। इसका मूल्य इसके आकार, रंग तथा द्युति पर निर्भर करता है। पन्ना को विभिन्न सुन्दर आकारों में काटने का काम जयपुर तथा तिरुचिरापल्ली में ही होता है। भारत में पन्ना के व्यापार का मुख्य केन्द्र जयपुर है।

भारत में पन्ना के निक्षेप केवल राजस्थान में ही सीमित हैं। भारतीय पन्ने

कायान्तरित सेलखड़ी-बायोटाइट शिष्टों में उनके तथा पेग्मेटाइटों के अथवा किसी अन्य अन्तर्भेदक (Intrusion) के जोड़ पर मिलते हैं। इन पन्नों के साथ स्फटिक, फेल्सपार, टूरमेलीन, एपेटाइट, एक्टिनोलाइट, सेलखड़ी तथा बायोटाइट आयोजित रहते हैं। वर्तमान समय में भारत में केवल ९ खाने हैं जहाँ पन्नों का खनन किया जाता है। ये सभी खानें राजस्थान के अजमेर, मेरवाड़ा तथा उदयपुर क्षेत्रों में ही स्थित हैं। सर्वप्रमुख खानें कालागुमान तथा राजगढ़ में स्थित हैं। कालागुमान की अपेक्षा राजगढ़ के पन्ने अधिक मूल्यवान् समझे जाते है क्योंकि उनका आकार बड़ा, रंग सुन्दर, द्युति सुकोमल तथा पारदर्शकता अधिक होती है।

उत्पादन

गत वर्षों की अपेक्षा सन् १९५७ तथा १९५८ में पन्ने का उत्पादन पर्याप्त अंशों तक गिर गया। सन् १९५८ में पन्नों का भारतीय उत्पादन २७७,००० कैरट था जब कि सन् १९५७ का उत्पादन ३४२,००० कैरट था। इस प्रकार कटे हुए पन्नों से सन् १९५८ में केवल ५०,००० रु० की प्राप्ति हुई। सन् १९५७ में पन्नों के काटने का कोई भी काम नही हुआ तथा ३३८,००० कैरट विशुद्ध पन्नों से केवल २५,००० रु० ही मिले।

संसार के प्रमुख उत्पादक देशों में आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, ब्राजील, कोलम्बिया, मि ग्र, उत्तरी कैरोलिना, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी रोडेसिया तथा सोवियत संघ के नाम उल्लेखनीय हैं।

सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने विदेशों से क्रमशः १६७,००० तथा ३३०,००० रु० के मूल्य के उत्तम पन्ने आयात किये तथा इन्हीं वर्षों में क्रमशः ६९,००० रु० तथा ५७,००० रु० के मूल्य के समापित पन्ने निर्यात किये।

नीलम (Saphire)

हीरों की भाँति नीलम भी शताब्दियों पूर्व ही भारत से अन्य देशों को निर्यात किये जाते थे। आज भी कश्मीर में प्राप्त नीलम अपने गुणों में अद्वितीय हैं तथा किसी भी अन्य देश में उत्पन्न नीलमों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् समझे जाते हैं। सन् १८८७ में ऐसा समझा जाता था कि कश्मीर की खानों में और अधिक नीलम शेष नहीं रह गये हैं। इसके पश्चात् कई वर्षों तक विभिन्न कम्पनियों तथा व्यापारियों ने कश्मीर के नीलम-मय क्षेत्रों से नीलम प्राप्त करने के प्रयत्न किये, किन्तु असफलता ही हाथ लगी। गत ३० वर्षों से कश्मीर का नीलम

उद्योग कुछ प्रगति पर अवश्य ही अग्रसर होता हुआ प्रतीत हो रहा है। यदि उपयुक्त साधनों से इन सारे क्षेत्रों में वैज्ञानिक ढंग से काम हो तथा उचित रूप से खनन किया जाय तो कोई कारण नहीं कि कश्मीर एक बार पुनः अपनी इस अमूल्य संपत्ति का पूरा लाभ न उठा सके।

कश्मीर की प्रसिद्ध नीलम की खानें संजाम के पश्चिम-उत्तर-पश्चिम में लगभग २½ मील दूर झांस्कार के पदार क्षेत्र में लगभग १५००० फुट की ऊँचाई पर स्थित हैं। एक बड़ी कठिनाई की बात तो यह है कि ये खानें वर्ष के अधिकांश भाग में हिम से आच्छादित रहती हैं और इस प्रकार केवल कुछ ही महीने बचते है जिनमें इनसे नीलम की प्राप्ति की जा सकती है। यहाँ पर ऐक्टिनोलाइट-पैग्मेटाइट में, जो मणिभीय चूना-पत्थर से व्युत्पन्न हुआ है, केओलीन-मय पैग्मेटाइट का अन्तर्भेदन हुआ है और इसी शिला से कोरण्डम-नीलम की प्राप्ति होती है। कश्मीर से प्राप्त नीलम विभिन्न वर्णों के होते हैं, उदाहरणार्थ पीत-नील (Pale blue), नील-हरित (Azure) आदि। इसके साहचर्य में काले, लाल, हरे तथा कत्थई रंग के टूरमेलीन मणिभ तथा गारनेट आदि गौण खनिजों के रूप में मिलते हैं। कश्मीर (भारत) के अतिरिक्त बर्मा तथा श्रीलंका में भी नीलम निकलते हैं। कश्मीर के पश्चात् बर्मा के नीलम पत्थरों का द्वितीय स्थान है।

अन्य बहुमूल्य पत्थर

लाल (Ruby)

लाल-मणि पत्थरों के लिए बर्मा (जो पहले भारतीय साम्राज्य का ही एक भाग था) शताब्दियों से प्रसिद्ध रहा है। मोगोक की घाटी का क्षेत्र ही लाल-मणियों का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है। मोगोक-पत्थर-भूखण्ड का क्षेत्रफल लगभग ६०० वर्गमील है, किन्तु कभी भी खनन-क्षेत्र का विस्तार ३ या ४ वर्गमील से अधिक नहीं हुआ। इस भूखण्ड की पूर्वी सीमा पर स्थित क्षेत्र लाल मणियों की प्रमुख उर्वरा भूमि कही जाती है। भारत में जिस प्रकार कश्मीर के नीलम संसार में अद्वितीय समझे जाते हैं वही बात बर्मा की लाल-मणियों के लिए लागू होती है। अपने विशेष गुणों से परिपूर्ण बड़े आकार के एक 'लाल' का मूल्य उसी आकार के हीरे से अधिक होता है और इस प्रकार यह पत्थर मानव-जाति के लिए सर्वाधिक मूल्यवान् है।

पुखराज (Topaz)

पुखराज, टोपाज़ का मूल्यवान रूप है। यह एल्यूमीनियम का फ्लोरो-सिली-

केट होता है। भारत में पुखराज का प्रचलन गत ढाई हजार वर्षों से चला आ रहा है। बिहार में सिंहभूम की कायनाइट पेटिका के अन्तर्गत कन्यालुका के सामीप्य में टोपाज़ अन्य शिलाओं के साथ मिलता है। इसी प्रकार बाकरा और घागीडीह में भी टोपाज़ मिलता है, किन्तु ये पत्थर अधिक मूल्यवान् नहीं प्रतीत होते। खर्सवान में लप्साबुरू में टोपाज़-कायनाइट शिष्ट शिलाओं के अन्तर्गत भी यह प्राप्त होता है। बर्मा की मोगोक की लालमणि-खानों में भी यह पाया गया है।

टूरमेलीन (Tourmaline)

लाल रंग का टूरमेलीन एक महत्त्वपूर्ण बहुमूल्य पत्थर समझा जाता है। राजस्थान के पैग्मेटाइट-मय क्षेत्रों से काले तथा हरे या नीले वर्ण के टूरमेलीन मणिभों की प्राप्ति होती है। मुख्य प्राप्ति-स्थान भूनास (मेवाड़) तथा मकरारा (अजमेर) में है। इसी प्रकार नीले और हरे रंग के टूरमेलीन मणिभ लप्सावुरु (सिंहभूम), हजारीबाग में, पारदर्शक हरे मणिभ मणिमुन्दर में तथा नीले मणिभ छोटा नागपुर के झण्डाबुरू में भी मिलते है। मध्यप्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले में मोगरा तथा मेदी के मध्य मिलने वाले पैग्मेटाइट के अन्तर्गत भी विभिन्न वर्णों के टूरमेलीन मणिभ पाये गये हैं। कश्मीर की नीलम-खानों के समीप भी इनकी प्राप्ति की सूचना मिली है।

ज़िरकन (Zircon)

ज़िरकन अपने कुछ विशेष गुणों के कारण एक विख्यात बहुमूल्य पत्थर बन गया है। जब जिरकन के मणिभों को विशेष रूप से काटा जाता है तो इसके वर्णहीन मणिभ सामान्य रूप में हीरे-जैसे लगते हैं। ज़िरकन कई रंगों के मणिभों में मिल सकता है, जैसे लाल, कत्थई, हरा, नारंगी, पीला, नीला तथा वर्णहीन भी। भारत में बहुमूल्य पत्थर के रूप में ज़िरकन के प्राप्ति-स्थान नगण्य हैं। केवल गढ़वाल में केदारनाथ के समीप, त्रावणकोर के एरानियल तालुक के अप्पीयोडे में क्रमशः लाल तथा भूरे श्वेत वर्ण के कुछ मणिभ मिलते हैं, किन्तु शायद ही कभी इन स्थानों में वर्णहीन ज़िरकन के मणिभ पाये जाते हैं। बर्मा में मोगोक क्षेत्र से तथा श्रीलंका से उत्तम प्रकार के बहुमूल्य ज़िरकन मणिभ मिले हैं।

बेरील (Beryl)

बेरील के बहुमूल्य पत्थर को एक्वामेरीन (Aquamarine) का नाम दिया

गया है। यह पारदर्शक नीले या नीले-हरे रंग का बहुमूल्य पत्थर है। मद्रास में कोयम्बटूर, आन्ध्रप्रदेश में नैल्लोर तथा राजस्थान के कुछ पैग्मेटाइट क्षेत्रों से बेरील के कुछ ऐसे मणिभ मिल जाते हैं जिनको बहुमूल्य पत्थरों की भाँति उपयोग में लाया जा सकता है। कश्मीर के लदाखी क्षेत्र की शीगर घाटी में दासो के समीप एक्वामेरीन के उत्तम मणिभ प्राप्त होते हैं।

क्रायसोबेरील (Chrysoberyl)

यह बेरीलियम का एल्यूमिनेट है तथा विशुद्ध अवस्था में वर्णहीन होता है जिसमें कभी-कभी पीले, कत्थई अथवा हरे रंगों की झलक भी हो सकती है। मद्रास में कोयम्बटूर, केरल में त्रावणकोर, उड़ीसा में कटक तथा राजस्थान में किशनगढ़ जिले में क्रायसोबेरील के मूल्यवान् मणिभ प्राप्त होते हैं। बर्मा में मोगोक की खानों से तथा श्रीलंका के कुछ भागों से भी क्रायसोबेरील के उत्तम मणिभ मिलते हैं।

गारनेट (Garnet)

आज से दो हजार वर्ष पूर्व ही भारत में गारनेट का प्रचलन तथा कटे हुए गारनेट का व्यवसाय बहुत उन्नत था और उसी समय विदेशों को विशेषकर यूनान और रोम को इसका निर्यात किया जाता था। मूल्यवान् गारनेट का खनन आजकल भारत के कई भागों में होता है। राजस्थान के जयपुर, उदयपुर, किशनगढ़ तथा अजमेर-मेरवाड़ा जिलों में गारनेट पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। आन्ध्रप्रदेश के वारंगल जिले में भी कई स्थानों पर बहुमूल्य गारनेट के मणिभ मिलते हैं। मद्रास के त्रिचनापल्ली, सेलम, तिरुनेलवेली जिलों में तथा उटकमंड के समीप नीलगिरि पहाड़ियों पर भी इन मणिभों के मिलने की सूचना मिली है। उड़ीसा में मुडापाला में तथा मद्रास के कोयम्बटूर जिले में ग्रोसूलराइट गारनेट अपने विभिन्न रूपों में मिलता है। गारनेट वर्ग के अन्य खनिजों के मणिभ राजस्थान में मेवाड़, कश्मीर में रूपशू, बम्बई में नारुकोट तथा जेठवाद, मध्यप्रदेश में छिन्दवाड़ा, आन्धप्रदेश में कृष्णा तथा श्रीकाकुलम् आदि जिलों में पाये जाते हैं।*

***गारनेट का उपयोग अपघर्षी** (Abrasive) **खनिज की भाँति भी होता है और इस प्रकार का गारनेट लगभग सभी उपर्युक्त स्थानों में तथा आन्ध्रप्रदेश**

इयोलाइट (Iolite)

यह बहुमूल्य पत्थर कोर्डीराइट (Cordierite) का ही एक प्रकार है। पारदर्शक तथा कुछ धुँधले एवम् पीले-नीले तथा हरे रंग के इयोलाइट मणिभ मद्रास के त्रिचनापल्ली जिले में कदावूर तथा कुछ बैंगनी रंग के सिध्मों (Patches) में त्रावणकोर में थिरुवेल्ला के समीप मिलते है।

में नेल्लोर, कृष्णा तथा हैदराबाद में, बिहार में हजारीबाग सिंहभूम, मुंगेर तथा भागलपुर में, मैसूर में कोलार आदि में मिलता है।

परिच्छेद १२

खाद्य खनिज

नमक (Salt)

प्रत्येक राष्ट्र के लिए नमक एक परमावश्यक पदार्थ है जिसके बिना मानव का जीवित रहना ही दूभर है। भारत में भी प्राचीन समय से अनेक स्थानों पर लोग नमक प्राप्त करते रहे हैं। विभिन्न उत्पादन-केन्द्रों से भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में नमक भेजा जाता था। इसके अतिरिक्त जहाँ भी नमकीन पानी या नमकीन मिट्टियाँ मिलती थीं, वहाँ नमक का उत्पादन वाणिज्य-स्तर पर किया जाता था।

प्राकृतिक सोडियम क्लोराइड, साधारण नमक, शिला-नमक (Rock salt) अथवा हेलाइट (Halite) एक ही पदार्थ के विभिन्न नाम हैं। युगों पूर्व मैदानों तथा पहाड़ों से नमक की विशाल मात्रा समुद्र में नदियों तथा नालों द्वारा ले जायी गयी होगी और आज इसीलिए समुद्र के जल में ३·५ प्रतिशत के लगभग लवणीय पदार्थ रहता है। इसमें २·७ प्रतिशत तो केवल सोडियम क्लोराइड का भाग है, शेष मैग्नीशियम, कैलसियम, पोटेशियम आदि के लवण हैं।

नमक तीन दशाओं में प्राप्त हो सकता है। प्रथम तो पर्वतों में यह शिलालवण के निक्षेपों में मिलता है। संसार के अनेक क्षेत्रों में कई सौ फुट या कभी-कभी कई हजार फुट तक मोटे नमक स्तर (layers) पर्वतों में तथा धरातल के नीचे विद्यमान है। दूसरा स्रोत नमकीन पानी की झीलें हैं, जो किसी समय महासागरों का ही भाग रही होंगी पर जो अब उनसे पृथक् हो गयी हैं। इन झीलों का पानी वाष्पीभवन द्वारा संकेन्द्रित हो गया है, जिससे पानी में नमक का अवयव पर्याप्त बढ़ गया है। इस प्रकार की प्रमुख झीलें भारत में राजस्थान में, पेलेस्टाइन (फिलिस्तीन) में मृत सागर (Dead Sea) तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के उटाह राज्य में ग्रेट साल्ट लेक आदि हैं। झीलों के इस लवण युक्त पानी को वाष्पीकृत कर सुगमता से नमक प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, नमक

का तीसरा स्रोत समुद्री पानी है तथा देश के सभी तटवर्तीय स्थानों में, जहाँ उत्पादन संभव है, इस जल से नमक प्राप्त किया जाता है।

नमक ऐसा पदार्थ है जिसकी आवश्यकता मनुष्य तथा पशुओं को केवल इसलिए ही नहीं है कि यह उनके भोजन का अभिन्न अंग है, वरन् इसके अतिरिक्त आज के इस वैज्ञानिक युग में अनेक उद्योगों तथा विशेषकर रासायनिक उद्योगों में इसकी खपत बहुत अधिक है। अन्य देशों की अपेक्षा औद्योगिक विकास में भारत बहुत पीछे है, इसीलिए यहाँ प्रति व्यक्ति पर प्रतिवर्ष नमक की खपत भी कम है। सन् १९४७-५० के बीच संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति पर औसत वार्षिक खपत ११७ पौण्ड तथा इंग्लैण्ड में १२२ पौण्ड थी, जब कि भारत के लिए यह मात्रा केवल १४·६ पौण्ड ही थी। सम्पूर्ण नमक-उत्पादन का ३० से ४०% तो केवल सोडा भस्म (Soda Ash) के निर्माण में तथा शेष का एक बड़ा भाग सोडियम सल्फेट, कॉस्टिक सोडा, लवणाम्ल (Hydrochloric acid) तथा सोडियम और क्लोरीन उत्पन्न करने के काम आता है। इसी प्रकार मांस, मछली, दूध के पदार्थों तथा अन्य खाद्य पदार्थों की रक्षा के लिए भी नमक की परम आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त साबुन, चीनी मिट्टी के सामान तथा कुछ विशेष रंगों के निर्माण में यह सहायक है। बर्फ को जमाने में भी इसका विशेष हाथ रहता है।

सन् १९४७ के पूर्व भारत के सम्पूर्ण उत्पादन का १२% भाग शिला-नमक था, जिसका ८५% अंश पंजाब की साल्ट-रेंज से एवं शेष उत्तरी पश्चिमी-सीमान्त प्रदेश तथा पंजाब-हिमालय के मण्डी राज्य से प्राप्त होता था। इस लवण-श्रेणी में खेवरा में नमक की विशाल खानें हैं। यहाँ नमक के स्तर की मोटाई १०० फुट से भी अधिक है। यह नमक इतना अधिक पारदर्शक एवं वर्णहीन होता है कि यदि नमक की १० फुट मोटी दीवार के एक ओर प्रकाशपुंज रखा जाय तो दूसरी ओर कोई भी व्यक्ति सरलता से पढ़ सकता है। इन नमक-निक्षेपों पर एक लम्बे समय से खनन होता रहा है तथा पंजाब के राजा रणजीतसिंह को इससे अच्छा धन प्राप्त हुआ था। नमक के खनन के समय एक प्रकार की धूल (salt dust) विपुल मात्रा में उत्पन्न होती है। यह धूल इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज द्वारा संग्रह की जाती है, जो इसका प्रयोग क्षारीय संयंत्र (Alkali Plant) में करते हैं। इस क्षेत्र से नमक के औसत उत्पादन की कुल मात्रा भारत-विभाजन के पूर्व १८७,४९० टन प्रतिवर्ष थी। खेवरा नमक की विशुद्धता ९०% से भी अधिक

है। खेवरा के अतिरिक्त वार्छा तथा काला बाग में भी नमक के समृद्ध स्तर हैं तथा सन् १९४६-४७ में इन दोनों स्थानों का वार्षिक औसत उत्पादन क्रमशः ३८,२१० तथा २०,०७२ टन था। दूसरा स्रोत कोहाट का है जो सिन्ध नदी के उस पार है। यहाँ पर साधारण नमक (सोडियम क्लोराइड) के अतिरिक्त पोटेशियम क्लोराइड भी कुछ अंशों में प्राप्त है।

विभाजन होने के पश्चात् ये सभी क्षेत्र भारत से पृथक् हो गये हैं तथा शिला-नमक की प्राप्ति के साधन केवल मण्डी की नमक की खानें हैं। ये खानें हिमाचल प्रदेश में स्थित हैं। कुछ भूवेत्ताओं का मत है कि ये क्रोल-श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं जब कि कुछ अन्य भूवेत्ता इन्हें सुबाथू वर्ग (Subathu group) के अन्तर्गत रखते हैं। यहां दो स्थानों, गुम्मा तथा ध्रंग में नमक की खुदाई का काम बहुत समय से होता आया है। सड़क के किनारे-किनारे जोगिन्दरनगर से मण्डी तक अनेक स्थानों पर नमकीन पानी के झरने हैं। गुम्मा में नमक का एक निक्षेप १५० फुट से भी अधिक मोटा है, किन्तु इस नमक में १०-१५% तक सिलिका बालू मिली हुई है, अतः यह नमक मनुष्य के लिए तो उपयुक्त नहीं है किन्तु लम्बे समय से पशुओं के लिए इसका प्रयोग किया जाता है, जो बालू को छोड़कर केवल नमक को ही जीभ से चाट लेते हैं। गुम्मा के इन नमकप्निक्षेपों से विशुद्ध रूप का श्वेत नमक प्राप्त करने के लिए भारत सरकार एक योजना कार्यान्वित कर रही है, जिसके अन्तर्गत ज्यूरिच (स्विटजरलैंड) की एशर वायस एण्ड कं० (Escher Wyss & Co.) अपनी विशेष विधियों द्वारा इन खानों पर खनन करेगी तथा प्रति वर्ष ६६,००० टन विशुद्ध नमक का उत्पादन करेगी, जो पंजाब, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू व कश्मीर की आवश्यकता-पूर्ति करेगा। ध्रंग में भी नमकीन पानी के अनेकों विशाल झरने हैं, जहाँ नमक के इन विलयनों (Solutions) को वाष्पीकृत कर उच्च प्रकार का नमक प्राप्त किया जा सकता है।

भारत में नमक का दूसरा स्रोत राजस्थान है। साँभर के समीप लगभग ९० वर्गमील का एक बृहत् क्षेत्र है, जो एक लघु निम्नन (Slight depression) है। इस निम्नन में निकटवर्ती क्षेत्रों का पानी एकत्र हो जाता है और इस प्रकार एक नमकीन पानी की झील अस्तित्व में आ जाती है। इसका कारण संभवतः निकट-वर्ती क्षेत्रों की मिट्टी में नमक का विद्यमान होना है। यह नमकीन पानी क्यारियों में एकत्रित किया जाता है, जहाँ धूप द्वारा इसका वाष्पीकरण होता है, क्योंकि इस क्षेत्र में प्रचंड धूप पड़ती है। नवम्बर महीने में ये क्यारियाँ नमकीन पानी से भरी

जाती हैं तथा अप्रैल-मई तक निक्षेपित नमक को इकट्ठा कर लिया जाता है और जो कटु-नमक (Bittern) शेष रहता है उसे झील के एक भाग में एकत्र कर दिया जाता है। इस प्रकार उत्पन्न नमक उत्तम प्रकार का होता है। अभी तक इस झील के नमक के उद्भव का स्पष्टीकरण नहीं हुआ है। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि यह नमक वायु द्वारा इस क्षेत्र में लाया जाता है, अर्थात् कच्छ की खाड़ी से वायु की तरंगें (Currents) अपने साथ इस नमक को सूक्ष्म कणों के रूप में लाती हैं तथा वर्षा के साथ यह राजस्थान के इन क्षेत्रों में गिर जाता है और इस विशाल झील में एकत्रित होता है।

इस झील से प्राप्त कटु नमक (Bittern Salt) का बहुत समय तक कोई मूल्य ही नहीं समझा जाता था, किन्तु बाद में लेखक ने अपने अनुसन्धान-कार्य से यह निष्कर्ष निकाला है कि इस कटु-नमक में लगभग ६६% साधारण नमक तथा २५% सोडियम सल्फेट एवं ८% सोडियम कार्बोनेट होता है। इस प्रकार इस क्षेत्र में सोडियम सल्फेट तथा सोडियम कार्बोनेट आदि लवणों का पर्याप्त मात्रा में संचयन हो गया है। उपयुक्त साधनों द्वारा साधारण नमक से सल्फेट तथा कार्बोनेट अवयवों को सरलता से पृथक् किया जा सकता है।

साँभर झील क्षेत्र में बहुत ही लम्बे समय से नमक निकालने का काम किया जा रहा है किन्तु अभी तक नमक के उत्पादन अथवा उसकी मात्रा में कोई ह्रास दृष्टिगोचर नहीं हुआ है और इसी लिए यदि इस झील को नमक का एक चिरस्थायी स्रोत समझा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

इसके अतिरिक्त राजस्थान में दो और झीलें हैं जिनसे नमक को प्राप्ति होती है। प्रथम तो डीडवाना झील तथा दूसरी डेगाना झील है। ये झीलें भी ठीक उसी प्रकार की हैं जैसी कि साँभर। इनमें से प्रत्येक में सोडियम सल्फेट के बृहत् निक्षेप प्राप्त हुए हैं। झील के पानी से पृथक् होकर इस विशुद्ध सोडियम सल्फेट का निस्सादन हो जाता है। कुछ वर्षों तक ये झीलें सोडियम सल्फेट के सस्ते स्रोत रही हैं। सन् १९४७-५० के बीच राजस्थान के सभी स्रोतों से प्राप्त नमक के औसत उत्पादन की मात्रा ४४७,३०० टन प्रति वर्ष थी।

भारत में नमक का तीसरा स्रोत समुद्र का खारा पानी है। बम्बई प्रदेश के समुद्री किनारे-किनारे काठियावाड़ से लेकर दक्षिणी बम्बई तक नमक के पानी को एकत्रित कर नमक का उत्पादन ज्वार के समय किया जाता है। यह कार्यक्रम मानसून के पश्चात् किया जाता है तथा मानसून आने के पहले ही समाप्त कर

दिया जाता है। यहाँ के ९५ प्रतिशत के लगभग नमक-उत्पादन केन्द्र बम्बई के आस-पास ही ३० मील तक फैले हुए हैं तथा शेष केन्द्र उत्तर में सूरत से लेकर दक्षिण में मंगलोर के समीप तक स्थित हैं। बड़ोदा से बम्बई को मिलाने वाली रेलवे लाइन पर दोनों ओर नमक के बड़े-बड़े ढेर दिखाई पड़ते हैं।

सौराष्ट्र तथा कच्छ के तटों से भी विपुल मात्रा में नमक की प्राप्ति होती है। मुख्य उत्पादनकेन्द्र मीठापुर (सौराष्ट्र), मोरवी में लवनपुर, जामनगर में बेदी, ध्रांगध्रा में कुड, पोरबन्दर, जूनागढ़ में भेरई क्रीक तथा वेरावल, जंजीरा में जफराबाद, भावनगर तथा कच्छ में काण्डला आदि स्थानों में स्थित हैं।

साधारण नमक अथवा सोडियम क्लोराइड को पृथक् करने के पश्चात् जो कटु लवण बचता है उसमें पर्याप्त मात्रा में मैग्नीशियम क्लोराइड होता है तथा नमक के कुछ कारखाने खराघोड़ा में इस आशय से स्थापित किये गये हैं कि इस कटु लवण से मैग्नीशियम क्लोराइड प्राप्त किया जाय, जो बड़ी से बड़ी मात्रा में सुगमता के साथ मिल सकता है। इस स्रोत से नमक का उत्पादन बृहत् मात्रा में होता है तथा उत्पादन कितना ही बढ़ाया जा सकता है। काठियावाड़ के ध्रांगध्रा, पोरबन्दर तथा द्वारका के समीप क्षार (alkali) के लिए कारखाने स्थापित किये गये हैं जो साल्वे की विधि (Salvey's Process) से सोडियम कार्बोनेट का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन करते हैं।

त्रावणकोर (केरल प्रदेश) में १४ से भी अधिक स्थानों पर नमक का उत्पादन किया जाता है। नमक के ये उत्पादन-केन्द्र मुख्यतः कन्या कुमारी अन्तरीप के निकटस्थ स्थानों में ही स्थित हैं। इन स्थानों से इतना नमक इस प्रदेश को प्राप्त हो जाता है कि नमक आयात करने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

आन्ध्र तथा मद्रास के नमक-उत्पादन क्षेत्रों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। उत्तरी क्षेत्र श्रीकाकुलम् से कृष्णा जिले तक फैला है, मध्य क्षेत्र कृष्णा जिले से चिंगलपत तक तथा दक्षिणी क्षेत्र का विस्तार कन्याकुमारी के समीप तक है। सन् १९४८ में इन तीनों क्षेत्रों में कुल मिलाकर ५० से भी अधिक नमक-उत्पादन केन्द्र थे। यहाँ पर नमक-उत्पादन का काम जनवरी-फरवरी से प्रारंभ होता है तथा जून अथवा जुलाई के अन्त तक समाप्त हो जाता है। कुछ स्थानों पर ऋतु के अनुसार इस कार्यक्रम में परिवर्तन भी हो सकता है। मद्रास राज्य अपने सम्पूर्ण उत्पादन का कुछ भाग उड़ीसा, बंगाल, मध्य प्रदेश तथा मैसूर आदि राज्यों को भी वितरित करता है।

उड़ीसा में समुद्री पानी से नमक का उत्पादन गंजाम तथा बालासोर जिलों के तटीय भागों में किया जाता है। चिलका झील भी नमकीन पानी की ही है जो समुद्र से सम्बन्धित है। यहाँ भी विशाल स्तर पर नमक का उत्पादन करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

यद्यपि बंगाल भी पर्याप्त मात्रा में नमक उत्पन्न करता है किन्तु फिर भी अपनी आवश्यकता के अनुरूप उसका उत्पादन नहीं है, अतः अन्य राज्यों से पर्याप्त नमक मँगाना पड़ता है। पहले बंगाल में नमक के मुख्य उत्पादन-क्षेत्र चित्तागंज, मिदनापुर तथा सुन्दरवन आदि थे। विभाजन के पश्चात् चित्तागंज का क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया, अब केवल दो ही क्षेत्रों से उत्पादन होता है। बंगाल के इन क्षेत्रों से जनता तथा सरकार दोनों ही अधिक से अधिक नमक प्राप्त करने के प्रयत्न में हैं, किन्तु कुछ प्राकृतिक कठिनाइयाँ ऐसी हैं जो यहाँ पर उत्पादन बढ़ाने में विशेष रूप से बाधक हैं। नमक उत्पन्न करने में एक बड़ी कठिनाई यह है कि गंगा आदि बड़ी नदियों के हिन्द महासागर में मिलने से बंगाल की खाड़ी के नमकीन पानी में नमक का अंश कम हो जाता है। दूसरे, इन क्षेत्रों में इतना पानी बरसता है कि नमक के लिए बनायी गयी क्यारियाँ तथा दीवारें आदि टूट जाती हैं। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों में यातायात के साधन भी सुलभ नहीं हैं। प्रथम दो तथ्यों के सम्बन्ध में तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। एक बात अवश्य है कि यदि क्यारियों की कम ऊँची दीवारें टूट जायँ या इसी प्रकार की कोई और क्षति हो जाय तो उसको सँभाला जा सकता है। यातायात के साधनों को बढ़ाने का पूरा प्रयत्न सरकार कर रही है। मिदनापुर के तटवर्ती स्थानों पर नमक के उत्पादन-केन्द्रों को आधुनिक स्तर पर विकसित करने के लिए सरकार एक योजनाबद्ध कार्यक्रम कार्यान्वित करने जा रही है।

नमक के इन प्रमुख स्रोतों के अतिरिक्त कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ पर अन्तर्भौम जल (Underground water) अत्यन्त नमकीन है। प्राचीन समय में इस प्रकार के लवणमय जल के वाष्पीकरण द्वारा नमक तैयार किया जाता था। राजस्थान में भरतपुर नगर के उत्तर में एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ कुओं का पानी नितान्त लवणमय है। यह पानी कुओं से चमड़ों के पुरवटों या मोटों द्वारा खींचा जाता है और वाष्पीकृत कर नमक बनाने के काम आता है। व्यापारिक स्तर पर इस स्रोत से नमक प्राप्त करने की योजनाओं के विकास का पूर्ण प्रयत्न किया जा रहा है।

कुछ लघु स्रोत भी ऐसे हैं जिनसे नमक की प्राप्ति होती है। उदाहरण के लिए बम्बई प्रदेश के बुलढाना जिले की लूनर झील। यह झील ४०० फुट गहरी है तथा वर्षा ऋतु में इसमें पानी भर जाता है। वर्षा के समाप्त होने पर धीरे-धीरे वाष्पीभवन द्वारा यह झील साधारण नमक के अतिरिक्त सोडियम सल्फेट तथा सोडियम कार्बोनेट भी उत्पन्न करती है।

उत्पादन, निर्यात व भविष्य

सन् १९५६ तथा ५७ में शिला-नमक का उत्पादन क्रमशः ३,४२८ तथा ४३३५ टन था, जिसका मूल्य क्रमशः १९२,००० तथा २१२,००० रुपये हुआ। सन् १९५६-५७ में ही अन्य स्रोतों से प्राप्त नमक का उत्पादन ३, १७१,००० तथा ३,६०८,००० टन था, जिसका मूल्य क्रमशः ६९,३२८,००० तथा ७४,१६३,००० रुपये हुआ। इन्हीं दो वर्षों में ३७,०३,००० तथा ६२,०५,००० रुपये का क्रमशः २५६,७९६ तथा ३७५,३८२ टन नमक विदेशों को निर्यात किया गया। भारत सरकार हिमाचल प्रदेश में मण्डी तथा सारे देश के तटवर्ती स्थानों में नमक का उत्पादन बढ़ाने के प्रयत्न में है। नमक के आर्थिक उपयोगों का परीक्षण तथा रासायनिक एवम् अन्य उद्योगों में नमक की कार्यक्षमता जानने तथा अनुसन्धान के लिए भावनगर, गुजरात, में केन्द्रीय लवण-अनुसंधान-संस्थान स्थापित किया गया है।

परिच्छेद १३

विभिन्न उद्योगों में प्रयुक्त खनिज

अभ्रक (Mica)

संसार के समस्त अभ्रक-उत्पादक देशों में भारत का स्थान सर्वोच्च है। यही नहीं, सर्वाधिक उत्पादन के साथ ही साथ जो अभ्रक भारत में खनित होता है, उसके गुण भी विशेष रूप से उत्तम हैं। यद्यपि अभ्रक की वार्षिक खपत की मात्रा अधिक नहीं है तथापि अपने विशेष रूप और गुणों के कारण विद्युत्-उद्योगों के लिए यह वरदान सिद्ध हुआ है। कुछ वैज्ञानिकों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि संभवतः किसी अन्य खनिज में शायद ही इतने अधिक वांछनीय गुण होते हैं। अभ्रक का एक प्रमुख गुण इसका पूर्ण आधार–विदलन (Perfect basal cleavage) है, जिससे यह पतली पतली परतों में पृथक् किया जा सकता है। ये परतें $\frac{1}{1000}$ इंच मोटाई तक की हो सकती हैं। अपने कुछ विशेष गुणों, जैसे अधः-ताप संचालकता (Low-heat Conductivity), नम्यता (Flexibility) तथा दृढ़ता (Toughness) आदि के कारण विद्युत्-उद्योग, विशेषकर वैद्युतिक विसंवाहकों (Electrical Insulators) के निर्माण में इसका उपयोग बहुत अधिक होता है। संघनकों (Condensers), रेडियो–वाल्वों, स्फुलिंग-प्लगों (Sparking plugs), सभी प्रकार के विद्युत्-उत्पादकों (Generators) तथा मोटरों एवम् वायुयान के इंजनों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। विद्युत्-नलिकाओं, टेलीविजन, रडार यन्त्रों एवम् विद्युत्-संचालित यन्त्रों (Electronics) में हर स्थान पर इसकी महत्ता स्वीकार की जाती है। रबर तथा प्लास्टिक उद्योगों में भी पूरक (Filler) के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि अन्य खनिजों की भाँति इसका कोई संवर्द्धन अथवा संकेन्द्रण नहीं करना होता, वरन् इसको सीधे सीधे प्राकृतिक अवस्था में ही प्रयोग किया जाता है। तापरोधी ईंटों तथा टुकड़ों के निर्माण में भी अभ्रक काम आता है। ये ईंटें १०००° सें० तक ठहर सकती हैं।

गर्मी तथा अग्नि से सुरक्षित इसकी खपरैल (Tiles) अनेक उपयोगों में आती है। बड़े विशाल भवनों आदि में ध्वनि प्रतिध्वनित न हो, इसके लिए भी अभ्रक का उपयोग किया जाता है। अभ्रक को चूर्ण बनाकर लेपों और वाष्पित्रों (Paints and Boilers) के निर्माण आदि में तथा लोहे की तिजोरियों, छतों एवम् धुरों (Axles) की चिकनाहट आदि के लिए भी इसका प्रयोग करते हैं।

अभ्रक की खानों अथवा खनियों (Quarries) से अभ्रक के खनन के साथ कुछ अभ्रक इस प्रकार का निकलता है जो व्यर्थ समझा जाता है और जिसे अभी तक प्रायः फेंक दिया जाता था। कुछ वर्षों से इसका भी एक उपयोग निकल आया है। इस तथाकथित व्यर्थ के पदार्थ के साथ टूटे अभ्रक के टुकड़ों को दबाकर 'माइकानाइट' का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार माइकानाइट के बड़े बड़े पट्ट (Boards) तैयार किये जाते हैं। भारत में अनेक स्थानों पर जहाँ अभ्रक मिलता है, इस प्रकार के छोटे छोटे कारखाने खुल गये हैं जो 'माइकानाइट पट्टों' का निर्माण करते हैं। झूमरी तलैया तथा भोपाल में इसके विशाल नवीनतम संयंत्र स्थापित किये गये हैं। इस प्रकार अब इस व्यर्थ पदार्थ की समस्या का उपयोगी समाधान मिल गया है।

अभ्रक का सम्पूर्ण संसार का उत्पादन ५०,०००–६५,००० टनों के बीच घटता बढ़ता रहता है। संसार के सभी देशों में प्रमुख उत्पादक भारत तथा प्रमुख आयात करनेवाला देश संयुक्त राज्य अमेरिका है। भारत के अतिरिक्त अभ्रक का उत्पादन ब्राजील, मेडागास्कर, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा कनाडा में भी होता है। अल्प मात्रा में अभ्रक रूस, अर्जेन्टाइना, दक्षिण अफ़्रीका, कोरिया, श्रीलंका, स्केण्डीनेवियन देशों, पूर्व अफ़्रीका, रोडेसिया तथा बोलिविया में भी मिलता है।

अभ्रक-परिवार की चीजें विषम पोटाश-एल्यूमीनियम-सिलीकेट हैं, जिनमें चल मात्रा में मैग्नीशियम, लोहा, सोडियम, लीथियम तथा कभी-कभी कैलसियम टायटेनियम एवम् क्रोमियम भी सम्मिलित रहते हैं। अभ्रक-परिवार की दो वस्तुओं, मस्कोवाइट (पोटाश-अभ्रक) तथा फ़्लोगोपाइट (मैग्नीशियन-अभ्रक) का व्यापारिक स्तर पर उपयोग किया जाता है। अन्य वस्तुओं में लोहा तथा मैग्नीशियममय काले वर्ण का खनिज 'बायोटाइट' (Biotite) प्रमुख हैं।

मस्कोवाइट यद्यपि एक साधारणतम शिला-निर्माणकारी (Rock-forming) खनिज है तथापि आर्थिक स्तर पर इसको केवल पेग्मेटाइट पट्टिकाओं से ही प्राप्त किया जा सकता है। वे निक्षेप जिनसे उत्तम वर्ग का अभ्रक प्राप्त हो सकता है, केवल भारत में ही सीमित है, यद्यपि कुछ मात्रा ब्राजील से भी आती है। फ़्लोगोपाइट

अवश्य मैडागास्कर तथा कनाडा में मिलता है। यदि केवल चुने हुए उत्तम प्रकार के अभ्रक (Dressed Mica) का उत्पादन देखा जाय तो भारत सारे संसार का ८० प्रतिशत भाग अकेले ही उत्पन्न करता है।

भारत में अभ्रक का उपयोग प्राचीन समय से होता आया है। उस समय इसको मुख्यतः औषधियों के निर्माण में प्रयुक्त करते थे। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग आभूषणों, साज-शृंगारों में, त्योहारों, शुभ अवसरों पर तथा कपड़ों, पंखों और खिलौनों पर छिड़कने में किया जाता था। मिट्टी के बरतनों पर चमक देने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता था। वास्तव में कब से अभ्रक का खनन प्रारंभ हुआ इसके संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। ऐसा कहा जाता है कि बिहार के कुछ अभ्रकमय क्षेत्रों में कई शताब्दियों से आदिवासी इसका बहुत छोटे स्तर पर खनन करते आये हैं। ऐसा इसलिए होता था कि इसका कोई अपना औद्योगिक महत्त्व तो था नहीं, केवल साधारण उपयोग में ही, जैसा कि ऊपर कहा गया है, इसको काम में लाया जाता था। कुछ यूरोपियनों ने शुरू शुरू में अभ्रक को खोज निकालने के बड़े प्रयत्न किये किन्तु उनके हाथ सफलता न लग सकी। श्री एफ० एफ० क्रिश्चियन (F. F. Chrestien) ने सन् १८८८ तक अपनी सारी शक्ति से कोशिशें कीं किन्तु वे सब व्यर्थ ही सिद्ध हुईं। कुछ दिनों के पश्चात् श्री क्रिश्चियन को सफलता का आभास मिला और सन् १८९४ तक उन्होंने कई खानों पर काम प्रारंभ कर दिया। ये खानें तिसरी, बैरिया, भण्डारी, मुसनोदी तथा कोडर्मा में स्थित थीं। सन् १८९९ तक बिहार में ही लगभग १६९ खानों ने उत्पादन प्रारंभ कर दिया था।

यद्यपि भारत में अभ्रक-खनन में कुछ आधुनिक विधियों का उपयोग सन् १९१० से ही प्रारंभ हो गया था, फिर भी अभी तक अधिकांशतः इसका खनन बड़ी पुरानी विधियों से ही होता है। शायद इसका कारण यह भी हो सकता है कि आधुनिक विधियों को उपयोग में लाने का किसी ने प्रयत्न ही नहीं किया, क्योंकि अभ्रक साधारणतः 'पुस्तक आकार' में होने के कारण पेग्मेटाइट पट्टिकाओं से सहज ही खनित किया जा सकता है। आजकल अभ्रक-खनन के लिए पहले उन क्षेत्रों में जहाँ उसके मिलने की संभावना है, उथले गड्ढे खोदे जाते हैं। यदि इन पूर्वेक्षित गड्ढों से व्यापार योग्य अभ्रक मिलने की आशा होती है, तो कुछ यन्त्रों जैसे वायु-संपीडकों (Air Compressors), हेड गियरों (Head Gears), पम्पों तथा छोटे छोटे वेधन यन्त्रों (Drills) का प्रयोग किया जाता है। अधिकांश खानों

में खनन-कार्य आज भी हाथ के वेधन यन्त्रों (Hand drills) से होता है। भारत में अभ्रक की इन खानों की गहराई २० और ७०० फुट के बीच है।

अभ्रक के निकालने के पश्चात् अशोधित अभ्रक 'पुस्तकों'को अन्य आयोजित शिलाओं तथा धूल से पृथक् किया जाता है और फिर उनको उपयुक्त मोटाई की परतों में विभक्त किया जाता है। ये सब काम हाथ से, चाकू अथवा हँसिये की सहायता से किये जाते हैं। इसके पश्चात् इन परतों को आकार तथा वर्ण आदि के अनुसार विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाता है और इस प्रकार यह निर्यात के लिए तैयार हो जाता है।

भारत में अभ्रक के प्राप्तिस्थान

भारत की सारी मणिभीय शिलाओं (Crystalline Rocks) में अभ्रक पर्याप्त मात्रा में वितरित है तथापि अभ्रक-पेग्मेटाइट ही केवल ऐसे निक्षेप हैं जिनसे व्यापारिक-स्तर का अभ्रक प्राप्त किया जा सकता है। इन पेग्मेटाइटों में अभ्रक के पूर्ण मणिभ प्राप्त होते हैं जो प्रायः किसी भी अशुद्धि से दूर रहते हैं। ये पेग्मेटाइट-पट्टिकाएँ कणाश्मीय तथा शिष्टोज़ शिलाओं को भारत के प्रायद्वीपीय भाग में प्रायः पार करती देखी जाती हैं, किन्तु इनसे उत्तम अभ्रक की प्राप्ति तभी होती है जब ये अभ्रक-शिष्टों को काटती हैं। भारत में अभ्रक के प्रमुख निक्षेप बिहार, राजस्थान, मद्रास तथा आन्ध्र प्रदेश में स्थित हैं। अल्प महत्त्व के निक्षेप त्रावणकोर, मैसूर, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में भी मिलते हैं।

बिहार की अभ्रकपेटिका पश्चिम में गया जिले से प्रारंभ होकर हजारीबाग तथा मुंगेर जिलों से होती हुई पूर्व में भागलपुर तक जाती है। इस प्रकार इसका विस्तार लगभग ९० मील तथा चौड़ाई १२ से १६ मील तक है। इसका क्षेत्रफल लगभग १५०० वर्गमील है। इस पेटिका का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र 'कोडर्मा सुरक्षित वन' तथा उसके आसपास का भाग है। यहाँ पर देशी-शिलाएँ (Country rocks) अभ्रक-शिष्ट हैं। पिग्मेटाइट की पट्टिकाएँ जो इन शिलाओं के भीतर प्रवेश करती हैं, संसार के सर्वोत्तम मस्कोवाइट-निक्षेपों का निर्माण करती हैं। अधिकांशतः इनमें अभ्रक के पिंड वीक्ष-आकार के (Lens shaped) हैं। ये पट्टिकाएँ (Veins) मुख्य रूप से स्फटिक, एल्बाइट तथा माइक्रोक्लीन (Microcline) के स्थूल मिश्रण तथा कुछ उप-खनिजों, जैसे टूरमेलीन, बेरील, एपेटाइट, गारनेट तथा कोलम्बाइट-टेण्टेलाइट द्वारा निर्मित हैं। अनुमान किया जाता है कि

कुल खनित पिग्मेटाइट में ६ से ७ प्रतिशत तक अभ्रक होता है, जिसमें व्यापारिक स्तर का अभ्रक केवल १·० से १·५ प्रतिशत तक ही होता है।

इस समय बिहार के अभ्रकमय क्षेत्र में लगभग ६०० से अधिक खानों में उत्पादन होता है। इनमें सभी प्रकार की खानें सम्मिलित हैं। एक सौ से अधिक खानों का यन्त्रीकरण हो चुका है तथा अन्य अनेकों का क्रमिक-विकास धीरे धीरे हो रहा है।

बिहार के पश्चात् अभ्रक-उत्पादन में राजस्थान दूसरे स्थान पर आता है। यहाँ पर अभ्रकमय पेग्मेटाइट-पेटिका उत्तर-पूर्व में जयपुर से प्रारंभ होकर दक्षिण-पश्चिम में उदयपुर (मेवाड़) तक जाती है। इस पेटिका का विस्तार २०० मील तथा चौड़ाई ६० मील के लगभग है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य निक्षेप अलवर, भरतपुर तथा भोमट (Bhomat) जिलों में तथा डूंगरपुर में स्थित हैं। ये निक्षेप अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। राजस्थान के अभ्रक-निक्षेप स्थूल कणाश्मीय पेग्मेटाइटों में विद्यमान हैं। उप-खनिजों में टूरमेलीन, एपेटाइट तथा गारनेट प्रमुख हैं। विरल रूप से रेडियो-सक्रिय खनिज, विरल मिट्टियाँ तथा बेरील आदि खनिज भी उपस्थित रहते हैं। इन निक्षेपों में बेरील उत्तम वर्ग का तथा व्यापारिक स्तर का है। यहाँ प्राप्त कुल अभ्रक का ४०%भाग उत्तम प्रकार का 'रूबी' अभ्रक होता है। दुर्भाग्य से यह अधिकांशतः उपयुक्त नहीं होता क्योंकि इसमें दरारें तथा अनेक अन्य अवगुण आ जाते हैं, इसलिए इसका एक अल्प भाग ही उत्तम अभ्रक के रूप में मिल पाता है।

आन्ध्र प्रदेश में अभ्रक-पेटिका लगभग ६० मील के विस्तार में है। इसकी चौड़ाई ८ से १० मील तक है। यह पेटिका गुटूर तथा संगम जिलों के बीच में फैली हुई है। प्रमुख स्थान जहाँ अभ्रक का खनन होता है, गुटूर, रादूर, पोडालाकुर, आत्माकुर तथा कवाली आदि हैं। यहाँ पर देशी-शिलाएँ आर्कियन युग की अभ्रकमय तथा हॉर्नब्लेण्ड-मय शिष्ट हैं। पेग्मेटाइट के विशाल समूह, वीक्षा तथा परतें इनमें विपुल मात्रा में विद्यमान हैं। यहाँ का अभ्रक कुछ हरी-सी द्युति लिये होता है। कुछ स्थानों पर लाल अभ्रक भी मिलता है। यह अभ्रक 'बंगाल रूबी' से पर्याप्त समानता रखता है।

जहाँ तक फ्लोगोपाइट अभ्रक का सम्बन्ध है, यह भी देश के अनेक भागों में मिला है। इसकी प्राप्ति मुख्यतः त्रावणकोर में नेयूर तथा पुनालूर के समीप के निक्षेपों से हुई है। यहाँ पर यह पायरोक्ज़िनाइट के साहचर्य में मिलता है। इसी प्रकार यह अभ्रक आन्ध्र प्रदेश में विशाखापत्तनम् जिले के मुंगदुला क्षेत्र से भी प्राप्त

हुआ है। इस जिले के अन्य भागों में भी इसके विद्यमान होने की सूचना मिली है किन्तु अभी तक उपर्युक्त स्थानों में से एक में भी इस खनिज का खनन आर्थिक स्तर पर नहीं हो सका है।

बिहार, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश तथा अन्य प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों के अतिरिक्त अनेक अन्य स्थानों में भी अभ्रक के, विशेष कर मस्कोवाइट के, निक्षेप मिले हैं। इन स्थानों में बिहार के सिंहभूम, मानभूम तथा पालामऊ जिले प्रमुख हैं। अधोवर्त्ती अभ्रक का खनन उड़ीसा के कई भागों में भी किया गया है। इनमें ढेंकानल, सम्बलपुर तथा आंगुल उल्लेखनीय है। गंजाम तथा कोरापुट जिलों में भी इसके विद्यमान होने की सूचना मिली है। मद्रास के कई जिलों में, विशेष कर सलेम, मालाबार, नीलगिरि तथा कृष्णा में भी साधारण वर्ग के अभ्रक की प्राप्ति होती है। कुडप्पा तथा कुर्ग में भी अभ्रक मिला है। इसी प्रकार मैसूर के हसन तथा मैसूर जिलों एवं पश्चिमी बंगाल के बाँकुड़ा तथा मिदनापुर जिलों से भी मस्कोवाइट प्राप्त हुआ है। लेपिडोलाइट (लीथियम-अभ्रक) के निक्षेप मध्य प्रदेश के बस्तर जिले में विद्यमान हैं।

उत्पादन

सन् १९५३ से १९५७ तक के अभ्रक के भारतीय उत्पादन के आँकड़े यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

वर्ष	उत्पादन (हंडरवेट में)	मूल्य (रुपयों में)
१९५३*	२४५,४००	८,४७,५३,२६४
१९५४*	३३४,७९३	६,५८,०३,०००
१९५५	४६५,०१४	२,९५,७०,०००
१९५६	५६०,६८५	२,०८,१७,०००
१९५७†	६०७,०००	२,२५,७७,०००

*अपूर्ण उत्पादन-आँकड़े मिलने के कारण निर्यात-अंकों को प्रस्तुत किया गया है।

†अस्थायी

अपरिष्कृत अभ्रक (Crude Mica) **का उत्पादन**

(खान पर ही उसके मूल्य के अनुमान के साथ)

राज्य	१९५७		१९५८	
	मात्रा (मे० टन)	मूल्य (लाख रु० में)	मात्रा (मे० टन)	मूल्य (ला० रु० में)
आन्ध्र प्रदेश	५,२८२	२,१११	५,१९८	२,०७७
बिहार	१७,५६७	१४,८५५	१९,८९०	१७,९४३
केरल	७२	४०	९८	५४
मद्रास	५५१	३०४	२६२	१४५
मैसूर	२	१	१	—
राजस्थान	७,४६९	५,८४३	६,३६२	४,९७७
सम्पूर्ण देश का योग	३०,९४३	२३,१५४	३१,८११	२५,१९६

विक्रय तथा निर्यात (Marketing and Export)

भारतीय अभ्रक उत्पादन की लगभग सम्पूर्ण मात्रा विदेशों को निर्यात कर दी जाती है, क्योंकि देश में कोई भी ऐसे उद्योग अभी तक विकसित नहीं हुए हैं जिनमें इसका उपयोग किया जा सके। भारतीय अभ्रक के प्रमुख खरीद तथा खपत करने वालों में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा इंग्लैण्ड हैं। अन्य देशों में, जो भारतीय अभ्रक का आयात करते हैं, फ्रांस, प० जर्मनी, इटली तथा जापान उल्लेखनीय हैं। सन् १९५७ तथा ५८ का निर्यात इस प्रकार रहा—

वर्ष	मात्रा (मेट्रिक टन)	मूल्य (लाख रु० में)
१९५७	२२,३७६	८६६
१९५८	१९,७३५	९३४

उपर्युक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि सन् १९५८ में निर्यात किये गये अभ्रक की मात्रा १९५७ से कम थी, फिर भी सन् ५८ में हमें अधिक मूल्य विदेशी विनिमय मुद्रा के रूप में मिला। इसके दो कारण थे: प्रथम तो यह कि सन् १९५८ में अभ्रक के टुकड़ों (Block Mica) की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा अमेरिका, जापान, पोलैण्ड तथा चेकोस्लोवाकिया को निर्यात की गयी तथा दूसरी बात यह कि इस वर्ष

भी अन्य वर्षों की भाँति अमेरिका ही भारत के अभ्रक का सबसे बड़ा खरीददार था तथा उसने कुल भारतीय अभ्रक-उत्पादन के ४० प्रतिशत भाग का आयात किया। साथ ही वहाँ की सरकार ने एक निश्चय किया कि भारतीय अभ्रक भी उसी भाव से खरीदा जायगा जिससे ब्राज़ील का अभ्रक खरीदा जाता है। फल यह हुआ कि अभ्रक के मूल्य में २० प्रतिशत की वृद्धि हो गयी।

वर्तमान उद्योग व भविष्य

भारत में आज भी अभ्रक-खनन का आधुनिकीकरण नहीं हो सका है। अब भी वे ही पुरानी विधियाँ काम में लायी जाती हैं। परिणाम यह होता है कि एक तो पूरी तरह से उस अभ्रक से लाभ नहीं उठाया जा सकता जो खनित हुआ है, क्योंकि उसका एक बड़ा भाग इन साधारण तथा पुरानी खननविधियों के कारण व्यर्थ चला जाता है, तथा दूसरे उत्पादन और भण्डारों की ठीक ठीक मात्राओं का भी पता नहीं चलता। यहाँ पर यह सुझाव प्रस्तुत किया जा सकता है कि भारत में अभ्रक खनन-विकास के लिए सबसे पहले उपयुक्त योजनाएँ बनायी जायँ और फिर उनको क्रमिक रूप से कार्य रूप में परिणत किया जाय। पेग्मेटाइट भण्डारों के विस्तार को जानने के लिए उपयुक्त स्थानों पर वेधन-कार्य भी करना चाहिए।

एक दूसरा तथ्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, जिसे किसी भी मूल्य पर भुलाया नहीं जा सकता। आजकल लगभग सभी विकसित देशों में अनेक उद्योगों और विशेष कर विद्युत-उद्योग में अभ्रक के टुकड़ों की आवश्यकता होती है, जिनमें से अभ्रक की परतें प्राप्त की जाती हैं। इन परतों में कुछ ऐसे विशेष गुण रहते हैं कि आज तक कोई अन्य पदार्थ इसके स्थान पर प्रयुक्त नहीं किया जा सका है और अति निकट भविष्य में ऐसी कोई आशा भी नहीं की जा सकती। किन्तु इस बात की संभावना को बिल्कुल ही सारहीन नहीं कहा जा सकता कि भविष्य में ऐसा कोई उपयोगी पदार्थ निकाल लिया जायगा जो अभ्रक का स्थान ले सके। आजकल अनेकों देश और विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका इस बात का पूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं कि किसी ऐसे पदार्थ का आविष्कार कर लिया जाय जिसका उपयोग इसके स्थान पर सरलता से किया जा सके और जो आर्थिक दृष्टि से भी उपयुक्त हो। यदि किसी दिन ऐसा हो गया तब कम से कम भारतीय अभ्रक-उद्योग को बड़ा गहरा आघात पहुँचेगा। उस स्थिति में केवल एक प्रयत्न ही इस उद्योग को लगभग समाप्त होने से बचा सकेगा और वह यह कि अभ्रक पर्याप्त सस्ते मूल्य में अन्य देशों तक पहुँचे, ताकि आर्थिक स्तर पर कोई भी

अन्य पदार्थ इसका स्थान न ले पाये। साथ ही इस बात का भी प्रयत्न होना चाहिए कि जो अभ्रक हम अन्य देशों को निर्यात करें उसके गुणों में कमी न आने पाये। जो अन्य देश अभ्रक के निर्यात के क्षेत्र में अग्रणी हैं उनमें केवल ब्राज़ील ही ऐसा है जो भारत का निकट प्रतिद्वन्द्वी है। यह संभव है, जैसा कि स्वयं-सिद्ध है, कि भारत को अमेरिका में भविष्य में उतना अच्छा बाजार न मिल सके जैसा वर्तमान समय में है। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि ब्राज़ील में अभ्रक के खनन का क्रमिक विकास लगभग पर्याप्त अंशों तक आधुनिक विधियों द्वारा संचालित हो रहा है तथा इस उद्योग में बहुत सी अमेरिकन पूँजी भी लगी हुई है। ये सभी तथ्य ऐसे है जिन से हम सावधान हो सकते हैं तथा भविष्य के उद्योग को और अधिक सुदृढ़ बना सकते हैं।

किसी भी राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था तब तक सुदृढ़ नहीं हो सकती जब तक वह अपने यहाँ उत्पन्न कच्चा माल अन्य देशों को उनकी इच्छानुसार ही देता रहे तथा इस लेन-देन के सारे हानि या लाभ को सहन करता रहता है। यह ऐसी स्थिति है जो उस देश को धनवान् होने के स्थान पर शक्तिहीन बना देती है। इस प्रकार की स्थिति का अन्त होना ही चाहिए। यही दशा अभ्रक के साथ हमारे देश पर लागू होती है। हम संसार के औद्योगिक देशों पर अब अधिक आश्रित नहीं रह सकते और इसके लिए आवश्यक है कि देश में ही विशाल विद्युत्-उद्योगों की स्थापना की जाय। साथ ही अभ्रक के स्थान पर हम विदेशों को अभ्रक से बनी हुई वस्तुएँ ही क्यों न भेजें? इस प्रकार के व्यापार से हमें विदेशों की इच्छा पर निर्भर भी न रहना होगा और हम अधिक लाभ भी उठा सकेंगे। गत कुछ वर्षों से इस ओर कुछ प्रगति हुई प्रतीत होती है तथा आशा की जाती है कि आनेवाले वर्षों में कम से कम अभ्रक-उद्योग में खनन से लेकर समापित पदार्थों (Finished Products) के उत्पादन तक सम्पूर्ण कार्यों का वैज्ञानिकन (Rationalization) तथा विकास आधुनिकतम रीतियों से किया जाने लगेगा।

गंधक

गंधक आधुनिक सभ्यता के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खनिजों में से एक है। सम्पूर्ण संसार में इसकी वार्षिक खपत लगभग ५० और ६० लाख टन के बीच में होती है। संसार के उत्पादन का एक बड़ा भाग संयुक्त राज्य अमेरिका से आता है। गंधक का मुख्य उपयोग रासायनिक उद्योगों में होता है। यद्यपि आजकल गंधक का स्थान कई

और खनिजों ने ले लिया है, फिर भी इसकी खपत बहुत अधिक है। किसी भी देश में रासायनिक उद्योग की उन्नति उस देश में गंधकाम्ल (Sulphuric acid) की खपत पर निर्भर करती है तथा गंधक का मुख्य उपयोग गंधकाम्ल के उत्पादन में ही किया जाता है। गंधक विस्फोटक पदार्थों तथा बारूद का एक अभिन्न अंग है। इसके अतिरिक्त औषधियों के निर्माण, कीटनाशक पदार्थों के बनाने तथा रबर को पकाने में भी इसका उपयोग किया जाता है। रंग, लेप तथा विशेष प्रकार के सीमेन्ट बनाने में भी इसका प्रयोग करते हैं। कार्बन डाई-सल्फाइड को रेयन (Rayon) के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है। सल्फर डाई-आक्साइड को गंधकाम्ल के अतिरिक्त समाचारपत्रों के लिए कागज बनाने के काम में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त सल्फर-डाई आक्साइड को शक्कर-उद्योग तथा सूती, रेशमी व ऊनी कपड़ों आदि के लिए वर्ण-शोषक (Bleaching Agent) की भाँति प्रयोग करते हैं। औद्योगिक विलायक (Industrial Solvent), रासायनिक पदार्थों तथा शीत-उत्पादन (Refrigeration) में भी इसका उपयोग होता है।

दुर्भाग्य से भारत में गंधक के कोई निक्षेप नहीं हैं। केवल हिमालय के कुछ भागों में अल्प स्तर के कुछ निक्षेप अवश्य हैं। किन्तु औद्योगिक दृष्टि से उनका अपना कोई स्थान नहीं है। आज जो भी गंधक देश में प्रयुक्त होता है वह सारा ही विदेशों से मंगाना पड़ता है। गंधक के इस पूर्ण अभाव को अनुभव कर कई बार इस दिशा में प्रयत्न किये गये कि किसी भी स्थिति में देश में गंधक के कुछ ऐसे निक्षेप मिल जायँ जिन पर आश्रित रह सकें, किन्तु अभी तक भारत में गंधक उत्पन्न करने वाले ऐसे किसी निक्षेप का विकास नहीं हो सका है।

बलूचिस्तान में कोहे सुल्तान नामक स्थान में सुप्त ज्वालामुखी के समीप अशुद्ध गंधक पाया जाता है। भारतविभाजन के पश्चात् यह क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया। इन निक्षेपों पर खनन-कार्य कभी नहीं हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जब अन्य देशों से गंधक का आयात बन्द हो गया था तब इन क्षेत्रों से गंधक प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया था, किन्तु सफलता हाथ न लग सकी और युद्ध-समाप्ति के पश्चात् गंधक का आयात पुनः प्रारंभ हो गया।

गंधक के अतिरिक्त कुछ अन्य यौगिक ऐसे हैं जिनको गंधकाम्ल के निर्माण में प्रयोग कर सकते हैं, उदाहरण के लिए लौह पायराइट तथा चाल्को-पायराइट। चाल्को-पायराइट लोहा, ताँबा तथा गंधक का यौगिक है। इसके उत्तम निक्षेप सिंहभूम जिले के मोसाबानी क्षेत्र में मिलते हैं। गत कुछ वर्षों से भारत के विभिन्न

भागों में पायराइट निक्षेपों का विस्तृत अध्ययन किया गया है तथा विशेष रूप से मैसूर राज्य के चितालद्रुग जिले में इंगलधल, मद्रास राज्य के नीलगिरि जिले में व्यनाड तथा बिहार के शाहाबाद जिले में आमझोर नामक स्थानों पर सर्वेक्षण किया गया है। इंगलधल में प्रारंभ में ही भूभौतिक विधियों द्वारा सर्वेक्षण किया गया था तथा अब वेधन द्वारा इस क्षेत्र की उपयोगिता आँकी जा रही है। विश्वास किया जाता है कि ये निक्षेप पर्याप्त आशाजनक सिद्ध होंगे।

आमझोर का पायराइट स्तर (Bed) विन्ध्योय स्लेटों के अन्तर्गत मिलता है। इस स्तर की मोटाई ३ फुट है तथा इसमें ४२ प्रतिशत गंधक की मात्रा विद्यमान है। इस क्षेत्र को देखते हुए इस स्तर की स्थिति ऐसी है कि सुगमता से इसका भूमिगत खनन किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में भारतीय भूतात्विक समीक्षा ने इस क्षेत्र में पूर्वेक्षणिक खनन (Exploratory Mining) किया था। जब खनन इस स्तर पर किया गया तो इसकी तलागत (Outcrop) से २०० फुट की दूरी तक न तो इस खनिज के वर्ग में ह्रास हुआ और न इस स्तर की मोटाई ही कम हुई। इस खनन के समय लगभग ३०-४० हजार टन पायराइट इस क्षेत्र से प्राप्त हुआ तथा अनुमान किया गया कि यहाँ पर लगभग ७५०,००० टन खनिज संचित है। वास्तव में यह मात्रा इस विशाल निक्षेप के एक भाग का ही अध्ययन कर निश्चित की गयी थी तथा इस प्रकार इस क्षेत्र से पायराइट के विपुल भण्डारों के प्राप्त होने की आशा की जा सकती है। किन्तु गंधक सरलता से ही विदेशों से पर्याप्त मात्रा में आयात किया जा सकता है, अतः पायराइट के इन निक्षेपों के सम्बन्ध में जो भी विकास-कार्यक्रम आयोजित किये गये थे वे रद्द कर दिये गये, क्योंकि गंधक की प्राप्ति के लिए वर्तमान दशाओं में पायराइट की आवश्यकता अनुभव नहीं की गयी।

कई देशों में जस्ते, ताँबे तथा सीसे के सल्फाइडों के शोधन के समय उत्पन्न सल्फर-डाई आक्साइड को एकत्रित कर उससे गंधक तथा गंधकाम्ल का निर्माण किया जाता है। मोसाबानी (सिंहभूम) के समीप मऊभाण्डेर के शोधक संयंत्र से प्रति दिन लगभग ३००० टन सल्फर डाई-आक्साइड निकलकर वायु में विलीन हो जाती है। इस वाति (Gas) को सरलता से उपर्युक्त कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, किन्तु अनेक प्रयत्नों के पश्चात् आज भी यह वाति वायु में विलीन हो रही है। इसी प्रकार एक अन्य योजना भी सामने आयी थी, जिसके अन्तर्गत बर्मा के जस्त-संकेन्द्रण को भारत में शोधित करना था तथा इस प्रकार उपजात

(By-product) के रूप में गंधकाम्ल की प्राप्ति हो जाती, किन्तु अन्ततोगत्वा यह आयोजन भी कार्यान्वित न हो सका।

सन् १९५६ तथा ५७ में भारत ने ८३,८७७ तथा १०६,२८१ टन गंधक आयात किया तथा इसके लिए क्रमशः २,१७,८७,००० तथा ३,०२,८२,००० रुपये की विनिमय मुद्रा व्यय की गयी।

ऐस्बस्टस (Asbestos)

ऐस्बस्टस एक तंतु-मय (Fibrous) खनिज है, जिसमें दृढ़ता अधिक नहीं होती। 'ऐस्बस्टस वर्ग' के अन्तर्गत कई ऐसे खनिज आते हैं जिनको विभक्त किया जा सकता है तथा जिनसे तन्तु निकल सकते हैं। ये खनिज पुनः दो वर्गों में विभाजित कर दिये गये हैं। प्रथम वर्ग तो क्रायसोटाइल ऐस्बस्टस का है जो सर्पेन्टीन का तंतुमय रूप है तथा रासायनिक दृष्टि से मैग्नीशियम का जलीकृत सिलीकेट है। भारत में इसके केवल सीमित निक्षेप है। दूसरा वर्ग एम्फीबोल ऐस्बस्टस का है जिसमें एक्टिनोलाइट, ट्रिमोलाइट तथा एन्थोफिलाइट (Anthophyllite) आदि सम्मिलित हैं। ये खनिज क्रमशः कैलसियम, मैग्नीशियम, कैलसियम-मैग्नीशियम-लोहा तथा मैग्नीशियम-लोहा के सिलीकेट हैं। एमोजाइट (Amosite) तथा क्रोसीडोलाइट भी एन्थोफिलाइट के रूप हैं। ट्रिमोलाइट स्तर के ऐस्बस्टस के निक्षेप भारत में पर्याप्त हैं। यद्यपि इस वर्ग का ऐस्बस्टस ताप तथा अम्लों का एक अच्छा प्रतिरोधी है तथापि इससे धागे नहीं निकाले जा सकते। इसके धागे लम्बे नहीं होते और शीघ्र ही टूट जाते हैं। क्रायसोटाइल वर्ग के ऐस्बस्टस से धागे सरलता से निकलते हैं और ऐस्बस्टस के धागों से निर्मित होनेवाले पदार्थों में इसको ही प्रयोग भी करते हैं।

शायद ही ऐसा कोई खनिज हो जिसमें इतने अधिक गुण एक साथ विद्यमान हों जितने ऐस्बस्टस में होते हैं और यही कारण है कि इसको तथा इससे निर्मित उत्पादनों को हम हर स्थान पर पाते हैं, चाहे वे बड़े बड़े संयंत्र हों या छविगृह, रेलवे स्टेशन या घर, प्रयोगशालाएँ या बड़े भारी कार्यालय। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐस्बस्टस आधुनिक सभ्यता का एक परम आवश्यक उपयोगी पदार्थ बन गया है। इसके तन्तु यद्यपि अधिक दृढ़ नहीं होते पर उनमें लचक (Pliability) होती है। वे आग से सुरक्षित, हलके, ऋतुओं द्वारा होने वाले संक्षारण तथा अपक्षय से मुक्त होते हैं और उनकी तापसंचालकता कम होती है। वे विद्युत एवम् ध्वनि के

प्रमुख प्रतिरोधी हैं। रासायनिक संक्षारण का भी उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

आधुनिक जेट विमानों तथा प्रक्षेपणास्त्रों में ऐस्बस्टस-मिश्रित प्लास्टिक उत्पादनों की बड़ी महत्ता है। वायुयानों में धातु के बने हुए टैंकों के स्थान पर फिनोलिक-ऐस्बस्टस (Phenolic-asbestos) के उत्पादनों का प्रयोग किया जाता है। वायुयानों के इस प्रकार निर्मित भाग हलके होने के साथ ही साथ दृढ़ भी होते हैं तथा तापक्रम और आर्द्रता के घटने और बढ़ने का भी उन पर कोई प्रभाव नही पड़ता। लोहस तत्त्वों से स्वतन्त्र ऐस्बस्टस का अनेक वैद्युतिक यन्त्रों में विसंवाहक पदार्थ के रूप में व्यवहार किया जाता है।

मोज़ाइट तथा सिलिका को मिलाकर ऐस्बस्टस के तख्ते बनाये जाते है जो आग से सुरक्षित भी होते हैं तथा सरलता से लकड़ी के तख्तों के स्थान पर प्रयुक्त किये जा सकते हैं। ऐस्बस्टस के तंतुओं को धागे के रूप में कातकर उनसे रस्सियाँ, फीते, कपड़े, परदे, फैल्ट्स, मशीनों में जोड़ों के स्थान पर लगनेवाले काग़ज़ (joint papers) आदि बनते हैं। ऐस्बस्टस के जिन खनिजों से लम्बे धागे नहीं निकलते अथवा जो टूट जाते हैं, उनको ऐस्बस्टस-सीमेन्ट-चादरों अथवा पाइपों, दीवार या छत के नीचे वाले भाग के लिए तख्तों के निर्माण में या फर्श के लिए प्रयोग किया जाता है। ताप के कुचालक होने के कारण अनेक यन्त्रों, जैसे बॉयलरों अथवा वाष्पीय पाइपों आदि में एम्फीबोल ऐस्बस्टस खनिजों का महत्त्वपूर्ण कार्य है। अन्य पदार्थों के साथ मिलकर अथवा पूरक के रूप में भी यह एक महत्वपूर्ण खनिज सिद्ध हुआ है। अनेक प्रकार के अग्नि-सुरक्षित सीमेन्टों का निर्माण भी इसी से होता है।

बिहार में एम्फीबोल ऐस्बस्टस के निक्षेप सरायकेला (सिंहभूम) तथा मानभूम एवम् रांची जिलों के कई स्थानों पर मिलते हैं। बड़ाबाना, पटका तथा छोटाबाना (सरायकेला) एवम् सिंहभूम जिले के ही कुछ अन्य निक्षेप आर्थिक दृष्टि से कुछ अच्छे जान पड़ते हैं। इसी प्रकार उड़ीसा के मयूरभंज जिले के कुछ स्थानों में भी इसके पर्याप्त उपयुक्त निक्षेप पाये गये हैं। राजस्थान में अजमेर-मेरवाड़ा में सर्पेन्टीन के अन्तर्गत क्र यसोटाइल ऐस्बस्टस प्राप्त होता है। इसी राज्य में अजबगढ़ चूना-पत्थरों में, जो कि लोहस प्रकार के हैं, सेंदरा नामक स्थान पर ट्रिमोलाइट भी मिला है। अलवर जिले में गुदा के समीप अजबगढ़ चूना-पत्थरों में तथा डेलावास के समीप कुशलगढ़ चूना-पत्थरों में भी इसी प्रकार के ट्रिमोलाइट खनिज ने अनियमित प्रकार

की गोहों को निर्मित किया है। ऐस्बस्टस के अन्य प्राप्ति-स्थान डंगरपुर तथा उदयपुर जिलों में स्थित हैं।

भारत में उत्तम प्रकार का क्रायसोटाइल ऐस्बस्टस केवल आन्ध्र प्रदेश के कुडप्पा जिले में मिलता है। यहाँ पर स्थित क्रायसोटाइल के निक्षेप उत्तम प्रकार का खनिज उपलब्ध कराते हैं, जिससे बड़े-बड़े धागे निकलते हैं तथा जो सरलता से बुने जा सकते हैं। इस जिले में पुलीवेण्डला तालुके के निक्षेप ब्राह्मणपाले तथा लोपटनुटूला के बीच स्थित हैं। वैम्पाले संघ के सर्पेन्टीनमय-मैग्नीशियन चूना पत्थर के अन्तर्गत इस ऐस्बस्टस का एक कटिबन्ध है, जिसकी मोटाई ३-८ फुट तक देखी गयी है। चिन्नाकुण्डला तथा ब्राह्मणपाले के निक्षेप बड़े आशाप्रद प्रतीत होते हैं। कुर्नूल जिले में मल्कापुरम् के समीप तथा जोहारापुरम् के पूर्व में भी क्रायसोटाइल के निक्षेप पाये जाते हैं। केवल कुडप्पा जिले से ही आर्थिक स्तर पर ऐस्बस्टस का खनन संभव हो सका है।

मैसूर राज्य के भी कई स्थानों पर ऐस्बस्टस मिलता है, किन्तु यह ऐस्बस्टस एम्फीबोल प्रकार का है। मुख्य निक्षेप हसन जिले के होल-नरसीपुर तालुके में स्थित हैं। इसी जिले के मण्ड्या तथा येदेगोण्डानावल्ली नामक स्थानों में भी ऐस्बस्टस के साधारण निक्षेप विद्यमान हैं। मैसूर जिले में चिचानावल्ली में तो ऐम्फीबोल ऐस्बस्टस तथा गोपालपुरा में क्रायसोटाइल मिलता है।

मध्य प्रदेश में ऐस्बस्टस के निक्षेपों के प्राप्तिस्थान झाबुआ तथा भण्डारा जिले में सीमित हैं। बम्बई के ईदर जिले में भी एम्फीबोल ऐस्बस्टस मिला है। यह ऐस्बस्टस मैग्नेसाइट तथा सर्पेन्टीन के साहचर्य में कुण्डोल तथा देवमोरी के बीच पाया जाता है। बीजापुर जिले के बागलखोट तालुके में येलिगुट्टी के समीप भी ऐस्बस्टस देखा गया है। उत्तर प्रदेश में गढ़वाल तथा मिर्ज़ापुर जिलों में, आसाम की मिश्मी पहाड़ियों में पायापानी के निकट तथा मद्रास के सलेम जिले में कई स्थानों पर ऐस्बस्टस प्राप्त होने की सूचना मिली है।

उत्पादन

सन् १९५८ में भारत का ऐस्बस्टस-उत्पादन १,१८१ मेट्रिक टन था जिसका मूल्य ३४४,००० रु० हुआ, जब कि सन् १९५७ में उत्पादन १,७४६ मेट्रिक टन था जिसका मूल्य लगभग ४२३,००० रु० आँका गया। इस प्रकार सन् १९५८ में आन्ध्र प्रदेश को छोड़कर शेष सभी राज्यों के उत्पादन में कमी हो गयी। प्रमुख उत्पादक

भारतीय राज्यों में आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, बिहार, मैसूर तथा मध्य प्रदेश के नाम उल्लेखनीय हैं। संसार के प्रमुख उत्पादक देश कनाडा, सोवियत संघ, दक्षिणी रोडेसिया तथा दक्षिण अफ्रीका हैं। कनाडा सम्पूर्ण संसार के उत्पादन का आधे से भी अधिक ऐस्बस्टस अकेले ही उत्पन्न करता है। सारे संसार का कुल उत्पादन सन् १९५६ तथा १९५७ में क्रमशः १,७८८,००० तथा १,८६०,००० मेट्रिक टन रहा।

भारत में ऐस्बस्टस का आयात

भारत का ऐस्बस्टस-उत्पादन उसकी आवश्यकताओं को देखते हुए अत्यन्त अल्प है। अतः देश को प्रति वर्ष दो या तीन करोड़ रुपये तक के मूल्य का ऐस्बस्टस अन्य देशों से आयात करना पड़ता है। भारत को ऐस्बस्टस निर्यात करनेवाले देशों में दक्षिणी रोडेसिया, मोज़ाम्बिक (Mozambique), कनाडा, स्वाज़ीलैण्ड, उत्तरी रोडेसिया तथा केनिया के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने क्रमशः १६,२८७ तथा १८,३५४ मेट्रिक टन ऐस्बस्टस का आयात किया, जिसका मूल्य क्रमशः २०,८९८,००० तथा २३,३९०,००० रु० चुकाना पड़ा।

सेलखड़ी (Talc), स्टीटाइट तथा पायरोफिलाइट

मोह के कठोरता मापदण्ड (Moh's Scale of Hardness) में सेलखड़ी को प्रथम स्थान पर रखा गया है, अर्थात् इसकी कठोरता सब से कम है। सेलखड़ी मैग्नीशिया का जलीकृत सिलीकेट होता है। इसको 'सोपस्टोन' तथा पोटस्टोन (Potstone) का भी नाम दिया गया है। ऊँचे तापक्रम तक गरम करने पर सेलखड़ी में उपस्थित जल का अवयव निकल जाता है तथा वह स्वतन्त्र सिलिका और क्लाइनोएन्स्टिटाइट (Clinoenstatite) में विभक्त हो जाती है। क्लाइनोएन्स्टिटाइट मैग्नीशियम का सिलीकेट है जो एक कठोर पदार्थ होता है तथा व्यावहारिक दृष्टि से साधारण तापक्रम पर अद्रवणीय रहता है। स्टीटाइट के आयताकार टुकड़ों को अनेक प्रकार की भट्ठियों में प्रयोग किया जाता है। चूर्णित स्टीटाइट को सोडे के सिलीकेट के साथ मिलाकर विशेष प्रकार की ईंटों का निर्माण किया जाता है, जिनसे उन भट्ठियों का निर्माण किया जाता है जिनमें सीसे के अयस्क से चाँदी पृथक् की जाती है तथा सीसे की प्राप्ति की जाती है। रडार, टेलीविजन, रेडियो तथा तत्सम्बन्धी वैद्युतिक यन्त्रों में विसंवाहन के लिए 'लावा' वर्ग की विशुद्ध सेलखड़ी को पर्याप्त ऊँचे स्तर पर प्रयोग किया जाता है। अधिकतर सेलखड़ी को चूर्ण के रूप में ही उपयोग में

लाया जाता है। इस प्रकार चूर्णित सेलखड़ी को पेन्ट-उद्योग में, मृच्छिल्प उद्योग में पोर्सलीन, इनेमिल, खपरैलों तथा तापरोधी पदार्थों के निर्माण के लिए; रबर, प्लास्टिक, ऐस्बस्टस उत्पादनों, सूती कपड़ों, साबुनों, लिनोलियम आदि के पूरक (Filler) के रूप में; काँच-उद्योग, कुछ कृषि-कार्यों तथा अन्य उपयोगी कार्यों में भी प्रयुक्त किया जाता है। विशुद्धतम श्वेत प्रकार की सेलखड़ी से सौन्दर्य-प्रसाधनों का निर्माण किया जाता है। सेलखड़ी और मृत्तिका (Clay) को जब उपयुक्त मात्रा में मिलाकर द्रावित किया जाता है तो कोर्डीराइट (Cordierite) का निर्माण होता है। कोर्डीराइट मैग्नीशियम-एल्यूमीनियम सिलीकेट है जिसका तापीय प्रसार बहुत कम होता है। इसी गुण के कारण इस मिश्रण का उपयोग उन अनेक वस्तुओं तथा यन्त्रों में किया जाता है जिनका संचालन ताप की अधिकाधिक परिवर्तित होनेवाली अवस्थाओं में होता है। इस प्रकार की वस्तुओं में, तापक्रमों के समय-समय पर बदलने तथा जल्दी-जल्दी कम और अधिक होने पर भी, दरारें नहीं पड़ सकतीं।

स्टीटाइट अथवा सोपस्टोन सेलखड़ी का स्थूल, अधिकतर अशुद्ध तथा संरचना-हीन रूप है। सेलखड़ी की भाँति इसके भी अनेक औद्योगिक उपयोग हैं जिनमें से कुछ का विवरण हम ऊपर दे चुके हैं। इसका उपयोग उद्योगों, प्रयोगशालाओं तथा घरेलू वस्तुओं में एक समान ही है। विद्युत् तथा ताप का कुचालक होने, अम्लीय क्रियाओं तथा संक्षारण का असामान्य प्रतिरोधी होने तथा ऊँचे तापक्रम पर कठोर हो जाने के कारण इसकी महत्त्व एक उपयोगी खनिज के रूप में बहुत बढ़ गया है।

सेलखड़ी के निक्षेप भारत के अनेकानेक भागों में मिलते हैं। भारत की मणिभीय शिलाओं में टाल्क शिष्टें विस्तृत रूप से वितरित हैं। किन्तु अनेक स्थानों पर बहुत ही साधारण निक्षेप मिलते हैं जिनमें पोटस्टोन प्राप्त होते हैं, जो क्षारीय तथा अतिक्षारीय शिलाओं के परिवर्तन से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार सारे देश में केवल कुछ ही स्थान ऐसे हैं जिनके निक्षेप वास्तव में उपयोगी तथा उत्तम कहे जा सकते हैं। भारतीय स्टीटाइट उत्पादन का लगभग ५० प्रतिशत भाग राजस्थान में उत्पन्न होता है। राजस्थान के प्रमुख निक्षेप जयपुर तथा मेवाड़ (उदयपुर) में स्थित हैं। जयपुर में रैयालो चूना-पत्थर के अन्तर्गत डागोथा में विशुद्ध, दुग्ध-श्वत तथा पीत-हरे वर्ण की सेलखड़ी की गोहें मिलती हैं। जयपुर में ही मोर्रा-का-डुंगर पहाड़ियों में भी सेलखड़ी (टाल्क) शिष्ट के रूप में मिलती है। मेवाड़ के महत्वपूर्ण निक्षेप धिवोरिया में स्थित

हैं। यहाँ पर जिस पेटिका में खनिज मिलता है वह दो मील लम्बी तथा लगभग आधी मील चौड़ी है। उदयपुर के ही दो अन्य स्थानों, रिखबदेव तथा खांदमिन में भी साधारण वर्ग की सेलखड़ी मिलती है। अजमेर-मेरवाड़ा की अजमेर तथा बियावर तहसीलों तथा अलवर जिले में झीरी के निकट भी सेलखड़ी के निक्षेप प्राप्त हुए हैं। झीरी के निक्षेप संगमरमर शिलाओं के साहचर्य में पाये जाते हैं।

जबलपुर (म० प्र०) के सेलखड़ी-निक्षेप बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। जबलपुर से १४ मील की दूरी पर भेड़ाघाट की संगमरमर शिलाओं के समीप ही इस खनिज के निक्षेप स्थित है। यहाँ धारवाड़ युग की डोलोमाइट शिलाओं में सेलखड़ी बड़ी-बड़ी गोहों (Pockets) के रूप में मिलती है। यद्यपि यहाँ के खनिज में लोहे का अवयव कुछ अधिक है, फिर भी यह पर्याप्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसी जिले में गोवारी, लालपुर तथा रूपौन्द के समीप भी सेलखड़ी पायी जाती है। दुर्ग जिले में किलेकोरा के समीप के निक्षेप यद्यपि साधारण है तथापि उनसे घरेलू उपयोग की वस्तुएँ बनाने के छोटे-मोटे धन्धों के लिए पर्याप्त खनिज उपलब्ध हो सकते हैं।

मैसूर के करीमनगर जिले में पेडापल्ली के समीप सोपस्टोन का खनन होता है। इसी राज्य के नलगोण्डा, वारंगल तथा हसन जिलों में भी सेलखड़ीमय शिलाएँ पायी जाती हैं। आन्ध्र प्रदेश के नैल्लोर जिले में, जोगीपल्ली के समीप, सेलखड़ी शिलाएँ मिलती हैं। आन्ध्र प्रदेश के सम्पूर्ण उत्पादन का एक बड़ा भाग इन्हीं खानों से प्राप्त होता है। यहाँ पर सेलखड़ी-शिष्टें अभ्रक-शिष्टों के साथ आयोजित हैं। इसी राज्य में अनन्तपुर जिले में मुत्सूकोटा जंगल के निक्षेप तादपत्री से १४ मील की दूरी पर स्थित हैं। इस क्षेत्र के सिलिकामय डोलोमाइट के अन्तर्गत सेलखड़ी का एक संस्तर मिलता है जिसका रंग पीला-हरा है। श्वेत तथा हरे रंगों का स्टीटाइट कुर्नूल जिले के मुसलय्याचेरुवु तथा मड्डावरम् नामक स्थानों में पाया जाता है। कुडप्पा जिले में भी स्टीटाइट का खनन नन्दीमंगलेम तालुका के अन्तर्गत कोथागंगी-रेड्डीपल्ली में होता है। मद्रास के सेलम जिले में ईश्वर भलाई नामक पहाड़ी को पार करता हुआ एक संस्तर मिला है जिसमें सुसंहत तथा श्वेत वर्णीय स्टीटाइट प्राप्त होता है। इस संस्तर पर टंडक्कावुन्दानूर में विस्तृत रूप से खनन-कार्य होता है।

बिहार में सिंहभूम जिले की उस सम्पूर्ण पर्वतमाला में पोटस्टोन वर्ग की सेलखड़ी प्राप्त है जो उसकी उत्तरी सीमा निर्धारित करती है। पश्चिम में राँची से लेकर पूर्व में मिदनापुर जिले तक यह पर्वतमाला फैली हुई है। यह खनिज यहाँ डालमा

लावाओं के परिवर्तन से निर्मित हुआ है। स्टीटाइट तथा सेलखड़ी के प्राप्तिस्थान इस जिले में ताम्र-पेटिका के समानान्तर पूर्व से लेकर पश्चिम तक विस्तृत हैं। सेलखड़ी तथा पोटस्टोन के महत्त्वपूर्ण निक्षेप भीतरधारी तथा मोहुलीसोल नामक स्थानों में स्थित हैं। राघवडीह, कुवारडीह तथा कादल आदि स्थानों पर स्टीटाइट तथा पोटस्टोन के निक्षेप मिलते हैं। इन निक्षेपों का निर्माण भी अति क्षारीय शिलाओं के परिवर्तन से ही हुआ है। चायबासा से १८ मील दूर पश्चिम में नुरडा नामक स्थान में भी स्टीटाइट का खनन किया जाता है। इसी प्रकार हजारीबाग जिले में ईसरी रेलवे स्टेशन के निकट स्टीटाइट की खनियाँ स्थित हैं। सेलखड़ी के विभिन्न रूपों तथा वर्गों का खनन बिहार में संथाल परगना तथा उड़ीसा में सुन्दरगढ़, बोनाई, क्योंझर तथा नीलगिरि जिलों में होता है। ये खनिज मध्य प्रदेश में बिजावर, कश्मीर में रियासी तहसील तथा सिक्किम में सोरेंग के निकट भी मिलते हैं। बम्बई में इनके निक्षेप धारवाड़, रत्नगिरि तथा ईदार में पाये जाते हैं। ईदार के निक्षेप विशाल तथा व्यावहारिक बताये जाते हैं।

जहाँ तक पायरोफिलाइट का सम्बन्ध है, इसके उपयुक्त निक्षेप अभी तक उत्तर प्रदेश में ही स्थित बताये गये हैं। झाँसी जिले में धनकुआ तथा बिजरी के समीप तथा हमीरपुर जिले के गोरहरी नामक स्थान में पायरोफिलाइट के अच्छे निक्षेप विद्यमान हैं। इसी राज्य के पिथौरागढ़ जिले में उस नगर के समीप ही पायरोफिलाइट के कुछ अन्य उपयुक्त निक्षेप मिलते हैं। मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले में नरवाड़ा में भी पायरोफिलाइट के मिलने की सूचना मिली है।

खपत तथा उत्पादन

स्टीटाइट तथा सेलखड़ी आदि खनिजों के उत्पादन का एक बड़ा भाग देश में ही खप जाता है। सन् १९५८ में इनकी खपत ३९ हजार मेट्रिक टन हुई, ऐसा अनुमान किया जाता है। स्टीटाइट का उत्पादन उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। भारत में राजस्थान स्टीटाइट का प्रमुख उत्पादक है। संसार के प्रमुख उत्पादक देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, फ्रान्स तथा इटली के नाम उल्लेखनीय हैं। संसार के सम्पूर्ण उत्पादन का एक तिहाई से भी अधिक भाग केवल संयुक्त राज्य अमेरिका में ही उत्पन्न होता है। भारत का सन् १९५७ तथा १९५८ का विभिन्न राज्यों का स्टीटाइट उत्पादन निम्न प्रकार है —

राज्य	१९५७		१९५८	
	मात्रा (मेट्रिक टन में)	मूल्य (रु०,००० में)	मात्रा (मेट्रिक टन में)	मूल्य (रु०,००० में)
राजस्थान	३६,२६२	१,५९१	३९,०४५	१,७१९
आन्ध्रप्रदेश	३,१९९	१७७	२,४४५	६८
मध्यप्रदेश	२,७९३	१३४	२,५८२	९७
बिहार	२,१६९	१०	१,९३६	११
मैसूर	१२७	३७	१७३	४९
उड़ीसा	१३१	१	—	—
योग	४४,६८१	१,८९०	४६,१८१	१,९४४

निर्यात

गत कुछ वर्षों में श्रीलंका, इंग्लैण्ड तथा नार्वे भारतीय स्टीटाइट के प्रमुख खरीददार रहे हैं। सन् १९५७ तथा १९५८ का स्टीटाइट खनिज का निर्यात निम्न प्रकार रहा—

वर्ष	मात्रा (मैट्रिक टन में)	मूल्य (रु०, ००० में)
१९५७	७,१३३	१,३४०
१९५८	७,२१५	१,१५४

काँच-बालू (Glass Sand)

साधारण काँच सोडियम तथा कैल्शियम के सिलीकेट और विशुद्ध बालू, चूना पत्थर तथा सोडियम कार्बोनेट का मिश्रण है। इन सभी पदार्थों को विशेष अनुपात में मिलाकर काँच का निर्माण किया जाता है। कुछ विशेष उपयोगों के लिए जो काँच काम में आते हैं उनमें कुछ अन्य तत्त्व भी रहते हैं, उदाहरणार्थ पोटेशियम, सीसा, बेरियम तथा बोरोन। भारत में शताब्दियों पूर्व से काँच का प्रचलन है तथा कई स्थानों पर काँच-निर्माण के चिह्न देखने को मिलते हैं। कुछ पुरातत्त्वशास्त्रियों का कहना है कि मोहनजोदड़ो-हड़प्पा सभ्यताकाल से ही भारत में काँच का निर्माण तथा प्रयोग होता आया है। किन्तु आधुनिक आधार पर काँच का निर्माण तथा प्रचलन तो केवल १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में ही प्रारंभ हुआ है।

काँच उद्योग में प्रयुक्त होनेवाली बालू या रेत को विशुद्ध तो होना ही चाहिए, साथ ही उसके कणों का आकार भी उपयुक्त होना चाहिए, जिससे रासायनिक प्रतिक्रिया जो द्रावण (Fusion) के समय होती है, सरलता से हो सके। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए कम से कम ७० प्रतिशत कणों का व्यास ०·२५ तथा ०·५ मिलीमीटर के बीच होना आवश्यक है।

अनेक प्रकार की बालुएँ, कूटे हुए बालू-पत्थर, स्फटिक तथा स्फटिकाश्म भारतीय काँच उद्योग में प्रयुक्त किये जाते हैं। जिन स्फटिकाश्मों का काँच उद्योग में प्रयोग किया जाता है वे भारत के विभिन्न भागों में मिलते हैं। उड़ीसा में मयूरभंज के पानीजिया तथा सौरी स्थानों में, प० बंगाल के बर्दवान जिले में तालडांगा के समीप, बिहार में भागलपुर जिले में इस प्रकार के पत्थर मिलते हैं जिनको काँच बनाने के काम में लाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में बनारस के चकिया क्षेत्र, झाँसी में मुड़ारी बालाबेहट तथा इलाहाबाद और बाँदा जिलों के शंकरगढ़, लोहगढ़ तथा बरगढ़ धानद्रौल में स्फटिकाश्म को कूटकर काँच उद्योग में प्रयुक्त होने के योग्य बनाया जाता है।

राजस्थान में बूँदी जिले के बरोधिया नामक स्थान पर तथा सवाई माधोपुर और जाटवाड़ा में काँच-बालुएँ मिलती हैं। इसी प्रकार बम्बई में ईदर तथा बेलगाँव जिलों में और गुजरात में बड़ोदा में उपयोगी बालू-पत्थर मिलते हैं। आन्ध्र प्रदेश में गुण्टूर व हैदराबाद, केरल में त्रावणकोर (शेरतल्ले), मद्रास में चिंगलपेट एवम् मैसूर में बंगलौर जिले में काँच-बालू तथा स्फटिकाश्म के पर्याप्त उत्तम निक्षेप हैं। होशियारपुर (पंजाब) में भी स्फटिकाश्म एकत्रित कर कूटा जाता है और फिर राज्य के विभिन्न स्थानों को भेजा जाता है। पारदर्शक विशुद्ध स्फटिक बिहार में सिंहभूम, राँची, मानभूम, हजारीबाग, संथालपरगना तथा मुंगेर जिलों में; उड़ीसा के पटना, सम्बलपुर और सोनेपुर क्षेत्रों में; आन्ध्र प्रदेश में विशाखापत्तनम्: तथा कश्मीर में जम्मू के समीप तावी नदी के तल (Bed) में प्राप्त होता है। राजस्थान में बीकानेर, मध्य प्रदेश में जबलपुर तथा उड़ीसा में कटक जिलों के काँच के कारखाने स्थानीय पदार्थों का ही प्रयोग करते हैं।

शंकरगढ़ (इलाहाबाद) की सिलिका-खानें देश के काँच उद्योग की ८० प्रतिशत आवश्यकताएँ पूरी करती हैं। देश में उत्तम प्रकार का काँच का सामान बने, इसलिए उत्तर प्रदेश शीघ्र ही विशुद्ध तथा लोहा-रहित सिलिका बालू की प्रचुर मात्रा में व्यवस्था कर रहा है। काँच के रंग में हलकापन तथा उसकी चमक में कमी का

यही कारण है। काँच उद्योग के इस प्रमुख कच्चे पदार्थ की निरन्तर बढ़ती हुई माँग पूरी करने के लिए राज्यसरकार सात यन्त्र और स्थापित करने जा रही है। शंकरगढ़ परियोजना से उत्तर प्रदेश को सबसे अधिक लाभ होगा, क्योंकि यहाँ शीशे के ३० कारखाने हैं जिनकी प्रतिष्ठापित उत्पादनक्षमता ७७,००० टन है। देश में काँच की बनी हुई वस्तुओं के कुल उत्पादन का २५ प्रतिशत इस राज्य में ही तैयार होता है और शीशे के बरतनों का उत्पादन तो लगभग ५० प्रतिशत है।

बम्बई, बिहार, पश्चिमी बंगाल, पंजाब, आन्ध्र प्रदेश और मद्रास के सभी प्रमुख शीशा-उत्पादक केन्द्रों को सिलिका-बालू की प्राप्ति शंकरगढ़ से ही होती है। रूसी सहायता प्राप्त दुर्गापुर की ऑप्टिकल ग्लास फैक्टरी को भी इसी क्षेत्र से बालू दी जायगी।

बैराइट (Barytes)

बैराइट खनिज रासायनिक दृष्टि से बेरियम का सल्फेट है, जिसमें लगभग ६५.७ प्रतिशत बेरियम ऑक्साइड होता है। यह भारी तथा श्वेत वर्ण का होता है। औद्योगिक दृष्टि से यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है तथा यही कारण है कि इसकी खपत दिन पर दिन बढ़ती चली जा रही है। बैराइट को मुख्य रूप से पिगमैन्टों में प्रयुक्त किया जाता है। पैट्रोलियम के कुएँ बनाते समय आवश्यक कीचड़ को भारी बनाने के लिए बैराइट बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। जिन देशों में तेल पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है तथा नवीन तेलक्षेत्रों के लिए बराबर कुएँ आदि बनाये जाते रहते है, वहाँ इसकी खपत बहुत होती है। इसके अतिरिक्त बैराइट का उपयोग पूरक के रूप में रबर, कागज, रंगों तथा चमड़ा आदि उद्योगों में होता है। मृच्छिल्प एवम् रासायनिक उद्योगों में भी बैराइट का विस्तृत रूप से प्रयोग किया जाता है। बेरियम धातु का उपयोग इलेक्ट्रोनिक वैक्यूम के निर्माण में भी होने लगा है। सन् १९५८ में देश में काम करनेवाली तमाम तेलकम्पनियों को विशाल मात्रा में बैराइट की आवश्यकता हुई थी। इसी प्रकार की माँग विदेशों से विशेषकर मध्य-पूर्वीय देशों से भी आयी थी।

बैराइट के प्रमुख खननीय निक्षेप आन्ध्र प्रदेश के कुडप्पा, अनंतपुर तथा कुर्नूल जिलों में एवम् राजस्थान के अलवर जिले में प्राप्त हुए हैं। कुडप्पा जिले में तो अनेक स्थानों पर इसकी प्राप्ति की जाती है। इस जिले के प्रमुख निक्षेप कोट्टापाले, गोण्डीपाले, इप्पटला, कोण्डापुरम्, नन्दीपाले, तल्लापल्ली, वेलमवारीपल्ली तथा

वेमुला में स्थित हैं। इसी जिले में चिन्नाकेसवपुरम्, ममीलापल्ली, कोठूर, कमलापुरम्, नन्दीमण्डलम्, राजूपालेम तथा ठंगेदुपाले में भी बैराइट के उपयोगी निक्षेपों का खनन किया जाता है। अनन्तपुर जिले में तादपत्री तालुका के अतिरिक्त बोप्पेपल्ली तथा मादुगुपल्ली में भी बैराइट की खानें हैं। कुर्नूल जिले में बैराइट के मुख्य निक्षेप प्रायः ढोन तथा कुमबुम तालुकों में स्थित हैं। नैल्लोर जिले में नरवदा के समीप भी इस खनिज के साधारण निक्षेप देखे गये हैं।

राजस्थान में अलवर जिले के अतिरिक्त बैराइट का खनन जयपुर तथा भरतपुर में भी किया जाता है। मध्य प्रदेश में टीकमगढ़ जिले के सूरजपुर तथा भैरानों नामक स्थानों पर यह स्फटिक पट्टिकाओं के साथ आयोजित मिलता है। सलीमनाबाद में इसके निक्षेपों का निर्माण अन्य शिलाओं के प्रतिस्थापन से हुआ है। इसी प्रकार के अन्य निक्षेप सिंहभूम जिले में कोलपोटका, रांची जिले में सिलवाई और बोगावेरा, मानभूम जिले में मालथोल आदि स्थानों में भी पाये गये हैं। बैराइट के अन्य प्राप्तिस्थान मध्य प्रदेश में रीवां तथा पीपलकोट, पंजाब में नारनौल, हिमाचल प्रदेश में सिरमूर तथा मद्रास में सलेम हैं।

उत्पादन

भारत में केवल आन्ध्र प्रदेश तथा राजस्थान की खानों से ही आजकल बैराइट का खनन होता है। सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने क्रमशः १३,१२१ तथा १५,९०८ मेट्रिक टन बैराइट उत्पन्न किया, जिसका अनुमानित मूल्य क्रमशः २११,-००० तथा २८५,००० रु० हुआ। इस प्रकार १९५७ के कुल उत्पादन पर २१ प्रतिशत की वृद्धि हुई। कुल उत्पादन का ८५ प्रतिशत भाग सन् १९५८ में केवल आन्ध्र प्रदेश से ही प्राप्त हुआ।

सन् १९५६ तथा १९५७ का सारे संसार का बैराइट उत्पादन क्रमशः २,८१३,-००० तथा २,९९५,००० मेट्रिक टन था। प्रमुख उत्पादक देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, कनाडा, मैक्सिको, सोवियत संघ तथा इंग्लैण्ड के नाम उल्लेखनीय हैं।

निर्यात व आयात

सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने क्रमशः १४,११७ तथा २३,४८९ मेट्रिक टन बैराइट का निर्यात कर क्रमशः १,६६५,००० एवम् २,८६९,००० रु०

के मूल्य की विनिमयमुद्रा प्राप्त की। भारतीय बैराइट को आयात करने वाले देशों में मुख्य पाकिस्तान, ईरान, इराक तथा जापान आदि हैं। बेरियम यौगिकों के उत्पादन के लिए तथा अन्य संबंधित रासायनिक पदार्थों के निर्माण के लिए भारत को बैराइट का अल्प मात्रा में आयात भी करना पड़ता है। सन् १९५८ में देश ने ६७ मेट्रिक टन बैराइट का आयात किया जिसका मूल्य लगभग ३३,००० रु० हुआ।

रंगीन मिट्टियाँ (Ochres)

रंगीन मिट्टियों का मुख्य रूप से उपयोग पेण्ट-उद्योग में होता है। व्यापारिक पेण्टों के अतिरिक्त इनको पानी में घोलकर भवनों आदि को रंगने के लिए भी बहुत अधिक काम में लाया जाता है। जहाँ तक पीली मिट्टियों (Yellow ochres) का प्रश्न है, उनमें बहुत मात्रा में लोहे के जलीकृत आक्साइड रहते हैं। इनके साथ कुछ अन्य पदार्थ, जैसे मृत्तिकाएँ तथा सूक्ष्म बालुएँ भी आयोजित रहती हैं। जैसे जैसे इनमें मैंगनीज की मात्रा बढ़ती जाती है, इनका रंग कत्थई या गहरा कत्थई हो जाता है। लाल मिट्टियों में, जिन्हें 'गेरू' का भी नाम दिया गया है, फेरिक ऑक्साइड की मात्रा बहुत अधिक होती है।

भारत में रंगीन मिट्टियाँ विपुल मात्रा में विद्यमान हैं। इनकी विपुलता का सबसे बड़ा कारण यह है कि देश में लेटराइट तथा लोहे के अन्य निक्षेप भी विशाल मात्रा में मिलते हैं। इन सभी रंगीन मिट्टियों का जन्म लोहे के खनिजों के इन विशाल निक्षेपों से ही हुआ है। मध्य प्रदेश में ग्वालियर, सतना, जबलपुर, चाँदा, द्रुग तथा होशंगाबाद इन रंगीन मिट्टियों के लिए प्रसिद्ध हैं। उच्च वर्गीय लाल मिट्टी सरगुजा में रैमा से प्राप्त होती है। ग्वालियर की प्रसिद्ध खानें गिर्द जिले में बेहाट में तथा सतना की खानें बरौली में स्थित हैं। उड़ीसा में रंगीन मिट्टियों के बृहत् निक्षेप पुरी, गंजाम, कटक, सम्बलपुर तथा कोरापुट जिलों में पाये जाते हैं, किन्तु केवल कटक और सम्बलपुर के कुछ निक्षेप ही उत्तम प्रतीत होते हैं। उड़ीसा की तरह बिहार के निक्षेप भी साधारण हैं। मानभूम, सिंहभूम तथा राँची जिलों में कई स्थानों पर रंगीन मिट्टियाँ मिलती हैं। पश्चिमी बंगाल में मिदनापुर तथा बीरभूम जिलों में क्रमशः लाल व पीली तथा केवल पीली मिट्टियों के साधारण निक्षेप विद्यमान हैं।

मद्रास तथा आन्ध्र प्रदेश के कुर्नूल, गुन्टूर, पूर्वी गोदावरी, पश्चिमी गोदावरी, विशाखापत्तनम्, उत्तरी आरकोट तथा तिरुचिरापल्ली में लाल तथा पीली दोनों ही

रंग की मिट्टियाँ पायी गयी हैं। मैसूर के बेलारी जिले में सान्दूर तालुका के अन्तर्गत गेरू के विशाल निक्षेप प्राप्त हुए हैं। इसी राज्य के टुमकुर तथा चितालद्रुग जिलों में भी पीली, लाल तथा कत्थई रंग की मिट्टियाँ मिलती हैं। साधारण प्रकार की रंगीन मिट्टियाँ आन्ध्र प्रदेश के रायचूर तथा हैदराबाद में भी विद्यमान हैं।

राजस्थान के रंगीन मिट्टियों के निक्षेप अपेक्षाकृत साधारण हैं। यहाँ पर विभिन्न स्थानों में पीली, लाल तथा बैंगनी मिट्टियाँ मिलती हैं। मुख्य प्राप्तिस्थान बूंदी, अलवर, जयपुर, करौली, मेवाड़ तथा जैसलमेर जिलों में हैं। सौराष्ट्र में झालावाड़ के अन्तर्गत राजपुर के समीप पर्याप्त मात्रा में लाल मिट्टी मिलती है। इसी प्रकार नवानगर में मोडपुर, माटली तथा पिथासिया में लाल मिट्टी और रान में पीली मिट्टी के निक्षेपों पर खनन होता है। पोरबन्दर में आदितानिया, भारवाडा, भाखड़ा तथा बाखरला में; कच्छ में लखपत तथा भिग में; ध्रांगध्रा में बैसाहिबगढ़ तथा रावलीवाड़ा में तथा गुजरात में राजपीपला में विभिन्न रंगीन मिट्टियों का खनन किया जाता है।

उत्पादन व खपत

भारत में सन् १९५७ तथा १९५८ में रंगीन मिट्टियों का उत्पादन क्रमशः १५,८१६ तथा २०,४०७ मेट्रिक टन था, जिनका मूल्य क्रमशः ३३६,००० तथा ४०१,००० रु० हुआ। मुख्य उत्पादक राज्य मध्य प्रदेश, मैसूर, आन्ध्र प्रदेश तथा प० बंगाल तथा उत्तर प्रदेश हैं। ये आँकड़े पूर्ण रूप से विश्वसनीय इसलिए नहीं हैं क्योंकि इनमें उन छोटी-छोटी खानों का उत्पादन तथा स्थानीय निवासियों द्वारा लघु-उद्योग पर आधारित खनन का उत्पादन नहीं जोड़ा गया है। इन्हीं दो वर्षों में देश में इन मिट्टियों की खपत क्रमशः १,७०० तथा २,५०० टन हुई है।

आयात व निर्यात

पेण्ट उद्योग के लिए उच्चवर्गीय रंगीन मिट्टियों का देश में अभाव होने के कारण सन् १९५७ तथा १९५८ में क्रमशः १७५ लाख तथा ११० लाख रुपये की रंगीन मिट्टियाँ आयात की गयीं। इन्हीं वर्षों में दस-दस हजार रुपये मूल्य की इन मिट्टियों का निर्यात भी किया गया।

वर्मीक्युलाइट (Vermiculite)

वर्मीक्युलाइट वर्ग के अन्तर्गत वे खनिज आते हैं जिनका निर्माण फ्लोगोपाइट

तथा बायोटाइट आदि खनिजों के परिवर्तन (Alteration) से होता है। इस परिवर्तन में जलीकरण का बड़ा महत्त्व है, जिसका परिणाम यह होता है कि बायोटाइट तथा फ्लोगोपाइट खनिजों से क्षारीय अवयव निकल जाते हैं। वर्मीक्युलाइट खनिजों का रंग श्वेत से लेकर पीला तथा कत्थई भी हो सकता है। इनकी स्तरिकाएँ (Laminae) कोमल, सरलता से मुड़ जानेवाली तथा लचकहीन होती हैं। इनका एक विशेष गुण यह होता है कि गरम करने पर पानी छोड़ने के साथ ही इनकी आकारवृद्धि हो जाती है तथा कृमि (worm) जैसे धागों में ये परिवर्तित हुई प्रतीत होती हैं। कभी-कभी तो इनके आकार में आठ से दस गुनी तक वृद्धि हो सकती है। कुछ वैज्ञानिक इस आकारवृद्धि का कारण, इसकी आन्तरिक संरचना में विभिन्न स्तरों (Layers) में आणविक जल (Molecular water) के स्तरों का होना बताते हैं। वर्मीक्युलाइट खनिजों के इसी गुण के कारण उनको अनेक औद्योगिक तथा अन्य उपयोगी कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इनका उपयोग विस्तृत रूप से तापीय तथा ध्वनि-विसंवाहनों में किया जाता है। गिट्टी तथा सीमेन्ट आदि के साथ मिलाकर भवन-निर्माण कार्य में भी इनका प्रयोग किया जाता है। अन्य उपयुक्त पदार्थों के साथ मिलकर यह कई प्रकार के प्लास्टरों का निर्माण करता है, जिनका उपयोग उद्योगों में विशेष रूप से किया जाता है।

आन्ध्र प्रदेश के नैल्लोर जिले के गुदुर नामक स्थान से पश्चिम में लगभग १० मील की दूरी पर कत्थई हरे रंग के वर्मीक्युलाइट के निक्षेप पर्याप्त अच्छी मात्रा में विद्यमान हैं। अजमेर-मेरवाड़ा (राजस्थान) में गुदास के समीप, मैसूर में हसन, कोलार तथा टुमकुर जिलों में एवम् पश्चिमी बंगाल के बंकुरा जिले में भी वर्मीक्युलाइट खनिजों के साधारण निक्षेप स्थित हैं।

भारत में घरेलू तथा औद्योगिक उपयोगी वस्तुएँ, जिनमें वर्मीक्युलाइट प्रयुक्त होता है, बनाने का केवल एक प्रसार-संयंत्र रानीगंज में है जिसका निर्माण बर्न एण्ड कं० ने किया है। यहाँ पर आयात किये हुए खनिज को साधित कर उससे उपयोगी पदार्थों का व्यापारिक स्तर पर निर्माण किया जाता है।

संकोचक मिट्टी (Fuller's Earth)

भारतीय संकोचक मिट्टियों की सामान्य संरचना के अनुसार ये मिट्टियाँ वे मृत्तिकाएँ हैं जो कोमल, हलके भूरे रंग की अथवा हलके हरे या कत्थई रंग की होती

हैं तथा जिनको मुख्यतः एल्यूमीनियम का जलीकृत सिलीकेट कहा जाता है। इनमें चल मात्रा में मैग्नीशिया, चूना, क्षारीय तथा लौह आदि अवयव रहते हैं। इनका स्पर्श साबुन-जैसा तथा रूप कुछ मोम-जैसा प्रतीत होता है। इनका यह गुण होता है कि ये चिकने पदार्थ को प्रचूषित कर लेती हैं। खनिजों तथा वानस्पतिक तेलों के शुद्धीकरण के लिए आज भी इनका प्रयोग विस्तृत रूप से किया जाता है। तापरोधी सीमेन्टों में, कागज के निर्माण में पूरक के रूप में तथा साबुन, रंग व पेण्टों के उत्पादन में भी यह अच्छे स्तर पर प्रयुक्त होती हैं।

भारत में संकोचक मिट्टियों के उत्पादन में राजस्थान बहुत समय से आगे रहा है। यहाँ पर इस मिट्टी को मुल्तानी मिट्टी के नाम से पुकारा जाता है। बीकानेर जिले में कोलैथ के निकट मार नामक स्थान में तथा जोधपुर में बाडमेर तथा कापूरी के समीप इसका खनन किया जाता है। बीकानेर में पलाना के समीप इस मिट्टी को भूमिगत रूप से खनित किया जाता है। जैसलमेर में बण्डा, मांडा तथा मंडई में भी संकोचक मिट्टी के उपयोगी निक्षेप विद्यमान हैं।

मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में कटनी के समीप भी ये मिट्टियाँ मिलती हैं। यहाँ पर ये मिट्टियाँ अधोविन्ध्यन युग की शिलाओं में पायी जाती हैं। आन्ध्र प्रदेश में गुलबर्गा जिले के चिन्चोली तालुका में भी संकोचक मिट्टियों के अच्छे निक्षेप विद्यमान हैं। गुजरात में लखनका (भावनगर), नवानगर, जूनागढ़ तथा सौराष्ट्र के अन्य भागों में एवं कच्छ में भी संकोचक मिट्टियाँ पायी जाती हैं। ये मिट्टियाँ मुख्य रूप से लिथोमार्ज प्रकार की हैं।

कोरण्डम (Corundum)

कोरण्डम एल्यूमीनियम का प्राकृतिक आक्साइड है। कठोरता में हीरे के ठीक बाद ही कोरण्डम आता है तथा 'मोह के कठोरता मापदण्ड' के अनुसार इसकी कठोरता ९ है। इसके पारदर्शक (वर्णहीन तथा वर्णयुक्त) रूप पुखराज तथा नीलम एवम् अन्य बहुमूल्य पत्थर हैं। इसका द्रवणांक २०१०° सें० है। इसकी प्राप्ति मुख्यतः आग्नेय अथवा कायान्तरित शिलाओं में स्थूल रूप (Massive) मणिभों अथवा अनियमित कणों के रूप में होती है। यह कुछ जलोढ निक्षेपों से भी मिल सकता है जो कायान्तरित शिलाओं से व्युत्पन्न हुए हैं। प्रकृति में तीन रूपों में कोरण्डम विद्यमान है—(१) बहुमूल्य पत्थर (पुखराज व नीलम), (२) साधारण कोरण्डम जो स्थूल अथवा मणिभित हो सकता है तथा अपारदर्शक

और मटमैला होता है, (३) एमरी (Emery) जो कोरण्डम तथा मैग्नेटाइट का एक मिश्रण होता है। यद्यपि कठोरता के कारण यह एक प्राकृतिक अपघर्षक पदार्थ है तथापि आजकल इसका स्थान बहुत अंशों तक कारबोरण्डम (Carborundum) ने ले लिया है। वाणिज्य स्तर के प्रमुख निक्षेप दक्षिणी रोडेशिया, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, मेडागास्कर तथा रूस में विद्यमान हैं।

उपयोग—कोरण्डम का प्रमुख उपयोग अपघर्षक पदार्थ के रूप में ही होता है। प्रकाशीय तालों (Optical Lenses) के घिसने तथा उनके समापन (Finishing) में भी इसका प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। स्फुलिंग-प्लगों (Spark plugs) के निर्माण में भी इसका प्रयोग होता है। स्थूल कोरण्डम से बड़े-बड़े चक्की के पाट (Grinding Wheels) बनाये जाते हैं। पारदर्शक कोरण्डम बहुमूल्य पत्थरों के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा आभूषणों आदि के निर्माण में काम आता है।

वितरण—कोरण्डम भारत में अनेक स्थानों पर मिलता है। इसके मुख्य निक्षेप आसाम में खासी पहाड़ियों, मध्य प्रदेश में पिपरा, राजस्थान, मद्रास के कुछ जिलों तथा मैसूर राज्य में शिमोगा जिले को छोड़कर सभी जिलों में विद्यमान हैं।

आसाम की खासी पहाड़ियों के स्थूल कोरण्डम-सिलीमिनाइट निक्षेप वहाँ प्राप्त बायोटाइट-सिलीमिनाइट-कोर्डीराइट-स्फटिक शिलाओं तथा सिलीमिनाइट-स्फटिक शिष्टों के साथ आयोजित हैं। इन सिलीमिनाइट-स्फटिक शिष्टों का अन्तर्भेदन इस क्षेत्र में कणाश्म-नाइस ने किया है। इसी प्रकार के स्थूल कोरण्डम के निक्षेप मध्य प्रदेश के भण्डारा जिले में पोहरा नामक स्थान पर भी मिले है। यह कोरण्डम जलोढ निक्षेपों से प्राप्त होता है, जो कायान्तरित शिलाओं द्वारा व्युत्पन्न हुए हैं।

मध्य प्रदेश में पिपरा के कोरण्डम निक्षेप बहुत महत्त्वपूर्ण हैं तथा उन पर खनन-कार्य संभवतः १९वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही आरंभ हो गया था। आजकल पिपरा तथा कारकोटा में कोरण्डम निकालने का काम होता है। यहाँ प्राप्त कोरण्डम सिलीमिनाइट तथा हॉर्नब्लेण्ड शिष्टों के साथ आयोजित है तथा सामान्यतः यह स्थूल, सूक्ष्मकण वाला, भूरा, गुलाबी या मटमैले बैंगनी रंग का होता है। 'डन' (Dunn) के अनुसार इस स्थान तथा इसके समीप में ४००,००० टन कोरण्डम, शिला विद्यमान है, जिसका एक चौथाई भाग उत्तम प्रकार के खनिज के रूप में प्राप्त हो सकता है।

मद्रास तथा मैसूर के कई जिलों में कोरण्डम के निक्षेप मिले हैं। अनन्तपुर, कोयम्बटूर, सलेम तथा दक्षिणी कनारा जिलों में कई स्थानों पर मणिभित (Crystalline) कोरण्डम प्राप्त हुआ है। यह अधिकांशतः क्षारीय शिलाओं के साहचर्य में पाया जाता है। सलेम जिले के पप्पारापट्टी में यह फेल्सपार के... (leriticles) में, सिथमपुण्डी में एनोथीइट नाइस के अवयव के रूप में तथा पालाकोड में सायनाइट शिलाओं के साथ मिलता है। कोयम्बटूर में शिवा-मलाई तथा दक्षिणी कनारा में उप्पीनंगादी के समीप भी यह सायनाइट शिलाओं के साहचर्य में पाया गया है। अनेक वर्णों तथा अनेक वर्गों का कोरण्डम मैसूर के हसन, बंगलोर, कादूर, कोलार, मैसूर तथा टुमकुर आदि जिलों के कई स्थानों में देखा गया है। यहाँ पर यह तलीय मिट्टी से टूटे हुए मणिभों के रूप में प्राप्त होता है। अल्पमात्रा में कोरण्डम हैदराबाद के महबूबनगर, नलगोण्डा तथा गुलबर्गा प्रभृति स्थानों से भी मिलता है।

अशुद्ध नीलम जो वर्ण तथा गुणों के अनुसार बहुत ही अधोवर्ग में आता है, जम्मू के किश्तवाड़ जिले में सुमजाय के समीप मिलता है।

उत्पादन—संसार का कोरण्डम का प्रमुख उत्पादक देश दक्षिणी रोडेशिया है तथा इसके पश्चात् क्रम में दूसरे स्थान पर दक्षिण अफ्रीका आता है। भारत में दक्षिणी रोडेशिया के उत्पादन का दसवाँ भाग भी उत्पन्न नहीं होता। भारत के प्रमुख उत्पादक तीन राज्य हैं—मध्य प्रदेश, मैसूर तथा मद्रास। इन राज्यों का सन् १९५७ तथा ५८ का उत्पादन निम्न सारणी में दिया जा रहा है।

	१९५७		१९५८	
	उत्पादन (मेट्रिक टन में)	मूल्य (रु०, ००० में)	उत्पादन (मेट्रिक टन में)	मूल्य (रु०, ००० में)
मध्यप्रदेश	४३३	२४४	३०२	१७०
मैसूर	११	१	७२	१३
मद्रास	७	१	२१	६
योग	४५१	२४६	३९५	१८९

खपत—भारत में इन सभी राज्यों से उत्पन्न होनेवाला कोरण्डम स्थानीय रूप से देश में ही खप जाता है तथा विदेशों को निर्यात नहीं किया जाता। उत्पादन तथा खपत लगभग समान ही हैं।

*

परिच्छेद १४

तापरोधी खनिज

अग्नि-मृत्तिकाएँ (Fire-clays)

अग्नि-मृत्तिकाएँ वे अवसादीय मृत्तिकाएँ हैं जो गोंडवाना क्रम के कोयला क्षेत्रों में प्राप्त होती हैं। इन मृत्तिकाओं को प्रधानतः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक तो सिलिकामय अग्नि-मृत्तिकाएँ तथा दूसरी एल्यूमीनियम-मय अग्नि-मृत्तिकाएँ। दूसरे वर्ग की मृत्तिकाएँ अधिक तापरोधी समझी जाती हैं। अग्नि-मृत्तिकाएँ भी अन्य मृत्तिकाओं की भाँति सुघट्य (Plastic) होती हैं, किन्तु चीनी मिट्टी की अपेक्षा अधिक कठोर होती हैं। अपने तापरोधी गुणों के अनुसार अग्निमृत्तिकाएँ तीन वर्गों में विभक्त की गयी हैं—

(१) अधो-वर्गीय, जिनकी तापरोधन-शक्ति १५००° से १६५०° सें० तक सीमित है।
(२) मध्यम-वर्गीय ,, ,, ,, १६५०° से १७५०° सें० तक सीमित है।
(३) उच्च-वर्गीय ,, ,, ,, १८५०° सें० तक सीमित है।

आज के इस वैज्ञानिक युग में अग्नि-मृत्तिकाएँ आधुनिक उद्योगों की आधार-शिला बन गयी हैं। जहाँ भी उच्च तापक्रम उत्पन्न होते हैं वहाँ इन अग्नि-मृत्तिकाओं से बने हुए कुछ न कुछ उत्पादन अवश्य ही प्रयुक्त किये जाते हैं। अग्निमृत्तिकाएँ देश के लगभग सभी राज्यों में पायी जाती हैं, किन्तु बिहार तथा पश्चिमी बंगाल के निक्षेप संभवतः सर्वोत्तम तथा अद्वितीय हैं। रानीगंज कोयला क्षेत्र से प्राप्त अग्नि-मृत्तिकाएँ सर्वोपयुक्त तथा बहुत ही उत्तम प्रकार की हैं और इनसे निर्मित तापरोधी ईंटें अपने गुणों में किसी देश की तापरोधी ईंटों की अपेक्षा अधिक अच्छी सिद्ध हुई है। इस क्षेत्र में अग्नि-मृत्तिकाओं के स्तर बराकर श्रेणी के अन्तर्गत मिलते हैं और इन स्तरों के तलागत गरफलवाड़ी-दहीवाड़ी क्षेत्र के कई स्थानों पर देखने को मिलते हैं।

बिहार के निक्षेप अपेक्षाकृत विशाल हैं। झरिया कोयला क्षेत्र के निक्षेप

झरिया के ही समीप तथा पाथरडीह की ओर प्राप्त होते हैं। मृत्तिकाओं के स्तरों की मोटाई यहाँ भी असम है। पालामऊ जिले में डाल्टनगंज कोयला-क्षेत्र की अग्नि-मृत्तिकाओं का खनन रझारा की खानों में किया जाता है। भागलपुर जिले में कोलगंज के समीप पाथरघट्टा तथा संथाल परगना जिले में राजमहल पहाड़ियों के पश्चिमी किनारे पर भी कई स्थानों में अग्नि-मृत्तिकाओं के मिलने की सूचना मिली है।

उड़ीसा के सम्बलपुर जिले में रामपुर कोयला-क्षेत्र के अन्तर्गत बेलपहाड़ के समीप जोराबागा के आसपास अग्नि-मृत्तिकाओं का खनन किया जाता है। करनपुरा कोयला-क्षेत्र तथा सुन्दरगढ़ में किरिपसेरा में भी अग्निमृत्तिकाओं के प्राप्त होने की सूचना मिली है। पुरी जिले में जगन्नाथप्रसादपुर में भी इनका खनन होता है।

मध्य प्रदेश में कई स्थानों पर अग्नि-मृत्तिकाओं के निक्षेप पाये गये हैं। बिलासपुर के कोरबा कोयला-क्षेत्र में तो बहुत पहले ही इन मृत्तिकाओं का पता चल गया था। सहडोल जिले में डोला के निकट कोयला-स्तरों के साहचर्य में भी अग्नि-मृत्तिकाएँ मिलती हैं। जबलपुर जिले में नगर के समीप ही छोटा शिमला में, मदनमहल के समीप, गढ़ा में, तथा सिहोरा तहसील में स्लीमनाबाद के समीप भावनगर में अग्नि-मृत्तिकाओं का खनन होता है। इसी जिले में टिकरिया की खनियों से इन मृत्तिकाओं का उत्पादन सन् १८७२ से होता है। रीवां में उमरिया क्षेत्र तथा चाँदा बेतूल, अमरावती, छिन्दवाड़ा तथा होशंगाबाद जिलों में भी इनके निक्षेप बताये जाते हैं।

दक्षिण भारत में मद्रास, आन्ध्र प्रदेश, मैसूर तथा केरल सभी राज्यों में अग्नि-मृत्तिकाएँ मिलती हैं। मद्रास के उत्तर अरकाट तथा दक्षिण अरकाट जिलों के क्रमशः रानीपेट तथा नेल्लीकुप्पम में तथा चिंगलपेट में श्री पेरुम्बुदूर में भी ये निक्षेप पाये गये हैं। दक्षिण आरकोट के नेवेली लिग्नाइट क्षेत्र में इन मृत्तिकाओं के प्राप्त होने की सूचना मिली है। आन्ध्र प्रदेश के गुन्टूर जिले में ओंगोले के समीप वेमावरम में भी गोंडवाना शिलाएँ इन मृत्तिकाओं के सिध्मों से समृद्ध हैं। मैसूर राज्य में अग्निमृत्तिकाएँ बंगलोर जिले के थिन्नालू तथा होसकोटे तालुकों व नन्दागुदी तथा कोलार जिले के कराडीबन्दे नामक स्थानों में खनित की जाती हैं। कोचीन के त्रिचूर तालुका में किजुपिल्लिक्करा से भी अग्निमृत्तिकाओं की प्राप्ति की जाती है। त्रावणकोर में अल्वाये तथा क्विलोन में कई कारखाने अग्निमृत्तिकाओं से तापरोधी

ईंटों का निर्माण करते हैं। आन्ध्र प्रदेश के निज़ामाबाद जिले में अंटारगाँव के समीप की पहाड़ियों तथा कोणासमुद्रम् में भी अग्निमृत्तिकाएँ मिलती हैं।

सौराष्ट्र में थानगढ़ में तथा बगलाला, केरवाली, लखतर, कंकावती, धोली तथा धांगध्रा के कई स्थानों में अग्निमृत्तिकाएँ बतायी जाती हैं। थानगढ़ की मृत्तिकाओं का खनन स्थानीय निवासी ही अग्नि-ईंटों के निर्माण के लिए करते हैं। बड़ौदा में माता की टकरी, पंचमहाल में दालोल तथा राजपुर, ईदर में हिम्मतनगर तथा कच्छ में देवपूर आदि स्थानों में भी अग्निमृत्तिकाओं के विद्यमान होने की सूचना मिली है।

उत्पादन व खपत

भारत के प्रमुख अग्नि-मृत्तिका-उत्पादक राज्यों में आन्ध्र प्रदेश, बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर तथा उड़ीसा के नाम उल्लेखनीय हैं। बिहार देश का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। सन् १९५८ में उस ने सारे देश के उत्पादन का ३८ प्रतिशत भाग अकेले ही उत्पन्न किया। भारत के विभिन्न राज्यों का उत्पादन निम्न प्रकार है—

	१९५७		१९५८	
	मात्रा (मेट्रिक टन में)	मूल्य (रु., ०००)	मात्रा (मेट्रिक टन में)	मूल्य (रु.. ०००)
आन्ध्रप्रदेश	—	—	७११	६
बंगाल	४१,५०८	२०९	२०,२४५	११६
बिहार	५२,२५३	३८५	७४,८८०	६४७
मध्यप्रदेश	४७,६५५	३२२	५८,०४५	३९३
मद्रास	४,४४१	१५	६,९१६	२४
मैसूर	९७४	१०	५,३६४	५३
उड़ीसा	१९,३४५	३२३	२९,१७१	४४९
योग	१६६,१७६	१,२६४	१९५,३३२	१,६८८

सन् १९५६ में तापरोधी पदार्थों की माँग का अनुमान लगभग २८०,००० टन था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक यह लक्ष्य बढ़ाकर ६००,००० टन कर दिया गया है। अग्निमृत्तिकाएँ तापरोधी पदार्थों के निर्माण में प्रमुख कच्चे पदार्थ

के रूप में आती हैं, अतः इनका उत्पादन भी पर्याप्त अंशों तक बढ़ जायगा। सन् १९५८ में इन मृत्तिकाओं की खपत का अनुमान १९५,००० मेट्रिक टन था।

निर्यात

सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने क्रमशः ४०४ तथा २१८ मेट्रिक टन अग्नि-मृत्तिकाओं का निर्यात किया, जिसका मूल्य क्रमशः ४८,००० रु० तथा २५,००० रु० हुआ। भारत से इस मृत्तिका का आयात करनेवाले देश पाकिस्तान (पूर्वी), अफगानिस्तान तथा बर्मा थे।

डोलोमाइट (Dolomite)

डोलोमाइट कैलशियम तथा मैग्नीशियम का कार्बोनेट है। इसमें कैलशियम कार्बोनेट तथा मैग्नीशियम कार्बोनेट की मात्रा क्रमशः ५४.३५ प्रतिशत तथा ४५.६५ प्रतिशत होती है। यदि ऑक्साइडों की गणना की जाय तो इसमें ३०.४ प्रतिशत कैलशियम ऑक्साइड तथा २७.७ प्रतिशत मैग्नीशियम ऑक्साइड होता है। तापरोधी गुणों में यद्यपि यह मैग्नेसाइट का सामना नहीं कर सकता तथापि सस्ता होने के कारण इसकी महत्ता बहुत बढ़ गयी है और तापरोधी पदार्थों के निर्माण में इसका उपयोग दिन प्रति दिन वृद्धि पर है।

भारत में डोलोमाइट के विस्तृत निक्षेप विद्यमान हैं किंतु दुर्भाग्य का विषय है कि अभी तक इन निक्षेपों की न तो ठीक से गणना की गयी है और न विभिन्न वर्गों के डोलोमाइट का वैज्ञानिकन ही हुआ है।

इस समय देश में डोलोमाइट की सर्वोत्तम खानें उड़ीसा में सुन्दरगढ़ जिले के बीरमित्रपुर तथा पनपोश नामक स्थानों में स्थित हैं। ये प्राप्तिस्थान गंगपुर समपनति (anti-clinorium) में बीरमित्रपुर संघ के अन्तर्गत आते हैं। पूर्व में सुकरा से लेकर ईब नदी को पार करते हुए सम्बलपुर तक ६० मील के विस्तार में ये निक्षेप फैले हुए हैं। गंगपुर में अन्य निक्षेप धरुआडीही, कुकुरभुका, खाटकुर-वहल, लंजीबेरना, आमघाट तथा बेलडीह में पाये जाते हैं। इनमें से अधिकांश निक्षेप चूना पत्थर के साथ आयोजित हैं। सूक्ष्म-कणीय स्थूल डोलोमाइट जगदाह तथा पत्रपाली के समीप काटेपुर झरिया में मिलता है। बीरमित्रपुर के पूर्व में पुरनापानी में २००० फुट लम्बी तथा ३०० फुट चौड़ी डोलोमाइट की एक पेटिका मिली है। पश्चिमी सुन्दरगढ़ में डोलोमाइट-मय संगमरमर की एक पेटिका लिफ-

रीपारा में भी पायी गयी है: यह एक मील लम्बी तथा लगभग ७० गज चौड़ी बतायी जाती है। सम्बलपुर जिले में सुलाई नामक स्थान में ५० लाख टन डोलोमाइट होने का अनुमान है। इसी जिले का अन्य प्राप्ति-स्थान पुटका है जहाँ डोलोमाइट सिलिकामय है। कोरापुट में कोन्डाजोदी के समीप भी सिलिकामय डोलोमाइट मिलता है। इसी जिले में कोलाब घाटी में एक मील तक अपेक्षाकृत विशुद्ध वर्ग का डोलोमाइट मिलता है।

मध्यप्रदेश के जबलपुर-बेतूल, छिन्दवाड़ा तथा सिवनी जिलों में कई स्थानों पर डोलोमाइट-मय संगमरमर पाये जाते हैं। जबलपुर जिले में भेड़ाघाट के संगमरमर बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उत्तम प्रकार का तापरोधी वर्ग का डोलोमाइट द्रुग जिले में कोदवा के उत्तर-पूर्व में मिलता है। यहाँ भण्डारों की अनुमानित मात्रा २.५ करोड़ टन है। बिलासपुर में अकलतरा तथा जयरामनगर के समीप एवं बाराद्वार में प्राप्त होनेवाला डोलोमाइट इस्पात उद्योग में प्रयुक्त होने के लिए भेजा जाता है। चाँदा के वरोरा क्षेत्र तथा बरार की वुन तहसील में भी इस प्रकार के कुछ निक्षेप देखे गये हैं। रीवाँ में जायी तथा उमरिया के समीप डोलोमाइट के निक्षेप विद्यमान हैं। धार जिले के संगमरमर भी डोलोमाइट-मय हैं।

राजस्थान में मेवाड़ के राजनगर संगमरमर तथा जयपुर और अलवर के रैयातो संगमरमर वास्तव में लगभग पूर्णरूप से डोलोमाइटमय हैं। यही तथ्य किशनगढ़ में टोंकारा के तथाकथित अजबगढ़ चूना-पत्थरों के सम्बन्ध में लागू होता है। ऐसा समझा जाता है कि बाँसवाड़ा तथा झारी (डूंगरपुर) के संगमरमर भी डोलोमाइटमय हैं। इसी प्रकार के पत्थर बड़ोदा (गुजरात) के माटीपुरा में, छोटा उदयपुर के वन्नार तथा देवहटी स्थानों में तथा जम्बूघोड़ा के उत्तरी भाग में मिलते हैं। गोवा के पूर्व में भी पर्याप्त मात्रा में डोलोमाइट भीमगढ़ में पाया जाता है। बिहार में सिंहभूम जिले में चायबासा के निकट पुटादा के पालामऊ जिले, कई स्थानों पर तथा शाहाबाद जिले में बजारी के चूना-पत्थर पर्याप्त अंशों तक डोलोमाइटमय हैं। बंगाल की कुछ पर्वतमालाओं में भी डोलोमाइट विद्यमान है।

दक्षिण भारत में भी कई स्थानों पर डोलोमाइट अथवा डोलोमाइटमय चूना-पत्थर के निक्षेप मिलते हैं। आन्ध्रप्रदेश के कुडप्पा, अनन्तपुर तथा कुर्नूल जिलों से होती हुई सिलिकामय डोलोमाइट की एक पेटिका जाती है। किन्हीं स्थानों पर तो इसकी चौड़ाई चार मील तक हो जाती है। डोलोमाइटमय मणिभीय

चूना पत्थरों के निक्षेप विशाखापत्तनम् (आ० प्र०) तथा सलेम (मद्रास) में प्राप्त होते हैं। मैसूर के टुमकुर, शिमोगा तथा चितलद्रुग जिलों में भी कुछ इस प्रकार का पत्थर मिलता है। इन जिलों के निक्षेप बड़े समृद्ध प्रतीत होते हैं। शिमोगा जिले में शंकरगुड्डा की खनियों से प्राप्त पत्थर को इस्पात-उद्योग में प्रयुक्त किया जाता है तथा मैसूर लोहा व इस्पात वर्क्स अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति इन्हीं निक्षेपों से प्राप्त पदार्थ से करते हैं।

हिमालय पर्वतमालाओं के अन्तर्गत कश्मीर से लेकर नेपाल तथा और भी आगे भूटान तथा आसाम तक डोलोमाइट अथवा डोलोमाइटिक चूना-पत्थरों के निक्षेप विद्यमान हैं। प्रमुख निक्षेप जम्मू-कश्मीर, व्यास-घाटी, कुल्लू, मण्डी, सतलज घाटी, शाली श्रेणी, सोलन तथा सिरमूर में, उत्तर प्रदेश के देहरादून, टेहरी गढ़वाल तथा नैनीताल जिलों में स्थित हैं। कुमाऊँ पहाड़ियों तथा नेपाल के अनेक भागों में भी विपुल मात्रा में इन पत्थरों के निक्षेप मिलते हैं।

उत्पादन तथा खपत

सन् १९५८ में पूर्व वर्ष की अपेक्षा डोलोमाइट उत्पादन में २४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी उड़ीसा ने अकेले ही सारे देश के उत्पादन का ९५ प्रतिशत से भी अधिक भाग उत्पन्न किया। शेष भाग मध्यप्रदेश, मैसूर तथा बिहार से आया। सन् १९५७ तथा १९५८ में सारे देश का उत्पादन क्रमशः १४३,२२३ तथा १७७,४६९ मेट्रिक टन रहा, जिसका मूल्य क्रमशः २,०१४,००० तथा २,३३५,००० रु० हुआ।

सन् १९५८ में डोलोमाइट की खपत लगभग १७५,००० टन हुई, जिसका अधिकांश भाग इस्पात-उद्योग में प्रयुक्त हुआ।

मैग्नेसाइट (Magnesite)

मैग्नेसाइट, मैग्नीशियम का कार्बोनेट है तथा मैग्नीशिया प्राप्त करने का प्रमुख स्रोत है। उद्योगों में दो विभिन्न रूपों में इस मैग्नीशिया का प्रयोग किया जाता है। खनिज मैग्नेसाइट को किल्न (Kiln) के भीतर जब १०००° सें० से १२००° सें० तक गरम किया जाता है तो उसमें उपस्थित कार्बन डाई-आक्साइड गैस का अधिकांश भाग निकल जाता है, यद्यपि उसमें २ या ३ प्रतिशत कार्बन डाई-

आक्साइड फिर भी बनी रहती है। इस प्रकार उत्पन्न मैग्नीशिया के दो मुख्य गुण होते हैं—प्रथम तो वह आर्द्रता को प्रचूषित कर सकता है; दूसरे, वायु से कार्बन डाई-आक्साइड को ले सकता है। इस प्रकार के मैग्नीशिया को कॉस्टिक मैग्नीशिया की संज्ञा दी गयी है। इसका उपयोग सौरेल सीमेन्टों (Sorel Cements) के निर्माण में किया जाता है। इस प्रकार के सीमेन्टों से सार्वजनिक भवनों, अस्पतालों, रेल के डब्बों, जलयानों तथा फैक्टरियों के फर्श आदि बनाये जाते हैं। ये सीमेन्ट कठोरता तथा दृढ़ता तो प्रदान करते ही हैं, साथ ही इन भवनों की धूल तथा आग से रक्षा भी करते हैं। इनका उपयोग अपघर्षी पदार्थों के रूप में भी होता है। इनके अतिरिक्त साँचे बनाने, प्लास्टरों के निर्माण, दीवारों के लिए पट (Wall Boards) बनाने, विसंवाहन पदार्थों (Insulating materials) तथा रबर आदि के विधायन में भी यह काम आता है। कॉस्टिक मैग्नीशिया को जब और भी गरम किया जाता है तो १५००°—१६००° सें० पर यह 'सादित मैग्नीशिया' (Sintered Magnesia) में परिवर्तित हो जाता है। इसमें लगभग ३ प्रतिशत कार्बन डाई-आक्साइड ही शेष रहती है। इसको इस्पात-भट्ठियों के लिए तापरोधी ईंटों, ताँबे और सीसे के विद्रावण और शोधन के लिए भट्ठियों के निर्माण, एल्यूमीनियम तथा ताँबे की मिश्रधातुओं के लिए द्रवण भट्ठियों, सीमेन्ट किल्न तथा रासायनिक भट्ठियों के निर्माण में प्रयोग किया जाता है। मैग्नीशिया को जब विद्युत् भट्ठी में २५००° सें० तक गरम किया जाता है तो यह एक अत्यन्त स्थायी मणिभीय पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है। यह पदार्थ उच्च कोटि का तापरोधी पदार्थ है जो उच्च तापक्रमों पर रासायनिक क्रियाशीलता रोधन कर सकता है। इस प्रकार तापरोधी पदार्थों की सूची में मैग्नेसाइट तथा इसके उत्पादनों ने अपना प्रमुख स्थान बना लिया है।

भारत में जो मैग्नेसाइट प्राप्त होता है उसको तीन व्यापारिक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहला तो सूक्ष्म मणिभीय मैग्नेसाइट, जो दक्षिण भारत में कई स्थानों पर मिलता है। दूसरा वर्ग स्थूल रूप से मणिभीय मैग्नेसाइट का है जो उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले में दीवालथाल तथा अन्य स्थानों में मिलता है। तीसरे मणिभीय प्रकार के मैग्नेसाइट को ब्रियुनेराइट (Breunnerite) का नाम दिया गया है। इसमें ५ प्रतिशत लौह कार्बोनेट रहता है तथा यह बम्बई के देवमोरी (ईडर) नामक स्थान में एवम् राजस्थान में डूंगरपुर के समीपस्थ क्षेत्रों में प्राप्त हुआ है। जहाँ तक मैग्नेसाइट के भारतीय निक्षेपों के खनन तथा

उनके आर्थिक शोषण का प्रश्न है, अभी तक केवल दक्षिण भारत के निक्षेपों से ही मैग्नेसाइट की प्राप्ति व्यापारिक स्तर पर की जा सकी है। इन निक्षेपों से प्राप्त मैग्नेसाइट श्वेत, कठोर तथा भिदुर (Brittle) होता है।

मद्रास राज्य के सलेम जिले के निक्षेप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। जिन पहाड़ियों में मैग्नेसाइट पाया जाता है उनको चॉक-हिल्स (Chalk Hills) का नाम दिया गया है। इन पहाड़ियों के चारों ओर के मैदान बायोटाइट-नाइसों तथा चार्नोकाइट द्वारा निर्मित हैं। ये पहाड़ियाँ ड्यूनाइट से निर्मित हैं जिनमें अनियमित पट्टिकाओं के रूप में मैग्नेसाइट मिलता है। इन पट्टिकाओं की मोटाई साधारणतः कुछ इंच ही होती है, यद्यपि कहीं कहीं ३ फुट अथवा उससे भी अधिक मोटाई की पट्टिकाएँ भी देखी गयी हैं। सलेम के इन निक्षेपों में खनन का संचालन मैग्नेसाइट सिन्डीकेट लि० (सलेम) तथा सलेम मैग्नेसाइट लि० द्वारा होता है।

इनके अतिरिक्त मैसूर राज्य के मैसूर तथा हसन जिलों में डोडकन्या तथा डोडकातूर में मैग्नेसाइट के साधारण प्रकार के निक्षेप मिलते हैं। यहाँ पर मैग्नेसाइट की पट्टिकाएँ सर्पेन्टीन (Serpentine) में मिलती हैं जो स्वयं अति-क्षारीय शिलाओं में उपस्थित ओलिविन (Olivine) के जलीकरण (Hydration) द्वारा व्युत्पन्न हुई है। टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि० इन निक्षेपों से मैग्नेसाइट की प्राप्ति करती है। दक्षिण भारत के अन्य साधारण निक्षेप त्रिचनापल्ली, कुर्नूल, बेलारी तथा कुर्ग में विद्यमान हैं। सलेम तथा मैसूर के निक्षेपों में अनुमानतः सौ फुट की गहराई तक प्रायः १० करोड़ टन खनिज संचित है।

अन्य मैग्नेसाइट निक्षेप, जिनका यहाँ उल्लेख किया जा सकता है, सिंहभूम में भीतरदारी के उत्तर-पश्चिम में तथा उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले में स्थित हैं। गत कुछ समय पूर्व ही अल्मोड़ा जिले में ग्री-छिना के समीप मैग्नेसाइट के विशाल निक्षेपों का पता चला है।

उत्पादन तथा निर्यात

इधर कुछ वर्षों से मैग्नेसाइट खनिज का उत्पादन वृद्धि पर है। भारत के प्रमुख एवम् अनन्य उत्पादक राज्य मद्रास तथा मैसूर हैं, जिसमें मद्रास राज्य ने सन् १९५८ में कुल उत्पादन का ९६ प्रतिशत भाग उत्पन्न किया है। दोनों राज्यों का सन् १९५७ तथा १९५८ का उत्पादन निम्न प्रकार था —

राज्य	१९५७		१९५८	
	उत्पादन (मेट्रिक टन में)	मूल्य ('०००रु० में)	उत्पादन (मेट्रिक टन में)	मूल्य ('०००रु० में)
मद्रास	८८,९२४	१,६८१	१००,५५८	१,६१०
मैसूर	१,३८८	११४	३,६७८	१८३
योग	९०,३१२	१,७९५	१०४,२३६	१,७९३

देश में उत्पादित खनिज का एक बड़ा भाग देश में ही तापरोधी ईंटों के निर्माण में प्रयुक्त होता है, अवशेष खनिज विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। सन् १९५७ तथा १९५८ में क्रमशः २१,७८६ तथा १९,८९९ मेट्रिक टन खनिज का निर्यात विदेशों को किया गया, जिससे क्रमशः ३,६४९,००० तथा ३,२०७,००० रु० विनिमय मुद्रा के रूप में प्राप्त हुए। भारत से मैग्नेसाइट आयात करनेवाले प्रमुख देश इंग्लैण्ड तथा जापान हैं। जहाँ हम लाखों रुपये का मैग्नेसाइट विदेशों को निर्यात करते हैं वहाँ हमें मैग्नेसाइट की कुछ मात्रा विदेशों से भी आयात करनी पड़ती है। सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने क्रमशः १,४०३ तथा ९३१ मेट्रिक टन मैग्नेसाइट का आयात किया जिसका मूल्य क्रमशः ७३४,००० तथा ४४७,००० रु० हुआ। भारत को मैग्नेसाइट निर्यात करनेवाले देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, चेकोस्लोवाकिया तथा इटली के नाम उल्लेखनीय हैं।

कायनाइट (Kyanite)

ऊष्मसह द्रव्यों के निर्माण में इस खनिज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संसार में केवल तीन देश ही ऐसे हैं जहाँ कायनाइट के निक्षेप विद्यमान हैं, और ये हैं संयुक्त-राज्य अमेरिका, केनिया तथा भारत। भारत के निक्षेप संसार-प्रसिद्ध है। इन निक्षेपों ने अनेक औद्योगिक देशों को उत्तम प्रकार का कायनाइट पर्याप्त मात्रा में प्रदान किया है। इस खनिज को आयात करनेवाले देशों में इंग्लैण्ड, अमेरिका, बेल्जियम, जर्मनी तथा कुछ अन्य यूरोपीय देश प्रमुख है। इधर कुछ वर्षों से इस खनिज का थोड़ा सा भाग देश में ताप-रोधी सामग्री के निर्माण में प्रयुक्त होने लगा है। इस उद्योग की प्रगति के साथ ही कायनाइट की माँग भारत में और भी बढ़ने की पूरी संभावना है।

भारत में कायनाइट का उपयोग--

कायनाइट, सिलीमिनाइट-परिवार का ही एक सदस्य है तथा इसकी रासायनिक संरचना भी वही है जो सिलीमिनाइट की है। यह ६३.२ % एल्यूमिना (Alumina) तथा ३६.८ % सिलिका (Silica) द्वारा निर्मित होता है। तापक्रम के १३५०° सें० से अधिक होने पर खनिज कायनाइट, एल्यूमीनियम सिलीकेट में, जिसको म्यूलाइट (Mullite) कहते हैं, परिवर्तित हो जाता है। म्यूलाइट में ७१.८ % एल्यूमिना की मात्रा रहती है। इसी विशेषता के कारण कायनाइट का प्रयोग काँच तथा मृच्छिल्प (Glass & Cer mics) उद्योगों में ताप-रोधी पदार्थ के रूप में होता है। विशेष विसंवाहक (Insulators) के निर्माण में भी इसका उपयोग किया जाता है।

भारत में कायनाइट का वितरण

कायनाइट बहुधा कायान्तरित शिलाओं (Metamorphic rocks) के साहचर्य में मिलता है यद्यपि कुछ इस प्रकार के निक्षेप भी हैं जिनका उद्भव आर्द्रतापीय विधि से भी हुआ है।

कायनाइट के खनन योग्य निक्षेप अधिकतर बिहार में ही सीमित हैं तथा खर्सवान की लप्साबुरू (सिंहभूम) के निक्षेप संसार के सर्वाधिक विशाल एवम् उत्तम निक्षेप हैं। यहाँ पर खनन-कार्य इण्डियन कॉपर कार्पोरेशन द्वारा कई खानों (Quarries) में किया जाता है। कायनाइट अधिकतर धरातल से बहुत कम गहराई पर ही उपलब्ध है और अधिकांश खनिज इन्हीं तलीय निक्षेपों से प्राप्त हो जाता है। यह खनिज यहाँ पर रोडों (Pebbles) तथा शिलाखण्डों (Boulders) के रूप में, जिनका व्यास १ इंच से ६ फुट तक हो सकता है, प्राप्त होता है। ये ६ फुट तक की गहराई में मिलते हैं। यहाँ प्राप्त शिलाएँ कायनाइट-क्वार्ट्ज (Kyanite Quartz) तथा केवल कायनाइट हैं, जिनमें कायनाइट फलकित (Bladed) मणिभों (Crystals) के रूप में विद्यमान है। वास्तव में कायनाइट के इन निक्षेपों का विस्तार सिंहभूम की उस ८० मील लम्बी पेटी में है जो केराइकेला से खर्सवान तथा सरायकेला होती हुई शिरबाई डुंगरी तक जाती है। इस प्रकार बिहार के अन्य निक्षेप धागीदीह के समीप बादिया, बाकरा और कन्यालुका के समीप तथा सिंहभूम जिले में मोहनपुर एवम् उपरसाली में स्थित हैं। कुछ अल्प महत्त्व के निक्षेप उड़ीसा में ढेंकानल, बोनाई तथा अन्य स्थानों में प्राप्त

हुए हैं। अशुद्ध एवम् महत्त्वहीन निक्षेप कायनाइट-टोपाज, ड्यूमोर्टाराइट (Dumortierite) शिलाओं के रूप में मोगरा गांगलेवाड़ा, सोने खाड़ी, पवारदावना तथा सरेथी (भण्डारा) में मिले हैं। इनके अतिरिक्त स्थूल फलकित (Coarse bladed) कायनाइट के साधारण निक्षेप आन्ध्र प्रदेश के नैल्लोर जिले में चुन्दी के समीप मालाकोण्डा पहाड़ी, मैसूर के हसन जिले में तथा राजस्थान के अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र में स्थित है।

लप्साबुरू कायनाइट के लिए संसार का अद्वितीय स्थान है तथा यहाँ पर १० फुट की गहराई पर ७ लाख टन कायनाइट के भण्डार होने का अनुमान है।

खनन (Mining)—कायनाइट का खनन खुली हुई खानों (Open quarries) से किया जाता है। इसके अतिरिक्त भूमितल (Surface) से भी इसके बड़े बड़े टुकड़े इकट्ठे किये जाते हैं। लप्साबुरू की कायान्तरित शिलाओं (Metamorphic rocks) तथा घागीडीह (बिहार) के कुछ निक्षेपों को छोड़कर अधिकांशतः कायनाइट शिलाओं को पृथ्वीतल या मिट्टी से संखण्ड (Debris) के रूप में ही निकाला जाता है।

श्रमिकों द्वारा धोने तथा बंधनसभार (Dressing) के अतिरिक्त भारतीय कायनाइट को किसी संकेन्द्रण विधि द्वारा उपयोगी बनाने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह स्वयम् उत्तम प्रकार का तथा पर्याप्त अंशों तक विशुद्ध खनिज होता है।

उपयोग—कायनाइट के अधिक तापक्रम पर म्यूलाइट (Mullite) में परिवर्तित होने के पश्चात् यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। प्रमुख रूप से इसका उपयोग काँच-उद्योग में, एक तापरोधी पदार्थ के रूप में तथा अनेक तापरोधक सीमेन्टों (Cements) में होता है। यह विशेष प्रकार के वैद्युतिक पोर्सलीन, रासायनिक पोर्सलीन, इनेमिल (Enamels) तथा प्रयोगशालोपयोगी पोर्सलीन बनाने के भी काम आता है।

उत्पादन—सन् १९५३-५७ तक भारत में उत्पन्न किये गये कायनाइट के आँकड़े इस प्रकार हैं—

वर्ष	उत्पादन (टनों में)	मूल्य (रुपयों में)
१९५३	१५,३७४	२३,६६,००४
१९५४	४२,३३०	८७,८०,०००
१९५५	११,७४१	१६,७१,०००
१९५६	२०,१३५	४७,१४,०००
१९५७	२३,५०४	५४,६८,०००

भविष्य—इधर कुछ वर्षों से भारत ने कायनाइट के उत्पादन में जो अपना स्थान बना रखा है, उसे समय समय पर अन्य देशों से चुनौती मिलती रहती है। इसके अतिरिक्त म्यूलाइट से निर्मित कुछ उत्पादन पहले से ही प्रतिस्पर्धी के रूप में व्यापारक्षेत्र में आ गये हैं, जो कायनाइट से निर्मित पदार्थों की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। यह भारत के ही हित की बात होगी यदि कच्चे कायनाइट (Raw Kyanite) के स्थान पर उससे निर्मित उत्तम प्रकार के उत्पादन (Product) तथा विधायित (Processed) कायनाइट का निर्यात किया जाय। ऐसी आशा की जाती है कि काँच, मृच्छिल्प तथा विद्युत् उद्योगों में सुनियोजित विस्तार के साथ ही देश की स्वयम् की कायनाइट की खपत पर्याप्त बढ़ जायगी।

सिलीमनाइट (Sillimanite)

सिलीमनाइट एल्यूमिनो-सिलीकेट है। यह बहुधा लम्बे, पतले, सुई के आकार के मणिभों में अथवा विकिरक तंतुओं (Radiating fibres) या स्तम्भाकार पुंजों (Columnar masses) में मिलता है। इसकी कठोरता ६ से ७ तक तथा आ० घ० (Specific Gravity) ३.२३–३.२४ होती है। यह कत्थई, भूरे अथवा हरे वर्ण का होता है। अधिकांशतः इसके साहचर्य में ज़िरकन, कोरण्डम, एण्डालूसाइट (Andalusite) तथा ड्यूमोरटाइराइट (Dumortierite) आदि खनिज प्राप्त होते हैं। यह १५४५° सें० तक स्थायी (Stable) रहता है और उसके पश्चात् म्यूलाइट (Mullite) में परिवर्तित हो जाता है, जिससे सिलीमिनाइट के आयतन में अत्यन्त अल्प परिवर्तन होता है और फलस्वरूप आपेक्षिक घनत्व भी थोड़ा घट जाता है। इसकी तापीय संचालकता (Thermal Conductivity) ३००° सें० पर १.४ तथा ११००° सें० पर १.२५ ब्रिटिश तापीय एकक (B. T. U.) है अर्थात् पर्याप्त कम है।

वितरण—सिलीमिनाइट संसार में अनेक स्थानों पर मिलता है, किन्तु कुछ ही ऐसे निक्षेप हैं जो वाणिज्य स्तर पर उत्पादन क्षम हैं। इस प्रकार के निक्षेप मुख्यतः केवल भारत में ही सीमित हैं। खनन योग्य कुछ निक्षेप शायद अफ्रीका में प्राप्त हो जायँ, ऐसी आशा की जाती है, किन्तु अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। भारत में यह खनिज आसाम की खासी पहाड़ियों में नोंगमवाइत (Nongmaweit) के उत्तर-पूर्व में १½ मील की दूरी पर सोनापहाड़ में प्राप्त होता है। दूसरे मुख्य निक्षेप मध्य प्रदेश के सीधी जिले में पिपरा नामक स्थान पर स्थित हैं। पोहरा

(भण्डारा) तथा केरल प्रदेश की त्रावणकोर बालुतटीय रेत (Beach Sand) में भी यह मिलता है। आजकल केवल सोनापहाड़ तथा पिपरा की खानों से ही सिलीमनाइट का खनन किया जाता है।

निक्षेपों का वर्णन

सोनापहाड़—यह स्थान खासी पहाड़ियों में ३००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। उच्चस्थली (Plateau) के मुख्य शिलाप्रकार (Rock types) कणाश्म-दलाश्म (Granite Gneiss) तथा बायोटाइट-सिलीमनाइट-कॉर्डीयराइट-स्फटिक (Biotite-Sillimanite-Cordeirite-Quartz) शिलाएँ हैं। यह खनिज सिलीमिनाइट के स्फटिक-सुभाजा (Schist) में प्राप्त होता है। सिलीमनाइट के साथ कोरण्डम भी मिलता है। यह सिलीमनाइट-कोरण्डम निक्षेप स्थूल (Massive) हैं। पर कोरण्डम कुछ ही स्थानों पर अल्प मात्रा में मिलता है। अधिकतर निक्षेप ऐसे ही हैं जिनमें कोरण्डम या तो अल्पतम मात्रा में ही प्राप्त होता है अथवा केवल स्थूल-सिलीमनाइट ही मिलता है। आसाम-सिलीमनाइट बहुत उत्तम वर्ग का होता है तथा इसमें अल्प मात्रा में ही रूटाइल (Rutile), बायोटाइट तथा लोहा आदि अशुद्धियाँ रहती हैं।

खनन—सिलीमनाइट बड़े-बड़े शिलाखण्डों (Boulders) के रूप में, जिनका व्यास १० फुट तथा भार ४० टन तक होता है, प्राप्त होता है। इन विशाल शिलाखण्डों को छोटे छोटे टुकड़ों में तोड़ दिया जाता है। इसके बड़े बड़े टुकड़ों को एक घनफुट अथवा और अधिक बड़े आकार के टुकड़ों (Blocks) का रूप दिया जाता है। शेष आकार-हीन टुकड़ों तथा शिला-चूर्ण (Debris) को अनेक आकार के कणों के चूर्ण में पीस लिया जाता है, जिनका उपयोग अनेक तापरोधी कार्यों में किया जाता है।

भण्डार—लगभग ढाई लाख टन सिलीमनाइट इस क्षेत्र से प्राप्त होने की सभावना है।

पिपरा—पिपरा ग्राम (२३°५७ : ८२°४२) पूर्व रीवाँ राज्य (अब मध्य प्रदेश) के दक्षिण-पूर्वी कोने में स्थित है। सिलीमनाइट के साथ मिश्रित कोरण्डम के निक्षेप इस ग्राम से लगभग आधा मील दूरी पर हैं। मुख्य शिला-प्रकार आर्कियन-कणाश्म-नाइस (Archaeon Granite Gneiss) है। इसके पश्चात् क्रमशः हॉर्नब्लेण्ड-शिष्ट (Hornblende Schist) आती है। आर्थिक उपयोग के अन्य

शिला-प्रकारों में सिलीमनाइट-शिष्ट (Sillimanite Schist) महत्त्वपूर्ण है। इसमें कुछ अशुद्धियाँ यूफायलाइट (Euphyllite), कोरण्डम, रूटाइल, टूर्नालीन (Tournaline) तथा ड्यूमोरटाइराइट (Dumortierite) आदि होती हैं। यहाँ का सिलीमिनाइट हरे-भूरे वर्ण का है तथा आसाम सिलीमनाइट से अपेक्षाकृत अधिक कठोर है।

खनन—विपुल मात्रा में सिलीमनाइट के गोल शिला-खण्ड (Boulders) धरातल पर मिट्टी में खचित (Embedded) हुए पाये जाते हैं। इन शिला-खण्डों का व्यास कुछ इंचों से लेकर कई फुट तक होता है। इनकी कुल मात्रा अत्यन्त अधिक है तथा अभी तक सिलीमनाइट का खनन केवल इन शिलाखण्डों (Boulders) को एकत्रित करने तक ही सीमित था। जब ये शिलाखण्ड पर्याप्त बड़े आकार के होते हैं तब इनको छोटे टुकड़ों में तोड़ा जाता है। यह कार्य सिलीमनाइट की कठोरता के कारण अत्यन्त कठिन है। इन शिलाखण्डों (Boulders) की मात्रा इतनी अधिक है कि आनेवाले अनेक वर्षों तक केवल इनसे ही सिलिमनाइट की पर्याप्त प्राप्ति हो सकेगी। इसके अतिरिक्त यह पहाड़ की चोटी पर भी कठोर शिला के रूप में प्राप्त होता है जहाँ पर भारी विस्फोट के द्वारा खनन-कार्य सम्भव है।

भण्डार (Reserves)—कुल भण्डारों के सम्बन्ध में अनुमान लगाना कठिन है, क्योंकि अभी तक यह ज्ञात नहीं हो सका है कि किस गहराई तक सिलीमनाइट मिलेगा। डा० डन (Dr. Dun) के अनुसार विशुद्ध सिलीमनाइट की मात्रा लगभग एक लाख टन है। वास्तविक मात्रा इससे कहीं अधिक भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त ऐसे सिलीमनाइट खनिज को, जिसमें अशुद्धियाँ हैं, यदि उचित विधि से साधित (Treat) किया जाय तो भविष्य में इसके भण्डार और भी अधिक बढ़ जायँगे। वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि केवल शिलाखण्डों (Boulders) से ही एक लाख टन अथवा उससे भी अधिक सिलीमनाइट की प्राप्ति होनी चाहिए।

परिवहन (Transportation)—कुछ वर्ष पूर्व इस क्षेत्र में कोई भी सड़क नहीं थी, तब बैलगाड़ियों से सिलीमनाइट ढोया जाता था। अब मिर्जापुर से हनुमना होते हुए बेढन तक सड़क बन जाने के कारण यातायात में पर्याप्त सुविधा हुई है, किन्तु वर्षा ऋतु में इस क्षेत्र की नदियों तथा नालों में बाढ़ आने के कारण इस खनिज को ढोना असंभव हो जाता है। रिहन्द बाँध (Rihand Dam) बनने

से जो जलाशय (Reservoir) बनेगा उससे यातायात अत्यन्त सुलभ हो जायगा और तब इस खान का विकास और भी अच्छे स्तर पर किया जा सकेगा।

खपत--सिलीमनाइट की माँग अधिकतर विदेशों से होती है, फिर भी बंगाल के कुछ तापरोधी-उत्पादन निर्माता अपने यहाँ इस खनिज को व्यवहार में लाते हैं। काँच-भट्ठियों (Glass-furnaces) के लिए उपयुक्त आकार के टुकड़ों (Blocks) के बनाने में मुख्य रूप से इसका उपयोग किया जाता है।

उत्पादन एवं निर्यात (Production and Export)--सन् १९४७ ई० में सिलीमनाइट का उत्पादन केवल २३६ टन था, जिसका मूल्य २०,००० रु० हुआ। पिछले दस वर्षों में इसका उत्पादन पर्याप्त वृद्धि पर रहा और १९५६ में ४,६३७ टन सिलीमनाइट निकाला गया, जिससे २३४,००० रुपये प्राप्त हुए। १९५७ में उत्पादन में और भी अधिक वृद्धि हुई और वह ७,४१७ टन तक पहुँचा, जिसका मूल्य ४४४,००० रु० हुआ। उत्पादन के साथ ही सिलीमनाइट के निर्यात में भी पर्याप्त वृद्धि हुई, क्योंकि देश में स्थानीय खपत बहुत ही कम है और उत्पादन का अधिकांश भाग विदेशों को निर्यात किया जाता है। सिलीमनाइट का आयात करनेवाले देशों में जापान, इटली, इंग्लैण्ड तथा अन्य पश्चिम यूरोपीय देश है। १९५६ और ५७ में क्रमशः ५,२५१ तथा ५,६२४ टन सिलीमनाइट का निर्यात किया गया, जिससे क्रमशः १,५८९,००० एवम् १,८१२,००० रुपये मल्य की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।

सिलीमनाइट उद्योग का भविष्य

भारत में विशुद्ध सिलीमनाइट की मात्रा लगभग ३ लाख टन है और यदि अशुद्ध सिलीमनाइट का उचित विधियों द्वारा विशुद्धीकरण किया जाय तो यह मात्रा १० लाख टन तक पहुँच सकती है। भारत में इस समय सिलीमनाइट का उपयोग केवल तापरोधी ईंटों तथा कटे हुए टुकड़ों (Cut Blocks) के निर्माण में होता है, किन्तु मोटरगाड़ियों के स्फुलिग-प्लगों (Automobile-Spark-plug) तथा उच्च-विभव विसंवाहकों (High voltage insulators) का निर्माण प्रारंभ होते ही सिलीमनाइट खनिज-उद्योग में प्रमुख एवम् महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लेगा। इन उत्पादनों का निर्माण-कार्य अभी इस देश में प्रारंभ नहीं किया गया है, इसलिए इस ओर व्यक्तिगत एवं सरकारी पूजी (Private and

public enterprise) दोनों को ही ध्यान देने की आवश्यकता है। इस तापरोधी खनिज में भारत का एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी देश पूर्व अफ्रीका का केनिया प्रदेश है।

ग्रेफाइट (Graphite)

ग्रेफाइट भी हीरे की भाँति विशुद्ध कार्बन का ही एक रूप है। आज के इस अणु-युग में यह खनिज सामरिक महत्व का हो गया है तथा परमाणविक प्रतिक्रिया-वाहकों में 'मॉडरेटर' के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। घरियों के निर्माण के साथ ही इसको तापरोधी पदार्थ के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है। यद्यपि भारत में ग्रेफाइट के पर्याप्त समृद्ध निक्षेप हैं तथापि क्रमानुगत खनन तथा शोधन आदि के न होने के कारण इसका भारतीय उत्पादन अत्यन्त अल्प है अतः अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए देश को अन्य देशों से ग्रेफाइट के आयात पर निर्भर रहना पड़ता है।

भारत के अनेक राज्यों में ग्रेफाइट के निक्षेप विद्यमान हैं। आन्ध्र प्रदेश में गोदावरी, विशाखापत्तनम्, कृष्णा, हैदराबाद आदि जिलों में ग्रेफाइट के निक्षेप हैं। प्रथम तीन जिलों के निक्षेप खोण्डालाइट श्रेणी की शिलाओं के साहचर्य में प्राप्त होते हैं। उड़ीसा में बोलनगिर-पटना, पटनागढ़, बोलगिर तथा टिटीलागढ़ में ग्रेफाइट के उपयोगी निक्षेप विद्यमान हैं। इसी प्रदेश में सम्बलपुर, पटना, कोरापुट, कालाहांडी तथा अथमलिक में साधारण निक्षेप हैं, जिन पर पहले भी खनन-कार्य हो चुका है। अथमलिक (ढेंकानल) की खनियाँ बामुर में स्थित हैं। इनमें ७०-८० प्रतिशत तक स्थिर कार्बन की मात्रा रहती है। ढांडाटोपा में भी इसी प्रकार की कुछ खनियाँ हैं। केरल में त्रावणकोर का ग्रेफाइट लेटराइटिक निक्षेपों के साहचर्य में तथा उनके नीचे स्थित मणिभीय शिलाओं के साथ आयोजित रहता है। मद्रास में तिरुनेलवेली के निक्षेप भी इसी प्रकार के आयोजन में मिलते हैं। मध्य प्रदेश के बेतूल जिले में फाइलाइट शिलाओं से इसकी प्राप्ति होती है। राजस्थान के जयपुर, किशनगढ़, अजमेर-मेरवाड़ा आदि जिलों में तथा मैसूर के कोलार, मैसूर, हसन आदि जिलों में ग्रेफाइट के अनेक निक्षेप है। बिहार में भागलपुर, आन्ध्र प्रदेश में बारंगल, उत्तर प्रदेश में अल्मोड़ा, काश्मीर में उड़ी तहसील तथा सिक्किम में सुंगतांग (Tsungtang) और लाचेन के मध्य भी ग्रेफाइट निक्षेपों के विद्यमान होने की सूचना मिली है।

सिलिका (Silica)

यद्यपि सिलिका का उपयोग चीनी मिट्टी के बरतन तथा मृच्छिल्प उद्योग में कई स्थानों पर होता है, तथापि तापरोधी पदार्थ के रूप में भी इसका अपना महत्त्व है। उपयुक्त प्रकार की सिलिकामय बालू अनेक प्रकार से धातविक भट्ठियों आदि में प्रयुक्त की जाती है। इस प्रकार की विशुद्ध सिलिकामय बालू मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में प्राप्त होती है। अन्य प्रकार की भट्ठियों के निर्माण में सिलिकामय प्राकृतिक पदार्थों, जैसे स्फटिकाश्मों, स्फटिक-शिष्टों तथा स्फटिक-ग्रेनुलाइटों को भी उपयोग में लाया जाता है। इन पदार्थों की प्राप्ति सिंहभूम जिले में राखा तथा केन्दाडीह के मध्य स्थित खनियों से की जाती है। जबलपुर तथा सिंहभूम दोनों ही जिलों में अम्ल इस्पात भट्ठियों के लिए उपयुक्त पदार्थों का खनन टाटा आयरन एण्ड स्टील कं० लि० द्वारा ही किया जाता है। उड़ीसा में भी तापरोधी वर्ग के विशुद्ध स्फटिकाश्म के विशाल निक्षेप बामरा के खजुरिया-प्रवासोनी क्षेत्र में तथा सम्बलपुर में बैघर्रा, झारघाटी तथा गरपाटी के कूटों में विद्यमान हैं। इसी प्रकार मैसूर राज्य के टुमकुर जिले के डोडगुनी क्षेत्र में भी उपयुक्त स्फटिकाश्म के प्राप्त होने की सूचना मिली है। इस स्फटिकाश्म में ९८ प्रतिशत सिलिका तथा शेष २ प्रतिशत लोहा बताया जाता है।

सिलिका द्वारा निर्मित ईंटों का प्रयोग हार्थ-इस्पात भट्ठियों की, जिनमें ताप-क्रम १६५०° सें० तक पहुँच सकता है, छत बनाने में किया जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार की धातविक भट्ठियों, गैस-निर्माण संयंत्रों, विद्युत भट्टियों, कोक-कन्दुओ (Coke Oven), काँच के कारखानों तथा शस्त्रास्त्र निर्माण करनेवाली फैक्टरियों में भी कई स्थानों पर इनका प्रयोग किया जाता है।

रानीगंज कोयला क्षेत्र में इस समय दो फैक्टरियाँ हैं जिनमें सिलिका की ईंटों का निर्माण किया जाता है; कुमारधुबी फायरक्ले एण्ड सिलिका वर्क्स तथा लाल-कोटी वर्क्स। इनका संचालन क्रमशः बर्ड एण्ड कं० लि० तथा बर्न एण्ड कं०लि० द्वारा होता है। भारत में निर्मित सिलिका की ईंटें किसी भी देश में निर्मित इन ईंटों की तुलना में अच्छी सिद्ध हुई हैं तथा लम्बे समय से देश को इन ईंटों का आयात बन्द कर देना पड़ा है।

जिरकोनियम (Zirconium)

जिरकोनियम, बेरीलियम की भाँति विरल (Rare) धातु नहीं है। प्रकृति

में यह ताँबा, सीसा, जस्ता आदि की अपेक्षा अधिक प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। मुख्य ज़िरकोनियम खनिज, जिसका इस धातु के अयस्क के रूप में व्यवहार किया जाता है, ज़िरकोनियम सिलीकेट अथवा ज़िरकन (Zircon), जिसमें ६६% ज़िरकोनियम आक्साइड (Zirconium Oxide) रहता है, तथा आक्साइड अयस्क है, जिसमें ८३% ज़िरकोनियम आक्साइड रहता है। ज़िरकोनियम ने आणविक अभियन्त्रीकरण (Nuclear Engineering) में अपने उच्च द्रवणांक संक्षारण-प्रतिरोध (Corrosion Resistance) तथा अधो-न्यूट्रान तिर्यक् काट (Low Nutron Cross Section) आदि विशेष गुणों के कारण अपना विशेष स्थान बना लिया है। ज़िरकोनियम एक उत्तम प्रकार का तापरोधी पदार्थ है एवं इसके द्वारा निर्मित क्रुसिबल २४००° सें० तक के ताप को सरलता से सहन कर सकते हैं। ज़िरकोनियम का आपेक्षिक घनत्व ६·२५ तथा द्रवणांक (Melting Point) १८६०° सें० है। ज़िरकोनियम धातु तथा इसके आक्साइड ज़िरकोनिया के अनेकों और भी औद्योगिक उपयोग हैं। खनिज ज़िरकन का अर्ध-बहुमूल्य पत्थर (Semiprecious stone) के रूप में प्रयोग किया जाता है। अन्य स्थानों पर ज़िरकोनियम का प्रयोग प्रयोगशालापात्रों (Laboratory Wares), रासायनिक-रोधी भट्ठियों की ईंटों तथा उच्च-तापीय सीमेन्टों (High Temperature Cements) के निर्माण में होता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग इनेमल पात्रों (Enamel Wares), पेन्टों (Paints), मोटरगाड़ियों के लिए इनेमल (Automobiles Enamels), ताप व विद्युत के लिए कुचालक (Insulator) के रूप में, तथा अपघर्षी (Abrasive), वाति-मेन्टल (Gas-Mantles) और रबर को कठोर बनाने एवं श्वेत स्याहियों (White Inks) में होता है। ज़िरकोनियम धातु का प्रयोग वैद्युतिक-नलियों (Electric Tubes), आभापूर्ण प्रकाश लट्टुओं (Flash light Bulbs), वैद्युतिक-संघनकों (Electric Condensers), एक्स-किरण फिल्टरों, लट्टुओं के फिलामेन्टों (Filaments) तथा मिश्रधातुओं आदि के निर्माणकार्यों में भी होता है।

उत्पादन एवं वितरण—लगभग ९००० टन ज़िरकन प्रति वर्ष आस्ट्रेलिया, ब्राजील तथा भारत से प्राप्त होता है। बेडेलाइट (Baddeleyite) केवल ब्राजील में ही विद्यमान है।

भारत में ज़िरकन खनिज के विपुल भण्डार हैं जो बालुतटीय रेत (Beach sand) में प्राप्त होते हैं। यह विस्तृत व्यपघर्षण समुद्रतटीय (Detrital

Littoral) इल्मेनाइट तथा मोनाजाइट निक्षेपों का एक आवश्यक अंग है, जो दक्षिण प्रायद्वीपीय भाग के पूर्वी और पश्चिमी तटों पर कई मील तक फैले संकेन्द्रित विस्तारों में विद्यमान हैं। बालुतटीय रेत में ७% ज़िरकन है जो या तो सूक्ष्म-मणिभों (Fine Crystals) में अथवा कुछ स्थानों पर मणिभीय कणों (Crystalline grains) के रूप में मिलता है। इसके अतिरिक्त बिहार के राँची तथा हजारीबाग जिलों में पठारीय तथा शृंग-टोपिकाओं की अवक्षिप्त और एल्यूवियल मिट्टियों में इस खनिज के विशाल निक्षेप मिले हैं। यद्यपि ज़िरकन के कुल भण्डार तो नहीं आँके गये हैं तथापि ऐसा समझा जाता है कि इसकी अनुमानित मात्रा १ करोड़ टन से अधिक ही होगी। ज़िरकन दक्षिण भारत की चारनोकाइट एवं मोनाजाइट प्रकार (Charnockitic & Monozitic) की शिलाओं, नाइस (Gneisses) तथा शिष्टों (Schists) का प्रारंभिक गौण (accessory) भाग है। भूतलीय पट्टिकाओं (Epigenitic Veins) में भी यह संकेन्द्रित हुआ है। भारतीय जिरकन में, जो त्रावणकोर से प्राप्त होता है, ६६-६७% तक ज़िरकोनियम आक्साइड रहता है। इसका आ० घ० (Sp. Gr.) ४·१-४·८ तथा द्रवणांक २१९०° सें० है। कोयम्बटूर में बहुमूल्य जिरकन मणिभीय चूना-पत्थरों (Crystalline limestones) तथा नेफेलीन साइनाइट (Nepheline Syenite) शिलाओं में मिलता है। त्रावणकोर के एक कारखाने में विशुद्ध जिरकन का निर्माण बालुतटीय रेत से किया जाता है तथा इसमें वैद्युतिक-चुम्बकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार इसको इल्मेनाइट (Ilmenite), रुटाइल (Rutile) तथा मोनाजाइट से पृथक् कर दिया जाता है।

जिरकन कभी अकेला नहीं प्राप्त होता, अधिकतर इसके साहचर्य में अनेकों खनिज, उदाहरणार्थ इल्मेनाइट, एरीज़ोनाइट (Arizonite), मोनाजाइट, रुटाइल, सिलीमनाइट (Sillimanite), गारनेट, बेडेलाइट, चेरालाइट (Cheralite) तथा थोराइट आदि होते है। इसके अतिरिक्त जिरकन में २-२·५% तक हाफनियम (Halfnium) भी रहता है।

परिच्छेद १५

मृच्छिल्प उद्योग में प्रयुक्त खनिज

चीनी मिट्टी (China Clay)

भारत के लगभग सभी भागों में चीनी मिट्टी के निक्षेप विस्तृत रूप से फैले हुए हैं। राजमहल पहाड़ियों में अनेक स्थानों पर केओलीन फ़ेल्सपार के विघटित उत्पाद के रूप में मिलती है। इसी प्रकार गोंडवाना युग के बालू-पत्थर में भी यह प्राप्त होती है। इन पहाड़ियों में इस मिट्टी के मुख्य प्राप्तिस्थान मिर्ज़ाचौकी, हूरा, दुधान, करनपुरा तथा काटंगी में स्थित हैं। बिहार में सर्वोत्तम प्रकार की केओलीन सिंहभूम के समीप हाट गमरिया से आती है। सिंहभूम तथा सरायकेला में कणाश्म तथा अन्य समीपस्थ शिलाओं के अन्तर्गत भी केओलीन पायी जाती है। मानभूम जिले के कई भागों में केओलीन के निक्षेप प्राप्त होते हैं, किन्तु धतारा के समीप जो निक्षेप स्थित हैं वे पर्याप्त उपयुक्त हैं तथा उनमें केओलीन के भण्डार भी प्रचुर हैं। भागलपुर जिले में पथरघट्टा पहाड़ी तथा कसरी पहाड़ी, समुखिया व सतलेतवा एवं राँची जिले के हरीडीह तथा सुरसू नामक स्थानों में भी केओलीन के अच्छे निक्षेप विद्यमान हैं।

उड़ीसा में केओलीन-निक्षेप कोरापुट, सम्बलपुर, गंगपुर तथा क्योंझर जिलों में स्थित हैं। उत्तम वर्ग की केओलीन मयूरभंज जिले में करान्जिया तथा जोशीपुर के पास से एवं क्योंझर शहर से लगभग एक मील दूर स्थित निक्षेपों से आती है। प० बंगाल के बाँकुड़ा जिले में मजमूरा, वेरियाथोल तथा अन्य स्थानों से चीनी मिट्टी आती है। साधारण प्रकार की मृत्तिकाएँ दार्जिलिंग जिले में तथा त्रिपुरा में अगरतला के समीप प्राप्त होती हैं।

मध्य प्रदेश में ग्वालियर जिले के बाला की बावड़ी तथा नावगाँव में धार जिले के हरदासपुर, रीवां के कतोली, सतना जिले के मजपारा तथा अमीरथी, जबलपुर तथा छिन्दवाड़ा आदि में चीनी मिट्टी का खनन किया जाता है। दुग तथा नाँदगाँव

के भी कई भागों में श्वेत मृत्तिकाएँ मिलती हैं। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में चुनार तथा दुद्धी तहसील में चीनी मिट्टी के अच्छे निक्षेप विद्यमान हैं। राजस्थान में जयपुर के बुचारा तथा रन्सू नामक स्थानों पर स्थानीय निवासी ही चीनी मिट्टी का खनन करते हैं। जम्मू तथा कश्मीर में ऊधमपुर जिले के चीनी मिट्टी के निक्षेप विशाल हैं। जंगलगल्ली में तो भूमिगत खनन भी किया जाता है। हिमाचल प्रदेश में बुशहर के लिपा क्षेत्र में केओलीन के प्राप्त होने की सूचना मिली है।

महाराष्ट्र के चीनी मिट्टी के निक्षेपों में बेलगाँव जिले के केरलगी तथा उत्तरी कनारा जिले के होनावार और कैसल रॉक (Castle Rock) के निक्षेप सम्मिलित हैं। ईडर जिले के अरसोरिया एकलारा नामक स्थानों में भी कुछ मृत्तिकाएँ मिलती हैं। गुजरात में रत्नागिरि में मालवन तथा गुजरात में मेहसाना जिले से उच्चवर्गीय मृत्तिकाएँ प्राप्त की जाती हैं। भावनगर, जूनागढ़ तथा राजपुर से प्राप्त चीनी मिट्टी भी बरतन आदि बनाने के लिए उपयुक्त सिद्ध हुई है। कच्छ से प्राप्त होनेवाली मृत्तिकाएँ लिथोमार्ज प्रकृति की हैं।

दक्षिण भारत के चारों राज्यों, केरल, मैसूर, आन्ध्र तथा मद्रास में चीनी मिट्टी तथा केओलीन के विशाल भण्डार विद्यमान हैं, किन्तु शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निक्षेप त्रावणकोर में स्थित हैं। ये निक्षेप समुद्रतट के किनारे-किनारे उत्तर में चंगनाचेरी के समीप से लेकर दक्षिण में त्रिवेन्द्रम् के और आगे तक चले गये हैं। सर्वोत्तम निक्षेप कुन्दरा, वरकाला तथा अन्य स्थानों में हैं। कुन्दरा तथा चायानूर (क्विलोन) के निक्षेपों का कार्यसंचालन केरल की राज्यसरकार करती है।

मैसूर भी चीनी मिट्टियों के निक्षेपों से समृद्ध है तथा राज्यसरकार यहाँ भी एक पोर्सलीन फैक्टरी चलाती है। इस पोर्सलीन फैक्टरी के लिए केओलीन की उपलब्धि बंगलोर जिले की अर्जुनबेट्टाहाल्ली तथा गुल्लाहाल्ली की खानों से होती है। हसन जिले में बागेशपुर तथा मैसूर में मेलकोट के समीप एवं अन्य भागों में भी ये मिट्टियाँ मिलती हैं। मालनाड क्षेत्र में नरसिंहराजपुर, कोप्पा तथा तीर्थहाल्ली के निकट भी कुछ महत्त्वपूर्ण खनियाँ स्थित हैं। टुमकुर जिले में मेंगनीज की खनियों में मेंगनीज-अयस्कों के साथ कुछ क्षारीय मृत्तिकाएँ भी मिलती है, जिनको मृच्छिल्प उद्योग में प्रयुक्त किया जा सकता है।

मद्रास राज्य के चीनी-मिट्टी निक्षेप भी बड़े विशाल हैं। प्रमुख निक्षेप चिंगलीपत जिले के त्रिवेल्लोर तथा श्रीपेरुम्बुदूर तालुकों में एवं दक्षिण अरकाट जिले के

टिण्डवानम तथा कुड्डालोर तालुकों में स्थित हैं। अनुमान है कि दक्षिण अरकाट के इन स्थानों के निक्षेपों में मृत्तिकाओं की आँकी हुई मात्रा लगभग २·५ करोड़ टन होगी। गत कुछ वर्षों में नेवेली के क्षेत्र भी प्रकाश में आये हैं। यहाँ पर श्वेत मृत्तिका के निक्षेप स्थल की सतह से लगभग १४० से १८५ फुट तक नीचे हैं। सलेम तथा नीलगिरि जिलों में भी चीनी मिट्टी उत्पन्न होती है।

पूर्व गोदावरी जिले (आन्ध्र प्रदेश) में भी भूरे श्वेत रंग की मृत्तिकाएँ मिलती हैं। इसका खनन पुण्यक्षेत्रम् में किया जाता है तथा खनित पदार्थ को बम्बई भेजा जाता है, जहाँ इससे ग्रेफाइट क्रुसिबलों (घरियों) का निर्माण किया जाता है। इस राज्य में कुर्नूल जिले के ढोन तालुका में एवं विशाखापत्तनम्, कुडप्पा तथा नैल्लोर जिलों में भी ये मिट्टियाँ उत्पन्न होती हैं। नलगोण्डा जिले में भी चीनी मिट्टी के निक्षेप विद्यमान हैं। कमथाना में उत्पन्न होने-वाली मृत्तिका का उपयोग कागज के निर्माण के लिए सीरपुर के कागज कारखाने में किया जाता है। गुलबर्गा (आंध्र) के श्रीरंगपुर तथा कुनद्रुग के समीप भी चीनी मिट्टी के निक्षेप बताये जाते हैं।

भारत के पश्चिमी तट पर किनारे-किनारे दक्षिणी कनारा जिले में नीलेश्वर तथा होसद्रुग के बीच चीनी मिट्टी के पर्याप्त अच्छे निक्षेप मिलते हैं। मलाबार में कन्नानोर के समीप ये निक्षेप स्थित हैं तथा इनका खनन एलीमाला, पलायनगदी तथा कन्नापुरम् में होता है।

उपयोग तथा खपत

चीनी मिट्टी का प्रमुख रूप से उपयोग मृच्छिल्प-उद्योग में होता है। यह सूती कपड़े, रबर तथा कागज उद्योगों में भी प्रयुक्त होती है। जहाँ तक हमारे देश की आवश्यकताओं का प्रश्न रबर तथा सूती कपड़ों के उद्योग के लिए है, वे कुछ तो स्थानीय उत्पादन से तथा कुछ आयात किये हुए पदार्थों से पूर्ण होती हैं। यदि बिहार में चाइबासा व राजमहल पहाड़ियों तथा केरल में कुन्दरा से प्राप्त मृत्तिकाओं को उपयुक्त रूप से शोषित तथा परिष्कृत किया जाय तो हमारे देश के इन दो उद्योगों (सूती कपड़ा व रबर) की आवश्यकताएँ सरलता से पूरी हो सकती हैं। इस प्रकार परिष्कृत मृत्तिकाएँ इंग्लिश मृत्तिकाओं से किसी प्रकार कम नहीं होंगी। जहाँ तक रबर उद्योग का प्रश्न है, उसमें स्थानीय उत्पादनों के द्वारा ही सारी आवश्यकताओं की पूर्ति पर्याप्त अंशों तक हो जाती है।

कागज उद्योग में प्रयुक्त होने के लिए चीनी मिट्टी को पत्थर के सूक्ष्म टुकड़ों तथा अभ्रक की अशुद्धियों से स्वतंत्र होना चाहिए। इस प्रकार की मृत्तिका श्वेत, अति सूक्ष्मकणीय तथा समरूप होनी चाहिए। इसमें लौह ऑक्साइड ०·०१-०·०७, चूना (कैलसियम आक्साइड) लगभग ०·०५, मैग्नीशियम ऑक्साइड ०·०२-०·४७ तथा टाइटेनियम ऑक्साइड ०·३–१·०४ प्रतिशत तक हो सकता है। बरतन बनाने के लिए चीनी मिट्टी में ३९ प्रतिशत एल्यूमिना, ४६-४७ प्रतिशत सिलिका होनी चाहिए। लौह ऑक्साइड तथा टाइटेनियम ऑक्साइड की मात्राएँ क्रमशः ०·७५ एवं ०·१ प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़नी चाहिए। पेन्ट-उद्योग में प्रयुक्त चीनी मिट्टी में ४३-४७ प्रतिशत सिलिका, ३७-४० प्रतिशत एल्यूमिना तथा जलाने के पश्चात् हानि १०-१५ प्रतिशत होती है। आर्द्रता अथवा अन्य उत्पत पदार्थों की मात्रा एक प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। सूती कपड़ा उद्योग में खपनेवाली चीनी मिट्टी का पूर्णरूप से विशुद्ध तथा पूर्ण श्वेत होना आवश्यक है।

सन् १९५८ में भारत में चीनी मिट्टी की कुल खपत लगभग १९१,००० मेट्रिक टन आँकी गयी है, जिसमें से १५२,००० मेट्रिक टन केवल कागज, मृच्छिल्प, कपड़ा तथा रबर उद्योगों में प्रयुक्त हुई।

उत्पादन

चीनी मिट्टी के प्रमुख उत्पादक देश संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड, पश्चिमी जर्मनी, आस्ट्रिया तथा भारत हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका संसार में सबसे अधिक तथा संसार के कुल उत्पादन का आधे से भी अधिक भाग उत्पन्न करता है। सन् १९५६ तथा १९५७ में संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्पादन क्रमशः २,०४२,००० तथा १९,८२,००० मेट्रिक टन था। भारत के प्रमुख उत्पादक राज्यों में बिहार, बम्बई, देहली, उड़ीसा, केरल, आन्ध्र प्रदेश, मैसूर, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा बंगाल के नाम उल्लेखनीय है। बिहार देश का सबसे बड़ा चीनी मिट्टी-उत्पादक राज्य है तथा देश के कुल उत्पादन का आधा अथवा उससे कुछ अधिक भाग केवल बिहार से ही आता है। सन् १९५७ तथा १९५८ में चीनी मिट्टी का उत्पादन क्रमशः १८३,४०९ तथा १८५,०५९ मेट्रिक टन था, जिसका मूल्य क्रमशः २,२८१,००० तथा २,४४८,००० रु० हुआ। चीनी मिट्टी के उत्पादन में यह वृद्धि अनवरत रूप से गत दस वर्षों से हो रही है।

आयात तथा निर्यात

अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए देश को कुछ उत्तम प्रकार की मृत्तिकाओं का आयात करना पड़ता है। सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से सन् १९५७ की अपेक्षा सन् १९५८ में १,५४९ मेट्रिक टन का और अधिक आयात करना पड़ा। भारत को निर्यात करनेवाले देशों में प्रमुख देश इंग्लैण्ड, फ्रान्स तथा पश्चिमी जर्मनी हैं। सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने क्रमशः ४,३५३ तथा ५,९०२ मेट्रिक टन चीनी मिट्टी का आयात किया, जिसका मूल्य क्रमशः १,३०४,००० तथा १,२१४,००० रु० चुकाना पड़ा।

सन् १९५८ में भारत ने पाकिस्तान तथा श्रीलंका को २८८ मेट्रिक टन चीनी मिट्टी निर्यात की, जिसका मूल्य ४१,००० रु० हुआ।

बाल-मृत्तिका (Ball Clay)

बाल-मृत्तिकाएँ व्यपघर्षी उद्भव वाली, भूरी तथा श्याम वर्ण की मृत्तिकाएँ हैं। इनकी सूक्ष्म कण-रचना तथा सरलता से मुड़ जाना इनकी विशेषता का द्योतक है। अग्नि में जलाने के पश्चात् इनका रंग श्वेत अथवा हलके पीले रंग का हो जाता है। सामान्यतः इनको प्राकृतिक अवस्था में ही प्रयुक्त किया जाता है, क्योंकि इनमें शायद ही कुछ अशुद्धियाँ होती हों। इन मृत्तिकाओं से उत्तम प्रकार के बरतनों का निर्माण किया जाता है।

उत्तम प्रकार की बाल-मृत्तिकाएँ राजस्थान में जोधपुर की शिलाओं से प्राप्त होती हैं। ये मृत्तिकाएँ खजवाना, इन्दावर तथा अन्य स्थानों में विन्ध्यीय-शिलाओं के अन्तर्गत तथा बाड़मेर-शिव क्षेत्र की मेसोज़ोइक शिलाओं के अन्तर्गत पायी जाती हैं। आन्ध्र प्रदेश के आदिलाबाद जिले में पासेगाँव, आसफाबाद जिले में रालेपेट, कुडप्पा जिले में गदाला, पूर्व गोदावरी जिले में पुण्यक्षेत्रम्, पश्चिम गोदावरी जिले में द्वारकातिरुमाला तथा कुडप्पा जिले में ही हस्तावरम् आदि स्थानों पर विभिन्न प्रकार की बालमृत्तिका के निक्षेप स्थित हैं। सौराष्ट्र (गुजरात) में रामपरदा, वागादिया तथा बागागेला में भी बाल मृत्तिकाओं का खनन होता है। ये सभी स्थान झालावाड़ जिले में हैं। त्रावणकोर (केरल) में कुन्दरा की तृतीयक युग की शिलाओं में भी बालमृत्तिका पायी जाती है। उत्तर प्रदेश में बाँदा जिले के लखनपुर वन में भी प्लास्टिक प्रकार की कुछ बालमृत्तिकाएँ मिली हैं।

भारत में चीनी मिट्टी के अनेक निक्षेपों के साथ बालमृत्तिका के कुछ निक्षेप अवश्य ही आयोजित हैं, किन्तु इस ओर अभी कम ही ध्यान दिया गया है। इस प्रकार के बालमृत्तिका के निक्षेपों को सिद्ध करने के लिए विशेष गवेषणा की आवश्यकता है।

फेल्सपार (Feldspar)

फेल्सार खनिज सर्वाधिक प्राप्य शिला-निर्माणी खनिज हैं। रासायनिक दृष्टि से ये एल्यूमीनियम तथा कुछ अन्य तत्त्वों जैसे पोटेशियम, सोडियम अथवा कैलशियम या इनके मिश्रणों आदि के सिलीकेट हैं। भारत में उत्पन्न सम्पूर्ण फेल्सपार स्थानीय उद्योगों, विशेषकर काँच, इनेमल निर्मित वस्तुओं, पोर्सलीन पदार्थों आदि के निर्माण में प्रयुक्त हो जाता है। देश में उत्पन्न फेल्सपार का एक मुख्य भाग अभ्रकमय पेग्मेटाइटों से प्राप्त होता है। फेल्सपार का खनन राजस्थान के अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र के ब्यावर नामक स्थान में तथा अलवर, सिरोही एव जोधपुर में, पश्चिमी बंगाल के बर्दवान, बिहार के संथाल परगना तथा अन्य अभ्रकमय क्षेत्रों में, मध्य प्रदेश के रीवा तथा लमेटाघाट, गुजरात के कई स्थानों में, मद्रास के तिरुचिरापल्ली तथा मैसूर के रायचूर तथा गुलबर्गा में किया जाता है। इस प्रकार भारत के निक्षेपों से उसकी आवश्यकता के अनुकूल पर्याप्त फेल्सपार की प्राप्ति हो जाती है।

उत्पादन

भारत में फेल्सपार के प्रमुख उत्पादक राज्य राजस्थान, विहार, मध्य प्रदेश मैसूर, मद्रास तथा प० बंगाल हैं। राजस्थान में देश के कुल उत्पादन का दो-तिहाई से भी कुछ अधिक भाग उत्पन्न होता है। सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत का फेल्सपार का कुल उत्पादन क्रमशः ७,९९८ तथा ८,५६७ मेट्रिक टन था, जिसका मूल्य क्रमशः ८१,००० तथा ८०,००० रु० प्राप्त हुआ।

संसार में फेल्सपार के प्रमुख उत्पादक देश संयुक्त राज्य अमेरिका, प० जर्मनी, फ्रांस, इटली, नार्वे, स्वीडन तथा जापान हैं।

भारत अशोधित (Crude) तथा बहुमूल्य (Gem) दोनों ही प्रकार के फेल्सपारों का निर्यात करता है। सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने क्रमशः ५८,००० रु० तथा १५,००० रु० के मूल्य के अशोधित तथा १९,००० रु० एवं २३,०००

रु० मूल्य के बहुमूल्य फेल्सपार का निर्यात किया। भारत से इन फेल्सपारों का आयात करनेवाले देश पाकिस्तान (पूर्वी), इण्डोनेशिया, पश्चिमी जर्मनी, इंग्लैण्ड तथा सिंगापुर हैं।

स्फटिक तथा सिलिका (Quartz and Silica)

स्फटिक या सिलिका, सिलिकन ऑक्साइड है तथा पृथ्वी की पर्पटी से प्राप्त होनेवाले पदार्थों में फेल्सपार खनिजों के पश्चात् इसी का स्थान आता है। इसके अनेकों महत्त्वपूर्ण उपयोग हैं। वैद्युतिक, प्रकाशीय (Optical) तथा काँच उद्योगों में मुख्य रूप से इसका प्रयोग होता है। सिलिका को अपघर्षी पदार्थ के रूप में भी काम में लाया जाता है। सिलिकन कार्बाइट (कार्बोरण्डम), जो सिलिका बालू तथा कोक के मिश्रण का विद्युत-भट्ठी में द्रावण करके बनाया जाता है, हीरे जितना कठोर होता है तथा प्रमुख अपघर्षी पदार्थ है।

भारत में बिहार, राजस्थान तथा आन्ध्र प्रदेश के पैग्मेटाइट के साथ स्फटिक की पर्याप्त बड़ी मात्रा मिली हुई रहती है। यह स्फटिक पर्याप्त विशुद्ध होता है तथा किसी भी मात्रा में उपलब्ध हो सकता है। राजस्थान में स्फटिक के प्राप्ति-स्थान जयपुर तथा अजमेर-मेरवाड़ा में हैं। बिहार में विशाल मात्रा में यह खनिज सिंहभूम, रांची, मानभूम, हजारीबाग, सन्थाल परगना तथा मुंगेर जिलों से प्राप्त होता है। मध्य प्रदेश में जबलपुर, उड़ीसा में कोरापुट तथा संबलपुर, और मैसूर में बंगलौर जिले में स्फटिक के बड़े उपयोगी निक्षेप विद्यमान हैं।

उत्पादन

सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत में स्फटिक तथा सिलिका का कुल उत्पादन क्रमशः २६,१९३ तथा ३१,४६१ मेट्रिक टन था, जिसका अनुमानित मूल्य क्रमशः २७१,००० तथा ३२३,००० रु० हुआ। प्रमुख उत्पादक राज्य राजस्थान, बिहार, मैसूर तथा आन्ध्र प्रदेश हैं।

आयात व निर्यात

सन् १९५७ तथा १९५८ में भारत ने क्रमशः ८५,००० तथा १५,००० रु० मूल्य की बालू तथा स्फटिक का आयात किया। इन दो वर्षों में भारत ने सिलिका बालू (पूर्ण-स्फटिक-सहित) की क्रमशः ६५७ तथा ४९१ मेट्रिक टन मात्रा का निर्यात किया। इनका मूल्य क्रमशः २८,००० तथा २१,००० रु० हुआ। भारत से सिलिका-पदार्थों का आयात करनेवाला एकमात्र देश पाकिस्तान (पूर्वी) है।

परिच्छेद १६

भवन-निर्माण के पत्थर

(Building Stones)

निर्माण-पत्थरों में विभिन्न प्रकार के चुनाई के पत्थर, ईंटें बनाने के लिए मिट्टी, रेत तथा चूना-पत्थर आदि सम्मिलित हैं। चुनाई के काम के लिए कई प्रकार के पत्थर उपयुक्त समझे जाते हैं—उदाहरणार्थ बालू-पत्थर (Sand stone), चूना-पत्थर (Lime stone), कणाश्म (Granite), चार्नोकाइट (Charnockite), संगमरमर, बैसाल्ट (Basalt) तथा लैटराइट आदि। देश के सभी भागों में किसी न किसी प्रकार की सामग्री, जिसका चुनाई अथवा अन्य निर्माण-कार्यों में उपयोग किया जाता है, अवश्य उपलब्ध है। गंगा के मैदानों में ईंटों से काम लिया जाता है जो स्थानीय मिट्टियों से तैयार की जाती हैं तथा पकाने के पश्चात् उपयोग में लायी जाती हैं। किसी भी क्षेत्र में सामान्यतः वही पत्थर निर्माण के काम में आते हैं जो सरलता से तथा उस क्षेत्र के निकट ही मिल जायँ। जहाँ पत्थर नहीं मिलते, ईंटों का प्रयोग किया जाता है।

बालू-पत्थर

भारत में प्राप्त अनेक संरचनाओं (Formations) में बालू-पत्थर मिलता है, जो भवन-निर्माण में सहायक हो सकता है। किन्तु विन्ध्यीय क्रम (Vindhyan System) का बालू-पत्थर सर्वोपयुक्त सिद्ध हुआ है तथा अशोक महान् (२६९-३२ ई० पूर्व) के समय से आज तक देश में निर्मित अनेक भव्य भवनों में इसका उपयोग किया गया है। कैमूर बालू-पत्थरों का खनन बिहार के शाहाबाद जिले के डेहरी-ऑन-सोन नामक स्थान पर किया जाता है। इसी प्रकार और आगे पश्चिम में जाने पर उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में चुनार में यह पाया जाता है। भारत में बालू-पत्थर की शायद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खानें राजस्थान में भरतपुर

तथा रूपबास के दक्षिण में और उत्तर प्रदेश में आगरा जिले के फतेहपुर सीकरी नामक स्थान पर स्थित हैं। इन स्थानों से निकाले गये पत्थर को ईसा से कई शताब्दी पूर्व से ही अनेक स्थानों पर राज-प्रासादों तथा अन्य भवनों के निर्माण में काम में लाया जा रहा है। राजस्थान में पश्चिम की ओर जोधपुर के निकट कुछ पर्वतों की टोपिकाएँ (Cappings) बालू-पत्थर द्वारा निर्मित हैं जिनसे असमाप्य निर्माण-पत्थर की प्राप्ति हो सकेगी।

बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश के कई सीमित क्षेत्रों में कुछ ऐसे बालू-पत्थर मिले हैं जो गोंडवाना युग के हैं। ये पत्थर अपेक्षाकृत कोमल, स्थूल-कणीय (Coarse grained) तथा भूरे एवं पीले रंग के होते हैं। इन्हीं कुछ कारणों से इनका व्यवहार विन्ध्यीय बालू-पत्थर से कहीं कम ही होता है। जूरेसिक (Jurassic) युग के बालू-पत्थर कच्छ के कई स्थानों में बहुत बड़ी मात्रा में मिलते हैं तथा स्थानीय भवन-निर्माण में प्रयोग किये जाते हैं।

लेटराइट (Laterite)

लेटराइट नामक शिला भारत के अनेक भागों में पायी जाती है। रासायनिक संगठन में यह मुख्यतः जल संयोजित लोहे और एल्यूमीनियम का आक्साइड होती है। स्थान-स्थान पर लेटराइट में इन दोनों धातुओं की मात्रा भिन्न-भिन्न हो सकती है। ऐसे लेटराइट जिसमें लोहे की अधिकता होती है, लौहमय लेटराइट तथा इसी प्रकार एल्यूमीनियम से समृद्ध लेटराइट को एल्यूमीनियममय (Aluminous) लेटराइट कहते हैं। जिस शिला में लोहे की मात्रा अत्यन्त अल्प तथा एल्यूमीनियम की प्रधानता होती है, उसको एक विशिष्ट नाम बॉक्साइट दिया गया है। बॉक्साइट और लेटराइट वस्तुतः एक ही मूल शिला के दो विभिन्न रूप हैं। लेटराइट की उत्पत्ति एक ऐसे विशिष्ट वातावरण में अन्य शिलाओं के रूपान्तर से होती है जिसमें कि प्राथमिक शिला में उपस्थित लोहे और एल्यूमीनियम के अंश जल में घुलकर पहाड़ी ढाल पर बह जाते हैं, तथा उपयुक्त स्थान पर फिर जलसंयोजित आक्साइड के रूप में अवक्षिप्त हो जाते हैं। इस प्रकार उत्पन्न शिला 'निम्न तल' (Low Level) लेटराइट कहलाती है। क्योंकि इसका अवक्षेपन पहाड़ के नीचे होता है। इसके विपरीत पहाड़ के ऊँचे भागों में भी लोहे और एल्यूमीनियम के आक्साइड के कण एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार उत्पन्न लेटराइट 'उच्च स्तरीय' लेटराइट कहलाता है। अनेक अनुसन्धानों से पता चला है कि लेटराइट की उत्पत्ति

ऐसे उष्णताप्रधान देशों में होती है जहाँ गर्मी अथवा सूखा एवं वर्षा ऋतुएँ पृथक्-पृथक् होती हैं। भारत के अभिनव युग में ऐसा ही जलवायु पाया जाता है।

उत्पत्ति विधि से यह स्पष्ट है कि लेटराइट अन्य शिलाओं के ऊपर केवल आवरण के रूप में पाया जा सकता है, जिसकी मोटाई विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होती है। कहीं कहीं तो यह केवल एक-दो इंच ही होती है, जब कि अन्य स्थानों पर ६०-७० फुट तक हो सकती है।

लेटराइट का रंग सामान्यतः लाल अथवा भूरा और आकृति छिद्रयुक्त होती है। ये छिद्र बहुधा इस प्रकार से लम्बे होते हैं जैसे किसी ठोस पदार्थ में कुछ कीड़ों ने घुसकर सुरंगे बना दी हों। इन आकृति-हीन छिद्रों के कारण शिला का बाह्य रूप बिगड़ जाता है, किन्तु एक अद्भुत गुण यह आ जाता है कि धरातल से थोड़ी ही गहराई पर तो यह प्रायः इतनी कोमल होती है जितनी साधारण मिट्टी, जब कि इसको खोदकर मैदान में डाल देने के पश्चात् तथा वायु और धूप के संपर्क में आने से कुछ ही दिनों में यह इतनी कठोर हो जाती है कि कठोरतम शिलाओं से टक्कर ले सकती है। जिन प्रदेशों में यह प्रचुर मात्रा में मिलती है वहाँ के निवासी बहुधा इससे अपने घर भी बना लेते हैं। तुरन्त खोदा हुआ पत्थर कोमल होने के कारण वांछित आकृति व आकार में काटकर सुखाने को रख दिया जाता है। प्रायः आठ या दस दिन में ही इसमें इतनी कठोरता आ जाती है कि इसके आकार के विकृत होने का भय नहीं रहता।

लेटराइट के प्रमुख उत्पादनकेन्द्र मद्रास, आसाम व बम्बई राज्यों में स्थित हैं। केरल के मलाबार तथा मद्रास के चिंगलीपत व पूर्वी गोदावरी जिलों में पर्याप्त मात्रा में लेटराइट प्रयुक्त किया जाता है। आसाम में कछार, सिलहट तथा खासी पहाड़ियाँ लेटराइट के लिए विशेष उल्लेखनीय हैं। उड़ीसा में प्रधानतः खरदा डिवीजन में लेटराइट मिलता है।

भवन-निर्माण-पत्थरों के उत्पादन में वैसे तो किसी पत्थर के भी आँकड़े विश्वसनीय नहीं हैं किन्तु लेटराइट के आँकड़े तो इन सबकी अपेक्षा और भी कम विश्वास्य हैं। देखने में आकर्षक न होने के कारण उत्पादनकेन्द्रों से बहुत ही कम दूर तक इसकी खपत होती है, जिससे कि उत्पादित मात्रा का बहुत ही कम अंश अंकित हो पाता है।

लेटराइट का कुछ वर्षों का उत्पादन निम्न प्रकार है—

वर्ष	उत्पादन (टनों में)	मूल्य (रुपयों में)
१९४६	१,७२,९५२	३,०९,४५८
१९५३	११,६९८	६०,६९८
१९५५	४५,३१५	२४८,७३६

स्लेट (Slate)

यह शिला पतले स्तरों में पायी जाती है। इसमें पर्णन (Foliation) पर्याप्त रूप से विकसित होता है। यही कारण है कि इसके स्तर बड़ी सुगमता से एक दूसरे से पृथक् किये जा सकते हैं तथा वांछित आकार में सरलता से काटे जा सकते हैं। इसके कणों का आकार सूक्ष्म होता है जिससे इसका धरातल खूब चिकना रहता है और इसी लिए कमरों आदि के फर्श पर बिछवाने के लिए यह बहुत उत्तम समझी जाती है। यद्यपि सीमेन्ट के आविष्कार ने इस काम के लिए स्लेट का महत्त्व बहुत कम कर दिया है, फिर भी इसकी खपत पर्याप्त होती है और ये शिलाएँ उत्पादनकेन्द्रों से बहुत दूर दूर तक भेजी जाती हैं।

स्लेट शिला की प्राप्ति के लिए पंजाब के कुल्लू व कांगड़ा प्रदेश, उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा व गढ़वाल जिले, बिहार राज्य का जिला मुंगेर, राजस्थान का निम्बाहेड़, मध्य-प्रदेश का ग्वालियर तथा मद्रास के अनन्तपुर, कुरनूल व कुडप्पा जिले विशेष उल्लेखनीय हैं।

बेसाल्ट (Basalt)

बेसाल्ट नामक शिला ज्वालामुखी उद्गारों से उत्पन्न होती है। यह मध्यवर्ती अथवा सूक्ष्म कणों की तथा अत्यन्त कठोर होती है। काला वर्ण होने के कारण भवन-निर्माण में इसको विशेष पसन्द नहीं किया जाता, फिर भी जिन प्रदेशों में यह मिलती है वहाँ स्थानीय तौर पर इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में अवश्य किया जाता है। कणाश्म (Granite) की भाँति इसको भी वांछित आकार व आकृति में काटना बहुत कठिन होता है। साधारणतया दीवारों में प्रयोग करने के लिए इसके घनाकार खण्ड बनाकर एक दूसरे के ऊपर चुन दिये जाते हैं तथा ऊपर से प्लास्टर चढ़ाकर खण्डों की अनियमितता को अदृश्य कर दिया जाता है। जब प्लास्टर नहीं चढ़ाना होता तब अवश्य ही ऊपरी पृष्ठ को चौरस करना अनिवार्य होता है।

जल तथा वायु का प्रभाव इस पर बहुत ही कम होता है तथा रासायनिक दृष्टि से भी यह बहुत पुष्ट होती है। यही कारण है कि यह नदी के किनारों पर बाँध, या पुलों के नीचे का भाग आदि बनाने के लिए अद्वितीय होती है। सड़क बनाने के लिए भी यह शिला बहुत अच्छी सिद्ध हुई है। देश के अनेक प्रधान राज-मार्गों में इसका उपयोग किया गया है। अधिकतर दूर दूर से इस काम के लिए यह पत्थर लाना पड़ता है।

पश्चिमी घाट की पर्वतमाला का मुख्य भाग इसी शिला से बना है। आन्ध्र प्रदेश (हैदराबाद) तथा मध्य प्रदेश के धरातल में एवं पूर्वी भारत की राजमहल पहाड़ियों में यह शिला प्रधानतः विद्यमान है। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रायद्वीप के प्रायः सभी भागों में इसकी अथवा इसके समान शिला की पट्टिकाएँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं।

चूना-पत्थर (Lime Stone)

भारत, प० पाकिस्तान तथा बर्मा की अनेक भूतात्विक-संरचनाओं में चूना-पत्थर प्राप्त होता है। यह पत्थर पूर्व कैम्ब्रियन युग के संगमरमर से लगाकर नवीन युग तक की संरचनाओं में मिलता है। कुडप्पा, विन्ध्यीय तथा तृतीयक क्रमों मे प्रमुख रूप से इसके निक्षेप विद्यमान हैं। इसका उपयोग सीमेन्ट निर्माण के साथ ही रासायनिक, धातुकर्म, कागज, चर्म तथा काँच आदि उद्योगों में होता है।

भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में चूना-पत्थर विपुल मात्रा में पाया जाता है। उड़ीसा, बिहार, मध्य प्रदेश, मद्रास, आन्ध्र प्रदेश व सौराष्ट्र में चूना-पत्थर का अधिक उत्पादन होता है। पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मैसूर, पश्चिम बंगाल व आसाम में भी यह होता है। जम्मू और कश्मीर प्रदेश की चूना-शिलाएँ भी अच्छी हैं। द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् सिंचाई, जल-विद्युत् तथा अन्य औद्योगिक योजनाओं का विकास होने के कारण चूना-पत्थर की खपत में पर्याप्त वृद्धि हुई और इसको ध्यान में रखते हुए भारतीय भूतात्विक समीक्षा ने विस्तृत रूप से भारतीय चूना-पत्थर निक्षेपों का पूर्वेक्षण तथा सर्वेक्षण किया है। इसके फलस्वरूप भारत में चूना-पत्थर के असमाप्य भण्डार मिले हैं जो देश को शक्तिशाली औद्योगिक आधारशिला पर रखने में सहायक होंगे।

उड़ीसा के निक्षेप सम्पूर्ण भारत के निक्षेपों में सर्वोत्तम हैं। देश में उत्पन्न चूना-पत्थर का एक बड़ा भाग इस प्रदेश से आता है। वीरमित्रपुर क्षेत्र में २·७५

करोड़ टन उत्तम प्रकार का पत्थर (जो धातु-कर्म के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ है) तथा ६·८७५ करोड़ टन द्वितीय वर्ग का पत्थर विद्यमान है। राजगंगपुर के समीप लांजीबेर्ना में इस पत्थर की एक लम्बी पेटिका मिली है। इसी प्रकार सम्बलपुर तथा कोरापुट जिलों में चूना-पत्थर के निक्षेप स्थित हैं जिनमें कोरापुट के निक्षेप उत्तम प्रकार के हैं।

बिहार भारत का द्वितीय चूना-पत्थर उत्पादक प्रदेश है। शाहाबाद जिले के रोहतासगढ़ नामक स्थान पर तो सन् १८४७ से ही यह पत्थर निकाला जाता था। रोहतास चूना-पत्थर का स्थान विन्ध्यीय क्रम की सेमरी श्रेणी में सर्वोपरि है तथा यह पेटिका बिहार में ही पश्चिम में चुनहट्टार से लेकर पूर्व में रामधीरा-ऑन-सोन तक ४५ मील की लम्बाई में फैली हुई है। आर्कियन युग के मणिभित (Crystalline) चूना-पत्थर की अनियमित पेटिकाएँ मानभूम तथा पालामऊ जिलों में पायी जाती हैं। हजारीबाग, राँची तथा पालामऊ जिलों के कुछ भागों में इस पत्थर को जलाकर चूना उत्पन्न किया जाता है। सिंहभूम जिले में चाइबासा से जगन्नाथपुर तक ३० मील की दूरी में चूना-पत्थर की एक पेटिका दिखाई पड़ती है। इसकी अधिकांश मोटाई ४० फुट है। इसका उपयोग ए० सी० सी० लि० द्वारा सीमेन्ट बनाने में किया जाता है।

चूना-पत्थर के उत्पादन में बिहार के पश्चात् मध्य प्रदेश का स्थान आता है। जबलपुर जिले के कटनी-मुरवाड़ा क्षेत्र में खनियों (Quarries) से यह पत्थर बहुत पहले से निकाला जाता रहा है। अमरावती और चाँदा जिलों में भी इसके निक्षेप हैं। चाँदा के निक्षेप उत्तम प्रकार के हैं। मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग में कुडप्पा युग के चूना-पत्थर महत्त्वपूर्ण हैं। रायपुर एवं द्रुग क्षेत्रों में, डा० पी० के० घोष के अनुसार, इसके अनुमानित भण्डार क्रमशः १·७२५ तथा २·१ करोड़ टन हैं। यह चूना-पत्थर सीमेन्ट तथा धातुकर्म उद्योगों के लिए पर्याप्त महत्त्व का है। इसी प्रकार के निक्षेप बिलासपुर में भी हैं। टाटा कम्पनी की खनियाँ (Quarries) बाराद्वार में स्थित हैं। नाँदगाँव के पूर्वी भाग में भी खलेवा से अरजुनी तक ३० मील के विस्तार में चूना-पत्थर के विशाल निक्षेप विद्यमान हैं।

आन्ध्र-प्रदेश तथा मद्रास के विशाखापत्तनम्, नैल्लोर, तिरुचिरापल्ली, सलेम, कोयम्बटूर, मदुराई, रामनाथपुरम् तथा तिरुनेलवेली जिलों में आर्कियन युग के मणिभित चूना-पत्थर विपुल मात्रा में प्राप्त हुए हैं। गुन्टूर तथा कृष्णा जिलों के निक्षेप भी अच्छे हैं। अघो-कुडप्पा युग का वेम्पाले चूना-पत्थर कुडप्पा तथा

कुर्नूल जिलों से होता हुआ १७५ मील लम्बाई तथा १ से ४ मील तक चौड़ाई के विस्तार में मिलता है। कुडप्पा जिले के कमलापुरम् तथा जम्मालामादुगू ताल्लुकों में क्रमशः ६४ करोड़ टन तथा ३०० करोड़ टन चूना-पत्थर होने का अनुमान है। इसी प्रकार कुर्नूल जिले के कोइलकुन्टला, बंगानापाले, धोन, कुर्नूल तथा नन्दीकोटकुर ताल्लुका में क्रमशः ५०० करोड़ टन, ६६ करोड़ टन, ४५० करोड़ टन, १२५ करोड़ टन तथा ७७ करोड़ टन चूना-पत्थर मिलने की आशा की जाती है।

मध्य प्रदेश (पहले मध्यभारत तथा विन्ध्यप्रदेश) के मंदसोर, निमाड़, धार, झाबुआ, रीवाँ तथा सतना आदि जिलों में भी चूना-पत्थर के अच्छे निक्षेप विद्यमान हैं। इसी प्रकार कच्छ में प्राप्त चूना-पत्थर विशेष रूप से शुद्ध होता है तथा पोर्टलैण्ड सीमेन्ट, रासायनिक उद्योगों एवं भवन-निर्माण के लिए बहुत उत्तम है। इसी तरह का चूना-पत्थर जालावाद, जूनागढ़ तथा अमरेली आदि में भी मिलता है।

पूर्वी पंजाब में चूना-पत्थर के निक्षेप अम्बाला तथा पटियाला में हैं। राजस्थान के बूंदी, कोटा तथा जोधपुर जिलों में भी चूना-पत्थर के समृद्ध निक्षेप हैं। यह पत्थर भी विन्ध्यन युग का है। विन्ध्यन युग के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में भी चूना-पत्थर के निक्षेप पर्याप्त विस्तृत हैं। सिलपी तथा बसुहरी के बीच ८० मील के विस्तार में रोहतास चूना-पत्थर विगोपित (Exposed) हुआ है। पूर्वी खण्ड में मुक्तिनाथ नामक स्थान पर इस पत्थर के भण्डार बहुत आशाप्रद हैं। १००–३०० फुट तक चौड़ी पेटिकाएँ ५०–५५ मील तक के विस्तार में फैली हुई हैं। सेमरी श्रेणी का कजराहट चूना-पत्थर, जो पर्याप्त उच्च कोटि का है, कोटाह के निकट कनहार में मिलता है।

मैसूर राज्य में चूना-पत्थर की आवश्यकता-पूर्ति शिमोगा, चितालदुग, टुमकुर तथा मैसूर आदि जिलों के निक्षेपों से होती है। इसी प्रकार बीजापुर, मुधोल जिले (विन्ध्यन युग) एवं उत्तर-कनारा (धारवाड़ युग) के निक्षेप बम्बई राज्य को चूना-पत्थर की उपलब्धि कराते हैं। सूरत के उत्तर-पूर्व में तारकेश्वर में भी यह पत्थर मिलता है।

पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले में डोलोमाइट-मय चूना-पत्थर के विशाल निक्षेप स्थित हैं। आसाम में तृतीयक युग का चूना-पत्थर अनियमित पेटिकाओं (Bands) के रूप में गारो, खासी, जयन्तिया तथा मिकिर आदि पहाड़ियों के

अनुप्रस्थ से प्राप्त होता है। खासी पहाड़ी के अन्तर्गत ही १०० करोड़ टन चूना-पत्थर होने का अनुमान है।

हिमाचल प्रदेश में सीमेन्ट-निर्माण के लिए उपयुक्त चूना-पत्थर कुल्लू तथा गिरि घाटियों के लारजी क्षेत्र से प्राप्त होता है। भण्डारों की अनुमानित मात्रा १४·१ करोड़ टन है।

इस प्रकार भारत के सभी प्रदेशों में चूना-पत्थर के विपुल भण्डार हैं। यह दूसरी बात है कि कुछ स्थानों का पत्थर कुछ विशेष कार्यों के लिए अधिक उपयोगी

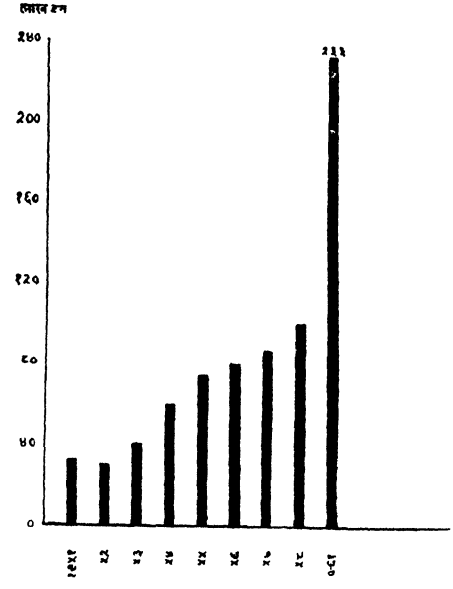

रेखाचित्र ५—चूना-पत्थर
उत्पादन व योजना-लक्ष्य

है, जब कि दूसरी जगहों का नहीं। इस तथ्य में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए कि किसी भी स्तर के इस्पात तथा सीमेन्ट उद्योग के संचालन में तथा उनके लिए चूना-पत्थर की आवश्यकता-पूर्ति में भारत के भण्डार शताब्दियों तक हमें इस उपयोगी पत्थर को प्रदान करते रहेंगे।

सन् १९५६ तथा १९५७ में चूना-पत्थर का कुल उत्पादन प्रायः ८२,५३,००० तथा ९४,२०,००० टन था, जिसका मूल्य क्रमशः ३,३६,३४,००० एवं ३,९७, १३,००० रुपये हुआ।

सीमेन्ट (Cement)

आजकल भारत में सीमेन्ट के जितने भी कारखानें हैं उनमें केवल दो सरकारी हैं, जिनमें एक उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर जिले के चुर्क नामक स्थान में तथा दूसरा मैसूर के भद्रावती में स्थित है। अन्य सभी कारखाने वैयक्तिक क्षेत्र में हैं। विविध योजनाओं को ध्यान में रखते हुए यह अनुमान किया गया है कि सन् १९६०-६१ तक देश में सीमेन्ट की आवश्यकता प्रायः १६० लाख टन प्रति वर्ष होगी। इसे पूरा करने के लिए भारत सरकार ने आधुनिक सभी कारखानों के विस्तार के साथ-साथ २२ नवीन केन्द्र स्थापित करने की योजनाएँ स्वीकार कर ली हैं। ऐसी आशा है कि इस योजना के अन्तर्गत सभी कारखानों के बन जाने पर सन् १९६०-६१ तक प्रति वर्ष उत्पन्न सीमेन्ट की मात्रा बढ़कर १४७·५ लाख टन तो हो ही जायगी। १९६१ के अन्त तक भारत में सीमेन्ट के ६४ कारखाने उत्पादन करने लगेंगे। निम्नांकित सारणी में विगत ९ वर्षों में से ५ वर्ष के उत्पादन-आँकड़े तथा ४ वर्ष के सम्भाव्य आँकड़े दिये गये हैं। इन आँकड़ों से इस उद्योग की प्रगति का बोध होता है।

वर्ष	कारखानों की संख्या	उत्पादन का अधिकतम समावेशन (लाख टन में)	वास्तविक उत्पादन (लाख टन में)
१९५३	२४	४३	३८
१९५४	२५	४५	४४
१९५५	२७	४९	४५
१९५६	२८	५७	४९
१९५७	२९	६६	५६
१९५८	३२	९८	—
१९५९	३६	१२३	—
१९६०	५१	१४७	—
१९६१	६४	१६०	—

ऐसा सम्भव है कि विदेशी मुद्रा मिलने की कठिनाइयों अथवा अन्य कुछ आन्तरिक बाधाओं के कारण यह योजना निर्धारित समय के अन्तर्गत पूर्ण रूप से कार्यान्वित न हो सके। नवीन कारखानों के लिए प्रायः १२५ करोड़ रुपयों के मूल्य की मशीनें मँगाने के लिए प्रस्ताव विचाराधीन हैं। इसके अतिरिक्त लोहे के कारखानों में धमन-भट्ठी (Blast furnace) में उत्पन्न कीट से सीमेन्ट बनाने की योजना पर भी विचार किया जा रहा है।

दीर्घकालीन व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए और विदेशों में भारतीय सीमेन्ट के लिए बाजार उपलब्ध करने की दृष्टि से बन्दरगाहों के समीप स्थित कारखानों से अल्प मात्रा में सीमेन्ट निर्यात करने को थोड़ा-थोड़ा प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

निर्यात की सीमा २ लाख टन प्रतिवर्ष निश्चित की गयी है। ऐसी आशा की जाती है कि इस निर्यात से देश की आन्तरिक खपत पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ेगा, अपितु कुछ विदेशी मुद्रा की ही उपलब्धि हो जायगी। गत ६ वर्षों के सीमेन्ट-निर्यात के आँकड़े निम्नांकित सारणी में दिये गये हैं—

वर्ष	टन
१९५२–५३	४८,०००
१९५३–५४	७७,०००
१९५४–५५	१०१,०००
१९५५–५६	५१,०००
१९५६–५७	२,५००
१९५७–५८	३५,३००

लगभग ६७,५५० टन सीमेन्ट की माँग विदेशों से आ चुकी है और ६५,००० टन अतिरिक्त सीमेन्ट की माँग के सम्बन्ध में वार्ता चल रही है।

संगमरमर (Marble)

भारत में संगमरमर का उपयोग लगभग उतना ही प्राचीन है जितनी कि यहाँ की सभ्यता। मोहनजोदड़ो की खुदाई में कुछ ऐसे अवशेष भी हैं जो संगमरमर से निर्मित हैं। आशय यह हुआ कि अन्धकार के दिनों के पश्चात् ही जब मानव को सभ्यता का कुछ प्रकाश मिला तभी से उसने, कम से कम भारत में तो अवश्य ही, संगमरमर का उपयोग भवन-निर्माण में प्रारंभ कर दिया।

राजस्थान में प्रसिद्ध मकराना की संगमरमर खनियाँ (Quarries) जोधपुर जिले में स्थित हैं। मकराना के सुप्रसिद्ध तथा सर्वोपयुक्त संगमरमर से ही ताज-महल (आगरा) तथा विक्टोरिया स्मारक (कलकत्ता) जैसे भव्य-भवनों का निर्माण किया गया था। राजस्थान में देहली तथा अरावली क्रमों (Systems) के अन्तर्गत अनेक स्थानों पर कई वर्णों तथा कणों के आकार की विभिन्नता लिये हुए, कई प्रकार के संगमरमर मिलते हैं। जयपुर में रैयालो तथा अलवर में झीरी नामक स्थानों से बहुत अच्छा संगमरमर प्राप्त हुआ है। उदयपुर में नाथद्वारा के समीप "राजनगर संगमरमर" पाया जाता है, जो विशुद्ध रूप से श्वेत वर्ण का होता है तथा उसमें कोई भी मटमैलापन नहीं होता। यह संगमरमर भी अनेकों राज-प्रासादों तथा मन्दिरों आदि के निर्माण में प्रयुक्त हुआ है।

मद्रास के कोयम्बटूर जिले में भूरे, श्वेत तथा रक्त वर्ण का पत्थर विशाल मात्रा में विद्यमान है। इसी प्रकार मैसूर के चितालद्रुग तथा मैसूर जिलों में भी भूरे, श्वेत वर्ण के पत्थर के विस्तृत भण्डार हैं। मद्रास में ही संगमरमर तथा अन्य आकर्षक पत्थरों की संरचनाएँ सलेम, मदुराई तथा तिरुनेलवेली जिलों में मिली हैं।

मध्य प्रदेश में जबलपुर की संगमरमर शिलाएँ पहले से ही प्रसिद्ध हैं। अन्य उपयुक्त संगमरमर के निक्षेप बेतूल, छिन्दवाड़ा, नागपुर (अब महाराष्ट्र) तथा सिवनी जिलों में स्थित हैं। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में रॉबर्टस्गंज से १६ मील दक्षिण में निघा नामक स्थान पर डोलोमाइट-मय (Dolomitic) संगमरमर के विशाल निक्षेपों के सम्बन्ध में पता चला है। गुजरात राज्य में बड़ोदा में हरे, गुलाबी तथा श्वेत संगमरमर, महाराष्ट्र में रेवाकाँठा का काला संगमरमर, आन्ध्रप्रदेश में कुर्नूल जिले का पीला हरा, गहरा हरा, पीला तथा मटमैला संगमरमर तथा गुन्टूर और कृष्णा जिलों का पीत-सिन्धु-हरित (Pale sea green) संगमरमर अपनी-अपनी सुन्दरता तथा उपयोगिता के कारण बहुत प्रसिद्ध हैं तथा विभिन्न प्रकार की सुन्दर कलाकृतियों के अतिरिक्त मन्दिरों, भवनों तथा राजप्रासादों में इनका खूब प्रयोग किया गया है। आज भी भारत के ये संगमरमर पत्थर अपनी शोभा, सुन्दरता और मनोहरता में अद्वितीय हैं।

परिच्छेद १७

खाद-उद्योग में प्रयुक्त खनिज

जिप्सम (Gypsum)

जिप्सम, कैलसियम का आर्द्र सल्फेट (Hydrated Sulphate) है तथा यह खनिज अनेक विस्तृत अवसादीय शिलाओं (Sedimentary rocks) तथा बहुधा शिला-लवण (Rock Salt) के साहचर्य में मिलता है। इसके मणिभित स्वच्छ रूप को सेलेनाइट तथा विशुद्ध, स्थूल (Massive) एवं कणवत् (Granular) रूप को एलाबास्टर (Alabaster) कहते हैं। इसी प्रकार सूची-रूप (Fibrous form) को सेटिनस्पार तथा ऐसे कैलसियम सल्फेट को जिसमें जल अनुपस्थित रहता है, एनहाइड्राइट (Anhydrite) का नाम दिया गया है।

इस वैज्ञानिक युग में अनेक दृष्टियों से जिप्सम खनिज का उपयोग कई अन्य खनिजों से कहीं अधिक है। कृषि कार्यों में खाद के रूप में जिप्सम ने एक क्रान्ति खड़ी कर दी है। इसकी सहायता से अमोनियम सल्फेट का निर्माण किया जाता है, जो खाद के रूप में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। सीमेन्ट उद्योग में इसका अपना विशिष्ट स्थान है। गंधक तथा गन्धकाम्ल का उत्पादन भी जिप्सम की सहायता से किया जाता है। जिप्सम को जब १२०° सें० तक गरम कर दिया जाता है तो इसके मणिभीकारक जल का एक भाग इससे निकल जाता है और इस प्रकार निर्मित पदार्थ 'प्लास्टर ऑव पेरिस' के नाम से विख्यात है। इस पदार्थ का उपयोग चिकित्सालयों से लेकर विशाल कारखानों तक में होता है। चीनी मिट्टी के बर्तन तथा अनेक प्रकार के साँचे ढालने के कामों में भी इसका उपयोग होता है। इससे प्लास्टर-बोर्ड भी बनाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त जस्ताविद्रावण (Zinc-smelting), कागज, कीटाणुनाशक पदार्थों (Insecticide) तथा लेपों (Paints) आदि उद्योगों में भी जिप्सम का उपयोग ऊँचे स्तर पर किया जाता है।

भारतीय औद्योगिक जीवन में जिप्सम तथा एनहाइड्राइट बहुत ही उपयोगी खनिज हैं। इसका कारण यह नहीं है कि उपर्युक्त उद्योगों में उपयोग होने के कारण

इनका महत्त्व बहुत अधिक हो गया हो। यद्यपि इन उद्योगों में जिप्सम का महत्त्व भुलाने का प्रश्न ही नहीं उठता, तथापि एक अन्य पहलू भी है, जिसकी ओर शायद हमारी दृष्टि ही नहीं जाती। किसी भी देश का औद्योगिक मापदण्ड उस देश में खपनेवाले गंधकाम्ल की मात्रा से आँका जा सकता है। भारत में गंधक के भण्डार नहीं के समान हैं तथा गंधकाम्ल का उत्पादन भी कोई विशेष अधिक नहीं है। अब यदि हमें अपनी वर्तमान औद्योगिक गति को बढ़ाना है तथा नवीन उद्योगों को जन्म देना है तो अवश्य ही हमें जिप्सम तथा एनहाइड्राइट का आश्रय लेना पड़ेगा, जिससे कि विशाल स्तर पर गंधकाम्ल का उत्पादन हो। इंग्लैण्ड को भी परिस्थितियों के वश ऐसा ही करना पड़ा था।

भारत में जिप्सम के प्रमुख निक्षेप राजस्थान, मद्रास तथा सौराष्ट्र में स्थित हैं। इनके अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू व कश्मीर, कच्छ व भूटान में भी यह खनिज मिलता है। इन निक्षेपों में से कुछ निक्षेप ऐसे हैं जो यातायात के आधुनिक साधनों से दूर होने के कारण अविकसित अवस्था में हैं।

राजस्थान की विशाल मरुभूमि में अनेक स्थानों पर जिप्सम के निक्षेप विद्यमान हैं। जोधपुर के बादवासी नामक स्थान पर ८ वर्गमील क्षेत्र में जिप्सम मिला है जिसके निक्षेपों की मोटाई ५ फुट है। इसी प्रकार के निक्षेप कावास के निकट मदपुरा में मिले हैं। जोधपुर क्षेत्र में अनेक स्थानों पर इस खनिज को प्राप्त किया जाता है। कुछ प्रमुख स्थानों के नाम तथा वहाँ पर जिप्सम के भण्डारों की अनुमानित मात्रा निम्नांकित सारणी में दी जा रही है—

स्थान	अनुमानित भण्डार (टनों में)
मंगलोद	८,०००,०००
उतरलाई	७,४९९,०००
कावास	२,०६१,०००
खुतानी	१,३७३,०००
दाकोरिया	१,२७१,०००
पिलनवासी	१,०४०,०००
फलसूंद	९७२,०००
धिरेरा	९३६,०००
बादवासी	८००,०००
भदौआ	५००,०००
योग	२४,४५२,००० टन

बादवासी तथा नागौर में क्रमशः २९६ तथा ६६ फुट की गहराई पर जिप्सम के अतिरिक्त भण्डार मिले हैं। जोधपुर से भी अधिक महत्व के जिप्सम निक्षेप बीकानेर में स्थित हैं। बीकानेर नगर से कुछ ही मील की दूरी पर जामसर में जिप्सम के सर्वोत्तम निक्षेप हैं। निक्षेपों की मोटाई केवल ४ फुट है, किन्तु विस्तार बहुत अधिक है। जामसर-निक्षेपों का खनन बीकानेर जिप्सम लि० करते हैं। यहाँ उत्पन्न जिप्सम का एक बड़ा भाग सिन्द्री के खाद कारखाने को भेज दिया जाता है। बीकानेर के विभिन्न निक्षेपों में जिप्सम की मात्रा का अनुमान इस प्रकार है—

स्थान	अनुमानित भण्डार (टनों में)
जामसर	२५,०००,०००
पुगाल	१,२९९,०००
कावनी	१,०००,०००
भरूं	४७३,०००
सियासर	३५१,०००
हरकासर	११८,०००
योग	२८,२४१,००० टन

मद्रास राज्य में जिप्सम मुख्यतः तिरुचिरापल्ली जिले से आता है। यहाँ पर लगभग २२.५ वर्गमील के क्षेत्र में चिकनी मिट्टी (क्ले, Clay) तथा चूना-पत्थरों के अन्तर्गत पतली और अनियमित पट्टिकाओं के रूप में यह मिलता है। ५० फुट की गहराई तक इस क्षेत्र में लगभग १.५ करोड़ टन जिप्सम प्राप्त होने का अनुमान किया जाता है।

सौराष्ट्र, कच्छ तथा सिन्ध में जूरेसिक, क्रिटेशियस और तृतीयक युग की शेल तथा चूना-पत्थरों में यह खनिज विद्यमान है। सबसे बड़ा प्राप्ति-स्थान नवानगर है जहाँ ४० लाख टन जिप्सम के भण्डार संचित हैं। इसी प्रकार कच्छ में उत्तम निक्षेप उमारसर में स्थित हैं तथा भण्डारों की अनुमानित मात्रा २० लाख टन है।

दक्षिण भारत के अन्य प्राप्ति-स्थान नेल्लोर, तिरुनेलवेली, कोयम्बटूर, रामनाथपुरम् तथा गुन्टूर जिलों में हैं। अण्डमान द्वीप में भी पोर्टब्लेयर के समीप यह प्राप्त होता है। उत्तर प्रदेश के झाँसी तथा हमीरपुर जिलों में भी सीमित मात्रा में यह खनिज मिला है।

कश्मीर में भी उड़ी तहसील में बरारीपारा के निकट १५ मील लम्बे क्षेत्र में जिप्सम पाया गया है। कनौर तथा स्पीति में विस्तृत निक्षेप मिले हैं। यद्यपि इन भण्डारों के सम्बन्ध में अभी तक अधिक नहीं ज्ञात हो सका है तथापि यह तो कहा ही जा सकता है कि ये निक्षेप पर्याप्त आशाप्रद हैं। उत्तर प्रदेश के गढ़वाल,

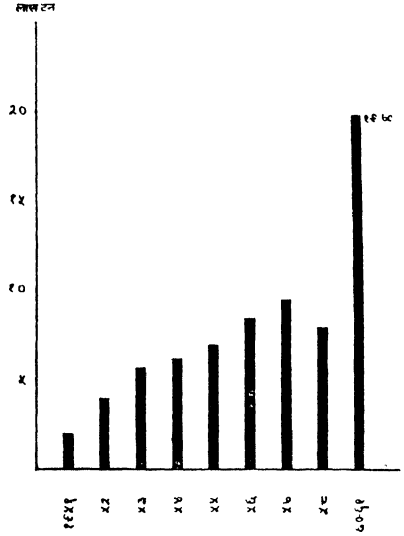

रेखाचित्र ६--जिप्सम
उत्पादन व योजना-लक्ष्य

नैनीताल तथा देहरादून जिलों से भी लगभग १० लाख टन जिप्सम मिलने की आशा है। भूटान की कांगड़ा चू घाटी में भी जिप्सम पर्याप्त मोटे निक्षेपों में पाया जाता है। इन निक्षेपों के विस्तार के सम्बन्ध में अभी तक कुछ पता नहीं है। इसी प्रकार के जो निक्षेप हिमाचल प्रदेश, सौराष्ट्र तथा कच्छ के अन्य भागों में मिले हैं उनसे ७० लाख टन जिप्सम मिलने की सम्भावना है।

शोरा (Saltpetre)

शोरा पोटेशियम का नाइट्रेट है। यह तथा अन्य नाइट्रेट जहाँ विस्फोटक

पदार्थों के काम आते हैं, वहाँ इनका खाद बनाने के काम में भी बड़ा हाथ है। कुछ वर्ष पहले तक भारत इन नाइट्रेटों के उत्पादन में संसार के देशों में चोटी पर रहा है तथा संसार के नाइट्रेट बाजार में इसका एकमात्र एकाधिपत्य था। इसके पश्चात् भारत का प्रमुख स्थान चिली ने ले लिया, जहाँ वर्षाहीन मरुभूमि में सोडियम नाइट्रेट के विस्तृत निक्षेप मिलते हैं।

किसी भी स्थान पर शोरे के निर्माण के लिए आवश्यक है कि वहाँ कार्बनिक तथा नाइट्रोजनमय पदार्थों का अपक्षय पोटेशियम लवणों के साथ हो। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं में शाकाणु (Bacteria, जीवाणु) मुख्य रूप से भाग लेते हैं। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, यहाँ मैदानों के कुछ भागों में शोरे के निर्माण के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं। इन विभिन्न स्थानों से जो शोरा उत्पन्न होता है, अधिकांशतः उसके गुण एक से नहीं होते और इसलिए देश में ही उपयोग होने से पूर्व अथवा विदेशों को निर्यात करने से पूर्व इसका शोधन करना आवश्यक होता है।

शोरा उत्पन्न करने के केन्द्र भारत के विभिन्न भागों में स्थित हैं, किन्तु देश के सम्पूर्ण उत्पादन का एक बड़ा भाग उस शोरे का है जो उत्तर भारत के राज्यों में उत्पन्न होता है। बिहार में मुज़फ्फरपुर, सारन, दरभंगा, चम्पारन, शाहाबाद, गया तथा मुंगेर जिले शोरे का उत्पादन करते हैं। किसी समय बिहार में शोरे का उत्पादन चोटी पर था, किन्तु अब तो बहुत कम रह गया है। उत्तर प्रदेश में कानपुर, गाज़ीपुर, इलाहाबाद तथा बनारस जिले एवं पंजाब में हिसार, अमृतसर, पटिलाया, जींद तथा नाभा इसके प्रमुख उत्पादन-केन्द्र हैं। गुजरात में अहमदाबाद जिले में शोरा उत्पन्न होता है। सन् १९४९ में बिहार में केवल ६,०४७ टन शोरे का उत्पादन हुआ था, जिसका अनुमानित मूल्य ३१,५४,७९२ रु० हुआ, जब कि इससे कुछ वर्ष पूर्व उत्पादन २०,००० टन था। इन आँकड़ों से यह अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है कि इस उद्योग का किस गति से भारत में ह्रास हो रहा है, क्योंकि जो दशा बिहार की है वही अन्य राज्यों की भी है।

फॉस्फेटीय पदार्थ (Phosphates)

जहाँ तक फॉस्फेटीय खनिजों का प्रश्न है, भारत को एक बड़ी मात्रा विदेशों से आयात करनी पड़ती है, क्योंकि देश के आन्तरिक संसाधन इतने समृद्ध नहीं हैं कि उन पर निर्भर रहा जा सके। व्यापारिक दृष्टि से फॉस्फेटों की पूर्ति के लिए

कुछ साधनों की आवश्यकता होती है, उदाहरणार्थ ऐपेटाइट, फॉस्फेटीय पिण्ड (Phosphatic nodules) अथवा मोनाज़ाइट खनिज। ऐपेटाइट के सम्बन्ध में हम पहले ही लिख चुके हैं। यहाँ पर इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि ऐपेटाइट जिसमें २०-२५ प्रतिशत तक फॉस्फोरस पैन्टॉक्साइड होता है, बिहार के सिंहभूम जिले की तीन विभिन्न पेटिकाओं में मिलता है जहाँ १०० फुट की गहराई तक ७ लाख टन खनिज विद्यमान होने का अनुमान है।

फॉस्फेटीय पिण्ड, जो सामान्यतः विभिन्न आकारों के होते हैं, मद्रास के तिरुचिरापल्ली जिले में पाये जाते हैं। इनके प्राप्तिस्थान मुख्यतः उत्तातूर के उत्तर-उत्तरपूर्व, पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व में स्थित हैं तथा इनमें फॉस्फोरस पेन्टॉक्साइड की मात्रा २५ प्रतिशत तक आँकी गयी है। यद्यपि यहाँ पर निक्षेपों के भण्डारों के सम्बन्ध में कोई निश्चित अनुमान नहीं है तथापि डा० कृष्णन् के कथनानुसार यहाँ पर २० लाख टन से अधिक मात्रा नहीं होनी चाहिए। दक्षिणी अरकाट तथा पाण्डिचेरी के निक्षेप तूतीपट्टू तथा आकासमपट्टू के मध्य स्थित कूट में मिलते हैं। इन निक्षेपों का अभी तक क्रमानुसार पूर्वेक्षण आदि नहीं हुआ है। शिला-फॉस्फेट के निक्षेप भी भारत में विद्यमान हैं, किन्तु उनका भी अध्ययन अभी तक नहीं हुआ। फिर भी कुछ भूवैज्ञानिकों का अनुमान है कि शिला-फॉस्फेट यहाँ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। मोनाज़ाइट, जिसमें फॉस्फोरस पैन्टॉक्साइड की मात्रा २६-२८ प्रतिशत तक रहती है, त्रावणकोर की बालुतटीय रेत में मिलता है। इस रेत में मोनाज़ाइट की मात्रा कुल रेत की मात्रा का १ प्रतिशत होती है। अल्वाए की फैक्टरी में मोनाज़ाइट से फॉस्फेट की प्राप्ति ट्राई-सोडियम फॉस्फेट के रूप में की जाती है, जो रासायनिक तथा अन्य उद्योगों में काम आती हैं। इस्पात उत्पादन करनेवाली बेसेम्बर (Bessember) तथा धमन-भट्ठियों से जो मलवा या धातुमल (Slag) बाहर निकलता है, उसमें भी फॉस्फोरस की कुछ प्रतिशत मात्रा रहती है, अतः इसको भी उपयोगी कामों में लाया जाता है।

खपत व उत्पादन

सिन्दरी के खाद कारखाने में प्रति दिन ६० टन सुपरफॉस्फेट का उत्पादन होता है और इसके लिए शिला-फास्फेट का प्रयोग किया जाता है। प्रति एक टन सुपर-फॉस्फेट बनाने के लिए लगभग ०·६३ टन शिला-फॉस्फेट (Rock Phosphate) की आवश्यकता है तथा इस प्रकार प्रति वर्ष इस कारखाने में लगभग १२०,०००

टन शिला-फॉस्फेट की खपत होती है। सन् १९५७ तथा १९५८ में क्रमशः सुपर-फॉस्फेट का उत्पादन १४२,००० टन तथा १६७,००० टन हुआ। योजना-आयोग के आँकड़ों के अनुसार सन् १९६०-६१ में शिला-फॉस्फेट की अनुमानित आवश्यकता ४२०,००० टन होगी। सन् १९५८ में सम्पूर्ण संसार का शिला-फॉस्फेटों का अनुमानित उत्पादन ३३,०००,००० मेट्रिक टन था। प्रमुख उत्पादक देशों में संयुक्तराज्य अमेरिका, सोवियत संघ, दक्षिणी मोरक्को, ट्यूनीशिया तथा नॉर्सू द्वीप (Naursu Islands) आदि देशों के नाम उल्लेखनीय हैं।

आयात

भारत में फॉस्फेटीय खनिजों का अभाव होने के कारण देश को आयात पर निर्भर रहना पड़ता है। इधर कुछ वर्षों से इसके आयात की मात्रा में भी वृद्धि हो रही है। सन् १९५५ से १९५८ तक के आयात के आँकड़े निम्न प्रकार हैं—

वर्ष	मात्रा (मेट्रिक टनों में)	मूल्य (रु०' ००० में)
१९५५	३०,८११	३,६८१
१९५६	४६,६०८	५,००८
१९५७	११७,७४९	१५,४९४
१९५८	१२३,२००	११,३०२

भारत को फॉस्फेटीय खनिजों का निर्यात करनेवाले देश मिस्र, जोर्डन, दक्षिणी मोरक्को तथा फ्रांस हैं।

ऐपेटाइट (Apatite)

ऐपेटाइट कैलसियम का फॉस्फेट है, जिसमें क्लोरीन अथवा फ्लोरीन भी रहती है। जब यह विशुद्ध होता है तो इसमें ४१-४२ प्रतिशत फास्फोरस पैन्टॉक्साइड रहता है। यद्यपि यह लगभग सभी प्रकार की शिलाओं में कुछ न कुछ मात्रा में अवश्य उपस्थित रहता है, तथापि मुख्य रूप से यह आग्नेय शिलाओं के अवयव के रूप में ही मिलता है। भारत में ऐपेटाइट के प्रमुख निक्षेप बिहार के सिंहभूम जिले में स्थित हैं। यहाँ यह तीन विभिन्न पेटिकाओं में पाया जाता है। सर्वोत्तम

निक्षेप सरायकेला सीमा तथा चन्दर बुरू के बीच नान्दुप के समीप स्थित हैं। दूसरी पेटिका पथरघड़ा तथा खरियाटोला के बीच पायी जाती है। बादिया से प्रारंभ होकर कन्यालुका होती हुई तीसरी पेटिका सुंगरी तथा खेजुरदारी चली जाती है। इस राज्य के हजारीबाग जिले में अभ्रकमय-पैग्मेटाइट के अन्तर्गत तथा गया जिले के सिंगार नामक स्थान पर ट्रिपलाइट (Triplite) मिलता है। गौण खनिज के रूप में ऐपेटाइट आन्ध्र प्रदेश के नेल्लोर तथा श्रीकाकुलम् जिले में क्रमशः पैग्मेटाइट तथा कोड्यूराइट श्रेणी में, गिरीडीह तथा रानीगंज कोयला क्षेत्रों में अभ्रक-पेरिडोटाइट में, बम्बई में नारुकोट जिले के मैंगनीज अयस्क के साथ आयोजित शिलाओं में तथा डूंगरपुर (राजस्थान) की कुछ शिष्टों में विद्यमान है।

सन् १९५८ में गत वर्षों को देखते हुए उत्पादन चोटी तक पहुँच गया। सन् १९५७ तथा १९५८ में इस खनिज का उत्पादन क्रमशः ९,३२५ तथा १४,८०६ मेट्रिक टन रहा, जिनका मूल्य क्रमशः १.९ तथा ३.६ लाख रुपया हुआ। देश में उत्पन्न सारा ऐपेटाइट इन दो वर्षों में सिंहभूम (बिहार) से ही आया। इस ऐपेटाइट में फॉस्फोरस पैन्टॉक्साइड की मात्रा औसत रूप से १६ प्रतिशत थी।

ऐपेटाइट की खपत मुख्यतः उच्च-फॉस्फोरस अपिघम लोह के निर्माण तथा खादों के बनाने में होती है। देश में ऐपेटाइट के स्थानीय उत्पादन में वृद्धि उसकी खपत में वृद्धि की परिचायक है। इस खनिज की अनुमानित खपत सन् १९५८ में १३८,००० मेट्रिक टन तथा सन् १९५७ में १२५,००० मेट्रिक टन रही। इस प्रकार सन् १९५८ में अनुमानित खपत का केवल ११ प्रतिशत भाग देश के आन्तरिक ऐपेटाइट संसाधनों से प्राप्त हुआ।

परिच्छेद १८

तलस्थ जल (Ground Water)

वर्षा, कुहरा, ओस अथवा किसी अन्य कारक द्वारा जो जल पृथ्वी तक पहुँचता है, उसका २/३ से २/५ भाग तक तो वायुमण्डल में वापस चला जाता है। शेष का एक बड़ा भाग नदी-नालों आदि के द्वारा समुद्र में चला जाता है तथा अवशिष्ट जल पृथ्वी की शिलाओं में लीन हो जाता है। इस प्रकार का जल पृथ्वी में जाकर अन्तर्भौम जल (Subterranean Water) का निर्माण करता है। भूमिगत (Underground) जल का वह भाग जो संतृप्तीकरण-कटिबन्ध (Saturation Zone) के नीचे रहता है और जिससे सोतों तथा कुओं को जल की उपलब्धि होती है, तलस्थ जल कहलाता है। तलस्थ जल उन अनेक जलों से भिन्न है जो संतृप्तीकरण-कटिबन्ध और पृथ्वी-तल (Land Surface) के बीच में विद्यमान रहते हैं। तलस्थ-जल पीने तथा अन्य घरेलू कामों में तो प्रयुक्त किया ही जाता है, साथ ही कृषि-योग्य भूमि की सिंचाई का भी एक बड़ा साधन है। भारत में १·५ करोड़ एकड़ भूमि की सिंचाई तलस्थ जल द्वारा होती है तथा यही कारण है कि इसका आर्थिक महत्त्व बहुत अधिक है।

किसी भी क्षेत्र में तलस्थ जल की मात्रा जो उस क्षेत्र में विद्यमान है, कई तथ्यों पर निर्भर करती है। उदाहरणार्थ—(१) जिन शिलाओं में जल प्रवेश करता है उनकी रन्ध्रता तथा पारगम्यता (Permeability), (२) वर्षा द्वारा प्रदत्त जल की मात्रा तथा उसके वितरण की प्रकृति, (३) वर्षाजल का वह भाग जो भूमितल में लीन हो जाता है। भारत में प्राप्त तलस्थ जल को स्थलाकृति (Topography) तथा भूवैज्ञानिक दृष्टिकोण से तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) हिमालयीय क्षेत्र, (२) गंगा के मैदान तथा (३) प्रायद्वीपीय भारत।

हिमालयीय क्षेत्र

मुख्य हिमालय के दक्षिण में शिवालिक क्रम की पहाड़ियाँ हैं। इनमें बालू,

पत्थर, शेलें तथा कोंग्लोमरेट आदि मिलते हैं। ये सभी संरचनाएँ तलस्थ जल-संसाधन के लिए पर्याप्त समृद्ध हैं। कोंग्लोमरेट संस्तरों में अन्तर्भौम जलमार्गों द्वारा जल का वितरण बहुत दूर तक मिलता है। इन क्षेत्रों में प्रति वर्ष लगभग २०" से अधिक ही वर्षा होती है तथा कुओं आदि से निरन्तर जल की प्राप्ति की जा सकती है।

गंगा के मैदानी क्षेत्र

गंगा की जलोढ मिट्टी द्वारा निर्मित मैदान उत्तर-भारत में पंजाब से पूर्वी बंगाल (पाकिस्तान) तक फैले हुए हैं। ये मैदान शिवालिक पहाड़ियों के दक्षिण में स्थित हैं। जलोढ मिट्टी की परत की मोटाई बहुत अधिक है तथा उत्तर प्रदेश में रुड़की के निकट तो इसकी मोटाई १०,००० फुट के लगभग अनुमानित की गयी है। इन क्षेत्रों को जल की प्राप्ति मुख्यत: मानसून तथा अध:-पर्वतीय जलधाराओं (Sub-montane streams) से होती है। वास्तव में ये मैदान भूमिगत जल के विशाल जलाशय हैं। मैदानों में जल-पटल (Water table) की गहराई ४० फुट से अधिक बहुत कम देखी गयी है। तराई क्षेत्र में भूमिगत जल बहुत अधिक दबाब के अन्तर्गत है, अत: यहाँ पर जल की उत्स्रुत या उपोत्स्रुत (Artesian or Subartesian) अवस्थाएँ देखी जाती हैं। यही कारण है कि इस भाग में अनेक उत्स्रुत कूप सफलता पूर्वक जल प्रदान करते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में तलस्थ जल का मुख्यत: सिंचाई के कामों में प्रयोग करते हैं। इस क्षेत्र में २००० से भी अधिक नलकूप हैं, जिनकी औसत गहराई ३०० फुट है तथा जिनसे औसत जल-उपलब्धि एक घनफुट प्रति सेकण्ड है। भारत में गंगा के इन मैदानों से सिंचाई आदि के लिए जल-प्राप्ति की योजनाओं का इधर कुछ वर्षों से बड़ा विस्तार किया जा रहा है। इन योजनाओं में भारतीय-अमेरिकन प्राविधिक सहयोग आयोजनों से बहुत सहायता मिली है। इनके अन्तर्गत बिहार, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के कई भागों में कुल मिलाकर २,००० नलकूप सन् १९५४ तक लगाये गये थे। सन् १९५५ तक इन्हीं भागों में लगभग ६५० और अतिरिक्त नलकूप इन्हीं आयोजनों के सहयोग से लगाये गये थे।

पंजाब एल्यवियम की अमृतसर-लुधियाना द्रोणिका (घाटी, Trough) की गहराई लगभग ४००० फुट होगी। यह द्रोणिका दक्षिण-पश्चिम में दिल्ली-शाहपुर कूट द्वारा सीमाबद्ध है। इसी कूट के कारण पंजाब-भूमिगत जल के समृद्ध निक्षेप

अस्तित्व में आये हैं। गुजरात के जलोढ-भूखण्ड में तलस्थ जल की प्राप्ति भूमितल से ३०–९० फुट के बीच की गहराई में होती है। इसी प्रकार उपोत्स्रुत जल की प्राप्ति ८० से २०० फुट तक की गहराई पर होती है। पश्चिमी राजस्थान में भी कई संरचनाओं में पर्याप्त मात्रा में तलस्थ जल की प्राप्ति हो सकती है। इस क्षेत्र का एक बड़ा भाग एल्यूवियम से ढका हुआ है जिसकी परत की मोटाई विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न है। यहाँ वर्षा भी केवल ५ से १५" तक ही होती है जिसका अधिकांश भाग वाष्पन द्वारा वायुमण्डल को पुनः वापस चला जाता है। लूनी नदी बेसिन को छोड़कर शेष सभी भागों में जल-पटल की गहराई १०० फुट से अधिक ही है तथा कहीं-कहीं तो ४०० फुट तक की गहराई देखी गयी है। पलाना लिग्नाइट क्षेत्र तथा जैसलमेर जल-पटल क्रमशः ३२६ तथा २३६ फुट की गहराई पर है। इन क्षेत्रों में तलस्थ जल के समृद्ध भण्डारों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कुछ स्थानों पर कुओं से बहुत अधिक मात्रा में पानी की उपलब्धि हो सकती है, जबकि अन्य स्थानों में केवल कुछ गैलन पानी की ही प्राप्ति होती है। सम्पूर्ण राजस्थान में वे क्षेत्र जहाँ तलस्थ जल केवल उथली गहराइयों पर ही मिल जाता है, इस प्रकार हैं—जोधपुर में पाली क्षेत्र, मेवाड़ में अरावली श्रेणी तथा इसके आसपास के मैदान और मेवाड़ के मैदान तथा जयपुर एवं टोंक।

प्रायद्वीपीय भारत

इस भाग की कायान्तरित तथा मणिभीय शिलाओं का जल-सोखने का समावेशन बहुत नगण्य है। इन शिलाओं में उत्पन्न दरारों, विदरों (Fissures), जोड़ों, भंजनों (Fractures) तथा संस्तर-तल में जल की कुछ मात्रा रह सकती है। जल-पटल की औसत गहराई इन क्षेत्रों में गर्मी तथा सर्दियों में क्रमशः २७ तथा १७ फुट होती है। जिन स्थानों पर वर्षा कम होती है, जैसे बेलारी तथा कोयम्बटूर, वहाँ ४५ फुट पर जल-पटल देखा गया है। मैसूर तथा आन्ध्र प्रदेश के हैदराबाद वाले भाग में यदि २० फुट व्यास के कुएँ से प्रति दिन १०,००० से १२,०००गैलन जल प्राप्त हो जाता है, तो यह प्राप्ति सन्तोषप्रद कही जानी चाहिए। मद्रास तथा आन्ध्र प्रदेश के समृद्ध स्थानों से इसी व्यास के कुएँ से केवल ३,००० या ४,००० गैलन ही जल प्राप्त हो पाता है। इन सभी राज्यों में तलस्थ जल की उपलब्धि की संभावनाएँ इतनी विभिन्न तथा जटिल हैं कि निश्चित रूप से कोई भी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। कुछ जिलों में डोलेराइट डाइकें अथवा स्फटिक-पट्टिकाएँ अन्य शिलाओं

में अन्तर्भेदित हैं और इस प्रकार ये प्राकृतिक रोक का काम करती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि इनके दोनों ओर जल-पटल की गहराई में बड़ा अन्तर आ गया है। इस प्रकार के उदाहरण चित्तूर, बेलारी तथा उत्तरी आरकोट में मिले हैं। नेल्लोर, अनन्तपुर, बेलारी, कुर्नूल, कुडप्पा, गुण्टूर, विशाखापत्तनम्, उत्तरी अरकाट, सलेम तथा कोयम्बटूर जिलों के कई भागों में तलस्थ जल के साथ कुछ फ्लोराइड घुले रहते हैं, जिससे वहाँ के निवासियों को दाँत के तथा कुछ अन्य रोग हो जाते हैं।

विन्ध्यीय और कुडप्पा क्रम की स्लेट, शेल तथा चूना-पत्थर आदि शिलाएँ साधारणतः जल को सोख नहीं पातीं तथा सूक्ष्मकणीय बालू-पत्थरों की रन्ध्रता भी कम है। किन्तु जब कभी ये रूक्ष-कणीय होते हैं अथवा कोंग्लोमरेटिक होते हैं, तो जल की कुछ मात्रा धारण कर सकते हैं। कुडप्पा, कुर्नूल, बीजापुर जिलों तथा हैदराबाद के कुछ भागों में प्राप्त शिलाओं में अनेकों सन्धियाँ हैं, जो सरलता से पानी की पर्याप्त मात्रा अपने में धारण कर सकती हैं, जिससे घरेलू कार्यों के लिए पानी की उपलब्धि होती रहती है। मध्य प्रदेश में छत्तीसगढ़-बेसिन तलस्थ जल के संचयन के लिए उपयुक्त संरचना है, किन्तु दुर्भाग्य से यहाँ प्राप्त शिलाएँ ही जल-संचयन नहीं कर सकतीं। इसी प्रदेश के मैहर तथा सतना क्षेत्र में तथा मिर्ज़ापुर (उत्तर प्रदेश) में विन्ध्यीय शिलाओं से जल की अच्छी प्राप्ति हो जाती है, जिससे घरेलू आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं।

गोंडवाना क्रम के अधिकांश बालू-पत्थरों की, विशेषकर उनकी, जो कोमल तथा सरन्ध्र होते हैं, जलसंचयन-शक्ति अच्छी है तथा वे अधिकांशतः संतृप्तीकृत रहते हैं। दक्षिणी बिहार का एक बड़ा भाग, प० बंगाल, महानदी बेसिन, प्रनहीता-वर्धा-गोदावरी घाटी, मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्र तथा आन्ध्र प्रदेश और मद्रास के पश्चिम गोदावरी तथा रामनाथपुरम् जिलों में विस्तृत रूप से ये शिलाएँ (गोंडवाना) पायी जाती हैं। रामनाथपुरम् तथा प० गोदावरी में तो उपोत्खुत अवस्था में भी तलस्थ जल मिलता है। पू० गोदावरी में भी तलस्थ जल कुछ इसी प्रकार की अवस्थाओं में पाया गया है।

प्रायद्वीपीय भारत के कुछ भाग, सौभाग्य से, अपने भूमिगत जल-संसाधनों में अधिक समृद्ध हैं। गोदावरी बेसिन के गोंडवाना तथा तृतीयक-युगीन बालू-पत्थरों से उच्च दबाव के अन्तर्गत भूमिगत जल की प्राप्ति हुई है। तलस्थ जल के लिए दबाव की यही स्थितियाँ पूर्वी कच्छ की अवसादीय शिलाओं, बम्बई के समीप बोरीवली के क्लोरिटिक टुफ़ (Chloritic Tuff) तथा मद्रास में कुड्डालोर

और वृद्धाचलम् के बीच स्थित तृतीयक बालू-पत्थरों के साथ आयोजित हैं। इसी प्रकार भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी तटों में अनेक स्थानों पर उत्स्रुत अवस्थाओं में तलस्थ जल मिलता है और इस प्रकार इन क्षेत्रों से किसी भी मात्रा में जल की प्राप्ति की जा सकती है।

तलस्थ जल के लिए पूर्वेक्षण

तलस्थ जलों के विकास के लिए क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान देश के आर्थिक विकास के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आयोजनों में से है। तलस्थ जल के संसाधनों द्वारा सफलतापूर्वक शोषण ज्ञात करने के लिए अन्य तथ्यों के अतिरिक्त यह भी जानना चाहिए कि किसी स्थान पर जल-पटल की गहराई क्या है, जल प्राप्त करने की दर क्या है तथा उसके लिए कितनी शक्ति (Power) की आवश्यकता होगी तथा उस जल के गुण कैसे हैं। भारत के विभिन्न भागों में भारतीय भूतात्त्विक समीक्षा, इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, वेधन तथा भूभौतिक अनुसन्धानों में कार्य-रत है।

तलस्थ जल की प्राप्ति

देश के विभिन्न भागों में तलस्थ जल प्राप्त करने के ढंग भी भिन्न-भिन्न हैं। ये विधियाँ मुख्यतः तीन तथ्यों पर आधारित हैं—(१) गहराई, जिस पर पानी मिलता है; (२) जलमय संस्तर की प्रकृति तथा उसके ऊपर स्थित शिलाएँ या मिट्टियाँ, (३) जल की मात्रा, जिसकी प्राप्ति करनी है। उथली गहराई वाले कुओं को खोदने के लिए तो साधारण यन्त्रों का ही उपयोग करते हैं। रन्ध्रयुक्त भूमि में अधिक गहराई तक पहुँचने से अधिक जल की प्राप्ति होती है, किन्तु संस्तर-शिला की प्रकृति को ध्यान में रखे बिना यदि बहुत अधिक गहराई तक कुओं को खोदा जाय, तो उससे कभी-कभी अच्छे परिणाम नहीं निकल सकते। सिन्धु-गंगा के मैदानों में नलकूप सबसे अधिक सफल हुए हैं। उनके साथ विद्युत् द्वारा संचालित पम्पों को लगाकर विपुल जलमात्रा की प्राप्ति पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा बिहार में की जाती है और इस प्रकार प्राप्त जल को अधिकांशतः सिंचाई के काम में लाते हैं।

कभी-कभी प्राकृतिक रूप से छने हुए तलस्थ जल की विपुल मात्रा की प्राप्ति कुछ विशेष प्रकार के कूपों या गैलरियों (Galleries) के निर्माण द्वारा की जा

सकती है। इनके लिए बड़े-बड़े व्यास के पम्पों को, जिनकी सन्धियाँ खुली रहती हैं, संतृप्तीकरण कटिबन्ध के नीचे भूमिगत प्रतिष्ठापित किया जाता है तथा उपयुक्त पम्पों द्वारा उनसे जल की प्राप्ति की जाती है। दामोदर नदी के संस्तर में इसी प्रकार की गैलरियाँ बनायी गयी हैं, जिनसे पानी खींचकर सिन्द्री में खाद के कारखाने को भेजा जाता है।

परिच्छेद १९

मिट्टियाँ (Soils)

भारत कृषिप्रधान देश है। इस दृष्टिकोण से भारत की विभिन्न मिट्टियों का ज्ञान होना, कम से कम एक भूवैज्ञानिक के लिए, आवश्यक हो जाता है। मिट्टियों का विस्तृत अध्ययन भले ही न किया जाय, पर उनका उद्भव, प्रकृति, खनिज-संरचना तथा उनके विस्तार और वितरण का साधारण ज्ञान तो होना ही चाहिए। दुर्भाग्य का विषय है कि अभी तक भारतीय मिट्टियों का क्रमबद्ध अध्ययन अथवा अन्वेषण किसी व्यक्ति अथवा संस्था ने विस्तृत रूप से नहीं किया है और यही कारण है कि भारतीय मिट्टियों के सम्बन्ध में प्राप्त आँकड़े अपूर्ण हैं।

कृषि के अतिरिक्त आर्थिक-भूवैज्ञानिक के लिए एक अन्य उद्देश्य से भी मिट्टियों का अध्ययन सहायक होता है। इनके विस्तृत अध्ययन से वे अनेक तथ्य प्रकाश में आ जाते हैं जिनका सीधा आर्थिक प्रभाव होता है। हम जानते हैं कि इन मिट्टियों की परतों के नीचे अनेक शिलाएँ तथा खनिज-निक्षेप विद्यमान होते हैं; और जब हमें इन मिट्टियों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान हो जाता है तो कुछ ऐसी शिलाओं तथा खनिज-निक्षेपों की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित होने लगता है; जिनसे सम्भवतः इन मिट्टियों का जन्म हुआ होगा। यही तथ्य अनेक स्थानों पर बहुत सहायक सिद्ध होता है। किसी विशेष प्रकार की मिट्टी को देखकर कुछ विशेष अवस्थाओं में कहा जा सकता है कि उसके गर्त में क्या छिपा है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के वानस्पतिक पौधों आदि को जन्म देती हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी स्थान पर अचानक ही वनस्पति परिवर्तित होती मिलती है और उस स्थिति में ऐसा कहा जा सकता है कि वहाँ कोई विशेष भू-वैज्ञानिक संरचना (Geological Structure) विद्यमान है। इस प्रकार ये विभिन्न मिट्टियाँ अनेक भू-वैज्ञानिक संरचनाओं के अध्ययन में भी अपूर्व सहयोग देती हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ कारण ऐसे हैं जो भू-वैज्ञानिक के लिए मिट्टियों का अध्ययन अनिवार्य कर देते हैं।

प्राकृतिक रूप से मिट्टियों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम तो वे मिट्टियाँ हैं जिनका निर्माण स्वस्थाने (Insitu) ही हुआ है और इस प्रकार की मिट्टियों को अनूढ (Sedentary) वर्ग में रखा जाता है। दूसरे प्रकार की वे मिट्टियाँ हैं जिनका निर्माण स्वयं में एक लम्बी विधि है और वे अपने निर्माण के स्थान से कहीं बहुत दूर नदियों अथवा अन्य प्राकृतिक साधनों द्वारा ले जायी गयीं तथा वहाँ अवसादित हो गयीं। इनको जलोढ अथवा एल्यूवियल मिट्टियों के नाम से पुकारा जाता है। सभी मिट्टियाँ शिलाओं के क्षरण (Decay) द्वारा उत्पन्न होती है तथा इस विधि में भौतिक वियोजन तथा रासायनिक विच्छेदन दोनों का ही सहयोग रहता है। यह कहना कि अमुक प्रकार की मिट्टी अमुक प्रकार की शिलाओं से उत्पन्न होगी, कुछ अंशों तक ठीक हो सकता है, किन्तु ऐसा सदैव नहीं होता। ऐसा देखा गया है कि एक ही शिला कभी-कभी दो या अधिक विभिन्न मिट्टियों को उत्पन्न कर सकती है। इसी प्रकार किन्हीं अन्य अवस्थाओं में दो विभिन्न शिलाएँ एक ही प्रकार की मिट्टी को जन्म दे सकती हैं। जहाँ तक भारतीय उप-महाद्वीप का प्रश्न है, डा० डी० एन० वाडिया के अनुसार 'मुख्य मिट्टियों के वर्गों के प्रधान गुणों को सामान्यतः उनकी भू-वैज्ञानिक स्थिति की प्रकृति से जाना जा सकता है।'

किसी भी प्रकार की मिट्टी हो उसके निर्माण में कुछ विशेष तथ्यों का प्रभाव बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है तथा इनमें वर्षा, तापक्रम, ऊँचाई (Altitude), स्थलाकृति (Topography), तलीय वनस्पति के गुण, जीव-क्रियाएँ (Activities of Organisms) तथा समय प्रमुख तथ्य हैं। मानसूनी प्रदेशों में बारी-बारी से सूखी (Dry) तथा वर्षा ऋतु होने से इन प्रदेशों की मिट्टियों तथा उनकी रचनाओं पर इनका बड़ा गहरा प्रभाव रहता है। यही कारण है कि अधिक उष्ण देशों में लेटराइटिक प्रकार की मिट्टियाँ नहीं मिलतीं।

भारतीय मिट्टियों का वर्गीकरण

भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्था (Indian Agricultural Research Institute) ने भारतीय मिट्टियों को आठ मुख्य वर्गों में विभाजित किया है। इन वर्गों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) जलोढ या एल्यूवियल, (२) रूक्ष जलोढ, (३) कायान्तरित शिलाओं के ऊपर की लाल मिट्टी, (४) लेटराइटिक मिट्टियाँ, (५) काली मिट्टियाँ,

(६) गहरी काली मिट्टियाँ, (७) ट्रैप-शिलाओं के ऊपर की हलकी मिट्टियाँ तथा (८) गहरी काली एल्यूवियल मिट्टियाँ।

प्राथमिक रूप से भारतीय उप-महाद्वीपीय मिट्टियों को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) वे मिट्टियाँ जो विन्ध्य-पर्वतमालाओं के दक्षिण में प्रायद्वीपीय भारत में मिलती हैं। ये मिट्टियाँ परिपक्व अवस्था को पहुँच चुकी हैं। इस प्रदेश की अनेक मिट्टियों के उद्भव के सम्बन्ध में भी कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि युगों-युगों से इन पर न मालूम कितनी प्रक्रियाएँ हुई हैं। मिट्टियों के, इस विशाल वर्ग में काली, लाल तथा लेटराइट प्रकार की सभी मिट्टियाँ सम्मिलित हैं। इन मिट्टियों के गुण स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं। इसका कारण यह है कि विभिन्न शिलाओं से विभिन्न अवस्थाओं तथा वातावरण में इनका जन्म हुआ है और अनेक तथ्यों का प्रभाव इन पर प्रारम्भ से ही होता रहा है।

(२) भारतीय उपमहाद्वीप के मैदानी भाग जलोढ या एल्यूवियल मिट्टियों द्वारा निर्मित हैं। इनका विस्तार पश्चिम में सिन्ध से लेकर पूर्व में बंगाल तथा आसाम के पूर्वी भाग तक है। ये मिट्टियाँ भी कई प्रकार की हो सकती हैं, किन्तु पर्याप्त विस्तृत क्षेत्रों में ये एक ही प्रकार की देखी गयी हैं तथा इनके गुण भी साधारणतः अधिक परिवर्तित नहीं होते।

(३) हिमालय तथा भारत की पूर्वीय पर्वतमालाओं की वे मिट्टियाँ इस वर्ग में सम्मिलित हैं जिनका निर्माण मुख्यतः तृतीयक युग की मृत्तिकाओं (Clays), बालू-पत्थर तथा चूना-पत्थर से हुआ है तथा जो नितान्त अपरिपक्व हैं। इनके विस्तार-क्षेत्र भी अति सीमित हैं।

प्रायद्वीपीय भारत की प्रमुख मिट्टियाँ

काली मिट्टियाँ

ये वे मिट्टियाँ हैं जो कपास की फसल के लिए सर्वोपयुक्त हैं तथा 'रेगुर' के नाम से विख्यात हैं। ये बम्बई (महाराष्ट्र), मालवा, पश्चिमी मध्य प्रदेश, द० प० आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, सौराष्ट्र तथा बुन्देलखण्ड के केवल कुछ भागों में फैली हुई हैं। इन मिट्टियों का जन्म बैसाल्ट के रासायनिक विच्छेदन से हुआ है। राजमहल पर्वतों में भी काली मिट्टी मिलती है। यह आवश्यक नहीं है कि काली मिट्टी केवल दक्षिण ट्रेप (Deccan Trap) से ही आयोजित हो। विशेष परिस्थितियों

में वह कणाश्मीय तथा प्राचीन अवसादीय शिलाओं के साहचर्य में भी देखी जाती है। इस प्रकार के उदाहरण दक्षिण भारत में बेलारी, कुर्नूल, कुडप्पा, अनन्तपुर, कोयम्बटूर, सलेम, तनजोर, रामनाथपुरम् तथा तिरुनेलवेली जिलों में विद्यमान हैं।

लेटराइटिक मिट्टी

लेटराइटिक प्रकार की ये मिट्टियाँ मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा के अनेक भागों तथा प० बंगाल, आसाम, पश्चिमी तथा पूर्वी घाटों, एवं आन्ध्र प्रदेश के केवल कुछ भागों में पायी जाती हैं। ये मिट्टियाँ विशुद्ध स्फटिकाश्मीय शिलाओं को छोड़कर किसी भी अन्य शिला द्वारा उष्ण अथवा आर्द्र एवं सूखे जलवायु के बारी-बारी से आनेवाले प्रदेशों में उत्पन्न हो सकती हैं। इन क्रियाओं में क्षारीय तथा सिलिकामय अवयव निकल जाते हैं और अवशिष्ट भाग एल्यूमीनियम तथा लोहे के आक्साइडों में समृद्ध हो जाते हैं। इन आक्साइडों की मात्रा अधिकांशतः चल होती है तथा विभिन्न प्रकार के लेटराइटों में घटा-बढ़ा करती है। लेटराइट प्रकार की मिट्टियों में क्षारीय तत्त्वों के अतिरिक्त फास्फोरिक अम्ल, चूना तथा मैग्नीशिया का भी अभाव रहता है। फसल की दृष्टि से इन मिट्टियों को महत्त्व नहीं दिया जाता। कुछ अधोवर्गीय लेटराइटिक मिट्टियाँ कन्याकुमारी से लेकर उड़ीसा तट तक पायी जाती हैं। इनका विस्तार मिदनापुर, बर्दवान तथा वीरभूम में भी है। बिहार के राजमहल पर्वतों में वे उच्चवर्गीय लेटराइट में विकसित हुई प्रतीत होती हैं।

लाल अथवा पीली मिट्टियाँ

ये मिट्टियाँ प्रायः उन शिलाओं से उत्पन्न होती हैं जिनमें लोहे का अंश अधिक रहता है। वे शिलाएँ जिन्होंने इन मिट्टियों को जन्म दिया है, प्रायः अम्लीय कणाश्म तथा नाइस आदि हैं। विन्ध्यन तथा कुडप्पा क्रमों की अवसादीय शिलाओं के अंश भी इनमें देखने को मिलते हैं। समरूप से अपेक्षाकृत उच्च तापक्रमों पर शिलाओं का लौह-अंश वियोजित हो जाता है तथा इस प्रकार निर्मित मिट्टियों को लाल रंग का बना देता है। लाल रंग के अतिरिक्त पीली, कत्थई, भूरी तथा कभी-कभी आंशिक रूप से काली मिट्टियाँ भी इस वर्ग में देखने को मिलती हैं। इसके दो कारण हो सकते हैं। प्रथम तो सम्भव है कि लोहे की मात्रा भिन्न-भिन्न हो और यदि ऐसा नहीं है तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि उन मिट्टियों का जलीकरण (Hydration) ठीक प्रकार से नही हुआ है। इस प्रकार की मिट्टियाँ बुन्देलखण्ड,

मध्य प्रदेश के कुछ भागों, आन्ध्र प्रदेश के हैदराबाद क्षेत्र, महाराष्ट्र, मैसूर, मद्रास तथा बंगाल और उड़ीसा के दक्षिणी भागों में पायी जाती हैं। वास्तव में भारतीय मिट्टियों में इस प्रकार की मिट्टियों का वर्ग सबसे विशाल है। सामान्य संरचना में ये मिट्टियाँ सिलिकामय तथा एल्यूमीनियममय होती हैं तथा इनमें मैग्नीशिया, चूना, क्षार, नाइट्रोजन तथा फास्फोरस आदि का अभाव रहता है। ये मिट्टियाँ अति अधिक सरन्ध्र (Porous) होती हैं और अधिकांशतः उपजाऊ नहीं होतीं।

डेल्टा की जलोढ मिट्टियाँ

ये मिट्टियाँ अपने गुणों में सिन्ध-गंगा के मैदानों की जलोढ मिट्टियों से मिलती-जुलती हैं। नदियों द्वारा बाढ़ के समय ये मिट्टियाँ डेल्टा पर छोड़ दी जाती हैं। प्रायद्वीपीय भारत की अनेक नदियों के डेल्टा इस प्रकार की जलोढ मिट्टियों द्वारा निर्मित हैं।

सिन्ध-गंगा के मैदानों की मिट्टियाँ

जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, इस प्रकार की जलोढ मिट्टियों का विस्तार पश्चिम में सिन्ध से लेकर पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश के कुछ भाग, प० बंगाल तथा आसाम के लगभग अर्ध भाग तक है। हिमालय से निकलनेवाली नदियों ने इन मैदानों का निर्माण किया है। ये मिट्टियाँ मुख्य रूप से जलोढ या एल्यूवियल मिट्टियाँ हैं तथा बहुत-बहुत दूर तक इनके गुणों में समता रहती है; यद्यपि कुछ अवस्थाओं में विभिन्न स्थानों की जलोढ मिट्टियों के कुछ गुण भिन्न हो सकते हैं। उत्तर भारत तथा पाकिस्तान की जनसंख्या का एक बड़ा भाग इन मिट्टियों पर ही निर्भर रहता है, क्योंकि अन्न-उत्पादन के लिए ये सबसे उत्तम मिट्टियाँ हैं। इन्हें सरलता से जोता, बोया तथा उपजाऊ बनाया जा सकता है। सिंचाई के साधनों को भी इन क्षेत्रों में जुटाने के लिए अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता।

जहाँ तक इनकी संरचना का सम्बन्ध है, ये बालू तथा मृत्तिकाओं के मिश्रण से निर्मित हुई हैं। अधिक नवीन मिट्टियों में मृत्तिकाओं का अनुपात बढ़ा प्रतीत होता है। वास्तव में इन मिट्टियों को अपरिपक्व ही कहना चाहिए। भू-वैज्ञानिक दृष्टि से इन मिट्टियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम तो प्राचीन जलोढ मिट्टियाँ हैं जिनमें स्थूल मृत्तिकाएँ बालू के साथ अंतःस्तरित रहती हैं।

ये मृत्तिकाएँ मुख्यतः पीले अथवा लाल-कत्थई रंग की होती हैं। इस प्रकार की मिट्टियों में कुछ गहराई पर कंकड़ भी मिलते हैं। दूसरी वे मिट्टियाँ हैं जिनको नवीन जलोढ मिट्टियों का नाम दिया गया है। इन मिट्टियों का निर्माण प्राचीन जलोढ मिट्टियों से हुआ है तथा इनका विस्तार केवल उन्हीं वर्तमान नदियों तथा जलमार्गों तक सीमित है जिन्होंने अपना मार्ग परिवर्तन कर लिया है। इनमें कंकड़ बिलकुल नहीं होता। सिन्ध तथा ब्रह्मपुत्र नदियों की घाटियाँ नवीन जलोढ मिट्टियों द्वारा ही निर्मित हैं। यद्यपि सूखे क्षेत्रों की जलोढ मिट्टियों में ह्यूमस (Humus) तथा नाइट्रोजन के अवयव बहुत कम हैं, तथापि पोटैशियम, फास्फोरस तथा क्षारों की मात्रा का अनुपात पर्याप्त है। कैलसियम तथा लोहे के आक्साइड भी चल-मात्रा में विद्यमान रहते हैं। उत्तरी बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, सिन्ध तथा मद्रास के कुछ सूखे क्षेत्रों में उच्च तापक्रम, कम वर्षा, नदियों तथा नालों-जैसे प्राकृतिक जल साधनों की अनुपस्थिति तथा अन्तर्भौमिक बाधाओं—जैसे अप्रवेशनीय (Impervcous) मृत्तिकाओं की उपस्थिति आदि के कारण भूमि बंजर हो गयी है। इस प्रकार की भूमि को प्रायः 'ऊसर' कहा जाता है। इनमें लवणीय तथा क्षारीय तत्त्वों का आधिक्य हो जाता है और इस प्रकार क्रमशः रेह तथा कालड़ (Kallar) निर्मित हो जाते हैं। इस प्रकार की भूमि कृषि-कार्यों के लिए बिलकुल निरर्थक होती है। बाह्य-हिमालय के किनारे की भूमि को 'तराई' के नाम से पुकारा जाता है। तराई क्षेत्र की मिट्टी दलदली (Marshy) है तथा इसमें बड़ी-बड़ी घास उत्पन्न होती है। कुछ क्षेत्र कृषि के लिए भी बहुत ही उत्तम सिद्ध हुआ है। गंगा तथा ब्रह्मपुत्र के डेल्टा की मिट्टियाँ अपेक्षाकृत ह्यूमस में अधिक समृद्ध हैं तथा प्रति वर्ष बाढ़ आने के कारण उनमें नवीन गाद (Silt) की परत जमती रहती है, जिसका फल यह होता है कि उनकी उर्वरा शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

प्रायद्वीप-बाह्य प्रदेश (Extra Peninsula) **की पर्वतीय मिट्टियाँ**

हिमालय की इन मिट्टियों के सम्बन्ध में विधिवत् सर्वेक्षण तथा अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। इनके उद्भव के सम्बन्ध में भी कोई विशेष तथ्य अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। रासायनिक संरचना तथा भौतिक गुणों का ज्ञान भी बहुत कम हुआ है। यह एक अकाट्य सत्य है कि जब इनका वर्गीकरण सम्भव हो जायगा तब इन मिट्टियों की विभिन्नता के सम्बन्ध में कोई संशय नहीं रह जायगा। वास्तव में हिमालय के विभिन्न भागों में जो मिट्टियाँ पायी जाती हैं वे अपने गुणों में एक-दूसरी

से पर्याप्त भिन्न होती हैं। इनमें से कुछ तो खेती के लिए उपयुक्त हो सकती हैं, शेष पर चाय के बाग अथवा अन्य प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं।

बाह्य हिमालय में गिरिपीठों (Foot hills) का निर्माण शिवालिक श्रेणी की शिलाओं ने किया है। काँग्लोमरेट तथा अन्य कोमल बालूयुक्त संस्तर शिवालिक श्रेणी की बाहरी ओर स्थित हैं। मानसूनी जलवायु के कारण इन शिलाओं के ऋतु-क्षरण से जो मिट्टियाँ बनती हैं वे अधिकतर बालूयुक्त तथा अपरिपक्व प्रकृति की होती हैं, जिनमें ह्यूमस की भी थोड़ी-सी मात्रा विद्यमान रहती है। शिवालिक श्रेणी में बालू-पत्थर, अनेक प्रकार की मृत्तिकाएँ तथा काँग्लोमरेट आदि पाये जाते हैं, किन्तु देखा गया है कि विभिन्न स्थानों की मिट्टियों में कोई अधिक अन्तर नहीं है। उप-हिमालय के अनेक शिला-संघ (Rock-stages) अपने सामान्य गुणों में एक दूसरे से बहुत मिलते-जुलते हैं। अतः समान अपवाह (Drainage) की दशाओं में उनसे निर्मित होनेवाली मिट्टियाँ भी अपने अनेक पहलुओं में समान होती हैं।

मध्य हिमालय में मिट्टियाँ केवल सीमित क्षेत्रों में ही देखने को मिलती हैं। दक्षिणी ढाल पर तो किसी भी प्रकार की मिट्टियाँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं। केवल कहीं-कहीं उत्तरी ढालों पर प्रकृति के कुछ विशेष कारकों (Agents) ने कुछ ऐसे स्थलों का निर्माण कर दिया है, जिनका घास के मैदानों या चरागाहों के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। साधारण स्तर पर इन क्षेत्रों में खेती भी की जा सकती है।

परिशिष्ट १

खनिज सम्बन्धी आँकड़े

भारत में खनिज उत्पादन का मूल्य (१९४८-५८)

वर्ष	खनिज-उत्पादन का मूल्य (लाख रु० में)
१९४८	६,४००
१९४९	६,७६०
१९५०	७,१६०
१९५१	८,५२०
१९५२	८,७३०
१९५३	९,०९०
१९५४	८,९२०
१९५५	९,४३०
१९५६	१०,६९०
१९५७	१२,९३०
१९५८	१३,७३०

भारत में खनिज उत्पादन का मूल्य खनिज वर्गों के अनुसार (सन् १९४८-५८)

(लाख रु० में)

		धातविक खनिज			अधातविक खनिज	भवन निर्माण के पत्थर व अन्य	
वर्ष	कोयला	लौहस	अलौहस	योग			योग
१९४८	४,५२०	२७०	६७०	९४०	६३०	३१०	६,४००
१९४९	४,७६०	३५०	६९०	१,०४०	६६०	३००	६,७६०
१९५०	४,६७०	६१०	७७०	१,३८०	७००	४१०	७,१६०
१९५१	५,०५०	९४०	९६०	१,९००	९८०	५९०	८,५२०
१९५२	५,३६०	१,२५०	८६०	२,११०	९१०	३५०	८,७३०
१९५३	५,२८०	१,७५०	७७०	२,५२०	८९०	४००	९,०९०
१९५४	५,३९०	१,४४०	८९०	२,३३०	७९०	४१०	८,९२०
१९५५	५,६००	१,४३०	९६०	२,३९०	१,०८०	३६०	९,४३०
१९५६	६,५१०	१,७१०	१,०९०	२,८००	९३०	४५०	१०,६९०
१९५७	८,१४०	१,८७०	१,०००	२,८७०	१,१८०	७४०	१२,९३०
१९५८	८,९९०	१,६४०	९७०	२,६१०	१,३२०	८००	१३,७३०

भारत में खनिज उत्पादन की मात्रा एवम् मूल्य (सन् १९५७-५८)

खनिज का नाम	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
१	२	३	४	५	६
कोयला	'००० मेट्रिक टन	४४,२०४	८१४,०२२	४६,०६८	८९८,९६७
लिग्नाइट	,, टन	२,७३३	१२५	६,५६९	२३०
योग					
धातविक खनिज			८१४,१४७		८९९,१९७
(अ) लौहस (ferrous)					
क्रोमाइट	,, टन	७९,८०२	२,९२०	६३,९५७	३,१८६
लौह-अयस्क	'००० ,, टन	५,१६७	४३,४६८	६,१३०	४८,४९१
मेंगनीज-अयस्क	'००० ,, टन	१,६८१	१४०,५५८	१,२५३	११२,४२९
वाल्फ्रेमाइट	'००० ,, टन				
	योग (लौहस अयस्कों का)		१८६,९४६		१६४,१०६
(ब) अ-लौहस (Non-ferrous)					
बाक्साइट	मेट्रिक टन	९८,३०२	९१५	१३९,०९८	१,२८४
ताम्र अयस्क	,, टन	४१०,४१२	२६,५३४	४११,४७१	२२,६६८
सोना	किलोग्राम	५,५७३	५१,०६९	५,२९१	४९,९८८

खनिज का नाम	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
रूटाइल	मेट्रिक टन	४८१	४७३	४५६	४४९
इल्मेनाइट	,, टन	३००,९७५	१६,८१२	३१४,१२२	१८,३३९
चाँदी	किलोग्राम	३,९१५	६०५	३,४१६	५४८
सीसा (संकेन्द्रित)	मेट्रिक टन	४,९२८	१,२१०	५,३४१	१,९३७
जस्ता (संकेन्द्रित)	,, टन	७,५८९	२,५३२	७,३९१	२,०४९
योग (अ-लौहस खनिजोंका)			१००,१५०		९७,२६२
योग (धातविक खनिजों का)			२८७,०९६		२६१,३६८
अधातविक खनिज (Non-metallic minerals)					
नमक (अन्य)	'००० मेट्रिक टन	३,६६६	७४,१६३	४,२२७	८४,३३५
अभ्रक (कटु)	,, टन	३०,९४३	२३,१५४	३१,८११	२५,१९६
कायनाइट	,, टन	२३,८८१	५५,४६८	२६,०२६	६,०१८
जिप्सम	,, टन	९,३६,७८२	५,७६५	७९४,३९२	५,२१५
चीनी मिट्टी	,, टन	१,८३,४०९	२,२८१	१८५,०५९	२,४४८
स्टीटाइट	,, टन	४४,६८१	१,८९०	४६,१८१	१,९४४
मैग्नेसाइट	,, टन	९०,३१२	१,७९५	१०४,२३६	१,७९३
अग्नि-मिट्टी	,, टन	१६६,१७६	१,२६४	१९५,३३२	१,६८८
सिलीमिनाइट	,, टन	७,५३६	४४४	१४,०६७	७८३
ओकर (Ochre)	,, टन	१५,८१६	३३६	२०,४०७	४०१
हीरा	कैरट	७९०	१६८	१,५४०	३७०
ऐपेटाइट (Apatite)	मेट्रिक टन	९,३२५	१९०	१४,८०६	३६२

खनिज का नाम	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
ऐस्बस्टस	मेट्रिक टन	१,७४६	४२३	१,१८१	३४४
क्वार्टज तथा सैकजा (Silica)	,,	२६,१९३	२७१	३१,४६१	३२३
बेराइट	,,	१३,१२१	२११	१५,९०८	२८५
नमक (शिला)	,,	४,४०५	२१२	५,१९७	२४८
कोरण्डम	,,	४५१	२४६	३९५	१८९
फेल्सपार	,,	७,९९८	८१	८,५६७	८०
ऐमेराल्ड	'००० कैरट	३३८	२५	८०	५०
कैल्साइट	मेट्रिक टन	४,७४२	४८	२,९१७	२१
योग (अधातविक खनिजों का)			११८,४३५		१३२,०९३
चूना-पत्थर	'००० मेट्रिक टन	९,५७१	२७,३३६	१०,५३३	४१,५३१
डोलोमाइट	,,	१४३,२१६	२,०१४	१७७,४६९	२,३३५
संगमरमर	,,	३१,३६७	९९८	३९,७५७	१,०१६
योग—अन्य खनिज (संगमरमर सहित)			३४,२८३		३६,०६१
महायोग			१,२९३,३११		१,३७२,५८५

भारत के विभिन्न प्रान्तों के सन् १९५७-५८ में खनिज उत्पादन का भाग (Share) तथा मूल्य

प्रान्त	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५७ सम्पूर्ण भारत के कुल योग का प्रतिशत	१९५८ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ सम्पूर्ण भारत के कुल योग का प्रतिशत
बिहार	४४७,९६३	३४·६४	४८७,८०२	३५·५४
पश्चिमी बंगाल	२५८,५४०	१९·९९	२८५,६७६	२०·८१
मध्य प्रदेश	१४२,३१३	११·००	१५१,२०४	११·०२
बम्बई	१२४,७७८	९·६५	१२६,६१६	९·२२
मैसूर	७३,१३०	५·६५	७०,४५२	५·१३
उड़ीसा	६७,४३३	५·२१	६७,९८०	४·९४
आन्ध्र प्रदेश	६७,७५९	५·२४	६५,०२३	४·७३
राजस्थान	४६,५४३	३·६०	५१,२६३	३·७३
केरल	२१,६८७	१·६८	२०,४२४	१·४८
आसाम	१७,१६८	१·३३	१६,९०६	१·२७
मद्रास	१५,९४०	१·२३	१६,६७९	१·२२
उत्तर प्रदेश	६,३२३	०·४९	१०,३८७	०·७५
पंजाब	३,१७५	०·२५	१,५८२	०·१२
जम्मू-काश्मीर	१५८	०·०१	२७४	०·०२
हिमाचल प्रदेश	३४८	०·०३	२४८	०·०२
दिल्ली	५४	...	६९	...
योग	१,२९३,३११	१००.००	१,३७२,५८५	१००.००

भारत में धातु-उत्पादन की मात्रा तथा मूल्य

धातु	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
लौहस-धातुएँ (Ferrous Metals)					
उत्तम इस्पात	'००० मेट्रिक टन	१,३६८	९१०,२९६	१,३२०	८७८,१९७
अपिघम-लोहा (Pig Iron)	'००० ,,	२९९	६३,३२०	४३०	९०,९९८
फ़ेरो-मैंगनीज़	,,	४,६३०	३,४१८	४४,९८४	३३,२१५
फ़ेरो-सिलिकन	,,	४,८१३	३,५५३	५,७८४	४,२७०
योग (लौहस खनिजों के मूल्य का)			९८०,५८७		१,००६,६८०
अलौहस-धातुएँ (Non-ferrous metals)					
एल्यूमीनियम	,,	७,९०९	२९,४५५	८,३१६	३०,९८५
एण्टीमनी	,,	५१०	१,६३२	५३५	१,७१४
ताँबा	,,	७,९७४	२६,३३३	७,९६६	२२,०४३
सोना	किलोग्राम	५,५७३	५१,०६९	५,२९१	४९,९८८
सीसा	मेट्रिक टन	३,२२६	३,९४४	३,३८७	२,८८९
चाँदी	किलोग्राम	३,९१५	६०५	३,४१६	५४८
योग (अ-लौहस खनिजों का)			११३,०३८		१०८,१६७
महायोग			१,०९३,६२५		१,११४,८४७

सन् १९५७-५८ में अयस्कों तथा खनिजों की आन्तरिक खपत

खनिज	मात्रा की इकाई	१९५७	१९५८
ऐपेटाइट	मेट्रिक टन	१२५,०००	१३८,०००
एस्बस्टस (कच्चा)	,, टन	१७,०००	१९,०००
बेराइटीज़	,, टन	८,०००	१०,०००
बाक्साइट	,, टन	८१,०००	९१,०००
चीनी मिट्टी (श्वेत मृत्तिका सहित)	,, टन	१८२,०००	१९१,०००
क्रोमाइट	,, टन	१७,०००	१५,०००
कोयला	लाख ,, टन	४२३	४४९
ताम्र अयस्क	,, टन	४००,०००	४०१,०००
कोरण्डम	,, टन	४४९	३९५
फेल्सपार	,, टन	६,८५१	८,०००
अग्नि-मृत्तिका	,, टन	१६३,०००	१९५,०००
सोना (धातु)	किलोग्राम	६,५००	६,२००
जिप्सम	मेट्रिक टन	८९४,०००	९१४,०००
इल्मेनाइट	,, टन	३,८१७	३,७६३
लौह-अयस्क	'००० ,, टन	३,२२५	३,४६७
कायनाइट	,, टन	९,०००	९,०००
सीसा-जस्ता	,, टन	१०१,०००	११०,०००
चूना पत्थर	'००० ,, टन	८,९००	९,६००
मैग्नेसाइट	,, टन	१७,०००	२३,०००
मैंगनीज़ अयस्क	,, टन	३३,०००	९१,०००
अभ्रक	....	....	....
रूटाइल	मेट्रिक टन	५०८	६५०
नमक	'००० ,, टन	३,२००	३,५००
सिलीमिनाइट	,, टन	२,०००	२,५००
स्टीटाइट	,, टन	४२,०००	३९,०००
गन्धक	,, टन	१०८,०००	१०९,०००

सन् १९५६-५८ का सारे संसार का धातु-उत्पादन

धातु	इकाई की मात्रा	१९५६	१९५७	१९५८
एल्यूमीनियम	'००० मेट्रिक टन	३,३६६	३,३६८	३,५५८
ताँबा	'००० ,, टन	३,४२४	३,५८२	३,४४४
सोना	किलोग्राम	१,१९४,३७४	१,२३२,३२१	१,२५०,३६१
अपिधम लोहा*[1]	'००० मेट्रिक टन	१९६,२६०	२०५,७३२	१८६,५००
कटु इस्पात[2]	'००० ,, टन	२८३,५९२	२९०,३१८	२७३,१७६
सीसा	'००० ,, टन	२,२५९	२,३५४	२,२८६
चाँदी	किलोग्राम	६,९७३,०००	७,११३,०००	
टिन —खान[3]	मेट्रिक टन	१८४,०००	१८३,०००	१३६,०००
—शोधक[4]	,, टन	१८६,०००	१७८,०००	१४३,०००
जस्ता	'००० ,, टन	३,०२८	३,०८९	२,९१६

* साम्यवादी चीन के अतिरिक्त. 1. Pig Iron 2. Crude Steel 3. Mine 4. Smelter

भारत से अयस्कों तथा खनिजों का निर्यात

खनिज	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
अपघर्षी खनिज[1] (चूर्ण रूप में)	मेट्रिक टन	३७	१२	२	३
एल्यूमीनियम अयस्क	,, टन	८,६२६	५२०	२०,८७८	८०५
एस्बस्टस (कच्चा)	,, टन	७२	३६१	१४२	२९१
बेराइटीज़ (निश्चूर्णित[2] नहीं)	,, टन	१४,०७०	१,६५४	२३,४८९	२,८६९
बेराइटीज़ (निश्चूर्णित)	,, टन	४७	११	—	—
कुल बेराइटीज़	,, टन	१४,११७	१,६६५	२३,४८९	२,८६९
बेन्टोनाइट	,, टन	१०	२	२७५	४४
बोर्ट	—		४	—	—
क्रोमाइट	,, टन	४१,८२३	५,००२	४९,४०१	६,६१४
खड़िया (कटु)	,, टन	१४३	१७	१४६	१८
बाल मृत्तिका[3]	,, टन	४६	३	७	८
साधारण मृत्तिका[4]	,, टन	२९	३	१५७	७
अग्नि मृत्तिका	,, टन	४०४	४८	२१८	२५
चीनी मृत्तिका	,, टन	२४६	३४	२८८	४१

1. Abrasive Minerals 2. Calcined 3. Ball clay 4. Earth clay

खनिज	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
कोयला	'००० मेट्रिक टन	१,६२५	४९,६७८	१,७४१	५३,३२९
कोक	,, टन	७२,७८३	३,७५३	८०,०४६	२,४३३
हीरा (प्राकृतिक)	—		७८		५१
ऐमेराल्ड	—		६९		५७
फेल्सपार, (कटु)	,, टन	५०८	५८	२३९	१५
फेल्सपार (बहुमूल्य)	—		१९		२३
संकोचक मिट्टी[1]	,, टन	९	२	३	१
ग्रेफाइट	,, टन		—	६	५
ग्रेविल (चूर्णित पत्थर सहित)	,, टन	१४,८४३	४२५	२४,३६०	६३८
जिप्सम	,, टन	१,५३४	८३	१,४०७	११५
इल्मेनाइट	,, टन	३५२,७६७	२४,८५१	२८८,२१६	२०,७७४
टायटेनियल खनिम (इल्मेनाइट के अतिरिक्त)	,, टन	३०५	२१	—	—
लौह-अयस्क	'००० ,, टन	२,२५१	११७,६०४	१,८९६	९९,९४१
कायनाइट	,, टन	२४,८४७	७,५२५	१९,४६५	५,६७१
चूना	,, टन	२४	४	२७	३
चूना पत्थर (भवन-चूना-पत्थर के अतिरिक्त)	,, टन	९४,६३७	७०६	९२,४९३	६७४

1. Fuller's Earth

खनिज	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
मैंगनीज़ अयस्क (प्रथम व द्वितीय वर्ग)	मेट्रिक टन	१,६४३,२३२	३०८,४१२	९३१,५९१	१५१,५२२
मैंगनीज़ अयस्क (लोहमय)[1]	,, टन	८२,६३४	६,७२१	३६,२६१	१,८४३
मैंगनीज़ अयस्क (परआक्साइड अयस्क)[2]	,, टन	८,७०६	३,५३८	४,१९५	१,६९३
मैंगनीज़ अयस्क (अन्य)	,, टन	७,८८०	६१९	३,५०३	७८६
	कुल मैंगनीज़ अयस्क	१,७४२,४५२	३१९,२९०	९७५,५५०	१५५,८४४
मैग्नेसाइट (निश्चूर्णित)	मेट्रिक टन	१५,२८८	२,८०७	१२,६०५	२,२४४
मैग्नेसाइट (निश्चूर्णित नहीं)	,, टन	६,४९८	८४२	७,२९४	९६३
	कुल मैग्नेसाइट	२१,७८६	३,६४९	१९,८९९	३,२०७
संगमरमर	मेट्रिक टन	१२९	७४	११७	६७
अभ्रक (टुकड़े)[3]	,, टन	२,०००	३६,५५४	२,३७८	४४,७८४
अभ्रक (विपाटन)[4]	,, टन	७,५३२	४६,९७६	६,४७०	४७,०१६
अभ्रक (अन्य)	,, टन	१२,८४४	३,१०६	१०,८८७	१,६४९
	कुल अभ्रक	२२,३७६	८६,६३६	१९,७३५	९३,४४९
ओकर (पीला)[5]	मेट्रिक टन	६२	१०	८६	१०

1. Ferruginous 2. Peroxide Ore 3. Mica (Blocks) 4. Mica (Splittings) 5 Ochre (Yellow)

खनिज	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु०'०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु०'०००)
मूल्यवान एवं अर्द्ध मूल्यवान पत्थर—			१,०८३		५१९
बालू (पिसे हुए क्वार्टज़ सहित)	मेट्रिक टन	६५७	२८	४९१	२१
नमक	,, टन	३८१,३८८	६,२०५	२५७,०४७	३,७३३
सिलीमिनाइट	,, टन	५,७१४	१,८१२	९,६०९	३,१२५
स्टीटाइट (टुकड़े तथा चूर्ण)	,, टन	७,१३३	१,३४०	७,२१५	१,१५४
पत्थर (भवन)	,, टन	१७,५३१	४७७	३८,३५७	७८६
टंगस्टन अयस्क	,, टन	—	—	११	३६
जस्ता संकेन्द्रण[1]	,, टन	६,४८६	३,०००	४,९१०	१,४३२
साल्ट पिटर[2]	,, टन	६४	९४	६७	७०
अन्य	—	—	५,१५१	—	२,२२१
योग			६४१,३९६		४६०,१२९

1 Zinc Concentrates 2 Salt petre

भारत में अयस्कों तथा खनिजों का आयात

खनिज	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
अपघर्षी खनिज (चूर्ण रूप में)	मेट्रिक टन	२,०००	३,०००	८४८	८९६
एल्यूमीनियम अयस्क	,, टन	—	—	२२	२
एण्टीमनी अयस्क	,, टन	३५३	४३२	९५०	९१७
एपेटाइट	,, टन	११७,७४९	१५,४९४	१२३,२००	११,३०२
अन्य खनिज फास्फेट[1]	,, टन	४३	५५	४,५५२	४१०
ऐस्बस्टस (कच्चा)	,, टन	१६,२८७	२०,८९८	१८,३५४	२३,३९०
ऐस्फाल्ट (प्राकृतिक)[2]	,, टन	६,९४४	१,७७१	४५८	२७३
बेराइटीज़ (निश्चूर्णित)	,, टन	२५	११	२९	१९
बेराइटीज़ (निश्चूर्णित नहीं)	,, टन	४४	१७	३८	१४
कुल बेराइटीज़	,, टन	६९	२८	६७	३३
बेण्टोनाइट	,, टन	८०	३४	२५	१५
सुहागा[3]	,, टन	३,९९८	२,४३३	४,९५९	३,७०५
खड़िया (कटु)	,, टन	२,८७२	४६०	२,२९६	३६९
बाल मृत्तिका	,, टन	२,७१९	५१८	३,४७३	५८०
चीनी मृत्तिका	,, टन	४,३५३	१,३०४	५,९०२	१,२१४
अग्नि मृत्तिका	,, टन	२२५	१५६	१७६	१०३
साधारण मृत्तिका	,, टन	५७८	१५४	२४८	९२
कोयला	,, टन	५१५	२७५	१,३५०	५५४

1. Other mineral phosphates 2. Asphalt (natural) 3. Borax

खनिज	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
कोक	मेट्रिक टन	१२५	१४२	१,०८७	३६४
कोयला, कोक तथा लिग्नाइट की टिकियाँ[1]	,, टन	१४५	१८०	४	७
ताम्र अयस्क व संकेन्द्रण	,, टन	१	...	—	१
क्रायोलाइट	,, टन	५९९	७९४	१,६७५	१,९९२
युक्ताप्य मिट्टी[2]	,, टन	२९३	२३६	७७७	३८४
हीरा (औद्योगिक कटु)	,, टन		२५९		१
हीरा (प्राकृतिक बहुमूल्य)	—		१,२७४		८८९
ऐमेराल्ड	—		१६७		३३०
फेल्सपार (कटु)	मेट्रिक टन	—	—	४	२
फेल्सपार (प्राकृतिक)	,, टन		९		१
फ्लिट्स	,, टन	३	४५	७	४
संकोचक मिट्टी	,, टन	५२४	३१०	३०३	१८४
फ्लोरस्पार	,, टन	८,०२२	२,५९४	५,४१५	१,३१४
ग्रेविल (पिसे हुए पत्थर सहित)	,, टन	१३	५	—	—
ग्रेफाइट	,, टन	१,१०६	६२४	६३६	५०७
जिप्सम	,, टन	२८,४०१	३७९	४,९९७	२४३
लौह अयस्क	,, टन	१,४७७	३९६	६५५	१५२
सीसा अयस्क व संकेन्द्रण	,, टन	१०४	३३४	११२	१९२

1. Brignettes of Coal, Coke & Lignite 2. Diatomaceous earth

खनिज	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
चूना	मेट्रिक टन	१५५	५९	१७९	८२
चूना पत्थर	,, टन	१,२८७	३०	—	—
संगमरमर ( )[1]	,, टन	५,३७७	७०६	१६४	४०
संगमरमर ( )[2]	,, टन	२३८	१२६	१४	११
कुल संगमरमर	,, टन	५,६१५	८३२	१७८	५१
मैंगनीज़ अयस्क	,, टन	१,८२९	८१४	८,९११	५,४३४
मैंगनीज़ परआक्साइड	,, टन	१६५	९६	—	—
कुल मैंगनीज़ अयस्क	,, टन	१,९९४	९१०	८,९११	५,४३४
मैग्नेसाइट (निश्चूर्णित)	,, टन	२०५	८१	८६९	४१२
मैग्नेसाइट (निश्चूर्णित नहीं)	,, टन	१,१९८	६५३	६२	३५
कुल मैग्नेसाइट	,, टन	१,४०३	७३४	९३१	४४७
अभ्रक (टुकड़े)	,, टन	३	१०९	—	—
अभ्रक (विपाटन)	,, टन	३६	११०	—	—
अभ्रक (अन्य)	,, टन	६१	८०	१२	१६
कुल अभ्रक	,, टन	१००	२९९	१२	१६
मोनाज़ाइट	,, टन				८
आर्पिमेण्ट[3]	,, टन	२०	४५	९	१७

1. Marble (Unworked) 2. Marble (Worked) 3. Orpiment

खनिज	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
बहुमूल्य व अर्द्ध बहुमूल्य पत्थर (प्राकृतिक)			२०४		५१२
पोटाश लवण (कटु)	मेट्रिक टन	—	—	६,१०७	६४५
झामक पत्थर[1]	,, टन	१५	१०	१०	९
रियलगर	,, टन	८	८	१५	१५
रूटाइल	,, टन	१५७	१६१	१९६	१५६
बालू (क्वार्ट्ज सहित)	,, टन	१३०	८५	१९	१५
नमक	,, टन	८८	७३	१७	१६
चाँदी अयस्क व संकेन्द्रण	,, टन	—	—	०·०४	८
स्टीटाइट (टुकड़े व चूर्ण)[2]	,, टन	११६	७०	४	१
पत्थर	,, टन	१०४	६२	८९	२३
सोडियम नाइट्रेट	,, टन	१६,७९१	४,७९४	६,७७९	१,७१३
गन्धक	,, टन	१०७,९८१	३०,२८२	१०८,८०१	१९,५००
टिन अयस्क व संकेन्द्रण	,, टन				
ट्रिपोली मिट्टियाँ[3]	,, टन	८१	४५	१४८	८२
अन्य	,, टन	—	६८४	—	७४८
कुल मूल्य			९४,१४०		७९,९२०

1. Pumice Stone 2. Steatite (Blocks & Powder) 3. Tripoli earths

भारत में धातुओं तथा मिश्रधातुओं का आयात

धातुएँ	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
लौहस धातुएँ					
लौह-मिश्रधातुएँ[1]	मेट्रिक टन	१,११२	१,५६७	१,०९७	१,४२०
अपिघम व छिद्रिष्ठ लोहा[2]	,, टन	११५,४२६	५१,२९६	१०२,०५०	४७,३४७
लोहा व स्पात पदार्थ	,, टन	१,७०४,३६०	१,४२२,९७४	१,१२९,६३९	९३१,४४०
लौह-धातुओं के मूल्य का योग	,, टन		१,४७५,८३७		९८०,२०७
अ-लौहस धातुएँ*					
एल्यूमीनियम	,, टन	२३,५७७	८२,८२८	१९,५९७	६०,२९५
एण्टीमनी	,, टन	२२	८९	३५	७३
पीतल व कांसा	,, टन	६,६२१	२३,००१	२,६८४	८,९३०
ताँबा	,, टन	४८,६२२	१७०,३३३	५२,३३६	१३४,२७२
जर्मन सिल्वर	,, टन	२३	२३७	—	—
सीसा	,, टन	१४,७६६	२२,०५८	२१,८४४	२२,८७२
निकल	,, टन	१,००९	७,७१७	९५५	६,८४६
प्लेटिनम	किलोग्राम	७६	१,१२३	६८	६६३
चाँदी	किलोग्राम	७६	२१	१०३	१७
टिन	मेट्रिक टन	६,४५७	४८,९८८	५,३१४	४८,००४
जस्ता	,, टन	५४,२५७	७२,४२५	६०,६५५	६१,३०४
विविध अ-लौहस धातुएँ	—	—	६,३५२	—	४,८४१
अ-लौहस धातुओं के मूल्य का योग			४३५,१७२		३४८,११७
कुल योग			१,९११,००९		१,३२८,३२४

* इनमें सोना सम्मिलित नहीं किया गया है। 1. Ferro-alloys 2. Pig & Sponge Iron

भारत से धातुओं तथा मिश्रधातुओं का निर्यात*

धातुएँ	मात्रा की इकाई	१९५७ मात्रा	१९५७ मूल्य (रु० '०००)	१९५८ मात्रा	१९५८ मूल्य (रु० '०००)
लौहस-धातुएँ					
लौह-मिश्रधातुएँ	मेट्रिक टन	३,०५२	२,२७५	१०,७२२	८,१७९
अपिघम व छिद्रिष्ठ लोह	,, टन	४१२	११३	—	—
लोहा व इस्पात पदार्थ	,, टन	९५,८९५	२५,९७९	११०,३१९	१७,१११
	लौहस धातुओं के मूल्य का योग		२८,३६७		२५,२९८
अ-लौहस-धातुएँ					
एल्यूमीनियम†	मेट्रिक टन	११४	१,१४८	१४५	९१४
पीतल व काँसा†	,, टन	६५३	२,६१५	४१८	१,८४४
ताँबा	,, टन	४८०	५८०	१६२	३४२
सीसा	,, टन	४२२	६८७	२०६	२०४
निकल	,, टन	१८	७९	—	—
टिन	,, टन	४५	२१०	४२	१०६
जस्ता	,, टन	७९४	५४३	६५९	३६१
विविध अ-लौहस धातुएँ	—	—	३१३	—	२५७
अ-लौहस धातुओं के मूल्य का योग			६,१७५		४,०२८
कुल योग			३४,५४२		२९,३२६

* चाँदी को छोड़कर। † वर्तन भी सम्मिलित हैं।

प्राविधिक शब्दों की सूची

(अंग्रेजी-हिन्दी)

A

Abrasive अपघर्षी
Absorb प्रचूषण
Accumulation संचयन
Adjustment समायोजन
Aerial वायव्य
Age आयु, (उम्र), काल, युग
Aeromagnetic वाचुम्बकीय, वातचुम्बकीय
Alluvial जलोढ, एल्यूवियल
Alloy मिश्रधातु
Along अनुप्रस्थ
Alteration परिवर्तन
Anticlinal उद्वलि
Arid रूक्ष
Ash भस्म
Association साहचर्य, समायोजन
Anticlinorium समपनति

B

Bacteria शाकाणु, जीवाणु
Basic क्षारीय
Basin बेसिन, द्रोणी
Bath Material तापन पदार्थ
Battery समूहा
Beach बालुतट
Bed स्तर, संस्तर; तल
Bed-rock संस्तर-शिला
Bedding Plane संस्तरण तल
Belt पेटी, पेटिका
Bending अवनमन
Beneficiation संस्करण
Biochemical जीव-रासायनिक
Bitter कटु
Blade फलक
Blast Furnace धमन-भट्टी
Blending मिलाना, एक करना
Body काय, राशि, पिंड
Borax सुहागा
Boulder शिला-खण्ड
Brittle भिदुर, भंगुर
Briquettes टिकियाँ
By-product उपजात, उपसृष्ट

C

Calcareous कैल्शियम-मय

Calcined चूर्णीय
Capacity समावेशन
Capping टोपिका
Carbonization कार्बनीकरण
Catalytic Agent आवेजक
Catchment Area आवाह-क्षेत्र
Cavity filling गुहा-पूरण
Ceramics मृच्छिल्प, मृत्तिका उद्योग
Charge मिश्रातु-निक्षेप
Channelways जलमार्ग
Clay मृत्तिका
Cleavage विदलन
Coagulate स्कंदित होना, घनीभूत होना
Coarse स्थूल, रूक्ष
Columnar स्तंभाकार
Colloidal श्लेषाभीय, कलिलीय
Compact सुसंहत
Compression संपीडन
Concentration संकेन्द्रण
Condenser संघनक
Conservation संरक्षण
Consolidation संघनन
Contact Metamorphism संपर्क रूपान्तरण
Continuous संतत
Controlled Fission नियन्त्रित विखण्डन
Corrosion संक्षारण
Crack पाट, दरार
Cross तिर्यक
Crucible मूषा, घरिया
Crude Oil अपरिष्कृत तैल
Crust पर्पटी
Crystal मणिभ
Crystallisation मणिभीकरण

D

Debris संखण्ड, मलबा, धातुमल
Decay अपक्षय
Decomposition विघटन
Deoxidization विजारण
Deposit निक्षेप
Depression निम्नन
Desulphurization विशुल्वारीयण
Detrital व्ययघर्षण
Diatomaceous Earth डायाटोमी मृत्तिका
Differentiation विकलन
Diffusion विसरण
Dilute तनु
Dip नमन
Discharge स्राव
Disintegration वियोजन
Dispersed अपकीर्ण
Dissemination विप्रथन
Dissolve प्रविलीन
Distillation आसवन
Dressing बंधन संभार
Drilling वेधन, व्यधन, छेदन

Ductile प्रतन्य
Dyke डाइक

E

Electrolyte विद्युदंश
Emanation निस्सृति
Embedded खचित
Environment वातावरण
Enrichment संवर्द्धन
Epigenetic उत्तर-कालीन
Equilibrium संतुलन
Erosion अपरदन
Estuarine अरुद्ध नदमुख
Evaporation वाष्पन
Expansion प्रसार
Exploration गवेषणा
Exposure अपावरण
Exposed अपावृत
Extra-Peninsula प्रायद्वीप - बाह्य प्रदेश

F

Fabrication तन्त्वीकरण
Fault भ्रंश
Feature लक्षण
Fibrous सूची
Filling पूरण, भरण
Finish समापन
Fission विखण्डन
Fissure विदर
Fixed स्थिर
Flaws दरारें
Flexibility नम्यता
Flexture
Floatation प्लवन
Flow प्रवाह
Fluctuation उच्चावचन
Fluorescent भासमान
Fold वलन
Folded वलित
Foliated पर्णित
Foliation पर्णन
Formations संरचनाएँ
Fossil जीवाश्म
Foundry संधानी
Frost-action तुषार-क्रिया
Fuel ईंधन
Fuller's Earth संकोचक मृत्तिका
Fusion द्रावण

G

Gas वाति, गैस
Gasification वातिकरण
Geological भूतात्विक, भूवैज्ञानिक
Geophysical भूभौतिक
Grain कण
Granular कणवत्
Gravimeter भ्वाकृष्टिमान
Gravimetric भ्वाकृष्टि
Ground Water तलस्थ जल

H

Hardness कठोरता
Heavy भारी
Homogeneous समरूप
Horizon संस्तर
Host-rock पोषिता-शिला
Humic ह्यूमिक
Humid आर्द्र
Humid Zone आर्द्र-कटिबन्ध
Hydraulic Stowing आम्भस-भरण
Hydration जलीकरण
Hydrolysis जल-विश्लेषण
Hydrothermal उष्ण जलीय
Hypothermal उच्च-तापीय

I

Igneous आग्नेय
Incline प्रवणक
Incandescent तापदीप्त
Inferior अधोवर्ती
Ingot व्यंगारित, पिण्डक
Injection प्रवेशीकरण
Inorganic अकार्बनिक
In situ स्वस्थाने
Insulator विसंवाहक
Installation अधिष्ठापन
Interior अभ्यन्तर
Interbedded अन्तरस्तरित
Intrusion अन्तर्भेदन
Isotope संस्थानी

L

Lamina स्तरिका
Late उत्तर
Latitude अक्षांश
Lens वीक्ष, ताल
Lenticular वीक्षरूप, तालआकार
Liquid Immiscibility द्रव अमिश्रता
Lithology शिलाक्रम
Littoral समुद्रतटीय
Lode पट्टिका
Lustre द्युति

M

Magma द्रुतपुंज
Magma Chamber द्रुतपुंज कक्ष
Magmatic द्रुतपुंजीय
Masses पुंज, समूह
Massive स्थूल
Mechanical भौतिक, भौतिकीय
Mesothermal मध्यतापीय
Metallic धात्विक
Metamorphic कायान्तरित
Metamorphism कायान्तरण
Metasomatism रूपान्तरण
Meteoric अवपृष्ठ
Milling पेषण
Mineralizing Solution खनिजीकारक विलयन
Mining खनन
Mode रीति

Moisture आर्द्रता
Moraine मोरेन, हिमोढ
Mottled चित्रित

N

Native State प्राकृत अवस्था
Neutron क्लीवाणु
Nodule पिण्ड
Nucleus नाभिक

O

Oil Shale तैल-शेल
Optical glass प्रकाशीय काँच
Ore अयस्क
Organic कार्बनिक
Orifice मुख, छिद्र
Outcrop तलागत
Outline बहीरेखण
Oven कन्दु
Oxidation आक्सीकरण

P

Pairt लेप, पेन्ट
Patch सिध्म, भूखंड
Peat पीट
Pebble गिट्टी, रोड़ा
Peninsular प्रायद्वीपीय
Percolation अतिच्यवन
Percolation Well अतिच्याव कूप
Permeable पारगम्य
Physico-Chemical भौतिकीय-रासायनिक
Pig iron अपिधम-लौह
Placer deposit धाव-निक्षेप
Plastic सुघट्य
Plateau पठार, उच्चस्थली
Pneumatolytic वात्यंशिक
Pocket गोह
Pores रन्ध्र
Pore-space रन्ध्रावकाश
Porous रन्ध्रयुक्त, सरन्ध्र
Power ऊर्ज्जा; शक्ति
Process विधायन

Q

Quarry खनि
Quartz स्फटिक
Quartzite स्फटिकाश्म

R

Radiation विकिरण
Radio-activity रेडियो सक्रियता
Radiating-fibre वितरक तन्तु
Rare विरल
Rationalization वैज्ञानिकन
Reactive प्रक्रियाशील
Reactor प्रक्रियावाहक, प्रतिकारक
Recent नवीन, अभिनव
Recombination पुनर्योजन
Recrystallization पुनर्मणिभीकरण

Rectifier संशोधक
Reduction अनाक्सीकरण
Reef शैल-भित्ति
Refinery शोधनशाला
Reflection परावर्तन
Regional Metamorphism प्रादेशिक कायान्तरण
Replacement प्रतिस्थापन
Rescue Services आपातकालीन सेवाएँ
Reserve भण्डार
Reservoir जलाशय
Residual अवशिष्ट
Resource संसाधन
Ridge कूट
Rock-forming शिला-निर्माणी
Roof पृष्ठ, छत
Ropeway रज्जूमार्ग
Rotten गलित

S

Saddle पल्याण
Salinity लावण्य
Salt-dome लवण-छाद
Salt-plug लवण-निग
Sample प्रतिदर्श
Seam स्तर
Secondary द्वितीयक
Section काट
Sedentary अनूठ
Sedimentation अक्सादन
Segregation पृथक्करण
Seismic भूकम्पीय
Seismograph भूकम्पलेखक
Separation पृथक्करण
Shaft ईषा
Shale शेल
Shear विकृन्तन
Sheet चादर
Shield भूखण्ड, भूकवच
Silky कौशेय
Silt गाद
Sink निमज्जन
Sinter साद
Sintering संपुंजन
Smelter विद्रावक
Smelting विद्रावण
Solution विलयन
Solvent विलायक
Spring सोता, स्रोत
Stage संघ
Stainless अकलुष
Stopping रोधन
Stratum स्तृत
Stretch विस्तार
Strike अभिलम्बा
Strip पट्टी
Structure संरचना
Sublimation ऊर्ध्वपातन
Subsurface water स्थलमंडल जल

Subsoil अधोभूमि
Super saturation अधिसंतृप्तीकरण
Sulphuric acid गंधकाम्ल
Synclinorium द्रोणीमाला
Syngenetic समकालीन
Synthesis संश्लेषण

T

Tensile आतन्य
Tertiary तृतीयक
Texture वयन
Thrust अधिक्षिप्त
Tide ज्वार
Topography स्थलाकृति
Tough दृढ़
Tract भूखण्ड
Transportation परिवहन
Transmission पारेषण
Trap ट्रैप
Treatment साधन

U

Ultrabasic अतिक्षारीय
Unconformity विषम-विन्यास
Underground water भूमिगत जल
Underlying अधश्शायी
Upthrust उछाल

V

Vaporisation वाष्पीयकरण
Vein पट्टिका
Vesicular कोशावान्, कोशागत
Void space शून्य स्थान
Volatile उत्पत

W

Wallrock भित्तिशिला
Water-table जल-पटल
Waves तरंगें
Weathering ऋतुक्षरण

Z

Zone कटिबन्ध

(हिन्दी अंग्रेजी)

अ

अकलुष Stainless
अकार्बनिक Inorganic
अतिच्यवन Percolation
अतिच्याव कूप Percolation well
अतिक्षारीय Ultrabasic
अधश्शायी Underlying
अधिष्ठापन Installation
अधिसंतृप्तीकरण Super Saturation
अधिक्षिप्त Thrust
अधोभूमि Subsoil
अधोवर्ती Inferior
अनाक्सीकरण Reduction
अनूढ Sedimentary
अनुप्रस्थ Along
अन्तरस्तरित Interbedded
अन्तर्भेदन Intrusion
अपकीर्ण Dispersed
अपघर्षी Abrasive
अपरदन Erosion
अपक्षय Decay
अपावरण Exposure
अपावृत Exposed
अपिधम लौह Pig Iron
अभ्यन्तर Interior
अभिलम्बा Strike
अयस्क Ore
अरुद्ध नदमुख Estuarine
अवनमन Bending
अवपृष्ठ Meteoric
अवशिष्ट Residual
अवसादन Sedimentation
अक्षांश Latitude
अशोधित तैल Crude Oil

आ

आक्सीकरण Oxidation
आग्नेय Igneous
आतन्य Tensile
आर्द्र Humid
आर्द्रता Humidity, moisture
आपातकालीन सेवाएँ Rescue services
आम्भस-भरण Hydraulic Stowing
आयु, उम्र Age
आवाह-क्षेत्र Catchment area
आवेजक Catalytic agent
आसवन Distillation

ई

ईंधन Fuel

ईषा Shaft

उ

उच्च तापीय Eypothermal
उच्चावचन Fluctuation
उछाल Upthrust
उत्तर Late, Upper
उत्तर-कालीन Epigenetic
उत्पत Volatile
उद्वलि Anticlinal
उपजात, उपसृष्ट By-Product
उष्ण-जलीय Hydrothermal

ऊ

ऊर्ज्जा Power
ऊर्ध्वपातन Sublimation

ऋ

ऋतुक्षरण Weathering

क

कटिबन्ध Zone
कटु Bitter
कण Grain
कणवत् Granular
काट Section
काय Body
कायान्तरण Metamorphism
कायान्तरित Metamorphic
कार्बनिक Organic
कार्बनीकरण Carbonization
काल Age
कूट Ridge
कैल्शियम-मय Calcareous
कोशागत Vesicular
कौशेय Silky
कन्दु Oven
क्लीवाणु Neutron

ख

खचित Embedded
खनन Mining
खनि Quarry

ग

गलित Rotten
गवेषण Exploration
गाद Silt
गिट्टी Pebble, रोड़ा
गुहा-पूरण Cavity filling
गोह Pocket
गौण Secondary

च

चादर Sheet
चित्रित Mottled
चूर्णित Calcined

ज

जल-पटल Water-table

जल-मार्ग Channel ways
जल-विश्लेषण Hydrolysis
जलीकरण Hydration
जलोढ़ Alluvial
जीव-रासायनिक Bio-chemical
जीवाश्म Fossil
ज्वार Tide

ट

टिकियाँ Briquettes
टोपिका Capping
ट्रैप Trap

ड

डाइक Dyke
डायाटोमी मृत्तिका Diatomaceous earth

त

तनु Dilute
तन्त्वीकरण Fabrication
तरंगें Waves
तलस्थ जल Ground water
तलागत Out-crop
तापदीप्त Incandescent
तापनपदार्थ Bath material
तिर्यक Cross
तुषार क्रिया Frost action
तैल-शेल Oil Shale
तृतीयक Tertiary

द

दरारें Flaws
द्युति Lustre
दृढ़ Tough
द्रव अमिश्रता Liquid Immiscibility
द्रावण Fusion
द्रुतपुंज Magma
द्रुतपुंजीय Magmatic
द्रुतपुंज कक्ष Magma Chamber
द्रोणी Basin
द्रोणीमाला Synclinorium
द्वितीयक Secondary

ध

धमन भट्टी Blast furnace
धात्विक Metallic
धाव-निक्षेप Placer deposit

न

नमन Dip
नम्यता Flexibility
नवीन Recent
नाभिक Nucleus
निमज्जन Sink
निम्नन Depression
नियंत्रित विखण्डन Controlled Fission
निक्षेप Deposit

प

पट्टिका Vein, lode

पट्टी Strip; band
पठार Plateau
पर्णित Foliated
पर्पटी Crust
परावर्तन Reflection
परिवर्तन Alteration
परिवहन Transportation
पल्याण Saddle
पाट, दरार Crack
पारगम्य Permeable
पारेषण Transmission
पिण्ड Nodule
पीट Peat
पुनर्योजन Recombination
पूरण Filling
पृथक्करण Separation, Segregation
पेटिका, पेटी Belt
पृष्ठ Roof
पेन्ट Paint, लेप
पेषण Milling
पोषिता-शिला Host-rock
प्रकाशीय काँच Optical glass
प्रक्रियावाहक Reactor
प्रक्रियाशील Reactive
प्रचूषण Absorb
प्रतन्य Ductile
प्रतिदर्श Sample
प्रतिस्थापन Replacement
प्रवाह Flow
प्रविलीन Dissolve
प्रसार Expansion
प्राकृत अवस्था Native state
प्रादेशकीय-कायान्तरण Regional metamorphism
प्रायद्वीपीय Peninsular
प्रायद्वीप-वाह्यप्रदेश Extra-Peninsular
प्लवन Floatation

फ

फलक Blade

ब

बन्धनसंभार Dressing
बहीरेखण Outline
बालुतट Beach
बेसिन, द्रोणी Basin

भ

भस्म Ash
भारी Heavy
भास्मान Fluorescent
भित्ति शिला Wall rock
भिदुर Brittle
भूकम्पीय Seismic
भूकम्पलेखक Seismograph
भूखण्ड Shield, Tract
भूतात्विक (भूवैज्ञानिक) Geological
भू-भौतिक Geo-physical

भूमिगत जल Underground Water
भौतिकीय Mechanical
भौतिकीय-रासायनिक Physico-Chemical
भंडार Reserve
भ्वाकृष्टि Gravimetric
भ्वाकृष्टिमान Gravimeter

म

मध्यतापीय Mesothermal
मणिभ Crystal
मणिभीकरण Crystallisation
मिट्टी Earth
मिश्रधातु Alloy
मिश्रातु-निक्षेप Charge
मुख Orifice
मोरेन Moraine, हिमोढ
मृच्छिल्प, मृत्तिका उद्योग Ceramics
मृत्तिका Clay

य

युग Age, Period

र

रज्जूमार्ग Rope way
रन्ध्र Pores
रन्ध्रयुक्त, सरन्ध्र Porous
रन्ध्रावकाश Pore-space
रीति Mode
रूक्ष Arid
रूपान्तरण Metasomatism
रेडियो-सक्रियता Radioactivity
रोधन Stopping

ल

लवण-छाद Salt-dome
लवण-निग Salt-plug
लावण्यता Salinity
लक्षण Feature
लेप Paint

व

वयन Texture
वलन Fold
वलित Folded
वाचुम्बकीय, वातचुम्बकीय Aero-magnetic
वातावरण Environment
वाति Gas
वातिकरण Gasification
वायव्य Aerial
वाष्पन Evaporation
वाष्पीयकरण Vapourization
विकलन Differentiation
विकृन्तन Shear
विकिरण Radiation
विखण्डन Fission
विघटन Decomposition
विजारण Deoxidization

वितरक तन्तु Radiating fibre
विदर Fissure
विदलन Cleavage
विद्रावक Smelter
विद्रावण Smelting
विद्युदंश Electrolyte
विधायन Process
विप्रथन Dissemination
वियोजन Disintegration
विरल Rare
विलयन Solution
विलायक Solvent
विशुल्वारीयण Desulphurization
विषम-विन्यास Unconformity
विसरण Diffusion
विसंवाहन Insulation
वीक्ष Lens
वेधन, व्यधन Drilling
व्यपघर्षण Detrital
व्यगारित Ingot

श

शाकाणु, जीवाणु Bacteria
शिलाक्रम Lithology
शिलाखण्ड Boulder
शिला-निर्माणी Rock forming
शून्यस्थान Void space
शेल Shale
शैल-भित्ति Reef
शोधनशाला Refinery
श्लेषाभीय Colloidal

स

संकेन्द्रण Concentration
संकोचक मृत्तिका Fuller's earth
संखण्ड, मलबा, धातुमल Debris
संघ Stage
संघनक Condenser
संघनन Consolidation
संचयन Accumulation
संतत Continuous
संतुलन Equilibrium
संतृप्तीकरण Saturation
संधानी Foundry
संपर्क रूपान्तरण Contact metasomatism
संपीडन Compression
संरचनाएँ Formations, Structures
संरक्षण Conservation
संवर्द्धन Enrichment
संशोधक Rectifier
संश्लेषण Synthesis
संसाधन Resource
संस्करण Beneficiation
संस्तर Bed, Horizon
संस्तर-शिला Bed-rock
संस्तरण तल Bedding plane
समकालीन Syngenetic
समपनति Anticlinorium

समरूप Homogeneous, Equivalent
समापन Finishing
समायोजन Adjustment
समावेशन Capacity
समुद्रतटीय Littoral
समूहा Battery
साद Sinter
साधन Treatment
साहचर्य Association
सिध्म, भूखंड Patch
सुघट्य Plastic
सुसंहत Compact
सुहागा Borax
सूची Fibre
सोता Spring
स्तर Seam
स्तरिका Lamina
स्तम्भाकार Columnar
स्थलमंडलीय, जल Subsurface water
स्थलाकृति Topography
स्थूल Coarse, Massive
स्फटिक Quartz
स्फटिकाश्म Quartzite
स्राव Discharge
स्वस्थाने In situ

ह

हिमोढ Moraine
ह्यूमिक Humic